# "भारत में राष्ट्रपति शासन की राजनीति"

(1967-1989)

# "The Politics of the President's Rule in India"

(1967-1989)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

## शोध - प्रबन्ध

निर्देशक

**डॉ० हरि मोहन जैन**

(भूतपूर्व अध्यक्ष)

राजनीति शास्त्र विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शोधकर्ता

**कु० सत्य प्रिय**



राजनीति शास्त्र विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद
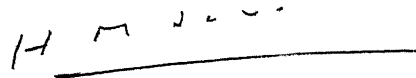
1995

# CERTIFICATE

*This is to certify that Km Satya Priya has worked under my supervision and guidance and that the thesis presented here is her own work*

*I approve its submission for the award of the Degree of Doctor of Philosophy of the University of Allahabad*

*Dated January 1996*

*(Dr H M Jain)*
*Professor & (Ex) Head*
*Department of Political Science,*
*Allahabad University Allahabad*

# प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध भारतीय सविधान के अनुच्छेद 356 के विषय म है। यह अनुच्छद प्रारम्भ से ही विवाद का विषय रहा है। सविधान सभा म भी इसकी कटु आलोचना हुयी थी, जिसक प्रत्युत्तर न डा० अम्बेदकर न यह मत व्यक्त किया था कि इस अनुच्छेद का प्रयाग कवल गभीर स्थितिया म एक कडवी दवाई के रूप मे हागा, नित्य प्रतिदिन खाने वाले भोजन क रूप मे नही। परन्तु पिछल 45 वर्षा का सवधानिक इतिहास डॉ० अम्बेदकर के इस कथन का नकारता है। वास्तव मे अनुच्छद 356 का प्रयाग प्रथम निर्वाचनो से पूर्व ही शुरू हो गया था जबकि पजाब म 1951 मे काग्रेसी मत्रिमण्डल के त्याग पत्र के बाद वहॉ धारा 356 का प्रयोग किया गया। 1959 मे जब केरल म साम्यवादी सरकार को अपदस्थ कर वहॉ राष्ट्रपति शासन लागू किया गया ता यह कटु आलोचना का विषय हो गया। फिर भी कुल मिलाकर नेहरू के शासन काल म अनुच्छद 356 का प्रयाग सीमित मात्रा म अत्यावश्यक व अपरिहार्य परिस्थितियो मे ही किया गया। परन्तु नेहरू के उपरान्त अनुच्छद 356 का प्रयाग केन्द्र के हाथा मे विराध पक्षीय सरकारो (राज्य) का अपदस्थ करन तथा कन्द्र द्वारा राज्यो की राजनीति को अपने पक्ष मे प्रभावित करन क लिये किया जान लगा। परिणाम यह हुआ कि अनुच्छेद 356 एक सवैधानिक आवश्यकता न रहकर एक राजनीतिक अस्त्र बन गया। स्वाभाविक था कि विपक्षी दल इस स्थिति का विरोध करते। अत विभिन्न विपक्षी दला का सगाष्ठिया मे इसे सविधान से हटाये जाने की माग की गयी, यद्यपि भाजपा राज्य सरकारो का गिरान मे इसके प्रयाग का इन सभी विपक्षी दलो ने स्वागत किया।

उपराक्त कारणो से सविधान का यह अनुच्छेद राजनीतिक परिचर्चा का विषय बन गया आर बुद्धिजीवियो व शाधकर्ताओ का ध्यान भी इसकी ओर आकृष्ट हुआ ताकि एक गैर राजनीतिक, विशुद्ध रूप से बौद्धिक विश्लेषण, इसके प्रावधानो व इसके व्यवहारिक प्रयाग का किया जा सक प्रस्तुत शाध प्रबन्ध इसी लक्ष्य से प्रेरित है।

वस इस विषय पर अनेका प्रमाणिक अध्ययन हुये है, जिनमे कुछ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैसे—राजीव धवन द्वारा लिखित 'प्रैसीडैन्ट्स रूल इन द स्टेट्स, श्रीराम महेश्वरी कृत प्रसीडेन्ट्स रूल इन इण्डिया श्री० जे० आर० सिवाज कृत-दि पॉलिटिक्स आफ दी प्रेसीडेन्ट रूल इन इण्डिया

पुस्तक ह। इसके अतिरिक्त लाकसभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'प्रसीडन्ट्स रूल इन स्टट्स म भी तथ्या का प्रमाणिक विवरण मिल सकता है।

लकिन इन सब विद्धतापूर्ण ग्रथो के बावजूद राष्ट्रपति शासन के प्रावधाना क सबध मे, अनक पक्ष ऐसे हे जिनको और अधिक उजागर करने की आवश्यकता मेने महसूस की ओर इसी कमा का दूर करने का प्रयास प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे किया गया है। इसी सदर्भ मे 1993 म मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का निर्णय,जिसके द्वारा 15 दिसम्बर 1992 को मध्य प्रदेश मे अनुच्छेद 356 के अन्तगत का गयी उद्घाषणा को असवैधानिक घोषित कर दिया गया था,जिसे बाद मे सर्वोच्च न्यायालय ने निरस्त कर दिया था। तत्पश्चात् 11 मार्च, 1994 को इस मामले व अन्य लम्बित मामले पर निर्णय दते हुय यह अभिनिर्धारित किया कि राज्यो मे राष्ट्रपति शासन लागू करने का उद्घोषणा का न्यायिक पुनरावलाकन किया जा सकता है जबकि इसके पूर्व 1977 मे दिये गये अपने निर्णय म इसे एक 'राजनीति शक्ति' घाषित करते हुये न्यायिक पुनरावलोकन के अधीन नही माना था—को उलट दिया। सर्वोच्च न्यायालय का यह निणय विशेष रुचि का विषय है।

ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वोच्च न्यायालय भी समकालीन राजनीतिक विवादा म तटस्थ नही रह सका है क्याकि 1994 का सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय स्पष्टत राजनीतिक पूर्वाग्रहो से ग्रसित प्रतीत हाता है और किसी भी दशा मे इसे शुद्ध सवैधानिक व्याख्या पर आधारित निर्णय नही माना जा सकता। इन निर्णयो का भी मैने अपने शोध प्रबन्ध मे विवेचन किया है जो सभवत इस दिशा मे पहला प्रयास है

इस शाध प्रबन्ध के लिये सामग्रा चयन अत्यन्त कठिन कार्य था। अधिकाश पुस्तके व सामग्री मुझे मेरे शोध निदेशक के व्यक्तिगत सग्रह से प्राप्त हुयी है,जिनमे विभिन्न जॉच समीतियो की रिपार्टे, उनक व अन्य विद्वानो के शोध पत्र व पुरानी पत्रिकाये सम्मिलित है।

सामग्री सग्रहण हेतु पुस्तकालय के महत्व को नकारा नही जा सकता। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उप पुस्तकालाध्यक्ष श्री० रिजवी व पब्लिक लाइब्रेरी के पुस्तकालाध्यक्ष श्री० अमीन यादव भी विशेष धन्यवाद के पात्र है जिन्होने विषय प्रवर्तन हेतु पुस्तके, पत्र-पत्रिकाये व अन्य महत्वपूर्ण आकडे सकलित करके अपना विशेष सहयोग प्रदान किया।

इसके साथ ही साथ     जगजीवन राम सस्थान पटना ए० एन० सिन्हा लाइब्रेरी (पटना) सवैधानिक तथा ससदीय पुस्तकालय (दिल्ली) गाँधी भवन (इलाहाबाद) भारती भवन पुस्तकालय, राजकीय पुस्तकालय (इलाहाबाद) के समस्त अधिकारियो तथा कमचारिया की भी मै हृदय से आभारी हूँ।

यह शाध प्रबन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे राजनीति शास्त्र के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो० हरिमोहन जैन के सतत् दिग्दर्शन मे पूरा किया गया। जिस तत्परता व निष्ठा से उन्होने मेरे साथ परिश्रम किया और मेरा मार्गदर्शन किया, इसक लिये मै उनकी जीवन-पर्यन्त ऋणी रहूँगी। उनका यह कथन कि मनुष्य को परिस्थिति निरपेक्ष होना चाहिये, मैंने अपनी आत्मा मे सहेज लिया है।

इसके अतिरिक्त मै श्रामती हेम जैन की भी विशेष आभारी हूँ जिन्हाने अपने मातृतुल्य स्नेह क तहत् समय-समय पर मुझे अपना कार्य पूर्ण-करने हेतु प्रेरित किया।

इसके साथ ही राजनोति शास्त्र विभाग के वर्तमान अध्यक्ष डॉ० उमाकान्त तिवारी के पति भी आभार व्यक्त करना आवश्यक हे जिन्हाने समय समय पर मेरी सहायता की व मार्ग दर्शन किया।

अत मे मे अपने माता-पिता व अग्रज के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहूँगी जिनके निरतर प्रेरणादायक स्नेह तथा कर्तव्य बोध की जागरूकता के फलस्वरूप ही मेरा कार्य सम्पन्न हो सका।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह शोध प्रबन्ध राजनीतिक पण्डितो का समुचित प्रतीत होगा। मानव स्वभाव तथा सीमित साधनो के कारण त्रुटियॉ सभव हे इसके लिये मे क्षमा प्रार्थी हूँ।

**सत्य प्रिया**

# विषय-सूची

# अध्याय 1

## राज्यों में राष्ट्रपति शासन :
## ऐतिहासिक एवं संवैधानिक पृष्ठभूमि

# ऐतिहासिक एवं संवैधानिक पृष्ठभूमि

भारतीय सनिधान राष्ट्रपति का गज्या को शासन म हस्तक्षेप का अधिकार प्रदान करता ह, जबकि राष्ट्रपति राज्यपाल की रिपोर्ट या अन्यथा यह निश्चित रूप से यह महसूस करे कि राज्य म सवधानिक तत्र विफल हो जाने के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी हो कि राज्य का शासन सवधानिक व्यवस्था के अनुसार चलाया जाना सभव नही ह। यह सविधान द्वाग केन्द्रिय सरकार को प्रदान की गयी ऐसी अभूतपूर्व शक्ति ह जिसका प्रयाग केन्द्र द्वाग राज्यो के शासन को हस्तगत करने के लिये अनेका अवसगे पग किया गया ह। यद्यपि सविधान लागू होने के बाद से ही अनुच्छेद 356 का प्रयाग किया जाता रहा ह लेकिन चाथे आम चुनाव 1967 के बाद मे इस शक्ति का जितना अधिकता स प्रयोग किया गया ह विवाद व आलोचना का विषय रहा ह।

इधर हाल के वर्षो मे कइ विवादास्पद मामलो क कारण विभिन्न दला व बुद्धिजीवियो द्वारा इस बात की निरन्तर माग उठायी जाती रही है कि सबधित अनुच्छद मे दिय गये अधिकार मे उचित सशोधन किया जाये जिससे केन्द्र व राज्यो क सबधो मे जो एक तनाव सा व्याप्त रहता है, को समाप्त करने मे सहायता मिल सके। विशेष रूप से तब जबकि केन्द्र से भिन्न दल की सरकार यदि राज्या म सत्तारूढ रहती ह ता वो सदव इसी आशका मे ग्रस्त रहता ह कि कहीं उसे सविधान के इस प्रावधान के प्रकोप का शिकार ना बनना पडे।[1]

अत इस सबध मे जो मुख्य प्रश्न नीहित ह वो यह ह कि कहा, कब और किस आधार पर राज्यो मे राष्ट्रपति शासन सबधी उद्घोषणा की गयी। उसके औचित्य व अनाचित्य की जाच करना साथ ही सविधान निर्माताओ द्वारा सबधित प्राविधान को सविधान म रखत समय उनके विचार क्या थे। इन सभी प्रश्ना के समाधान क लिये भारतीय

---

1 विपक्षी दला का इस प्रकार का विचार अनुचित भी नहीं हे अनेका उदाहरण इस बात की पुष्टि करत हे जब कि राज्य सरकारा की बर्खास्तगी, गेर काग्रसी सरकार की भावना के आधार पर का गई जब कि राज्य म सरकार बनाने म सफल नहा हो पाई थी

सविधान के सघीय स्वरूप पर दृष्टिपात करना अत्यन्त आवश्यक ह कि क्या सविधान वास्तव म राज्यो को पूर्ण ग्वायतता प्रदान करता है अथवा केन्द्रिय सत्ता के अधीन रखता हे। प्रत्येक देश की शासन व्यवस्था के विशिष्ट तत्व होते ह। सविधान म व्यवस्था की रक्षा सवापरि होती ह। सविधान व्यवस्था की आधारशिला माना जा सकता ह यद्यपि व्यवस्था निरतर विकास शील प्रक्रिया है लेकिन कुछ तत्व उसके अभिन्न अग बन जाते है, जो उसे विशिष्टता प्रदान करते है। सविधान इसमे सहायक है। व्यवस्था को प्रारम्भिक स्वरूप के निर्धारण मे विशेषकर ऐसे देश की व्यवस्था मे जो दीर्घकालीन परतन्त्रता के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त किया हो, सविधान का योगदान महत्वपूर्ण होता है। इस अध्याय मे अनुच्छेद 356 का विश्लेषण भी व्यवस्था के सदर्भा मे ही करने का प्रयास किया गया ह।

## भारतीय सविधान मे केन्द्रियकरण की प्रवृत्ति-

भारतीय सविधान मे यद्यपि भारत को "राज्यो का सघ कहा गया ह[1] लेकिन सविधान मे राज्यो से ज्यादा केन्द्रिय सत्ता को महत्व दिया गया ह। यद्यपि प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से भारत को 25 राज्यो और 10 केन्द्र शासित प्रदेशा मे विभक्त किया गया ह। राज्यो मे भी केन्द्र के समानान्तर शासन व्यवस्था कार्यरत ह सघीय सविधान मे विधायी प्रशासनिक आर वित्तीय शक्तियो का केन्द्र व राज्या के मध्य स्पष्ट विभाजन किया गया ह लेकिन यह विभाजन राजनैतिक प्रभुता के विभाजन का प्रताक नही ह।

सविधान मे बहुत से उपबध है जो साधारण समय मे भी राज्या को केन्द्रिय सरकार के ऊपर निर्भर करते है और आकस्मिक परिस्थितियो मे तो भारतीय सघीय प्रणाली पूर्ण एकतत्रीय प्रणाली मे रूपान्तरित हो जाती है। सविधान का अनुच्छेद 249 ससद को यह अधिकार प्रदान करता है कि राज्य सभा 2/3 बहुमत से किसी भी विषय पर जो की

---

1 डा बी एल राव ने भारत के सविधान की जो पहली रुपरेखा तैयार की थी उसमे यह स्पष्टत लिखा था कि 'भारत एक सघात्मक राज्य होगा'—परन्तु बाद मे प्रारुप समीति ने इसे भारत राज्या का सघ होगा' कर दिया। इन शब्दो को 1767 के ब्रिटिश नार्थ अमेरिका अधिनियम स लिया गया था सविधान सभा म यह स्पष्ट किया गया था कि यद्यपि भारतीय सविधान सघात्मक होगा फिर भी उसे 'राज्यो का सघ नाम देना ज्यादा उचित होगा।

गज्य मभा के विषय क्षेत्र मे आता हो कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता ह। इसी प्रकार अनुच्छेद 312 भी राज्य सभा को यह भी अधिकार प्रदान करता ह कि वह केन्द्र तथा राज्या के लिये नयी अखिल भारतीय सेवाओ की व्यवस्था कर सकता ह यदि सबधित प्रस्ताव 2/3 बहुमत से राज्य सभा द्वारा पास कर दिया गया है। इस अनुच्छेद का प्रयोग 1963 म किया गया जबकि केन्द्र सरकार ने तीन नयी सेवाओ की स्थापना का निर्णय लिया उसम प्रमुख हे भारतीय वन सेवा, भारतीय चिकित्सा सेवा आर भारतीय अभियान्त्रिकी सेवा। इसी प्रकार अनुच्छेद 256 यह व्यवस्था करता है कि प्रत्येक राज्यपाल अपनी कार्यपालिक शक्ति का प्रयोग इस प्रकार के कि ससद द्वारा बनायी गयी विधियो का अनुपालन सुनिश्चित हो सके। साथ ही सघ राज्य सरकारो को ऐसा निर्दश दे सकता ह जो भारत सरकार को उसके प्रयोजनो के लिये आवश्यक प्रतीत हो।

अनुच्छेद 257 भी राज्यो को कुछ मामलो मे केन्द्रिय सरकार के नियत्रण म करता ह। प्रत्येक राज्य सरकार अपने कार्यपालिका की शक्तियो का प्रयोग इस प्रकार करे जिससे किसी भी प्रकार केन्द्रीय सरकार के अधिकारो को क्षति न पहुँचे साथ ही केन्द्र सरकार राज्य सरकारो को ऐसे निर्दश दे सकता हे जो भारत सरकार को आवश्यक प्रतीत हो तथा यातायात के साधनो के निर्माण व उनके रख-रखाव के सबध मे जिसका राष्ट्रीय व सनिक महत्व हो।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 200 व 201 जिसके तहत राज्यपाल को यह अधिकार प्रदान किया गया है (जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है) कि वह राज्य विधान सभा द्वारा पारित विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ रख सकता है और तत्पश्चात राष्ट्रपति को इस सबध मे तत्सबधी विधेयक पर निषेधाधिकार प्राप्त है।

अत भारतीय सविधान मे भारतीय सघीय प्रणाली मे यह असाधारण स्थिति हे, जिसमे कही कही राज्यो के अस्तित्व की ही रक्षा नही की गयी है। उदाहरण के लिये भारतीय सविधान का अनुच्छेद 3 यह स्पष्ट करता हे कि ससद कानून द्वारा बिना राज्यो की पूर्व सहमति के-

(क) नया राज्य बना सकती ह।

(ख) किसी राज्य के क्षेत्र को बढा सकती है।

(ग) किसी राज्य के क्षेत्र को घटा सकती हे।

तथा (घ) राज्य के नाम मे भी परिवर्तन कर सक्ती ह। इसके अलावा अनुच्छेद 4 यह भी सुनिश्चित करता है कि इस सबध मे बनाया गया कोई भी कानून सविधान का सशोधन नही समझा जायेगा।

यहा यह ध्यान देने योग्य बात हे कि केन्द्र सरकार ने इस अनुच्छेद के प्राविधानो का भरपूर इस्तेमाल किया ह।[1] इस प्रकार भारतीय सघ केन्द्र पर प्राय यह आरोप लगाया जाता रहा हे कि जव राज्य अपन अस्तित्व की ही रक्षा नही कर सकते और ससद जब चाहे बिना राज्गे मे परामर्श किये उनके क्षेत्रो मे परिवर्तन कर सकती है अत भारतीय किसी भी समय सघ को वास्तविक सघ की मज्ञा नही दे सकते क्योकि वास्तविक सघ मे केन्द्र तथा राज्यो मे समानान्तर सरकार होती ह। जेसे अमेरिका, आस्ट्रेलिया स्विटजरलैण्ड आदि की सघीय इकाईयो का अस्तित्व स्थायी ह अर्थात् उन्हे समाप्त नही किया जा सक्ता जबकि भारत म इसके विपरीत स्थिति हे।[2]

परिणामस्वरूप जब भारतीय सविधान अस्तित्व म आया तब परिसघीय आदर्श को अपनाते हुये राज्यो की तुलना मे केन्द्र को अधिक शक्तिया प्रदान की गयी ह। इसी कारण भारतीय सविधान के सघीय चरित्र के विषय मे परस्पर विरोधी मत प्राप्त होते हे। जहा एक ओर कुछ विद्वान इसे अत्यन्त सघीय मानते है तो दूसरी तरफ अधिकतर विद्वान भारतीय सघ को अद्र्धसघ या केन्द्र के प्रति अधिक झुकाव युक्त सघ मानते है[3] प्रारूप समिति के अध्यक्ष डा

---

1 मूल सविधान मे 27 राज्य थे जिन्हे तीन प्रवर्गो मे रखा गया था सविधान के सातव ससाधन 1956 सभी राज्यो का एक स्तर का कर दिया गया 1960 म मुम्बई का दो राज्यो मे बाटा गया- महाराष्ट्र व गुजरात। 1966 मे पजाब राज्य को पजाब, हरियाणा व हिमाचल प्रदेश मे विभक्त किया गया। इसी प्रकार मणिपुर, त्रिपुरा व मेघालय को भी पूर्वोत्तर क्षेत्र अधिनियम द्वारा (1971) राज्य का दर्जा दिया गया सिक्किम, गोवा व अरुणाचल प्रदेश को भी क्रमश इसी अनुच्छेद के तहत राज्य का दर्जा दिया जा चुका है डी डी बसु, भारत का सविधान एक-परिचय पृष्ठ 69

2 अमेरिकन सविधान किसी राज्य की सीमाओ मे परिवर्तन नही कर सकता। 'अमेरिकन सघ अविनाशी राज्यो का अविनाशी सघ है।' डीडी बसु—भारत का सविधान एव परिचय पृ 54

3 (A) According to Sir Ivor Jennings "Indian Constitution is federal with strong centralising tendencies" Dynamics of Indian Government and Politics–J R Siwach, page 357

(B) प्रशासनिक सुधार आयोग और भारतीय उच्चतम न्यायालय का विचार पश्चिम बगाल बनाम यूनियन ऑफ इडिया (1964) एआईआर पृष्ठ 371

अम्बेडकर ने भारतीय सघ के स्वरूप पर अपने विचार रखते यह विचार प्रकट किया था कि भारतीय सविधान समय की आवश्यकता के अनुसार एकात्मक ओर सघात्मक स्वरूप ले सकता ह ।[1]

उपरोक्त प्राविधानो के होते हुये भी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था सामान्य मे समयो मे तो अपने सघीय स्वरूप मे ही बना रहता है लकिन भारतीय सविधान मे कुछ ऐसे भी प्राविधानो का उल्लेख है, जिसके द्वारा राज्य का सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था केन्द्र के हाथा मे हस्तान्तरित हो जाती है, आर इस प्रकार वाह्य तथा आन्तरिक सकट की स्थिति म सविधान एकात्मक प्रणाली मे परिवर्तित हो जाता हे, सविधान का अनुच्छेद 352, 356 व 360 इसी प्रकार के आपात से सबधित हे। **अनुच्छेद 352 यह व्यवस्था करता हे कि राष्ट्रपति को यदि यह समाधान हो जाये कि ऐसा गभीर सकट पेदा हो गयी हो तो** जिससे कि भारत अथवा भारत के किसी भाग की सुरक्षा युद्ध वाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक विद्रोह के कारण खतरे मे पड़ गयी है तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा इस आशय की घोषणा कर सकता है। इस अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति को यह भी अधिकार है कि युद्ध वाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह का वास्तविक सकट पेदा होने से पूर्व भी यदि राष्ट्रपति का यह प्रतीत हो कि ऐसा खतरा सन्निकट है, तो ऐसे स्थिति मे भी वह घोषणा कर सकता ह। लेकिन ऐसी उद्घोषणा करने से पूर्व राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक है कि उसे इस सबध मे मत्रिमण्डल की लिखित सलाह मिली हो।[2]

---

1 (A) According to Dr Ambedkar "Federation means the establishment of a dual polity The Draft constitution is federal Constitution as much as it establishes a dual polity this dual Polity resembles American constitution" CAP Vol VIII P 33

(B) "भारतीय सविधान एकीकरण आर विभिन्न कारण दोनो दिशाआ म कार्य करता रहा है।"—कार्ल जे फ्रेडरिक ट्रेन्ड्स ऑफ फेडरलिज्म इन थ्योरी एण्ड प्रक्टिस 1968 पृष्ठ 117

2 अनुच्छेद 352 में किये गये 44वे सशोधन के आधार पर अब आन्तरिक अशाति की उदघोषणा नही की जा सकती, जो सशस्त्र विद्रोह न हो अब तक इस अनुच्छेद के तहत तीन उदघोषणा जारी की गयी है— भारत 1976, पृष्ठ 1 व 2 पर

इसी प्रकार सविधान का अनुच्छेद 360 वित्तीय आपात् की उद्घोषगा करता है। जिसमे राष्ट्रपति को यह विवेकाधिकार दिया गया है। कि यदि भारत अथवा भारत के किसी भाग की वित्तीय स्थिरता अथवा साख सकट मे हो तो राष्ट्रपति देश मे वित्तीय सकट की उद्घोषणा जारी कर सकता है। ऐसी उद्घोषणा के दौरान केन्द्र किसी भी राज्य को निर्देश दे सकता है कि वह ऐसे वित्तीय औचित्य के सिद्धान्तो का पालन करे जेसे कि इस सबध मे उसे उचित निर्देश दिये गये है। ऐसे निर्देश राज्य मे सेवा कार्य करने वाले समस्त अथवा किसी भी वर्ग के व्यक्तियो के वेतन व भत्तो मे कमी किये जाने के बारे मे भी हो सकता है।[1]

इस प्रकार वित्तीय आपात की उद्घोषणा होने पर, राज्यो पर वित्तीय मामलो मे केन्द्र के पर्यवेक्षण की मात्रा मे काफी वृद्धि हो जाती है

लेकिन इनके अतिरिक्त जिसे अनुच्छेद के लागू होने का सविधान लागू होने के बाद से सार्वधिक प्रयोग हुआ है, साथ ही राज्यो द्वारा लगातार उसमे सशोधन की माग उठायी जाती रही है तो अनुच्छेद 355, व 356।

अनुच्छेद 355 केन्द्र को राज्य की सुरक्षा का दायित्व सौपता है जबकि अनुच्छेद 356 यह व्यवस्था करता है कि यदि कोई राज्य सरकार केन्द्रिय सरकार के किसी वैध कार्यकारी निर्देशो का अनुपालन नही करती है तो राष्ट्रपति के लिये यह निर्णय करना विधिमान्य होगा कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है, जिससे राज्य की सरकार सविधान के उपबधो के अनुसार नही चलायी जा सकती, तो उसके विरुद्ध अनुच्छेद 356 के अधीन कार्यवाही करना उपेक्षित होगा।

इस प्रकार भारतीय सविधान मे केन्द्रियकरण की प्रवृत्ति को देखने से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय सघीय ढाचा पारम्परिक व रूढिवादी सघीय पद्धति से बहुत भिन्न है। ऐतिहासिक तथ्यो को देखते हुये सविधान निर्माता इस बात से भली-भाति परिचित थे कि भारत जैसे विविधतता पूर्ण देश मे जहा भाषाई प्रान्तीय और साम्प्रदायिक मतभेद हो, एक सुदृढ केन्द्रीय सत्ता आवश्यक है, इसीलिए उन्होने सविधान के निर्माण के समय एक

---

1 अभी तक भारत मे अनुच्छेद 360 के तहत वित्तीय आपात् की उद्घोषणा नही की गयी है।

शक्तिशाली केन्द्रिय सरकार के निर्माण गर बल दिया। उन्हाने दश की एकता तथा अखण्डता को सर्वापरित प्राथमिकता दी। भारत एक विशाल राष्ट्र हे, जिसम भिन्न-भिन्न भाषाये बोलने वाले विभिन्न सम्प्रदाओ और जातियो के लोग निवास करते ह। दूसरी तरफ भारत की ऐतिहासिक केन्द्रविमुख प्रवृत्तिया, स्वतन्त्रता के समय देशी राज्यो के सम्मिलन की समस्या आर साम्प्रदायिक्ता तथा प्रान्तीयता इत्यादि की विकटता को देखते हुए एक मजबूत परिसघ अनिवार्य था, साथ मे इस बात की भी आवश्यकना महसूस की गयी थी कि विदेशी आक्रमण अथवा आन्तरिक विघटन जैसे गम्भीर सकट के समय राष्ट्र के अस्तित्व को होने वाले खतरो मे शीघ्रतापूर्वक निपटने के लिए केन्द्र के पास पर्याप्त शक्तिया होने चाहिये। साथ ही इस बात की आवश्यकता थी राज्य प्रशासन को पगु बना देने वाले हिसक उपद्रवो से देश की एकता तथा अखडता को गम्भीर खतरा हो सकता ह, जिसका सामना करना राज्य की क्षमता तथा ससाधनो की सीमा से पूरे हो सकता है। अत ऐसा स्थिति मे केन्द्र द्वारा हस्तक्षेप तथा सहायता करना आवश्यक होगा। इसीलिए सविधान द्वारा केन्द्र को यह कार्य सापा गया है कि वह विदेशी आक्रमण तथा आतरिक उपद्रवो से प्रत्येक राज्य की रक्षा करे।

सविधान निर्माता इस तथ्य को भली-भाति जानते थे कि अभी जनता का सरकार की ससदीय प्रणाली का कोई अनुभव नही है और न ही ऐसी परम्परा विकसित हो पायी ह। ऐसी स्थिति मे किसी राज्य में सवैधानिक ढॉचे के शिथिल होने की सम्भावना स इनकार नही किया जा सकता है। इसीलिए सघ को यह सुनिश्चित करने का कार्य सौपा गया राज्य की सरकार सविधान के अनुसार चल रही है अथवा नही।

इस अनुच्छेद का सर्वप्रथम प्रयोग मे पजाब मे 1951 मे किया गया। लेकिन प्रारम्भिक वर्षा म इसके प्रयोग के वहुत उदाहरण नही मिलते लेकिन बाद के वर्षा से विशेपकर 1967 के वाद इसका अधिकता से प्रयोग किया गया। यह वात अग्रलिखित आकडा से स्पष्ट हो जाती है।

| | |
|---|---|
| *(1) 1950 से 1966 तक (इन्दिरा पूर्व का काल)* | *8 बार* |
| *(2) 1966 से 1977 तक (इन्दिरा काल)* | *29 बार* |
| *(3) 1977 से 1980 तक (जनता काल)* | *16 बार* |
| *(4) 1980 से 1989 तक (इन्दिरा व राजीव काल)* | *21 बार* |
| *(5) 1989 से 1990 (जनता काल)* | *7 बार* |
| *(6) 1991 से 1995 तक (नरसिम्हा काल)* | *10 बार*[1] |

इन आकडो से पता लाता है कि 1967 के बाद से एसे मामला मे तेजी से वृद्धि हुई ह, जवकि 1967 से पूर्व जबकि अनुच्छेद 356 का प्रयोग बहुत कम किया गया इसका कारण था कि चाथे आम चुनाव से पूर्व 1950 से 1966 तक देश के राजनतिक क्षिनिज पर एक हा दल का अस्तित्व था। केन्द्र व राज्यो के मध्य जो भी मतभेद अथवा विवाद पदा होते थे, उन्हे दो सरकारो के मध्य विवाद मानकर सुलझा लिया जाता था। लेकिन चौथे आम चुनाव के बाद से इस बहुदलीय व्यवस्था का उदय हुआ तथा राजनीतिक दल विखडित हुये साथ ही राज्य स्तर पर अनेक क्षेत्रीय दलो का अम्युदय हुआ जिसका देश की निर्वतमान राजनीतिक व्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पडा। फलस्वरूप किसी भी दल को स्पष्ट बहुत के अभाव मे अनेक राज्यो मे मिले जुले दल की सरकारे सत्तारूढ़ हुई। ये सरकारे सिद्धान्त की अपेक्षा सुविधा पर आधारित होने के कारण अस्थिर थी।[2]

इस दारान हुये मामलो के निष्पक्ष मामलो के अवलोकन किया जाये तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन दलो की आपसी राजनीति ही राज्यो म राष्ट्रपति शासन

---

1 इन आकडों म किया गया काल विभाजन विभिन्न प्रधान मत्रियो के काला को ध्यान मे रखते हुये किया गया है।

2 कन्द्र राज्य सम्बन्ध के मैथ्यू कुरियन तथा पी एन वर्गीय प्रकाशित मेकमिलन इडिया लिमिटेड-नयी दिल्ली, 1980, पृष्ठ 108

लगाये जाने का प्रमुख कारण थी नाकि केन्द्र की कुत्सित राजनीति। इन वषा के दारान (1967 स 1969) निन आठ राज्या मे विवाद उठे थे, वहाँ यह देखने म आया ह कि वहुदलीय मत्रिमण्डल सविधान के अनुकूल सामूहिक उत्तरदायित्व की सच्ची भावना से स्वस्थ परम्पराआ, अभिसमयो तथा व्यवहारो पर चलते हुये काम नही कर पा रहे थे अत दलीय प्रतिद्वन्द्वताआ ने उन मुद्दा को धुधला कर दिया था, जिसके आधार पर जनता ने उन्ह चुना था। 1977 म सघ सरकार मे प्रथम बार परिवर्तन हुआ जबकि केन्द्र म जनता पार्टी की सरकार सत्ता म आयी ओर उसने काग्रेस शसित नाराज्य सरकारा को लोक सभा चुनावा म उन सरकारा से सबधित दलो के स्थान न प्राप्त कर पान के सिद्धान्त क आधार पर विघटित कर दिया गया। जबकि सबधित राज्य सरकारो ने केन्द्र की कथित कार्यवाही को सवाच्च न्यायालय म चुनोती दी थी। लेकिन वे केन्द्र की कार्यवाही का रोकने मे तो सफल नही हो सके। इसी की पुनरावृत्ति पुन 1980 मे हुई जबकि केन्द्र मे पुन बाद मे काग्रेस सत्ता मे आयी। 1977 व पुन 1980 व 1993 मे अनुच्छद 356 क तहत एक साथ कई राज्य सरकारा को गिराया गया जिसको बाद मे न्यायालय ने गलत कार्यवाही की सज्ञा दी इस अनुच्छेद के बारम्बार प्रयोग पर उच्चतम न्यायालय के निणय आ जाने के बाद भी अनेक प्रश्न इस अनुच्छेद के प्रयोग के औचित्य के विषय म उठाये गये ह। वास्तव म ससदीय व्यवस्था वाली सरकार मे राजनीतिक दल इतनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते ह कि वे जनतन्त्र क प्रसाद म किसी भी पद अथवा सस्था को विफल बना सकते ह। यह जिम्मेदारी राजनैतिक दलो पर रहती है कि सवेधानिक नियमा का कठोरता से पालन करे जिससे राजनीतिक व्यवस्था विश्रखलित ना होने पाये। लकिन राज्यपालो के माध्यम मे राज्य सरकारो को वर्खास्त करने वालो केन्द्रिय शाक्त जो इस सीमा तक व्यापक ह कि राष्ट्रपतीय उद्घोषणा की जा सकती हे। इस प्रकार राज्य सरकार पर स्थापित होने वाला सघीय प्रभुत्व भारत जैसे देश मे पूर्णतया सभव ह।

प्राचीन समय से लेकर अब तक विविधता मे सकता भारतीय सस्कृति का मूलाधार रहा ह। इतिहास के परिशीलन से यह स्पष्ट होता ह कि भारत मे कभी भी एकात्मक शासन सफल नहीं रहा यद्यपि कुछ समय तक एकात्मक शासन सचालित करने मे

सफल रहे, लेकिन बाद म सास्कृतिक विभिन्नी करण के कारण एकात्मक शासन की कठिनाइयॉ सामन आने लगी, जिसके परिणाम स्वरूप1935 का अधिनियम द्वारा उत्तरदायी सरकारो की स्थापना हेतु प्राविधान किया गया था।

अत अनुच्छेद 355 व 356 के अधीन सघ को प्राप्त इस आपात शक्ति की उत्पत्ति तथा स्वरूप की जाच आवश्यक है, यहॉ यह देखना अत्यन्त आवश्यक है कि वास्तव म वर्तमान सविधान मे राज्या म राष्ट्रपति शासन लगाये जान के बारे म उपबन्ध ह आरसविधान अधिनियम का उत्पत्ति स्रोत क्या है।

## ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत शासन अधिनियम 1935 मे आपात शक्तियो का उल्लेख मिलता है। जसा कि सविधान सभा मे डा अम्बेडकर ने स्वीकार भी किया था कि अनुच्छेद 356, 1935 के अधिनियम का ही रूपान्तरण मात्र है। इस अधिनियम की धारा 93 द्वारा राज्य के राज्यपाल का यह अधिकार प्रदान किया गया था कि वह राज्य सरकार को बर्खास्त कर वहा का प्रशासन अपने हाथ मे ले सकता था। वास्तव मे भारत 1935 स पूर्व भारत एक एकात्मक राज्य था लेकिन 1935 के अधिनियम के पश्चात् भारत भी सघीय शासन की स्थापना की गया। अत 1935 से पूर्व इस प्रकार प्रान्तीय शासन म हस्तक्षेप का कोई प्राविधान नही प्राप्त होता।

इस अधिनियम द्वारा यह प्राविधान किया गया था कि यदि किसी प्रात का राज्यपाल (गवनर) इस बात से सतुष्ट हो जाये कि राज्य की सरकार सवधानिक अनिधियम के अनुरूप नहा चलायी जा रही हो तो वह तत्सबधी उदघोषणा कर सकता थ जिसके द्वारा वह राज्य सरकार के सभी प्रशासनिक कृत्यो को अपने अधीन ग्रहण कर लेगा जिसमे राज्य मत्रिमण्डल आर विधान मण्डल सहित सभी प्रान्तीय निकाया के अधिकार शामिल थे। केवल राज्य की न्यायिक शक्तियों को गर्वनर के हस्तक्षेप से मुक्त रखा गया था।

इसके अतिरिक्त महाराज्यपाल (गवर्नर-जनरल) को भी खण्ड 45 के अधीन ऐसी ही शक्ति प्रदान की गयी थी, जिसके द्वारा यह सविधान के किसी भी प्रावधन को जो सघीय सत्ता से सबधित हो आशिक व पूर्ण रूप से निलम्बित कर सकता था लेकिन इस

अधिनियम द्वारा महाराज्यपाल को न्यायिक शक्तियो के प्रयोग का अधिकार नही प्रदान किया गया था, आर जब इस प्रकार की उद्घोषणा जारी की गयी हो तो इसकी सूचना राज्य सचिव को दे दी जाये जिससे उसे ससद के दोनो सदनो के समक्ष रखा जा सके। इस प्रकार विना ससद के समक्ष रखे यदि उद्घोषणा वापस नही ली जाती हे तो ऐसी उद्घोषणा का प्रभाव छ माह तक बना रहेगा ओर उसके बाद उसका प्रभाव स्वत समाप्त हो जायेगा आर यदि ससद द्वारा ऐसा सकल्प पास कर दिया जाता हे जिसके द्वारा उद्घोष की अवधि को बढाया गया हो तो एक बार अनुमोदित होने के बाद एक वर्ष तक उद्घोषण बनी रहेगी। यदि इसको और आगे की अवधि तक जारी रखने सबधी कोई सकल्प ससद द्वारा पास न कर दिया गया हो तो उपर्युक्त घोषणा अवधि की समाप्ति के बाद स्वत समाप्त हो जायेगी।(1)[1]

लेकिन यदि इस दौरान ससद द्वारा पुन आगे की अवधि के लिये इसका अनुमोदन न कर दिया गया हो तो इस प्रकार अधिक से अधिक तीन वर्षो तक ऐसी उद्घोषणा प्रभावी रह सकती थी। इस उद्घोषणा की अवधि के दोरान महाराज्यपाल द्वारा वनाया गया कोई भी कानून उद्घेषण की समाप्ति के बाद भी प्रभावी बने रहने का प्राविधान था।[2]

केन्द्रिय सरकार को खण्ड 93 के प्राविधानो को लागू करने मे ज्यादा समय नही लगा। द्वितीय महायुद्ध के शूरू होते ही ग्यारह प्रान्तो मे से सात प्राती मे काग्रेसी सरकारो ने इस्तीफा दे दिया तथा आसाम तथा उत्तर पश्चिम प्रटियर प्रात के अलावा अन्य कही भी कोई मत्रिपरिषद गठित नही हो सकी। बिहार, बाम्बे सयुक्त प्रात तथा मध्य प्रात आदि मे धारा 93 के लागू किया गया था। इन्हे खण्ड़ 93 के अधीन शासित प्रातो की

---

1 भारत सरकार का 1935 का अधिनियम

2 इडियाज न्यू कास्टीटयूशन अध्याय 4, पृष्ठ 121 एसवें आफ दि गवरमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट जे पी इडी और एए.एच लाउटन मैकमिनल एण्ड कम्पनी लिमिटेड सेण्टमाटिन्स स्ट्रीट लन्दन (1938)

सज्ञा दी गयी। इसी प्रकार बगाल प्राविधान के अन्तर्गत आने वाले अन्य राज्य थे।[1]

वास्तव मे इन प्राविधानो को भारतीय जनता के प्रतिनिधिया की योग्यता मे अविश्वास के सूचक के प्रतीक के रूप मे देखा गया था, क्योकि अग्रेज नाकरशाही देश म प्रजातांत्रिक शासन की सफलता मे विश्वास नही रखते थे।[2]

इतिहास इस बात का साक्षी है कि वही लोग जो जिन्हाने स्वाधीन भारत के सविधान के निर्माण मे भाग लिया था और इस प्राविधान को सविधान मे रखने की वकालत कर रहे थे, पहले इसी प्राविधन की मुखर आलोचना की थी। स्वाधीनता से पहले ब्रिटिश राज्य मे खण्ड 93 की राष्ट्रीय नेता इस आधार पर आलोचना करते थे कि प्रान्तीय गर्वनर को इसके तहत अत्यधिक अधिकार प्रदान कर दिया गया था लेकिन जब स्वय उन्होने देश के सविधान निर्माण का कठिन कार्य अपने हाथ मे लिया तो 1935 के अधिनियमो को शब्दश नये सविधान के प्रारुप मे रख लिया। सविधान सभा ने प्रारूप सविधान मे अनुच्छेद 188 का प्राविधान किया था जिसमे राज्य का राज्यपाल स्वय अपने विवेकानुसार राज्य की शक्तियो को ग्रहण कर सकता था और उसके द्वारा की गयी कार्यवाही दो हप्तो तक जारी रह सकती थी यदि इस अवधि के दौरान राष्ट्रपति को सूचित ना कर दिया गया हो।[3]

लेकिन बाद मे इस अनुच्छेद को पूर्णत समाप्त कर दिया गया ओर इसके स्थान पर अनुच्छेद 278 मे ही यह व्यवस्था कर दी गयी जिसके अनुसार राष्ट्रपति राज्यपाल की रिपोर्ट

---

1 इस सबध मे लार्डवाबेल लिखता है कि "भारतीय सरकार को जब वा कठिनाई मे हो गृहित करना हमारे सिद्धान्तके विरुद्ध है, क्योकि यदि उन्हे अपनी जिम्मेदारिया तथा कठिनाइया का मुकाबला करने क लिए मजबूर नहा किया जायेगा, तो कभी भी शासन करना सीख नही पायेगे। पन्डूल मून दि विकरीज जनरल, लन्दन आक्सफोर्ड प्रेस 1973

2 पडित जवाहर लाल नहरु ने 1935 के अधिनियम को स्वाधीन उपनिवेश का सविधान नही वरन् भारत की गुलामी को राजपत्र की सज्ञा दी थी। (1935) का अधिनियम सघवाद और प्रान्तीय स्वायत्तता क विशेष सदर्भ मे "भारत मे उपनिवेशवाद व राष्ट्रवाद पृष्ठ 191 स सत्या एम राम)

3 प्रारुप सविधान का अनुच्छेद 188 जिसे बाद मे हटा दिया गया।

पर या अन्यथा सतुष्टि के आधार पर सीध ही कार्यवाही कर सकता था। इस प्रकार सीधे राष्ट्रपति को ही यह अधिकार प्रदान किया गया कि वो राज्य सरकार के काया के ग्रहण कर सकता था जब कि सवधानिक तत्र राज्य मे विफल हो जाये।

अनुच्छेद 188 को हटाये जाने के पक्ष मे सरकार वल्लभ भाई पटेल ने अपना तर्क रखते हुये कहा था कि—

सविधान "प्रान्तीय परिषदो के लिये जो समीति गठित की गयी थी उसने यह व्यवस्था की थी कि राज्यपाल केवल राष्ट्रपति को राज्य के खराब हालत की रिपोर्ट देगा। इसका यह आशय कदापि नही था कि कोई ऐसा अधिकार अथवा शक्ति राज्यपालो मे नीहित कर दिये गये जिसके कारण राज्यपाल ओर मत्रिपरिषद मे तनाव की स्थिति उत्पन्न हो। क्योकि वास्तव मे राज्य का प्रशासन का वास्तविक प्रधान राज्य का मुख्यमत्री ही होता हे ना कि राज्यपाल। अत गभीर विचार विमर्श के बाद सदस्य इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि राज्यपाल को ने इस प्रकार के अधिकार नही प्रदान किया जाये अपितु उसके द्वारा केवल राज्य की वास्तविक स्थितिया के बार मे राष्ट्रपति को अपना प्रतिवेदन प्रेषित किया जाये इस प्रकार सविधान सभा के समक्ष राज्य प्रशासन म दखल देने के सबध मे दो विचार थे— पहला राज्यपाल द्वारा स्वय अपने स्तर पर ही कार्यवाही कर तत्पश्चात् राष्ट्रपति को सूचित करना और चूँकि अतिम रूप से राष्ट्रपति को ही राज्य मे हस्तक्षेप का अधिकार प्रदान किया जाना था तो यह विचार रखा गया कि क्यो ना प्रारम्भ से ही उसमे यह अधिकार नीहित, कर दिया जाये।

दूसरा राष्ट्रपति राज्य सरकार की बर्खास्तगी सबधी कार्यवाहा राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर या अन्यथा भी कर सकता, विचार पूर्व के प्रावधान से हटकर था, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रपति राज्यपाल द्वारा अनुच्छेद 188 को उद्घोषणा के बाद ही कार्यवाही कर सकता था। मूल प्राविधान मे राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिये राज्यपाल की रिपोट आवश्यक थी जो इसको लचीला व वेकल्पिक बनाता था। इस सबध म यह विचार रखा गया कि यदि केन्द्र राज्य के सवेधानिक तत्र को बचाने के लिये उत्तरदायी हे, तथा सविधान मे यह स्वीकृत व्यवस्था ह, तो ऐसी स्थिति मे राष्ट्रपति का राज्यपाल की रिपोर्टपर पर्ण रूप से निर्भर होकर कार्यवही करना क्या उचित होगा? अत राज्य विधान सभा के समस्त अधिकारा को ससद मे नीहित करने का अधिकार राष्ट्रपति को प्रदान कर दिया

गया। इस की प्रकार घोषणा की स्वीकृत प्रदान करने अथवा रद्द करने सम्बन्धी समस्त अधिकार ससद मे नीहित कर दिया गया, जबकि सशोधन से पूर्व ससद को अतिम सप्रभु नही बनाया गया था।[1]

हालाकि यह असाधारण व्यवस्था सघीय सविधान मे रखी गयी थी, जिसके द्वारा राज्य सरकार को राष्ट्रपति के द्वारा भग करने का प्राविधान आश्चर्यजनक सुगमता से सविधान सभा द्वारा बिना किसी कडे विरोध के स्वीकार कर लिया गया था। एक प्रकार से समय का प्रतिबिम्ब ही था। राष्ट्र ऐसी विकट स्थिति से गुजर रहा था जबकि देश के बटवारे के बाद जातीय दगे भडक उठे थे। सविधान सभा ने जिसने पहले एक कमजोर सघीय सरकार का प्रस्ताव स्वीकार किया था, बाद मे मजबूत केन्द्रिय सरकार का पक्षधर हो गया। अनुच्छेद 278 जो की बाद मे अनुच्छेद 356 हो गया प्रचलित राष्ट्रीय भावना का ही एक उदाहरण था।

सविधान सभा मे डा अम्बेडकर के अलावा 14 अन्य सदस्यो ने भाग लिया था। डा कामथ सक्सेना तथा देसमुख ने इस अनुच्छद की प्रमुख रूप से आलोचना की थी लेकिन सदस्यो द्वारा (जसा कि आगे के अध्याय मे वर्णित है)। बहुत अधिक विरोध नही प्रकट किया गया। केवल वुजरू के दृटता के साथ इस अनुच्छेद को सविधान मे रखे जाने का विरोध किया था। सदस्यो द्वारा प्रस्तुत कुछ सशोधनो का स्वीकार करने के बाद अनुच्छेद 278 को पुन सशोधित रूप म रखा गया जो व्यवस्था करता था कि–

यदि राष्ट्रपति को राज्यपाल की रिपोर्ट मिलने पर या "अन्यथा यह ज्ञात हो जाये कि राज्य की सरकार सविधान के प्राविधानो के अनुरूप नही चलायी जा सकती तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा–

---

1 इस सबध म श्री एचवी कामथ का विचार था कि राज्यपाल की रिपार्ट क बिना किसी राज्य म सविधानिक शासन तत्र क विफल होने की उद्घोषणा करना सविधानिक दृष्टि से जुर्म है। इसलिय ईश्वर स प्रार्थना है कि 'अन्यथा' शब्द को सविधान से निकाल दना चाहिये यदि ईश्वर ने आज हस्तक्षेप नही किया तो मुझे विश्वास है कि भविष्य म शीघ्र ही जब परिस्थितिया बहुत ही गभीर रूप धारण कर लेगी तब वह अवश्य हस्तक्षेप करेगा और उस समय हम भी आज की अपेक्षा अधिक जगरूप होगे कान्स्टटीयूशन असेम्बली डिबेटस वाल्यूम 9 न 4 पृष्ठ 134, अगस्त 3, 1949

उस राज्य मरकार के समस्त अथवा कोई कार्य स्वय म ग्रहण कर सकता ह अथवा गज्यपाल को प्रदान कर सकता ह।

उद्घोषणा द्वारा राज्य विधान मण्डल को समस्त शक्तिया को ससद के अधीन कर सकता ह। इस दारान ऐसे उपबध जो उसे कार्यवाही के सचालन के लिये आवश्यक प्रतीत हो पूणत या भागत उन्हे निलम्बित कर सकता है।[1]

लेकिन यह अनुच्छेद राष्ट्रपति को उस अवधि के दौरान उच्च न्यायालय की शक्तियो म हस्तक्षेप का अधिकार नही देता था।

ज्ञातव्य ह कि अनुच्छेद 278 ही बाद मे अनुच्छेद 356 वना। अत अनुच्छेद की वनमान सवधानिक व्यवस्था पर विचार करने से पूर्व- यहा यह देखना आवश्यक हे कि अन्य देशा म इसी प्रकार राज्य शासन मे हस्तक्षेप का अधिकार है जहा सघात्मक व्यवस्था कार्यरत ह।

जसा कि सविधान सभा मे डा अम्वेडकर द्वारा अपने व्यक्तव्य मे यह स्वीकार किया गया था कि ऐसा उपवन्ध अन्य सघीय सविधानो मे भी प्राप्त होता ह, जव कि सदस्यो द्वारा उनकी आलोचना करते हुये उनके व्यक्तव्य को गलत बताया गया था।[2] अत यह देखना आवश्यक प्रतीत होता हे कि क्या इस प्रकार राज्यो के प्रशासन मे दखल का अधिकार अन्य दूसरे देशो के सविधान मे भी प्राप्त होता हे अथवा नही जो कि सघात्मक हे।

## सयुक्त राज्य अमेरिका

अमेरिकी सविधान के अनुच्छेद 4 धारा 4 द्वारा सघ सरकार के राज्यसरकारो के कार्या मे हस्तक्षेप करने का सर्वोच्च अधिकार दिया गया है जो इस प्रकार ह—

"सयुक्त राज्य अमरीका इरा सघ के प्रत्येक राज्य को एक गणतन्त्राय स्वरूप की मरकार की गारण्टी देगा और उनमे से प्रत्येक की आक्रमण से रक्षा करेगा और विधान मण्डल या कार्यपालिका (उस स्थिनि मे जबकि विधान मण्डल की बठक ना बुलायी जा सकती हो) के निवेदन पर उनकी आतरिक हिसा से रक्षा करेगा।[3]

---

1 सीएडी वाल्यूम 9 पृष्ठ 134 पूर्वोद्धृत

2 सीएडी वाल्यूम 9 पृष्ठ 176

3 सेलेक्टड कान्स्टटीट्यूशन ऑफ दि वर्ल्ड', स ' बी शिवा राव' 1934 पृष्ठ 672 मद्रास लॉ जरनल प्रस

इस उपबध के प्रथम भाग को गारण्टी खण्ड आर दूसरा भाग सुरक्षा खण्ड कहलाता ह। इन खण्डो मे निर्दिष्ट सिद्धान्त हमारे सविधान के अनुच्छद 335 के सिद्धान्तो के समान ह।

इस गारण्टी खण्ड को अमरीकी सघीय प्रणाली के पुर्ननिवाण के लिए शक्तियो का एक व्यापक भण्डार समझा जाता है।[1] एक अमेरिकी ने इस शक्ति के स्वरूप, सभावित उतरा ओर प्रयोगो के बारे मे अपने विचार साराश मे इस प्रकार प्रस्तुत किये है-

यह खण्ड समेनर की उपमा के अनुसार एक दत्य हे अत इस पर ध्यान पूर्वक निगरानी रखनी चाहिये क्योकि इसकी व्यापक शक्ति गणतत्रीय स्वतन्त्रता के लिये खतरनाक हो सकता ह।[2]

अमेरिकी सविधान मे उस विधि का उल्लेख नही किया गया ह, जिसके अन्तर्गत किसी राज्य म गणतन्त्रीय स्वरूप की सरकार बनाये रखने की गारण्टी लागू की जा सकती ह। अनुच्छेद 356 आर 357 के समान ऐसा कोई उपबध नही ह जिसम केन्द्र सरकार या राष्ट्रपति को किसी राज्य मे सविधानिक तत्र को निलम्बित करने या उसके स्थान पर कोई अन्य व्यवस्था करने का प्राधिकार दिया गया हो।

लेकिन अमेरिकी सविधान का अनुच्छेद, 4 खण्ड 8 (18) के अन्तर्गत काग्रस को ऐसे सभी कानून बनान की शक्ति दी गयी है जो पूर्वोक्त शक्तियो के प्रयोग के लिये आवश्यक ओर उचित होगी तथा ऐसी सभी शक्तियो के प्रयोग की अनुमति दी गयी ह जो अमेरिकी सरकार को सविधान द्वारा प्रदान की गयी ह। "सविधान का अनुच्छेद 1 खण्ड 8 (15) काग्रेस को सघ सरकार के नियमो को लागू करने के लिये या किसी विद्रोह का दमन करने आर आक्रमणो को रोकने लिए नागरिक सेना को बुलाने की व्यवस्था के लिये कानून बनाने का प्राधिकार

---

1 The united states stall Guarintee to every state in this union a republican form of Government and shall protect each of them against invasion and an application of the legislature or of the executive (when the legislature can not be canvened) against domestic violence" The United state of Aneric Act IV sec 4

2 सरकारिया कमीशन रिपोर्ट- केन्द्र राज्य सबध आयोग भाग I पृष्ठ 155 1988 'भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक द्वारा मुद्रित'

दता ह, आर इस शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व किसी राज्य की सहमति लना या उसके अनुरोध पर ही कार्यवाही करना कोई पूर्व शर्त नही ह।[1]

इसी प्रकार सविधान की धारा 2 (खण्ड 3) राष्ट्रपति को इस बात का दृष्टिगत रखने के लिये शक्ति प्रदान करता है कि अमेरिकी कानून पूरी निष्ठा से लागू किये जाये।

अनेक अवसरो पर अमेरिकी राष्ट्रपतियो द्वारा विना राज्य सरकार के अनुरोध इस शक्ति के प्रयोग के उदाहरण मिलते है। उदाहरण के लिये 1877 मे रेलवे की व्यापक हडताल क दारान 10 राज्या म व्यापक हिंसा की घटनाये हुयी। राष्ट्रपति हेज ने इन राज्यो मे गडबडी वाले स्थाना पर सघ सरकार को कानून लागू करो के लिये ओर सपत्ति की रक्षा के लिये सघीय सेनाओं के भेजा।[2]

हेज द्वारा आरम्भ की गयी इस प्रथा को राष्ट्रपति क्लिवलण्ड ने आगे बढाया जबकि 1894 की पुलमन हडताल स राज्य के गर्वनर के तीव्र विरोध के होने हुये भी अमेरिका की सम्पत्ति की रक्षा करो के लिये सशस्त्र सेनाये तैनात की

इस कार्यवाही को अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने उचित ठहराते हुये कहा वि सविधान द्वारा उनको सापे गये सभी अधिकारो और सभी राष्ट्रीय शक्तिया के देश के किसी भाग मे पूर्ण ओर स्वतन्त्र प्रयोग के लिये राष्ट्र की सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग किया जा सकता ह।[3]

इस प्रकार न्यायालय द्वारा दिये गये इस फैसले के बाद से राज्य सरकार के अनुरोध की बाध्यता समाप्त हो गयी।

## आस्ट्रेलिया (सघीय व्यवस्था)

इसी प्रकार आस्ट्रेलिया के सविधान मे भी यह व्यवस्था ह कि "हमला होने पर आर आतरिक हिसा होने पर तथा राज्य की कार्यकारी सरकार के निवेदन पर राष्ट्रमण्डल प्रत्येक राज्य की रक्षा करेगा। यद्यपि कानून व व्यवस्था बनाये रखने के लिये राज्य सरकार जिम्मेदार हे। किसी राज्य मे शाति व व्यवस्था ओर अच्छी सरकार को प्रभावित करने वाले

1 पूर्वोधृत, ससकरि भाग-I

2 पूर्वाधृत स क रि भाग I

3 स क रि भाग I 1988, पृ 157

मामला मे राज्य सरकार के अनुरोध पर ही राष्ट्रमण्डलीय सेना या पुलिस की कार्यवाही कर सकती ह। फिर भी यदि राष्ट्रमण्डल को शक्ति के अधीन आने वाले मामलो को प्रभावित करने पर जिस राज्य मे हिंसा हो रही हो या हिसा होने की सभावना हो ऐसी स्थिति मे उस राज्य के अनुरोध न करने पर भी राष्ट्रमण्डल हस्तक्षेप का सकता है।[1]

## स्विट्जरलेण्ड (सघीय प्रणाली)

इसी प्रकार स्विट्जरलेण्ड के सविधान (1874) के अनुच्छेद 16 म सघीय परिषद को असीमित शक्तिया दी गयी है, ताकि आतरिक अव्यवस्था होने पर यदि सकट म पडे प्रात केन्द्र की सरकार अन्य प्रान्तीय सरकारो की सहायता लेने की स्थिति मे ना हो, या यदि अव्यवस्था से स्विटजरलेण्ड की सुरक्षा को खतरा हो तो सघीय परिषद अपने विवेकानुसार हस्तक्षेप कर सकता हे।

"आन्तारिक अव्यवस्था" अभिव्यक्ति मे केवल "सशस्त्र विद्रोह" ही शामिल नही हे परन्तु आम हडताल जेसे कारण के परिणामस्वरूप होने वाला उपद्रव भी शामिल है[2]

इसी प्रकार **पश्चिम जर्मनी** मे भी किसी सघ या राज्य को अपने अस्तित्व या इसकी प्रजातात्रिक व्यवस्था को खतरे से बचाने के लिये राज्य सरकार अन्य राज्यो की पुलिस बलो या सघीय सीमा सुरक्षा बल की सहायता ले सकती है। यदि राज्य सरकार खतरे का समाना ना करना चाहे या सामना ना कर सके तो सघ सरकार उस राज्य की पुलिस ओर अन्य राज्यो को पुलिस बल पर अपना नियत्रण रख सकती है ओर इस कार्यवाही के साथ-साथ सघीय सीमा सुरक्षा बल की यूनिटे तैनात कर सकती है। यदि एक से अधिक राज्यो मे खतरा हो जाये तो सघीय सरकार खतरे का सामना करने के लिये राज्य सरकारो को अनुदेश जारी कर सकती हे।[3] उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि सभी सघीय व्यवस्था वाले देशो मे भारतीय सविधान के अनुच्छेद 355 के सदृश ही आन्तरिक उपद्रव की स्थिति म राज्यो की रक्षा का दायित्व तो केन्द्र के सुर्पुद किया गया है, लेकिन कही भी राज्य की सत्ता को पूर्णत हस्तगत

---

1 कामनवल्थ ऑफ आस्ट्रेलियन एक्ट, 1990, अनुच्छेद 719 'सेलेटक्टेड कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ दि वर्ल्ड,

2 पूर्वोधृत, पृष्ठ 444

3 पश्चिम् जर्मनी क सविधान का अनुच्छेद, 91, स्रोत सरकारिया कमीशन रिपोर्ट भाग-1 पृष्ठ 157

करने का प्राविधान नही ह जसा कि सविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत केन्द्र को प्रदान किया गया ह।[1]

पाकिस्तान

वर्तमान समय मे भारतीय के अलावा पाकिस्तान ही ऐसा देश ह जहाँ राष्ट्रपति शासन सबधी प्रावधान सविधान मे नीहित है। इस्लामिक गणतन्त्र का सबसे पहला सविधान का अनुच्छेद 192 सघ को यह अधिकार प्रदान करता था कि जब प्रातो म सवैधानिक तत्र विफल हो जाय तो सघीय सरकारे प्रातो का अधिकार ग्रहण कर ले।

पाकिस्तान का वर्तमान सविधान जो कि पाकिस्तान के निर्माण के बाद से तीसरा सविधान ह अनुच्छेद 334 भी इसी प्रकार का प्रावधान किया गया है, और इस अनुच्छेद की तुलना भारतीय सविधान के अनुच्छेद 356 से की जा सकती है।

जिसके अनुसार यदि राष्ट्रपति इस बात से सतुष्ट हो कि राज्य का सविधानिक तत्र विफल हो गया ह तो वहाँ के सभी कार्यपालिका अधिकारो को स्वय ग्रहण कर सकता है और प्रातो की विधायिका कार्यो का सघ की ससद के सुपुर्द कर सकता है। भारतीय सविधान की ही तरह ये भी राज्यो के उच्च न्यायालयो को इस प्रावधान के अधीन नही रखा गया है। राज्य के न्यायिक कृत्यो मे राष्ट्रपति हस्तक्षेप नही कर सकता है।[2]

अनुच्छेद 334 के अन्तर्गत की गयी उद्घोषणा जारी होने के दो माह के अदर ससद द्वारा स्वीकृत हो जानी चाहिये, साथ ही ससद द्वारा इसे छ माह की अवधि के लिये बढाया जा सकता ह। लेकिन छ माह से आगे की अवधि के लिये वृद्धि नहीं की जा सकती, और यदि उद्घोषणा के समय सघ की ससद सत्र मे थी तब एसी स्थिति मे उद्घोषण तीन माह तक प्रभावी बनी रहेगी। लेकिन यदि इस अवधि के दौरान आम चुनाव नही कराये जाते तब ऐसी स्थिति मे इस उद्घोषणा का प्रभाव समाप्त हो जायेगा। जब तक कि ससद द्वारा तत्सबधी प्रस्ताव पास ना कर दिया जाय।

---

1 'द यूनियन एक्जीक्यटिव'(1969) 'डा एचएम जेन' पृष्ठ 107 चतन्य पब्लिशिग हाउस, इलाहाबाद

2 इस्लामिक गणतन्त्र पाकिस्तान का सविधान, अनुच्छेद-234 कराची, 1973

राष्ट्रपति ससद को प्रातीय विधान सभाओ के विधायी कार्यो हेतु कानून बनाने हेतु प्राधिकृत कर सकता है। यदि ससद का सत्र नही चल रहा हो तो ऐसी स्थिति मे राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपात कोष से खर्च की अनुमति दे सकता ह जब तक कि ससद से स्वीकृति न प्राप्त हो जाय। ससद द्वारा प्रातो के लिये बनाये गये कानून का प्रभाव छ मास बाद स्वत ही समाप्त हो जायेगा क्योकि उद्घोषणा छ माह बाद वृद्धि नही की जा सकती ह।

## राज्यो मे सवैधानिक तत्र विफल होना

अनुच्छेद 356 मे यह उपबधित है कि यदि राष्ट्रपति इस बात से सतुष्ट हो जाय कि राज्य की सरकार सविधान के उपबधो के अनुसार नही चलायी जा सकती हे तो राज्य म राष्ट्रपति शासन सबधी उद्घोषणा की जा सकती ह राष्ट्रपति इस प्रकार का कार्यवही राज्यपाल की रिपोर्ट मिलने पर या अन्यथा भी कर सकता ह, अर्थात् राष्ट्रपति की सतुष्टि इस शक्ति के प्रयाग की एक पूर्व शर्त है। प्रारूप सविधान मे पहले "या अन्यथा" शब्द नही जोडा गया था यह शब्द सविधान के दूसरे वाचन के समय जोड़ा गया था।

इसके आचित्य के बारे मे स्पष्टीकरण देते हुये डा अम्बेदकर ने कहा कि ऐसा करना इस लिये आवश्यक क्योकि अनुच्छेद 355 के द्वारा केन्द्र को जो कर्तव्य सौपा गया उसे पूरा करने के लिए ऐसा किया जाना आवश्यक था। सविधान का अनुच्छेद 355 यह व्यवस्था करता है कि–

सघ का यह कर्तव्य होगा कि वह बाध्य आक्रमण आर आन्तरिक अशांति से प्रत्येक राज्य की सुरक्षा करे और प्रत्येक राज्य की सरकार का सविधान के उपबधो के अनुसार चलाया जाना सुनिश्चित करे। उनका विचार था कि अनुच्छेद 355 केन्द्र को राज्यो की सुरक्षा का दायित्व सापता ह। अत यह कदापि उचित नही होगा कि अपने दायित्व के निवहन के लिये राष्ट्रपति के लिये राज्यपाल की रिपोर्ट अनिवार्य कर दी जाये। यह भी सभव ह कि राज्यपाल राज्य की स्थितियो के बारे म कोई भी रिपोट प्रेषित न कर। अत इस बारे मे कोई आशका नही है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर जबकि राष्ट्रपति

को यह प्रतीत हो कि राज्य की गम्भीर स्थितिया को देखत हुये उसका हस्तक्षेप आवश्यक ह।

"ऐसी स्थिति मे राष्ट्रपति को यह अधिकार मिलना आवश्यक ह कि वह उन स्थितिया म कार्यवाही कर सकता ह जबकि राज्यपाल ने काई रिपोर्ट प्रेषित न की हो[1]

अनुच्छेद 355 और 356 को एक साथ देखने पर यह प्रतीत होता ह कि राष्ट्रपति राज्य प्रशासन म निम्न तीन परिस्थितियो उत्पन्न होने पर दखल दे सकता हे, वाह्य आक्रमण 2 आन्तरिक उपद्रव आर 3- राज्यो मे सवेधानिकतत्र विफल्प होने पर सघ पर उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि तो वो राज्य को सहायता करे। इसी प्रकार के प्राविधान अन्य सघीय सविधानो मे भी पाये जाते हे।[2] भारत मे चूँकि विधि व व्यवस्था का विषय राज्य के क्षेत्र मे आता हे अत केन्द्र का किसी राज्य मे हस्तक्षेप तभी ओचित्यपूर्ण माना जा सकता ह, जबकि उस राज्य मे 'अशाति' अथवा 'उपद्रव' गम्भीर प्रकृति के हो, जिस पर राज्य सरकार अपने साधना द्वारा नियत्रण कर सकने मे असमर्थ हो। यद्यपि सविधान मे इस प्रकार का कोई प्राविधान नही हे, परन्तु एक ऐसी परम्परा पड गयी है कि केन्द्र सामान्यत तभी किसी राज्य की सहायता करता ह जब राज्य सरकार ऐसी सहायता की माग करता है क्योकि राज्य के सरक्षण का केन्द्र के ऊपर एक विशिष्ट सवेधानिक कर्तव्य डाला गया है। अत केन्द्र के लिये यह अनुचित होगा कि वह राज्य की सहायता न करे यद्यपि यह निश्चित तौर पर नही कहा जा सकता कि बिना राज्य द्वारा इस तरह की माग रखे क्या केन्द्र राज्य मे हस्तक्षेप नही कर सकता ह ? यह प्रश्न विवादास्पद ह कि केन्द्र ऐसा कर सकता ह लेकिन अतिम तौर पर सबध मे केन्द्र का निर्णय ही अतिम होगा।

जहा तक वाहय आक्रमण का सबध है। इस सबध म अनुच्छेद 352 व 355 म अतर जानना अत्यन्त आवश्यक ह।[3]अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत कार्यवाही के लिये बाध्य

---

1 सीएडी IX 133-34

2 पीएच मर्कल सम्पादित,'कम्पेरटिव फैडरलिज्म 1970, पृष्ठ 267

3 वाह्य आक्रमण और आतरिक उपद्रव की स्थिति उत्पन्न होने पर जिसम राज्य मे सवैधानिक तत्र विफल हो गया हो तथा केन्द्र का हस्तक्षेप अनिवार्य हो इस प्रकार का प्रावधान सयुक्त राज्य अमेरिका अर्जेन्टीम मैक्सिको बाजील, बेनेजुएला, स्विट्जरलैण्ड जर्मनी के सविधानो मे भी मिलता है पीएच मर्कल कम्परैटिव फैडरलिज्म 1970 पृष्ठ 267

आक्रमण एक वध आधार है किन्तु ऐसी कार्यवाही केवल गम्भीर आपात स्थिति उत्पन्न होने प- ही की जा सकती ह जिससे भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा को खतरा हो लेकिन यदि वाध्य आक्रमण इतना गभीर ना हो कि अनुच्छेद 352 क अन्तर्गत कार्यवाही का आवश्यकता पड या ऐसी स्थिति ना हो जिससे सविधान का उल्लघन हो रहा हो तो सघ सरकार को यह अधिकार होगा कि वह अनुच्छेद 355 के अन्तर्गत कार्यवाहा कर जसाकि वो सविधान प्रदत्त दायित्व के निर्वहन के लिये आवश्यक समझे।

लेकिन इसी अनुच्छेद म नीहित आन्तरिक उपद्रव की अभिव्यक्ति अस्पष्ट है। यद्यपि स्विट्जरलण्ड के सघीय सविधान मे भी आन्तरिक अव्यवस्था का प्रयोग किया गया ह। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका आर आस्ट्रेलिया के सविधानो म अभिव्यक्ति आन्तरित हिसा का प्रयोग किया गया ह। भारतीय सविधान निर्माताओ ने इसके स्थान पर, आन्तरिक उपद्रव का प्रयोग किया ह अत स्पष्ट हे कि वे इस अभिव्यक्त का अर्थ आन्तरित हिसा तक ही सीमित नही रखना चाहते थे। वरन् इससे आन्तरिक अव्यवस्था का पता चलता हे। इस प्रकार की अव्यवस्था विभिन्न कारणो से हो सकती है जैसे बडे पमान पर सार्वजनिक अव्यवस्था जिससे प्रशासन का कार्य असभव हो जाये तथा राज्य की सुरक्षा को खतरा पहुचने का अदेशा हो। कभी कभी प्राकृतिक आवदाओ के कारण भी ऐसे उपद्रव हो सकते ह जसे बाट, भूचाल, तूफान, महामारी आदि से किसी राज्य की सरकार पगु हो सकती है, आर उसकी सुरक्षा को खतरा पहुचा सकता है। जसा कि अम्बेदकर ने भी अपने व्यप्तब्य म स्पष्ट किया था अनुच्छेद 355 चेतावनी मे खण्ड के रूप मे सविधान मे उपबधित है।

अनुच्छेद 355 के अनुसार सघ की ओर से की जान वाली सभी प्रकार की कायवाही या मामलो की परिस्थितिया आन्तरिक उपद्रव की प्रकृति तथा उसकी गम्भीरता पर निभर करती ह। इस सवध म सरकारिया कमीशन का सुझाव ह कि कुछ मामला मे राज्य का अपने साधनो का सही इस्तेमान करन के लिये सघ द्वारा सलाह के रूप म सहायता देना ही पर्याप्त होगा। यदि हिसात्मक उथल-पुथल या वाध्य आक्रमण का मामला हो तो राज्य की पुलिस आर न्यायाधिकरण की सहायता के लिये केन्द्रिय बलो की तेनाती करना इस समस्या को हल करने क लिये पर्याप्त होगा।

सामान्यता प्रत्येक राज्य को सकट की ऐसी स्थिति से उभरने के लिये सघ की सहायता लेना आवश्यक होगा। लेकिन जसा कि पूर्व मे उल्लिखित ह कि अनुच्छेद 355 का क्षेत्र बहुत व्यापक ह अत उन परिस्थितिया मे जब किसी राज्य मे गभीर उपद्रव को रोकने के लिये यदि समुचित कार्यवाही नही की गयी हो और ना ही राज्य सरकार ने सघ स राज्य म सशस्त्र बलो की तनाती का विशेष अनुरोध ही किया हो तो सघ सरकार अनुच्छेद 355 के अन्तर्गत अपने सर्वोपरि उत्तरदायित्व का निर्वाहन करेगा। सघ द्वारा की जाने वाली कार्यवाही मे इस प्रकार के सकट की पुनरावृत्ति से बचने के उपाय भी शामिल ह।

इस कर्तव्य की पूर्ति के लिये अनुच्छेद 355 के तीसरे भाग म यह सुनिश्चित करने का कर्तव्य भी सघ को सुपुर्द किया गया है कि राज्य की सरकार सविधान के अनुसार चलायी जा रही ह या नहीं। सवैधानिक तत्र के ठप्प हो जाने पर किये जाने वाले उपाय अनुच्छेद 356 मे दिये गये हे। हमारे सविधान द्वारा सघ और राज्य दोनो के लिये कार्यपालिका और विधायी शक्तियां और उत्तर दायित्व निर्धारित किये गये हे। इस योजना का मुख्य सघीय सिद्धान्त यह ह कि प्रत्येक राज्य को यह अधिकार ह कि वह सविधान के अनुसार निर्धारित अपने क्षेत्र मे बिना किसी हस्तक्षेप के काय करे। इसके साथ ही साथ राज्यो का भी यह दायित्व हे कि वह इस प्रकार से सरकार चलाये जिससे सवैधानिक तत्र नारूक जाये।

सविधान के अनुच्छेद 365 भी सघ को यह अधिकार प्रदान करता हे कि यदि उसके द्वारा दिये गये निर्देशो का पालन करने म और उनको पूर्णरुपेण कार्यान्वित करने मे यदि कोइ राज्य सरकार असफल रहता ह, तब भी राष्ट्रपति के लिये यह मानना उचित होगा कि राज्य का शासन सविधान के प्राविधानो के अनुसार नहीं चलाया जा रहा ह। यह अनुच्छेद, अनुच्छेद 356 के दायरे को विस्तृत करता ह, जिससे केन्द्र को यह अधिकार प्राप्त होता ह, कि केवल वाहय आक्रमण और आन्तरिक उपद्रव की स्थिति होने पर ही राज्य म सवैधानिक तत्र विफल ना माना जाये वरन् सघ द्वारा दिये गये निर्देशो का पालन ना करने के आधार पर भी इस सविधान प्रदत्त शक्ति का इस्तेमाल केन्द्र कर सकता हे।

इसका उदाहरण दिसम्बर 1992 म राजस्थान, हिमाचल प्रदेश आर मध्य प्रदश की सरकारा को बखास्तगी के मामले म मिलता ह जबकि वहा की राज्य सरकाग को केवल इसलिये भग कर दिया गया क्यकि वे सघ द्वारा प्रतिबधित सगठनो के विरुद्ध प्रभावी कार्यवाही नही कर रही थी।

## अनुच्छेद 356 का क्षेत्र और प्रभाव

सविधान का अनुच्छेद 356 यह व्यवस्था करता ह कि यदि अनुच्छेद 355 व 365 के प्राविधाना क अन्तर्गत, यदि राष्ट्रपति को यह महसूस हो कि राज्य म सावधानिक गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो गयी हे तो वह राज्य प्रशासन को हस्तगत कर सकता हे। वसे राष्ट्रपति को ऐसी कार्यवाही करने के लिये राज्यपाल की रिपोर्ट आवश्यक नही ह लेकिन अपवाद स्वरूप कुछ मामलो को छोड़कर अधिकतर अवसरो पर केन्द्र ने राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर दी कार्यवाही करते देखा गया हे।[1]

## इस प्रकार की उद्घोषणा द्वारा राष्ट्रपति

1 राज्य सरकार के समस्त अथवा कोई कृत्य राज्यपाल या राज्य विधान सभा को छोडकर राज्य क अन्य किसी निकाय अथवा किसी प्राधिकारी म नीहित सब या कोई भी शक्तिया स्वय ग्रहण कर सकता हे।

2 यह घोषणा कर सकता हे कि राज्य विधान सभा की शक्तियो का प्रयोग स्वय ससद करेगा।

3 एसे आनुसागिक ओर परिमाणिक उपबघ बना सकता हे जो उद्घोषणा के उद्देश्य के प्रभावी करने के लिये उसे आवश्यक अथवा अभीष्ट प्रतीत हा। वह राज्य म किसी निकाय अथवा प्राधिकारी से सबधित सविधान के प्रावधानो के प्रवतन को पूर्णतया अथवा अशत निलम्बित कर सकता ह। राष्ट्रपति को यह अधिकार नहीं ह कि वह उच्च न्यायालय की शक्तिया को स्वय ग्रहण कर ले अथवा उच्च न्यायालय से सबधित किसी

---

1 १९५३ म पप्सू मे, 1977 व 1986 म नौ-नौ राज्या की विधान सभाओ को भग करने के मामल मे व 1990 म तमिलनाडु की सरकार को बर्खास्त करने के मामला मे बिना राज्यपाल के रिपोर्ट के ही कार्यवाही की गयी।

मवधानिक प्रावधान को पूर्णत या अशत निलम्बित कर दे। अनुच्छेद 356 के अन्तगत की गयी किसी उद्घोषणा का विखण्डन अथवा परिर्वतन किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा किया जा सकता ह। हर उद्घोषणा को समद के दोनो सदनो के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक नाता ह, आर ऐसी उद्घोषणा का प्रर्वतन दो माह के बाद स्वत समाप्त हो जायेगा यदि इसी बीच ससद के दोनो सदनाके सकल्पा द्वारा इसे अनुमोदित नही कर दिया जाता।

यदि उद्घोषणा को जारी करते समय अथवा उसके बाद लोक सभा ऐसी उद्घोषणा को अनुमोदित किये बिना विघटित कर दी जाती ह आर यदि राज्य सभा ऐसी उद्घोषणा को अनुमोदित कर देती ह तो आम चुनावो के फलस्वरूप गठित होने वाली लोक सभा की बठक के तीन दिन बाद उद्घोषणा का प्रभाव स्वत समाप्त हो जाता है यदि इस अवधि के पूर्व ही लोक सभा भी इस पर अपना अनुमोदन नही प्रदान कर देती ह इस प्रकार ससद के दोनो सदनो द्वारा अपना अनुमोदन प्रदान कर देने के उद्घोषणा पश्चात् 6 माह तक प्रवतन म रहती हे ओर आगे की अवधि म उद्घोषणा की प्रर्वतित रखने के लिये इसके अनुमोदन का सकल्प ससद द्वारा पुन पारित करना आवश्यक हे। इस प्रकार एक बार म यह अवधि पुन 6 माह के लिये बढाई जा सकती हे।

अनुच्छेद 356 के अन्तगत उद्घोषणा के निरन्तर प्रर्वतन के निमित्त जो हर 6 माह पर ससदीय अनुमोदन की व्यवस्था की गयी है उसके पीछे उद्देश्य यह हे कि ससद स्वत सबधित राज्य मे विद्यमान स्थिति का पुर्नविलोकन करती रहे ताकि कार्यपालिका उद्घोषणा को उस अवधि से अधिक समय तक प्रवर्तन मे न रखा जा सके जितने समय के लिये उसका बनाए रखना आवश्यक हो। कार्यपालिका द्वारा इस शक्ति के प्रयोग करने के विरुद्ध सहसरक्षा प्रदान की गयी है। इस बात का अतिम निर्णय करने का अधिकार ससद म विहित कर दिया गया ह ताकि उद्घोषणा कब तक बनायी रखी जाये। किसी राज्य म उद्घोषणा के प्रवर्तन की अवधि अधिकतम अवधि तीन वर्ष ह। इसके बाद राष्ट्रपति शासन की समाप्ति आर राज्य मे सवैधानिक तत्र की पुन स्थापना आवश्यक ह। जितनी जल्दी सभव हो सके राज्य मे विधान सभा के चुनाव कराना चाहिये, जिससे उद्घोषणा को शीघ्रताशीघ्र समाप्त किया जा सके जितना शीघ्र सभव हो मत्रिमण्डल का स्थापना की जाये।

दूसरा शत यह ह कि ससद का कोई भी सदन किसी राज्य म आपात घोषणा को एक वर्ष के बाद बढाये जाने के अनुमोदन का सकल्प तब तक नहीं पारित कर सकता ह तब तक कि—

(1) ऐसे सकल्प के पारित होने के समय अनुच्छेद 352 के तहत आपात की उद्घोषणा प्रवतन मे ना हो तथा

(2) निर्वाचन आयोग यह प्रमाणित न कर द कि राज्य म इस अवधि के दारान विधान सभा का सामान्य निर्वाचन कराने मे कठिनाइया ह।

अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत की गयी आपात उद्घोषणा द्वारा जब यह घोषित किया जाता ह कि राज्य विधान मडल की शक्तियो का प्रयोग ससद करगी ता फिर ससद राज्य की विधायिका शक्ति राष्ट्रपति को साप सकती है। राष्ट्रपति का ससद यह भी अधिकार द सकती ह कि वह प्रदत्त शक्ति का प्रत्यायोजन, ऐसी शर्तो के साथ जसा कि वह आवश्यक समझे किसी भी अन्य निर्दिष्ट प्राधिकारी को द सकता ह। एसी विधि का प्रर्वतन उद्घोषणा समाप्ति के एक वर्ष बाद, उस सीमा तक समाप्त हो जाता ह यदि अनुच्छेद एक के अन्तर्गत उद्घोषणा पुन जारी नही की जाती तथा विधान मण्डल ऐसी विधि का पुन अधिनियम नही कर देता। इससे यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 356 के प्रवतन की अवधि मे ससद अथवा राष्ट्रपति द्वारा निर्मित विधि का जीवन अपने आप उद्घोषणा की समाप्ति के साथ समाप्त नहीं हो जाता वरन् वह उद्घोषणा सामाप्ति के एक वर्ष बाद तक प्रर्वतन म रहती ह। लोक सभा जब सत्र मे न हो तब राष्ट्रपति राज्य की सचित निधि से व्यय करने के लिये स्वीकृति दे सकता ह। परन्तु बाद मे ससद के इसकी मजूरी प्राप्त करना आवश्यक होता है।

## राष्ट्रपति 'या अन्यथा' भी कार्यवाही कर सकता है

यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति केवल राज्यपाल की रिपाट पर ही कार्यवाही करता ह अथवा अन्यथा भी। इस तथ्य को दृष्टि मे रखते हुये कि अनुच्छेद 355 केन्द्र पर यह दायित्व डालता ह कि वह यह सुनिश्चित कर कि प्रत्येक राज्य सरकार सविधान के अनुसार चलायी जाये आर अनुच्छेद 356 इस दायित्व के

निवहन आर राज्या के सरक्षण हेतु केन्द्र के हाथा को मजबूत करता ह। अत सविधान निमाताआ ने यह आवश्यक समझा कि वह केवल मात्र राज्यपाल के प्रतिवदन पर ही कार्य कर।

राज्य म ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती ह जबकि यद्यपि राज्यपाल अपना कोई प्रतिवेदन राष्ट्रपति का नही भेजता हे परन्तु फिर भी केन्द्र यह अनुभव कर कि राज्य मे उसका हस्तक्षेप करना अनिवार्य हो गया हे तो इस प्रकार केन्द्र स्वतन्त्र ह कि वह ऐसी स्थिति म राज्यपाल के प्रतिवेदन के बिना भी कार्य कर सकता ह, जबकि वह अपनी जानकारी म लाये गये तथ्यो के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचता ह कि अनुच्छेद 356 को किसी राज्य मे लागू करना उसे अपने सवेधानिक दायित्व को निर्वहन के लिये आवश्यक हो गया हो।

## जम्मू-कश्मीर के लिये सविधान मे पृथक व्यवस्था की गयी ह

जम्मू आर कश्मीर के सविधान की धारा 92 के अनुसार राज्य के सवधानिक तत्र के विफल होने की दशा मे-

यदि राज्य के राज्यपाल को यह अनुभव हो कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी ह जिसमे कि राज्य का शासन सविधान (जम्मू व कश्मीर का सविधान) के अनुसार नही चलाया जा सकता तो राज्यपाल उद्घोषणा द्वारा-

(1) राज्य सरकार की शक्तियॉ अपने हाथो मे ले सकगा साथ ही उद्घोषणा को प्रभावी बनाने के लिये सविधान के किन्ही उपबन्धो को पूर्णत या आशिक तोर पर निलम्बित कर सकता ह।

लेकिन राज्यपाल को उच्च न्यायालय की शक्तियो मे हस्तक्षेप करने का अधिकार नही होगा। इस प्रकार की उद्घोषणा छ माह तक की अवधि के लिये ही प्रवर्तन मे रहेगी।

इस प्रकार की उद्घोषणा बिना राष्ट्रपति की सहमित से जाग नही की जा सकती ह। इस प्रकार की उद्घोषणा के विधान मण्डल की सहमति आवश्यक ह।

ज्ञातव्य ह कि जम्मू व कश्मीर मे छ माह तक 'राज्यपाल का शासन' ही लागू रहता ह। छ मास की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात भी यदि उद्घोषणा को जारी रखने की आवश्यकता हुयी तो राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाता ह।[1]

राज्य म राज्यपाल का शासन 27377 का पहली बार लागू किया गया था जब कांग्रेस पार्टी ने शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के नेतृत्व वाली सत्तारुट नशनल कांग्रेस से अपना समर्थन वापस ले लिया और राज्यपाल श्री एल के झा ने इसके साथ ही विधान सभा भग कर दी थी। राज्य विधान सभा के लिये हुये चुनावो के पश्चात नेशनल कांफेस के नेता शेख अब्दुल्ला ने 9777 को मुख्यमत्री का पद ग्रहण किया दूसरी बार 7386 को जब गुलाम मोहम्मद शाह वाली नेशनल कांफेस (खालिदा ग्रुप) को कांग्रेस ई पार्टी का समर्थन नही रहा राज्यपाल श्री जगमोहन ने जम्मू व कश्मीर के सविधान की धारा 92 के अन्तर्गत राज्यपाल का शासन लागू कर दिया जो 6986 को समाप्त हो गया आर उसके बाद राज्य म राष्ट्रपति शासन लागू किया गया।

राज्यपाल की नियुक्ति की प्रक्रिया के सबध मे आपत्ति होने के कारण नेशनल कांग्रेस के डॉ फारुख अब्दुल्ला के द्वारा भूतपूर्व राज्यपाल जनरल के वी कृष्णराव को श्री जगमोहन ने राज्य म राज्यपाल का शासन लागू कर दिया। विधान सभा निलम्बित रखी गयी जिसे बाद म 12290 को भग कर दिया गया।

## अनुच्छेद 356 मे किये सवैधानिक-सशोधन

सविधान प्रवर्तन के बाद से अनुच्छेद 356 मे अब तक कुल आठ सशोधन किये जा चुके ह लेकिन इन सशोधनो मे 38 वा 42वा 44वा सशोधन बहुत महत्वपूर्ण ह।

सविधान के 36व सशोधन द्वारा अनुच्छेद 356 मे एक नया खण्ड (5) रखकर अनुच्छेद 356 के अधीन आपात कालीन शक्तियो की घोषणा करने म राष्ट्रपति के निर्णय को अतिम बना दिया गया था अर्थात् राष्ट्रपतिकी सस्तुति अतिम आर निश्चयात्मक होगी आर उसे किसी भी न्यायालय म चुनौती नही दी जा सकेगी।[2] इस सशोधन विधेयक को ससद के समक्ष

1 राज्यो म राष्ट्रपति शासन पृष्ठ 26 1991 पूर्वोक्त

2 सविधान (38वॉ सशोधन ) अधिनियम 1975 द्वारा अत स्थापित

पश करते हुये तत्कालिन विधि मत्री ने कहा था कि यद्यपि इन अनुच्छेदा की भाषा म यह स्पष्ट ह कि उदघोषणा सबधी मामलो मे राष्ट्रपति राज्यपाल और प्रशासक की वयक्तिक सतुष्टि ही अतिम ह [1] आर सविधान निर्माताओ का भी यही विचार था। इनका मत था कि सविधान लागू होने के बाद मे ही न्यायालय का यही विचार रहा ह कि उक्त अनुच्छो म वर्णित कार्यपालिक प्रमुख का निर्णय अतिम ह आर उसकी जाच न्यायालय नही कर सकता ह।

इस सशोधन को दृष्टि म रखते हुये 1977 म उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय म यह निर्णित किया था कि उपरोक्त मामले का न्यायिक पुरावलोकन नही किया जा सकता आर न्यायालय के निर्णय के आ जाने के तुरन्त बाद केन्द्र सरकार बर्खास्त कर दी गयी थी।

न्यायालय द्वारा दिये गये इसी निर्णय के आधार पर केन्द्र सरकार को पुन राज्य सरकार की बर्खास्तगी की कार्यवाही करने का प्रोत्साहन प्राप्त हुआ जबकि 1980 मे सत्ता म आने पर उसी आधार पर पुन नौ राज्यो की विधान मण्डलो का विघटन कर दिया गया था।

## 42वा सशोधन

यद्यपि 38व सशोधन अधिनियम द्वारा ही यह व्यवस्था कर दी गयी थी कि राष्ट्रपति द्वारा की गयी कार्यवाही को न्यायालय मे चुनोती नही दी जा सकती, परन्तु 42वे सविधान सशोधन द्वारा न्यायालयो को उनके सविधान सशोधन अधिनियम को असवेधानिक घोषित करने के अधिकार से भी वचित कर दिया गया था। जिसके द्वारा यह व्यवस्था कर दी गयी कि 42 वे सशोधन अधिनियम 1976 के पास होने से पहले या उसके पश्चात किये गये किसी सशोधन को न्यायालय मे चुनोती नही दी गयी जा सकती। इस प्रकार 38 व सशोधन द्वारा की गयी व्यवस्था को 42 वे सशोधन के बाद आर अधिक पुष्ट कर दिया गया।

---

1 विधिमत्री श्री शतिभूषण ने यह व्यक्तव्य 1977 म सवोच्च न्यायालय द्वारा दिये गय निर्णय के बाद कहा था। 'दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 2 अप्रैल, 1977

एक अन्य परिवर्तन जो उपरोक्त सशोधन द्वारा सबधित अनुच्छेद म किया गया था कि इस अनुच्छेद के अधीन जारी कि गयी प्रत्येक उद्घोषणा का ससद के प्रत्येक सदन क समक्ष जायेगा आर यदि ससद के दोनो सदन उक्त अवधि क भीतर इसे पास कर देते ह तो उद्घोषणा एक वर्ष की अवधि तक प्रभावी बनी रहेगी, जबकि पहले ससद द्वारा अनुमोदित हो जाने के पश्चात् 6 माह तक ही लागू रह सकती थी।

इस प्रकार उपरोक्त सशोधन द्वारा न्यायापालिक के अधिकारा को सीमित करने की कोशिश की गयी थी। साथ ही अनुच्छेद 74(2) मे सशोधन करके राष्ट्रपति के अधिकारा को भी सीमित करने का प्रयास किया था। जिसके द्वारा यह व्यवस्था का दा गयी थी कि राष्ट्रपति अपने मत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार ही कार्य करेगा। इस प्रकार इस सशोधन द्वारा केन्द्र का राज्य सरकारो के बने रहने अथवा भग कर देने के बारे मे पूर्ण 'स्वतन्त्रता दे दी गयी थी, इस प्रकार राज्या पर केन्द्र को हावी कर दिया गया था।

## 44वा सशोधन

1975 म घोषित आपात काल के बाद जब जनता सरकार सत्ता म आयी तब उसने उन प्राविधाना मे सशोधन करने का निश्चय किया जिसका सहारा लेकर कोई भी सरकार तानाशाह बन सकती थी, जिसके तहत जनता पर बहुत अधिक अत्याचार किये गये थे, प्रजातत्र तथा समाचार पत्रो की स्वतन्त्रता का गला घोट दिया गया था, नाकरशाही को भयभीत कर दिया गया था, विपक्षी नेताओ को जेलो मे नजर बद करके विपक्ष की आवाज को दबा दिया गया था। इन्ही परिस्थितियो को ध्यान म रखते हुये जब 1977 मे जनता पार्टी की सरकार सत्तारूढ हुयी तब 1978 मे सविधान का 44 वॉ सशोधन अधिनियम पास किया गया।

चूँकि 1975-77 के दारान आपातकालीन शक्तिया का सार्वाधिक दुरूपयोग किया गया था इसलिये 44व सशोधन द्वारा उन शक्तियो के दुरूपयोगको रोकने के लिये निम्नलिखित उपाय किये गये।

1 राष्ट्रपति राज्यो मे आपात सबंधी उद्घोषणा उस समय तक नही कर सकता था जबकि सघ का मत्रिमण्डल लिखित रूप से ऐसी उद्घोषणा करने की सिफारिश राष्ट्रपति से नही करता। इस सशोधन से पहले सविधान म इस प्रकार की व्यवस्था नही थी।[1]

2 44 वे सशोधन द्वारा अनुच्छेद 356 के सबध मे पुन न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार दे दिया गया जबकि ज्ञातव्य है कि 38वे सशोधन द्वारा यह व्यवस्था कर दी गयी थी कि आपात उद्घोषणा को न्यायालय मे चुनौती नही दी जा सकती थी।[2]

44वे सशोधन द्वारा अब अनुच्छेद 356 के अधीन उद्घोषणा का न्यायिक पुनर्विलोकन उसी आधार पर हो सकता है जिस पर व्यक्तिगत समाधान पर आधारित कार्यपालिका का कोई निर्णय प्रश्नगत किया जा सकता है जैसे–

(क) सविधान के अनुच्छेद 356 द्वारा शक्ति जिस प्रयोजन के लिये दी गयी है, उससे उद्घोषणा के आधार का कोई सबध नही है या वह उससे सुसगत नही है, दूसरे शब्दो म जहा राष्ट्रपति के समाधान और बताये गये कारणो के मध्य कोई युक्तियुक्त सबध नही है।[3] क्योकि ऐसी स्थिति मे यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति का समाधान

---

1 यदि ऐसी व्यवस्था सविधान के अनुच्छेद 352 के सबध म की गयी थी लेकिन बाद म उसे अनुच्छेद 356 के विषय मे भी एक परम्परा के रूप मे स्वीकार कर लिया गया। जैसा कि भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री आर वेंकटरमन ने अपनी पुस्तक म स्पष्ट किया है कि– The president could not take a sheet of white paper and issue orders dismissing state ministerers A recomenendation to that effect had to emanate from the Cabniet and the leaders had to Convince the prime minister of the Stepn they wanted My presidential years' by 'Sri R Ventakaramen P 496

2 सविधान 38वा सशोधन अधिनियम 1975 द्वारा खण्ड (5) अन्तःस्थापित किया गया था। इसके स्थान पर सविधान का 44वा सशोधन, 1978 से दूसरा खण्ड रखा गया है। इसस पूर्व यह उपबध था कि अनुच्छेद 356 के अधीन उद्घोषणा का न्यायिक पुनर्विलोकन किसी आधार पर नही हो सकता। भारत की सांविधानिक विधि डीडी पृष्ठ 447

3 राजस्थान राज्य बनाम भारत सघ 1977 एससी 1361 (पैरा 124) (राज बनाम भारत सघ 1982 एससी 710 (पैरा 27) म अनुसरण किया गया।

नही हुआ ह आर अनुच्छद 356 के अधीन शक्ति के प्रयोग क लिय समाधान का होना पूव शर्त ह।

(ख) अनुच्छेद 356 के अधीन शक्ति का प्रयोग दुर्भावपूर्ग ह[1] क्याकि ऐसे कानूनी आदेश का जो सद्भावपूर्ण नही है विाध म कोई अस्तित्व नही होता।[2]

सविधान मे किये गये इस महत्वपूर्ण सशोधन के बाद दुर्भावना पूर्ण दुरुपयोग के आधार पर की गयी उद्घोषणा की प्रवृत्ति पर अकुश लगाने म कुछ दर से सफलता मिली क्याकि यह अधिकार राज्य सरकारा से छीना जाना उचित नही था कि वो उद्घोषणा को वधता को न्यायालय म चुनौती दे सके।[3]

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये अपने महत्वपूर्ण फसले के बाद यह धारणा पुष्टि होती ह कि न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन के अधिकार को सीमित करना उचित नही ह[4] क्याकि यदि सघीय सरकार द्वारा राज्यो की स्वतन्त्रता का हरण होता ह तब उस स्थिति म ससद दो माह तक जबकि प्रस्ताव को उसके समक्ष प्रस्तुत न किया जाय केन्द्र के फसले क विरुध कुछ भी करने म अस्मर्थ होती ह।

जबकि ऐसी स्थिति मे न्यायपालिका ही केन्द्रिय सरकार पर अकुश का काम करती ह। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के केन्द्रीय सरकार द्वारा मध्य प्रदेश सरकार की बर्खास्तगी को अनुचित घोषित कर दिया। बहुमत से दिये गये अपन फसले म न्यायालय ने कहा कि राज्यपालकी रिपोर्ट मे राज्य मे सवैधानिक तत्र विफल होने से सबधी कोई उल्लेख नही किया गया था। केन्द्र द्वारा की गयी कथित कार्यवाही अनुच्छेद 356 की परिधि के बाहर थी।[5]

---

1 राजस्थान राज्य बनाम भारत सघ' वही पेज 123

2 एसाम्बिनटेड ट्रासपाटम बनाम भारत सघ 1978 मद्रास 173

3 मध्य प्रदश उच्च न्यायालय का फैसला व इसी निर्णय के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इसी कथन की पुष्टि करता है।

4 सुदर लाल पटवा बनाम भारत सघ एआई आर एम पी अक्टूबर 1993 वाल्यूम 80 215

5 सुदर लाल पटवा बनाम वही

बाद मे सर्वोच्च न्यायालय मे भी अपने महत्वपूर्ण फसले म यह स्वीकार किया कि राष्ट्रपति शासन लागू करने की उद्घोषणा का न्यायिक पुनरावलोकन (किया जा सकता ह)[1] आर यदि वह अवैध पाया जाता ह तो न्यायालय को यह अधिकार ह कि वो भग विधान सभा को पुनरूज्जीवित कर सकता ह।[2] इस प्रकार न्यायालय ने अपने पूर्व के फसले को बदलते हुये निर्णय दिया 1977 के फेसले मे जहा सर्वोच्च न्यायालय इस आधार पर निर्णय देने से इनकार कर दिया था कि उक्त मामले का न्यायिक पुनरावलोकन नही किया जा सकता क्याकि यह मामला राजनीतिक ह जिसके सबध मे राष्ट्रपति के व्यक्तिगत रूप से सन्तुष्ट होने को ही अतिम निर्णय माना जा सकता ह। लेकिन इस सबध मे ज्ञातब्य ह कि न्यायालय द्वारा 42 वे सशोधन के बाद भी न्यायालय की अधिकारिता के वर्णन को ध्यान म रखते हुये उसके औचित्य पर विचार किया जा सकता था।[3]

1 एक अन्य महत्वपूर्ण बदलाव जो इस सशोधन द्वारा किया गया वो उद्घोषणा की अवधि के सबध म था। 42वे सशोधन द्वारा जबकि उद्घोषणा की अवधि छ माह मे बढाकर एक वर्ष कर दी गयी थी, उसे पुन 44वे सशोधन द्वारा 6 माह कर दिया गया था इस प्रकार राज्यो मे सवैधानिक तत्र के विफल होने से सबधित उद्घोषणा दो माह की अवधि समाप्त होने से पूर्व ससद के दोनो सदना से अनुमति लेने अनिवाय ह आर इस प्रकार एक बार ससद की अनुमति मिल जाने के पश्चात् यह उद्घोषणा 6 माह तक जारी रह सकती थी लेकिन एक वर्ष से अधिक की अवधि म उद्घोषणा के प्रवर्तन के लिये यह उपबन्ध किया गया था कि–

1 जब कि ऐसी उद्घोषणा जारी करते समय अनुच्छेद 352 के तहत आपात उद्घोषणा प्रवर्तन म हो।

---

1 पूर्वाधृत

2 वही

3 इस सबध म यह ध्यान देने योग्य बात हे कि सवेधानिक बाध्यता क बाद भी न्यायालय ने साथ ही यह भी स्वीकार किया था कि राष्ट्रपति की सतुष्टि को केवल अपवादात्मक मामला म ही न्यायिक पुनरावलोकन किया जा सकेगा जिन मामला के तथ्य स्वीकार किये गये हो या प्रकट किये गये हो –राजस्थान राज्य बनाम भारत सघ, एआईआरएससी 1977 पृष्ठ-1361

2 चुनाव आयोग यह प्रमाणित कर द कि आम चुनाव कराने म कठिनाई होने के कारण उद्घोषणा का बने रहना आवश्यक ह।[1]

इस प्रकार राष्ट्रपति शासन को राज्या म उपयुक्त शर्तो के होने पर ही एक वष स अधिक की अवधि के लिये जारी रखा जा सकता ह। जब कि इससे पूर्व इसे केन्द्रीय सरकार की इच्छानुसार, ससद की मजूरी से तीन वर्षो तक बढाया जा सकता था। लेकिन 48व सशोधन द्वारा पजाब राज्य के सबध मे अनुच्छेद 356 के खण्ड मे एक नया उपबध जोडा गया जिसके द्वारा 44वे सशोधन द्वारा किये गये सशोधन म परिवर्तन कर दिया गया जिसके द्वारा पजाब राज्य के सबध मे यह व्यवस्था का गयी कि एक वर्ष की समाप्ति के बाद की अवधि मे इससे पूर्व राष्ट्रपति शासन सबधी उद्घोषणा को जारी रखने के लिये कुछ शर्त रख दी गयी थी, क्योकि पजाब राज्य मे उग्रवादी गतिविधियो के कारण चुनाव कराना सभव नही था। बाद म 59वा, 60वा आर 64 वा सशोधन करके अधिकतम तीन वषा की अवधि का बढाकर पाच वर्ष के लिये कर दिया गया।[2] लेकिन यह व्यवस्था केवल पजाब राज्य के सबध मे ही की गयी थी अन्य राज्य के लिये नही।[3]

## पजाब राज्य से सबधित सशोधन तथा उसके सैद्धान्तिक परिणाम

पजाब के सबध म अनुच्छेद 356 मे अनेक बार सशोधन किये गये ह। जसाकी आगे के अध्याय मे स्पष्ट भी किया गया हे कि पजाब राज्य मे सार्वाधिक अवधि तक राष्ट्रपति शासन रहा है। ये सभी सशोधन इसके खण्ड(5) मे एक उपखण्ड जोड कर किया गया हे। इस खण्ड मे समय-समय पर एक वर्ष की समाप्ति से आगे किसी अवधि के लिये क्रमश दो वर्ष, तीन वर्ष, चार वर्ष तथा पॉच वर्ष किया गया है। वास्तव मे पजाब म विधान सभा का चुनाव 19 फरवरी 1992 को हुआ। वहाँ पर ससदीय निवाचन 1989 म हुये थे। लेकिन विधान सभा का निर्वाचन 1989 म नही किया जा सका।

---

1 64व सशोधन अधिनियम द्वारा यह व्यवस्था की गई था कि 1987 का जा गयी उद्घोषणा पर उपर्युक्त शत लागू नही होगी।—भारत की सवैधानिक विधि डॉ डी डी बसु, पृष्ठ-447

2 भारत की सविधानिक विधि'— डी डी बसु, पृष्ठ-447

3 सविधान का 68 वॉ सशोधन अधिनियम 1991 द्वारा 12 3 1991 का अत स्थापित, वही

पजाव म राज्य विधान सभा के चुनाव राजीव लागवाल समझात के बाद सितम्बर 1985 को कगये गये। जिसके फलस्वरूप अकालीदल की सरकार सतारूढ हुयी लेकिन उसका पतन मई 1987 को राज्य मे आतकवादी कार्यवाहियो के कारण हो गया। इसके बाद करीब 4 वर्ष 9 माह के बाद विधान सभा का चुनाव कराया जा सका।

अनुच्छेद 356 मे अवधि के सवध मे दो प्रकार की व्यवस्था की गयी ह। एसी उद्घोषणा किसी भी पक्ष मे तीन वर्ष से अधिक प्रवृत नहीं रहेगी । एक वर्ष की समाप्ति से आगे की अवधि के लिये ससद के द्वारा तभी बटाया जा सकेगा, जबकि सवधित राज्य म निम्न प्रकार की स्थिति हो।

1' राज्य के सम्पूर्ण भाग या उसके किसी हिस्स म अनुच्छेद 352 के तहत आपत्तिकाल की उदघोषणा लागू हो।

2 निर्वाचन आयोग यह प्रमाणित कर दे कि राज्य की विधान सभा के साधारण निवाचन क द्वारा उसका गठन नही किया जा सकता हो।

इन दोनो व्यवस्थाओ के मध्य सामजस्य स्थापित करना आवश्यक ह। 3 वर्ष की अवधि मूलरूप से अनुच्छेद 356 मे विद्यमान हे आर इसम सविधान के 44वे सशोधन द्वारा भी परिवर्तन नही किया गया। 44वे सशोधन के द्वारा सामान्य तथा इस अनुच्छेद के अन्तर्गत जारी की गयी उद्घोषणा की अवधि एक वर्ष तक सीमित कर दी गयी और अर्युक्त प्रतिवन्धा के अन्तर्गत इस अवधि को बढाने की व्यवस्था की गयी ह। इससे एक निष्कर्ष यह भी निकाला जा सकता हे कि किसी भी अवस्था म अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत एक राज्य मे तीन साल से अधिक लोकप्रिय सरकार को स्थगित नहीं रखा जा सकता अथात तीन वष के अदर अनिवार्य वह विधान सभा का चुनाव हो जाना चाहिये।

यहाँ एक आर परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है जेसा की खण्ड 5 म वर्णित भी किया गया ह कि अनुच्छेद 352 या 360 के अन्तर्गत यदि उद्घोषणा जारी की जाती हे, अर्थात् आपत्तिकाल घोषित कर दिया जाता ह, तो इनकी अवधि एक दूसरी परिस्थिति के अन्तर्गत निर्धारित होगी जो तीन वर्ष से अधिक भी हो सकती हे। ऐसी परिस्थिति म क्या विधान सभा का चुनाव करवाना सभव हो सकेगा। कहने का तात्पर्य यह नही हे कि अनुच्छेद 352 या 360 के

अन्तगत यदि उद्घोषणा जारी की जाती ह, तो विधान सभा या लोक सभा का चुनाव नही हो सकता। 1965 म भारत पाक युद्ध के समय अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत उद्घोषणा जारी की गयी था लेकिन 1967 म विधान सभा और लोक सभा के चुनाव कराये गये जब वह उद्घोषणा चल ही रही थी। 1971 म भी भारत पाक युद्ध के समय अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत उद्घोषणा जारी की गया आर पुन 25 जून 1975 को अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत दूसरी उद्घोषणा जिसे आन्तरिक आपातकाल की सज्ञा दी गयी जारी की गयी ये दोनो उद्घोषणा लागू थीं जब 1977 मे लोक सभा क निवाचन कराये गये। उपर्युक्त दृष्टान्त बाधकारी अभिसमय के रूप म स्थापित नही ह। इसलिये यह सभव ह कि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत की गयी उद्घोषणा का काल तीन साल से ज्यादा हो जाये आर विधान सभा के विधान का समय 3 वर्ष से ज्यादा से जाये आर इस अवधि के दारान विधान सभा का निर्वाचन कराया जाना सभव ना हो सके। जसा की पजाब मे किया गया व हाल ही मे जम्मू कश्मीर मे किया गया जहॉ राज्य मे आतकी गतिविधियो के चलने राज्य विधान सभा का निर्वाचन कराया जाना सभव नही हो पा रहा ह। पजाब म व वर्तमान म जम्मू कश्मीर के सबध मे जो व्यवस्था अपनाई गयी ह वह वास्तव म ऐसी प्रक्रिया ह जिसके द्वारा तीन वर्ष की अवधि की व्यवस्था खण्डित नही हो ती ओर अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत जारी की गयी उद्घोषणा की तीन वर्षो से अधिक की अवधि के लिये भी बढाया जा सकता ह। यदि इस प्रकार की व्यवस्था बिना सशोधन के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत की गयी उद्घोषणा को तीन साल से अधिक की अवधि के लिये वढाया जाता है तो इसके लिये विवाद उत्पन्न होगा और मामला न्यायालय तक जा सकता है। इस बात की सभावना से इनकार नही किया जा सकता कि न्यायालय तीन साल से अधिक की अवधि के लिये इस अनुच्छेद की उद्घोषणा को अवैध मान सकता ह।

अनुच्छेद 356 की व्यवस्था उचित हे अथवा अनुचित इस पर मतभेद हो सकताहे, लेकिन इस व्यवस्था के विभिन्न पक्ष पूर देश मे समान रूप से लागू होते ह। ऐसा नही ह कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत देश का कोई एक अग अधिक समय तक लोकप्रिय शासन से वचित रहे आर कुछ हिस्से लोकप्रिय शासन से कम समय तक वचित रहे। इस प्रकार की व्यवस्था नहीं ह। पूरे देश के लिये अधिकतम अवधि एक समान हे। पजाब की असाधारण स्थिति को कारण वहा पर निर्वाचन कराना प्राय असभव हो गया था। प्राय

मभी राजनीतिक दलो का यह मत था। अकाली दल के कुछ गुटो को आर कुछ अन्य दला को छोड कर कि यदि पजाब मे निर्वाचन कराया जाता तो यह निर्वाचन खालिस्तान के बारे म एक प्रकार का जनमत सग्रह हो जाता।[1] लेकिन सवधानिक व्यवस्थाओ के अन्‍गत अनुच्छेद 356 को ज्यादा दिनो तक लागू करना सभव नहा था, अत राज्य की स्थितिया को देखते हुये अनुच्छेद 356 मे सशोधन करना पडा आर सामान्यत अधिकतम अवधि जो 44व सशोधन बाद एक वर्ष था, वह पजाब के लिये बटाकर चार वर्ष आर उससे अधिक हो गयी। लेकिन केवल इस प्रकार की व्यवस्था विशेष स्थितियो तक ही सीमित ह। मुख्य उद्देश्य उस राज्य विशेष को देश मे बनाये रखना था।[2]

यहॉ एक सद्धान्तिक सम्भावना सामने आती हे कि एक सतारूढ दल या गुट जो ससद को देनो सदनो मे दो तिहाई बहुमत प्राप्त कर चुका ह वह देश के किसी भी भाग को लोकतान्त्रिक शासन से वचित कर सकता हे। ऐसी स्थिति वाछनीय ह अथवा नहा इसका निर्णय अत्यन्त कठिन हे आर भिन्न-भिन्न मत प्रतिबद्धता क आधार पर प्रकट किय जा सकते ह। लेकिन इतना तो निर्विवाद है कि सविधान म पजाब व जम्मू व कश्मीर का द्रष्टान्त भद भाव का आधार रखता ह तथा सवैधानिक शासन का यह सिद्धान्त भी खण्डित हो जाता ह कि यदि कोई महत्वपूर्ण अल्पसख्यक वर्ग किसी सशोधन का विरोध करता हे तो वह सशोधन उचित नही हे। इस धारणा के पीछे एक राजनीतिक दृष्टिकोण ह। **सविधान एक राजनीतिक सतुलन है और यदि समाज का कोई वर्ग सविधान की व्यवस्था से असतुष्ट हे, तो सविधान मे नया राजनीतिक सतुलन प्राप्त करना चाहिये ओर यह सतुलन आपसी विचार विमर्श से ही प्राप्त हो सकता है सवेधानिक सशोधनो से नही।**

---

1 एसी ही स्थिति वतमान जम्मू व कश्मीर की हो गयी हे, जहॉ केन्द्र सरकार की इच्छा के विपरात निर्णय दत हुये चुनाव आयोग न राज्य म निर्वाचन करान स इनकार कर दिया क्योकि उसक विचार म राज्य म वर्तमान स्थिति म निष्पक्ष चुनाव कराना सभव नही ह— दैनिक जागरण 9 दिसम्बर 1995

2 पहल पजाब क लिय पुन जम्मू कश्मीर राज्य के लिये।

# अध्याय 2

## संविधान निर्माताओं द्वारा अनुच्छेद 356 पर व्यक्त विचार

# संविधान निर्माताओं द्वारा अनुच्छेद 356 पर व्यक्त विचार

अनुच्छेद 356 के सम्बन्ध मे सविधान निर्माताओ के विचारो को जानना केवल इसलिये आवश्यक नही ह कि वे निर्माता ओर श्रेष्ठ व्यक्ति थे, परन्तु इस सम्बन्ध मे उन्हाने जो भी विचार रखे थे वो आगे आने वाले समय मे शासको के लिये मार्ग दर्शक सिद्धान्ता के रूप म पथ प्रर्दशन करते ह।

उनके विचारो से यह स्पष्ट होता है कि इस उपबध को केवल 1935 के अधिनियम म होने के कारण को नही लिया गया ह परन्तु सविधान निर्माता इस बात को भलीभाँति जानते थे कि भारत अत्यधिक विभिन्नताओ वाला देश हे जहाँ के समाज म अत्यधिक सामाजिक व आर्थिक विषमता व्याप्त ह, जिसके फलस्वरूप राज्यो को हिसक उथल-पुथल तथा जिन पर काबू पाना राज्य की क्षमता तथा ससाधनो की सीमा से बाहर हो सकता हे जिसमे राज्य को आन्तरिक दुर्व्यवस्था कासामना करना पड़ सकता हे।[1] साथ ही वे इस तथ्य से भी परिचित थे कि देश के निवासियो को सरकार की ससदीयप्रणाली का कोई अनुभव नही हे ओर न ही गहन परम्परा। फलस्वरूप किसी राज्य के सवैधानिक ढाचे के शिथिल होने की पूर्ण सम्भावना है।[2] ऐसी स्थिति से बचाव के लिये सघ को यह दायित्व सोपना जरूरी समझा गया कि प्रत्येक राज्य का शासन सविधान के अनुसार चलाया जा रहा है या नही आर यदि ऐसा नही होता तो केन्द्र राज्य प्रशासन मे दखल दे सकता हे।

वर्तमान मे सविधान के भाग 18 के अन्तर्गत अपबन्धित अनुच्छेद 356 जिसके द्वारा केन्द्र राज्यो मे राष्ट्रपति शासन को उद्घोषणा कर सकता हे। सविधान के प्रारूप मे अनुच्छेद 278 के अन्तर्गत उपबन्धित था।[3]

1 सविधान की प्रारूप समिति ने प्रान्तीय सविधान समिति द्वारा निर्मित अनुच्छेद 188 को रद्द कर अनुच्छेद 278 का प्रावधान किया था । यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि

---

1 बी शिवा राव, दि फार्मिंग ऑफ इण्डियाज कान्स्टीट्यूशन- ए स्टडी (1968) 801-23

2 सरकारिया कमीशन रिपार्ट- केन्द्र राज्य सबध आयोग, भाग-I पृष्ठ

3 कॉन्स्टीट्यूशनल एसम्बली डिबेट्स, वाल्यूम IX न 4 पृष्ठ 132, 3 अगस्त, 1949

पूर्व के अनुच्छेद 188 मे राज्यो मे राष्ट्रपति शासन लगाये जाने की शक्ति राष्ट्रपति म ना निहित कर राज्यो म निहित कर दा गयी थी।

यदि किसी राज्य अनुच्छेद 188 यह प्रावधान करता था कि किसी राज्य का राज्यपाल इस बात से सन्तुष्ट हो जाये कि किसी राज्य म अपात की गभीर स्थिति उत्पन्न हो गयी ह, जिससे राज्य का शासन सवधानिक प्रावधानो के अनुरूप चलाया जाना असभव हो गया हो तो वह राज्य प्रशासन को जसा कि घोषणा मे घोषित किया गया हो, राज्यपाल स्वय ग्रहण कर सकता था साथ ही घोषणा मे ऐसे आवस्मिक सवधानिक प्रावधान निहित थे जा कि राज्यपाल की दृष्टि मे घोषणा के लक्षय को पूरा करने के लिये आवश्यक प्रतीत हा।[1]

इस घोषणा के द्वारा किसी राज्यपाल सम्बन्धित राज्य प्रशासन का पूण रूप से या आशिक रूप से निरस्त कर सकता था। लेकिन अनुच्छेद के तहत राज्यपाल को यह अधिकार नही दिया गया था कि वो राज्य के उच्च न्यायालय से सबन्धित सवैधानिक क्रियाओ को निरस्त कर सके।[2]

लेकिन घोषणा के पश्चात कार्यवही की सूचना राष्ट्रपति को तुरत देना आवश्यक था, जिससे राष्ट्रपति अपने विवेकानुसार या तो घोषणा को जारी रख सकता था या निरस्त कर सकता था और ऐसी कार्यवाही को सविधान के अनुच्छेद 278 द्वारा प्रदत्त शाक्तियो के तहत कर सकता था साथ ही उपरोक्त अनुच्छेद 188 के अर्न्तगत की गयी उद्घोषणा का क्रियान्वयन दो सप्ताह बाद स्वत समाप्त हो जायेगा। यदि राज्यपाल द्वारा उसे पूर्व ही समाप्त करने की घोषणा न गयी हो या राष्ट्रपति के द्वारा सार्वजनिक घोषणा द्वारा उसे समाप्त कर दिया गया है।[3]

इस प्रकार अनुच्छेद के द्वारा राज्यपाल को पूर्णत अपने विवेक के आधार पर कार्यवाही करने का अधिकार प्रदान किया गया था।

इस प्रकार पूर्व मे उपबन्धित अनुच्छेद 188 के अन्तर्गत राज्यो के राज्यपाल ही यह अधिकार निहित कर दिया गया था।कि तो अपने विवेक के आधार पर कायवाही कर सकता था कि।जिसके आधार पर राज्यपालो को राज्य के प्रशासन मे अनायास ही हस्तक्षप का अधिकार मिल जाता था। भविष्य मे इससे होने वाली परेशानिया को देखते हुये गहन विचार विमर्श के

1 कान्स्टीट्यूशनल असेम्बली डिबेट्स, वाल्यूम IX, न 4, पृष्ठ 132

2 वही

3 वही

बाद अम्बेदकर की अध्यक्षता वाली प्रारूप समिति ने इस प्रावधान को पूर्णत समाप्त कर दिया थाव इसके स्थान पर राज्यो मे सकट उत्पन्न होने सबधी प्रावधाना का अनुच्छेद 277 ए व अनुच्छेद 278 के अर्न्तगत उपबधित कर दिया जिसके अर्न्तगत राज्यपालो के स्थान पर कार्यवाही का अधिकार सीधे राष्ट्रपति को निहित कर दिया जिनके प्रावधान प्रारूप सविधान म अग्रलिखित थे।[1]

इस प्रावधान मे केन्द्र का यह कर्तव्य निर्धारित किया गया था कि केन्द्र राज्यो को वाध्य आक्रमण व आन्तरिक अशान्ति से सुरक्षा प्रदान करे साथ ही यह भी सुनिश्चित करना सघ का ही दायित्व था कि राज्य का शासन सविधान के प्रावधानो के अनुरूप चलता रहे।

अनुच्छेद 278 केन्द्र को यह शक्ति प्रदान करता था कि यदि राष्ट्रपति राज्य पाल की रिपोर्ट से या 'अन्यथा' यह ज्ञात हो जाय कि राज्य का शासन सविधान के प्रावधानो के अनुरूप नही चलाया जा रहा हो तो राष्ट्रपति राज्य मे सवैधानिक तत्र विफल होने की घोषणा कर सकता था।[2]

## राष्ट्रपति ऐसी उदघोषणा द्वारा

1 सबधित राज्य की कार्यपालिका के सभी कृत्य अपने अधीन कर सकता था लेकिन राज्य के न्यायालयो पर राष्ट्रपति की तत्सबधी उदघोषणा का कोई प्रभाव नही हो सकता था।

2 राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा राज्य की विधान मडल की सभी शक्तिया को ससद मे अभिनिहित कर सकता था।

ऐसी उद्घोषणा का प्रभाव समान्यत दो माह निर्धारित था यदि इस दारान ससद ने इस प्रस्ताव पर अपना अनुमोदन नही प्रदान कर दिया हो। यदि ससद के दोनो सदनो द्वारा पारित सकल्प द्वारा इस उद्घोषणा का विस्तार कर दिया जाता तो यह वृद्धि एक बार म छ माह से अधिक की अवधि के लिये नही हो सकती थी आर पुन अवधि की समाप्ति पर 6–6 मास की अवधि के लिये इसका विस्तार किये जाने का प्रावधान था लकिन किसी भी दशा मे इसका विस्तार तीन वर्षो से अधिक की अवधि के लिये नही हो सकता था।

---

1 सी.ए.डी IX पृष्ठ 133 पूर्वाधृत

2 सा ए डा पृष्ठ 131 पूर्वाधृत

अनुच्छेद 278 म यह भा व्यवम्था थी कि राज्यो म गाष्ट्रपति शाम्न के दारान राज्य क विधान मडल की शक्तियाँ ससद के अधीन प्रयोप्तव्य होगा आर यदि ससद का अधिवशन नही चल रहा को तो इस उद्घोषणा के अधीन राष्ट्रपति सवधित राज्य के लिय अध्यादश जारी कर सकता था।[1]उनका विचार था कि जव इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया था तो यह प्रस्तावित किया गया कि यदि किसी राज्य क राज्यपाल को यह प्रतीत होता ह कि राज्य का प्रशासनिक तत्र विफल हो रहा है जो कि राज्य के सविधान क अन्तगत निर्मित किया गया था, तो उसे स्वय यह अधिकार था कि राज्य का प्रशासन 15 दिनो के लिये अपने हाथो मे ले सकता था आर इस दारान इसकी सूचना जिसम कन्द्र अनुच्छेद 278 के अर्न्तगत कार्यवाही कर सकता था।लेकिन राज्यपाल को दिय गय प्रावधान को पूर्णता हटा कर इस अधिकार को सीधे राष्ट्रपति म ही निहित कर दिया गया क्योकि यदि राष्ट्रपति को अतिम तार पर राज्य के आन्तरिक मामलो म सवापरि शक्ति सुपुर्द किया जाता ह तो यह उचित होगा कि शुरू म ही राष्ट्रपति राज्यपाल की रिपोर्ट अथवा स्वविवेक से सीधी कार्यवाही कर। अत इस व्यवस्था की स्थापना के बाद अनुच्छेद 188 को सविधान के रखने का कोई आचित्य ही नही था।[2]

अनुच्छेद 277 ए जिसम सशोधन करके उसे भी नये रूप म प्रस्तुत किया गया था। इसे सभा पटल पर रखते हुये डा अम्वेडकर ने स्पष्ट किया था कि वास्तव मे वे इस बात से सहमत थे कि सविधान मे ऐसे प्रावधान है, जो कि राज्यो की स्वायतता पर सीधा प्रहार करते हे कुछ ही प्रावधान केन्द्रियकरण की प्रवृत्ति की ओर इगित करते ह अन्यथा सविधान चूकि सघीय है, अत केन्द्र व राज्य दोनो का ही सविधान द्वारा पृथक -पृथक अधिकार प्रदान किये गये ह। राज्यो को अपने अपने क्षेत्र म प्रभुत्व सम्पन्न शक्ति बनाया गया ह। राज्यो को सविधान द्वारा निश्चित कार्य आर उत्तरदायित्व निश्चित किये गये ह जिससे राज्य अपने प्रशासनिक दायित्वो को सचालित कर सके व राज्य कानून व व्यवस्था की स्थापना के लिये आवश्यक विधियो का निर्माण कर सके।

---

1 सी ए डा IX न 5 पृष्ठ 180 पूर्वोधृत

2 सा ए डा IX पृष्ठ 132 वही

लेकिन साथ ही केन्द्र को भी यह दायित्व सापा गया ह कि हर इकाई सविधान के उपबधो के अनुसार कार्य करती रहे। केन्द्र को सापे गये इस दायित्व का विवरण अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के सविधान मे भी मिलता है। इन दोनो देशो के सविधानो मे यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि केद्रीय सत्ता का यह कर्तव्य होगा कि वो राज्यो की वाह्य आक्रमण व आन्तरिक उपद्रवो मे रक्षा करे। क्योकि इन देशो के सविधान मे भी यह स्पष्ट रूप से सघात्मक व्यवस्थाओ की स्थापना करते ह अत यह आरोप कि ये प्रावधान सघवाद के मूलभूत सिन्द्धान्तो के ही प्रतिकूल है, उचित नही माना जा सकता [1]

अत भारतीय सविधान मे इसके उल्लेख को एक पक्षीय मनमाजी व अनधिकृत नही कहा जा सकता। वास्तव मे एक सघीय सरकार का यह कर्तब्य होता ह कि वे सघीय सविधान की रक्षा करे, जोकि कानूनन केन्द्र को सौपा गया ह, क्याकि केन्द्रीय सरकार ही सघ को एक सूत्र मे पिरोये रख सकती है। अत अनुच्छेद 277ए के अर्न्तगत सापे गय दायित्वो को पूर्ण करने के लिये अनुच्छेद 278 उपबधित किया गया ह।[2]

## प्रथम सशोधन अनुच्छेद 278 मे

चूकि अनुच्छेद 277 ए केन्द्र पर राज्यो की रक्षा का दायित्व सौपता था, अत अनुच्छेद 188 के स्थान पर मूल अनुच्छेद 278 मे सशोधन कर यह प्रावधान किया गया कि राष्ट्रपति राज्यपाल की रिपोर्ट मिलने पर या 'अन्यथा' भी राज्यो के मामले म निर्णय ले सकता था, जब इस प्रकार सशोधित अनुच्छेद मे राष्ट्रपति को राज्यो मे मामले मे हस्तक्षेप के मामले मे राज्यपाल कि रिपोर्ट के बाध्यता नही रहेगी। राष्ट्रपति अपने विवेक के आधार पर जब उसे उचित प्रतीत हो कार्यवाही कर सकता था,जबकी राज्य के प्रशासन मे दखल देना आवश्यक प्रतीत हो।[3]

## दूसरा सशोधन

मूल अनुच्छेद मे यह प्रावधान था कि राज्य के विधानमडल के भग रहने के दारान उसके अधिकारो तथा शक्तियो का प्रयाग ससद द्वारा किये जाने की व्यवस्था थी।

---

1 सीएडी पृष्ठ 133, पूर्वाधृत

2 सा ए डा वही

3 सा ए डा पृष्ठ 134 पूर्वोधृत

लेकिन बाद म यह व्यवस्था की गयी कि ससद राज्य के विधायी कार्या के साथ स्वय कर सक्ता था या कुछ शर्तो के तहत किसी अधिकारी को यह अधिकार प्रदत्त कर दे। यह प्रावधान ससद के पास विधायी कार्य की अधिकता को देखते हुए किया गया था।[1]

## तीसरा सशोधन

अनुच्छेद 278 के अर्न्तगत की गयी उद्घोषणा का प्रभाव दो माह बाद स्वत समाप्त हो जायेगा। यदि ससद के दोनो सदन उस प्रस्ताव को अनुमोदित नही कर देते हो।[2]

इससे पूर्व मूल अनुच्छेद मे यह व्यवस्था थी कि यह उद्घोषणा बिना ससद की मजूरी के छ मास की अवधि तक बनी रह सकती थी। सशोधित प्रावधान यह था कि उद्घोषणा को ससद की मजूरी मिलने पर आगे भी इसका प्रभाव बनाये रखने के लिये छ माह बाद ससद की मजूरी आवश्यक थी। लेकिन किसी भी अवस्था मे यह उद्घोषणा तीन वर्षा से अधिक की अवधि के लिये प्रवृत्ति नही बनी रह सकती थी। लेकिन डॉ अम्बेदकर ने यह सविधान सभा के समक्ष यह स्वीकार किया था कि केन्द्र अनुच्छेद 278 के अन्तर्गत दिये गये अधिकारो का प्रयोग करने से पूर्व अनुच्छेद 277 ए के अन्तर्गत सविधान द्वारा सोपे गये कर्तव्यो का पालन करेगा जोकि राज्य की सरकारो के लिये पूर्व चेतावनी का काम करेगा।

राज्यो की आन्तरिक उपद्रवो से रक्षा करेगा, अर्थात यदि किसी राज्य मे आन्तरिक अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है तो केन्द्र का यह कर्तव्य होगा, कि वो राज्यो की सहायता करे।

उनका विचार था कि यदि सविधान मे इस तरह का प्रावधान किया जाना आवश्यक था क्योकि सघीय व्यवस्था को बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक इकाई सविधानके अनुरूप शासन चलाती रहे।

डॉ अम्बेदकर द्वारा सविधान सभा के समक्ष रखे गये इन सशोधित प्रावधानो पर सदस्यो द्वारा गभीर आपत्ति उठायी गयी-

---

1 पूर्वाधृत

2 वही

इन प्रावधाना का मुखर विरोध करने वाल म प्रमुख माननीय सदस्य थे।

डा एचवी कामथ, प्रो सिब्बन लाल सक्सेना, व्रजेश्वर प्रसाद, डॉ पी एस देशमुख व प हृदय नाथ कुजरू।

## आलोचना मे उठाये गये प्रमुख मुद्दे-

इन विद्वान सदस्यो द्वारा उन प्रावधान के जिन विन्दुआ पर प्रमुख रूप से आपत्ति उठायी गया वे थी-

1- अनुच्छेद 277 ए के अन्तर्गत केन्द्र को सौपे गये दायित्व के सम्वन्ध म जिसका दुरूपयोग होने की सम्भावना थी।

2- अनुच्छेद 277 ए मे 'ओर' शब्द पर आपत्ति।

3- अनुच्छेद 278 मे उपबधित राज्यपाल की रिपोर्ट के अलावा 'अन्यथा' शब्द पर।

4- अनुच्छेद 277ए व 278 को ही पूर्णत हटाये जाने की माग क्योकि सघवाद के मूलभूत सिद्धान्तो के विरुद्ध था।

5– राज्य के मामले मे अतिम निर्णय लेने की शक्ति ससद म निहित करने की भी आलोचना की गयी थी। राज्य के सवैधानिक प्रधान के हाथ से इस शक्ति के प्रयोग किये जाने की भी आलोचना की गयी थी।

डॉ एच वी कामथ ने सशोधित अनुच्छेद 277ए की आलोचना करने हुए कहा[1] यह अनुच्छेद जो कि केन्द्र सरकार को राज्यो की रक्षा का दायित्व सोपता ह बहुत अस्पष्ट ह। जिसम यह व्यवस्था थी कि—

**1- राज्यो को वाह्य आक्रमणो से बचाना केन्द्र का कर्तव्य हे।**

**2- केन्द्र राज्य को आन्तरिक उपद्रवो से बचायेगा।**

**3- साथ ही केन्द्र सरकार यह भी सुनिश्चित करेगी कि राज्य कि सरकार सविधानके अनुसार चलायी जा रही है या नही।[2]**

वास्तव मे उनका विचार था कि अनुच्छेद 277 ए जिसके अन्तगत केन्द्र को यह जिम्मेदारी सापी गयी ह कि आन्तरिक उपद्रवो की स्थिति उत्पन्न होने पर वह कार्यवाही कर

1 सी ए डी पृष्ठ 137 पूर्वाधृत

2 सीएडी न 4 पृष्ठ 137

सकता ह। वास्तव म राज्यो की स्वायत्त को कम करने वाला प्रावधान ह, क्याकि यदि राज्य मे कानून व व्यवस्था बनाये रखना राज्यो का कर्तव्य होता है, जबकि इस उपबध के द्वारा यह अधिकार केन्द्रीय सरकार को सविधान के अर्न्तगत स्थानान्तरिन कर दिया गया था जो कि बहुत अस्पष्टता लिये हुए था, क्योकि आन्तरिक उपद्रव बहुत विस्तृत शब्दावली ह आर इसके दुरूपयोग की सम्भावना हमेशा बनी रहेगी।[1]उनकी आशका वास्तव मे आने वाले समय मे निर्मूल सावित नही हुई दिसम्बर 16 1992 को राजस्थान, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, आदि राज्यो मे केवल आन्तरिक गडबडी का सहारा लेकर इन बहुमत प्राप्त सरकारो को भग कर दिया गया।

डॉ कामथ का विचार था कि इस प्रावधान को सविधान से निकाल देना चाहिए। क्योकि इसके रहते सघात्मक व्यवस्था केवल ककाल मात्र रह जायगी। वे इस बात के लिये कदापि तयार नही थे कि केन्द्र सरकार को यह अधिकार प्रदान किया जाय जिससे केन्द्र कानून व व्यवस्था की आड लेकर राज्यो के मामलो मे अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप कर सकता ह यह प्रावधान उस विचार से भी हटकर हे जिसमे यह कहा गया था कि प्रत्येक इकाई प्रमुख व सम्पन्न हे आर सविधान के अधीन अपने क्षेत्र का प्रशासन स्वत चला सकता ह। लेकिन इस अनुच्छेद से सविधान सभा की इस मूल भावना का भी उल्लघन होता था।[2]डॉ पीएस. देशमुख का विचार था कि अनुच्छेद 277ए का प्रावधान जिसमे राज्य का शासन सविधान के अनुसार नही चलाया जा रहा ह के आधार पर केन्द्र को राज्य प्रशासन मे हस्तक्षेप का अधिकार प्रदान करता है, बहुत जटिल प्रावधान हे ओर किसी प्रकार आपात से सबध नही रखता। यह शुद्धरूप से केवल केन्द्रीय सत्ता द्वारा सविधान को ऊचा रखने का प्रयास का मात्र था।[3]

---

1 सीएडी IX न 4 पृष्ठ 137

2 I think that is the spirit of the constitution which we are considering in the house and with that spirit in mind, let us not conformos pawers upon the president and the union government that are worranted by the facts or the contingercies or the possibilities of any situation that might arise in tuturre"- श्री एच वी कामथ- सी ए डी IX पृष्ठ 139, पूर्वोधृत

3 सी ए डी पृष्ठ 141 वही

सविधान सभा मे सदस्यो ने चेतावनी देते हुये कहा था कि सवधानिक की या शुद्रिकरण या कुव्यवस्था की आड लेकर केन्द्र किसी राज्य मे किन पा सहारे विधिवत चुनी हुयी सरकारो को बर्खास्त कर सकता है।[1]एक अन्य सदस्य के. सथानम का विचार था कि केवल इन अनुच्छेद द्वारा केवल राज्य मे केन्द्र को राज्य प्रशासन मे केवल उन्ही स्थितियो मे हस्तक्षेप का अधिकार नही प्रदान करता जब राज्य मे असतोष उत्पन्न हो जाने के कारण जनशान्ति को खतरा पदा हो जाये अपितु केन्द्रो को यह देखने का भी अधिकार प्राप्त हो जाता है कि राज्य म अच्छी सरकार चले दूसरे शब्दो मे वह राज्य सरकार को वाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक उपद्रवो से ही रक्षा करने का ही कार्य नही करेगी वरन् यह भी देखेगा कि राज्य की सरकार अपनी सीमा के अन्दर अच्छी तरह शासन कर रही है अथवा नही सस्थनम ने इस अनुच्छेद की दुरुपयोग की सभावाना ब्यक्त करते हुसे कहा कि राज्य मे कुछ ऐसी भी स्थितिया उत्पन्न हो सकती ह जवकी राज्य मे कानून व व्यवस्था का कोई सकट ना होने पर भी गडबडी हो सकती ह। जो कि राज्य के शासन को सवैधानिक पा के अनुरूप प्रशासित होने मे बाधा डालती हो। उदाहरण के लिये यदि विभिन्न दलो के गठबन्धन की सरकार राज्य मे सत्तारूढ हो तो उनमे आन्तरिक मतभेद उत्पन्न हो सकता है जिसके फलस्वरूप शासन मे अवरोध उत्पन्न होना स्वाभाविक होगा लेकिन केवल इस प्रकार के राजनीतिक सकटो के समाधान के लिये केन्द्र द्वारा कार्यवाही किया जाना अनुचित होगा।

इस प्रकार यह अनुच्छेद राज्य सरकारो को अनुत्तरदायी वनाने वाला होगा क्योकि जव कभी भी इस प्रकार की स्थिति राज्य मे उपस्थित होगी मतदाताओ द्वारा यह अपेक्षा की जा सकती हे कि केन्द्र हस्तक्षेप करे। उनका विचार था कि क्या इस प्रकार की परम्परा डालना उचित होगा वास्तव मे उत्तरदायी सरकार मे राज्य मे उत्पन्न खतरो का सामना करने का साहस होना चाहिए ओर यदि ऐसा नही होगा तो सविधान मृतप्राय सा हो जायेगा। उनके अनुसार सविधान म इस प्रकार का प्रावधान रखे जाने की कतई आवश्यकता ही नही थी क्योकि अनुच्छेद 275 व276 वर्तमान का अनुच्छेद 352 केन्द्रीय कार्यपालिका व ससद को यह अधिकार प्रदान करता ह कि आन्तरिक अथवा बाह्य सकट उत्पन्न होने पर समूचे देश म कार्यवाही कर सकता है।

---

1 'A difficult case may happen when some states government from the political party which is governing at the centre and the majority of the other states' सी ए डी पृष्ठ 153, वही

अत इस अनुच्छेद 277व 278 को सविधान मे रखे जाने का कोई आचित्य नही ह। सविधानसभा के एक अन्य सदस्य हृदय नाथ कुजरू ने भी उनके मन का सर्मथन किया।

एक अन्य सदस्य श्री अहमद का विचार था कि वास्तव म यह अनुच्छेद केन्द्र सरकार को एक छोटे बहाने पर ही दल का अधिकार प्रदान करता ह तथा दूसरी ओर केन्द्र सरकार को बहुत गभीर स्थितियो मे भी कार्यवाही ना करने की स्वतन्त्रता दी गयी हे उनका विचार है कि राज्य का शासन सविधान के प्रावधान के अनुरूप नही चलाया जा रहा है बहुत अस्पष्टता लिये हुये है। जिन आधारो पर हस्तक्षेप का अधिकार दिया जाना ह, स्पष्ट किया जाना चाहिये व उन परिस्थितियो का भी उल्लेख किया जाना चाहिये ताकि भविष्य मे इसके दुरूपयोग की सभावना ना हो। उनका मत था कि यह अस्पष्टता केन्द्र सरकार को उसके दुश्मनो के विरुद्ध प्रयोग करने का अवसर देगा।[1]

डॉ कामथ ने अनुच्छेद 277 ए मे उपबधित आन्तरिक गड़बडा ओर वाह्य आक्रमण मे 'आर' मे स्थान पर 'या' करने का सुझाव दिया गया था क्योकि उनका मानना था कि इससे भ्रम की स्थिति पैदा होगी। उनका मानना था कि 'और' शब्द केन्द्र के अधिकारो को सीमित करता है, जब कि राज्य मे इस प्रकार की परिस्थिति हो तभी केन्द्र कार्यवाही कर सकता है अन्यथा नहीं। लेकिन उनके कथित सशोधन को स्वीकार नही किया 'ओर' वर्तमान मे भी सविधान मे ओर शब्द ही बना हुआ है।

अनुच्छेद 278 (356) पर बहस मे भाग लेते हुये श्री कामथ ओर श्री सिब्बन लाल सक्सेना ने इस अनुच्छेद मे उपबधित राष्ट्रपति राज्यपालकी रिपोर्ट पर या 'अन्यथा' के अन्यथा शब्द पर अपनी कडी आपत्ति व्यक्त की थी। उनका विचार है कि 'अन्यथा' शब्द राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत राज्य के राज्यपाल मे अविश्वास का सूचक है जो की उचित नही था ।[2]

---

1 Article 277 ( A) has been described by Dr Ambedkar as a thing which is not a pious wish —नजीरुद्दीन अहमद, सीएडी 3 अगस्त, 1949 पृष्ठ 162

2 (A) If he cannot have this trust and confidence in his own nominees, let us wind up our own government and go home, let us wind up this assembly and go home I shall pray to God, that he may grant sufficent wisdom to this house to see they stupidity the criminal nature of this folly transaction–सीएडी पृष्ठ-140, एचवी कामथ

(B) Otherwise is a mischievours word I pray to god that this will be deleted from this article– एचवी कामथ- सी ए डी वही

मृल अनुच्छेद 188 जो की हटा दिया गया, म राष्ट्रपति तथा कार्यवाही कर सकता था जबकी राज्यपाल इस बात से निश्चित तार पर सतुष्ट हा जाये की राज्य म गम्भीर आपात स्थिति उत्पन्न हो गयी ह।

लेकिन सशोधित अनुच्छेद 278 मे जिसमे यह प्रावधान था कि राष्ट्रपति व राज्यपाल की रिपोर्ट प्राप्त होने पर या अन्यथा राज्य का शासन सविधान के अनुरूप नही चलाया जा रहा हो इसम कही भी राज्य की शान्ति व्यवस्था का सदर्भ नही है आर केन्द्र सरकार केवल राजनीतिक सकट के हल के लिये अनुच्छेद 278 का सहारा ले सकता ह। सदस्या का विचार था कि विधान सभा म अविश्वास प्रस्ताव पास हो जाने से उत्पन्न सकट की स्थिति का मुकाबला करने के लिये केन्द्र को दखल देने व आपात् स्थिति लागू करने का अधिकार नही प्रदान करता। विश्व म अन्यत्र कही भी इस प्रकार का कोई उदाहरण प्राप्त नही होता। यह प्रावधान कार्यपालिका को अनावश्यक तानाशाही शक्तियॉ प्रदान करेगा।

सविधान सभा के एक अन्य सदस्य श्री कृष्णमाचारी का विचार था कि आपात् प्रावधान जर्मनी के वायमार सविधान अनुच्छेद 48 के अनुरूप प्रतीत होता था जबकि इनका सहारा लेकर हिटलर तानाशाह बन बठा था। उन्होने कहा था कि यदि इन प्रावधना को सविधान म बन रहन दिया गया तो सविधान को जितना सत्ता के बाहर अदालतरत लागा से खतरा नही हागा उतना सत्ता म बठे लोगो से होगा। यह सविधान की उद्देशिका के भी विपरीत होगा। जिसम प्रजातत्रिक गणराज्य की स्थापना का सकल्प व्यक्त किया गया ह जबकि इसके विपरीत अनुच्छेद 278 ए प्रजातन्त्र की जड ही खोद रहा था, आर यदि इसे सविधान म बन भी रहने दिया जाये तो भविष्य मे इसके दुरूपयोग को रोकने के लिए यह आवश्यक होगा कि 'अन्यथा' शब्द को हटा दिया जाये, नही तो राज्य का, राज्यपाल केवल एक मजाक की वस्तु हो जायेगा। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी का विचार था कि यदि राज्यपाल की रिपोर्ट के बिना राष्ट्रपति कार्यवाही करता है, तो वह (राज्यपाल) गर्वनर के स्थान पर गोवरनर हो जायेगा।[1] क्योकि राष्ट्रपति की सतुष्टि को आधार बना कर केन्द्र सरकार कार्यवाही कर सकती ह। सदस्या ने इस अनुच्छेद 278 की कडी आलोचना करते हुये कहा कि इस अनुच्छेद क प्रावधान मे बहुत हद तक राज्य सरकारो को केन्द्रीय सरकार के अधीन कर देते हे तथा राज्या की स्वायतता को समाप्त कर देते है।

---

1 सा ए डी, पृष्ट 141, पूर्वोधृत

सदस्या का विचार था कि अनुच्छेद 278, 1935 व खण्ड 93 के भारत शासन अधिनियम का रूपान्तरण मात्र था। अतर केवल इतना था कि वहाँ इग्लण्ड का ससद की जगह भारतीय ससद थी, जिसे छ माह के स्थान पर दो माह की समावधि से सीमित कर दिया गया था आर तब इसका कडा विरोध किया गया था। जबकि विडम्बना यह ह कि उसे ही पुन सविधान म शामिल कर लिया गया।

सदस्या ने अपना सुझाव देते हुये कहा कि अनुच्छेद 278 के प्रावधान राज्यो म विधान सभा, मत्रिपरिषद को अनावश्यक कर देते हे। सघ की ससद ही राज्यो के मामले म सर्वेसर्वा बन बेठी। यह स्थिति सविधान के एकात्मक रूप के लिये उचित होती लेकिन चूकि सविधान सघात्मक ह अत यह उपबध सघात्मक सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

डॉ पीएस देशमुख ने डॉ अम्बेदकर के इस कथन की आलोचना की जिसमे उन्होने कहा था कि ऐसा प्रावधान अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के सविधान म मिलता ह जबकि वास्तव म इस प्रकार सीधे राज्य प्रशासन मे दखल देने का उदाहरण किसी भी अन्य सघात्मक सविधानो म नही प्राप्त होता।[1] उनका विचार था कि उनके द्वारा कथित उदाहरण शायद इस लिए प्रस्तुत किय गये थे ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि इन प्रावधानो के बने रहने से केन्द्र राज्या के अधिकार क्षेत्र मे अनावश्यक दखल नही देगा। लेकिन वास्तव मे इसकी कोई आवश्यकता नही थी। इनका विचार था कि सविधान का हर खण्ड स्वय राज्यो की स्वायत्ता का आदर करता हे। यह केन्द्र पर निर्भर करेगा कि वो सविधान क प्रावधानो को इस प्रकार लागू करे, जिससे राज्या की स्वायत्ता बनी रहे आर केन्द्र स्वय सविधान के प्रावधानो का समुचित पालन नही करता, तो राज्यो से केसे उम्मीद की जा सकती है कि वो सविधान के अनुरूप कार्य करेगा। जबकि हृदय नाथ कुजरू का विचार था कि अनुच्छेद 278 मे यह प्रावधान कर देना चाहिए कि राष्ट्रपति जब भी उचित समझे उद्घोषणा की अवधि के दारान राज्य विधानसभा भग कर नया चुनाव कराने का आदेश दे सके। साथ ही कि उद्घोषणा का प्रभाव उसी दिन स समाप्त हो जाना चाहिए, जिस दिन से नया विधानसभा का सत्र शुरू हो।[2]

---

1 डा देशमुख का यह कथन गलत था। अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया क सविधानम क्रमश अनुच्छेद VI(4) आर धारा 119 म आतिरक अशाति उत्पन्न रक्षा का कार्य केन्द्र को सोपा गया है।

2 साएडी IV न4 पृष्ठ-144

उनका विचार था कि यदि ऐसा नही किया जाता तो विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न होने का खतरा था। जबकि इस प्रावधान द्वारा ससद को यह शक्ति प्रदान की गयी थी कि यह उद्घोषणा को हर छ माह बाद अनुमोदित करे आर इस प्रकार उद्घोषणा तीन वर्षा तक बना रह सकती थी लेकिन उनका विचार था कि तीन वर्षा बाद क्या होगा ? क्या उद्घोषणा का अवधि कि समाप्ति के बाद पुन उसी मत्रिमडल व विधान सभा का पुनर्जीवन होगा तीन साल पूर्व अयोग्य मान लिया गया था आर उनस शासन के अधिकार हस्तगत कर लिये गये थे अत राष्ट्रपति को यह विवेकाधिकार प्रदान किया जाना चाहिये जबकि वो राज्य विधानसभा को भग कर नये चुनाव करा सके।[1]

लेकिन सविधान सभा के कुछ अन्य सदस्यो ने इस अनुच्छेद को सविधान म बने रहने देने मे अपनी सहमति व्यक्त की थी। उनका कहना था कि एक प्रजातान्त्रिक देश मे राजनीतिक उथल-पुथल की रोकथाम के लिये इन प्रावधानो का सविधान म बने रहना आवश्यक ह।

इस अनुच्छेद के समर्थन मे जिन्होने अपने विचार रख थे उनम प्रमुख थे। अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर, श्री बीएच जदी, श्री बृजेश्वर प्रसाद, पडित ठाकुर प्रसाद भार्गव आदि।

श्री जदी ने इन प्रावधाना को समय की आवश्यकता बताते हुए कहा था कि आपात स्थिति उत्पन्न होने पर ये अनुच्छेद कारगर सावित होगे। उन्होने अपने समर्थन जार्ज बनार्ड शा कि यह उक्ति दी थी कि अच्छा होना बुरी बात नही हे पर बहुत अच्छा होना खतरनाक होता ह।[2] इसी प्रकार हमारे देश के लिये भी बहुत अधिक प्रजातान्त्रिक होना भी खतरनाक हे। वास्तव मे राजनीतिक उथल पुथल को नियत्रित करने के लिये वस्तविकता के आधार पर इसे सविधान म बने रहने देना होगा।[3]

---

1 प्रा सिब्बन लाल सक्सेना सी ए डी पृष्ठ 144 पूर्वोधृत

2 सा ए डी पृष्ठ 145 वही

3 We should take the historical tendencies of our country into consideration and see what is likely to happen in the future and than in a realistic way – which means political sagacity & wisdom and balance –बीएम जेदी, सा ए डा पृष्ठ 146 वही

श्री कृष्णा स्वामी अय्यर ने अनुच्छेद 278 का समर्थन करते हुये कहा था कि सविधान को बनाये रखने का दायित्व सघ का ही कर्तव्य ह, जोकि राष्ट्र को बनाये रखने की दृष्टि से महत्वपूर्ण ह। चूकि प्रातीय सविधान भी केन्द्रीय सविधान का ही एक भाग ह अत यह सुनिश्चित करने का दायित्व केन्द्र के सुपुर्द किया गया ह कि राज्य का शासन सविधान के प्रावधाना के तहत चलाया जा रहा ह या नही। लेकिन यदि राज्य सरकार अपने उत्तरदायित्वा का पालन कर रही ह, तो केन्द्र सरकार उसम किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहा करेगा। भारतीय सविधान म राज्य की सार्वभाम सत्ता का महत्व किसी भी देश के सविधानो से अधिक दिया गया हे।



श्री अलगू राय शास्त्री ने समर्थन व्यक्त करते हुए कहा था कि इन प्रावधानो का सविधान म बने रहना अति आवश्यक ह, क्याकि प्रातीय सरकारा म ऐसे आन्तरिक उपद्रव उत्पन्न हा सकते ह जो कि यदि राज्यपाल को आपात अधिकार न प्रदान किया जाय ता उससे निपटना मुश्किल होगा। यह महत्वपूर्ण ह कि निश्चय ही इस कार्य के लिये राज्यपाल ही उपयुक्त व्यक्ति होगा, यदि राज्यपाल को यह अधिकार नही प्रदान किया जाना तो वह गर्वनर के स्थान पर "गोवरनर" हो जायेगा।[1]

ठाकुर दास भार्गव ने भी इस अनुच्छेद का समर्थन किया था लेकिन उन्होने पहले का अधिकार राज्यपाल के हाथ मे ना देकर राष्ट्रपति क ही सुपुर्द करने पर अपनी सहमति व्यक्त की थी, क्याकि राज्यपाल केन्द का एजेण्ट पात्र होता ह। अत उसकी रिपोर्ट पर विश्वास करने का क्या लाभ|[2] उन्होने आगे कहा कि यदि राज्य मे सवधानिक तत्र विफल हो जाता ह इन प्रावधाना के तहत केवल दो माह अवधि के लिये ही राज्य का शासन अपने हाथ मे लेने का अधिकार ह।[3] ससद मे ही अतिम शक्ति निहित हे, जिसम कि तत्सम्बन्धी राज्य के प्रतिनिधि मौजूद रहते है, और यदि वे मत्रिपरिषद द्वारा की गयी कार्यवाही का अनुमोदन कर दते है, तो इसे किसी प्रकार भी अनुचित नही कहा

1 सा ए डा वाल्यूम IX न 5 पृष्ठ 173 1949

2 सा ए डी वही, पृष्ठ -168

3 सा ए डा वही, पष्ठ 169

जा सकता। एक अन्य सदस्य श्री बी.एम.गुप्ता ने भी अनुच्छेद 278 का समर्थन किया था। लेकिन वो आलोचको की इस बात से सहमत नही थे कि पूर्व का खण्ड 93 का ही रूपान्तरण मात्र है। उनका विचार था कि दोनो मे बहुत अतर है जो मुख्य अतर था वो यह था कि जबकि वहा सब गर्वनर और गर्वनर जनरल दोनो मनोनीत किये गये थे, जबकि वर्तमान म निर्वाचित उत्तरदायी सरकार स्थित है। यद्यपि उन्हाने न भी इसके दुरूपयोग म इन्कार नही किया था फिर भी इसके सविधान म बने रहने का समर्थन किया था।[1]

श्री ब्रजश्वर प्रसाद ने तो इसे अत्यावश्यक बताते हुये कहा था कि राष्ट्रपति के हाथ म विधायी शक्ति भी देनी चाहिये

दूसरे राज्य के न्यायिक कृत्यो को राष्ट्रपति द्वारा जारी उद्घोषणा के प्रभाव से बाहर रखना भी अनुचित था।[2] उन्होने कामथ की इस आशका को भी निराधार बताया था कि उक्त अनुच्छेद के सविधान मे बने रहने से तानाशाही की सभावना बनी रहेगी। उनका विचार था कि किसी देश म लोकतन्त्र केवल सविधान पर निर्भर नही करता। लोकतात्रिक सविधान को केवल तभी बचाया जा सकता है जबकि हम अपनी सामाजिक व आर्थक सस्थाओ म सुधार कर लेते है। जसा कि इसको जर्मनी के वायमर सविधान से तुलना की गयी थी, के सम्बध मे उनका कहना था कि वास्तव मे हिटलर सविधान के इन अनुच्छेदो का सहारा लेकर तानाशाह नही बना वरन् इसका एक बडा कारण था- प्रथम विश्व युद्ध मे जर्मनी, की हार।[3]

सविधान सभा मे हुयी चर्चाओ का उत्तर देते हुये- डॉ अम्बेदकर ने स्पष्ट किया था कि समस्त वाद विवाद से ऐसा कोई मुद्दा नही उभर कर आया, जिससे उनके विचारो मे बदलाव आ सके ना ही उन्हे इस अनुच्छेद मे नीहित प्रावधानो मे सशोधन की ही आवश्यकता प्रतीत हुयी थी।[4]

---

1 I have given Suupport to this article, I onley hope that it may remain a Dead Letter' and no occasions will arise for the exercise of these extra ordinary powers" -श्री बी एम गुप्ता, सी ए डी न 4 पृष्ठ 152

2 सी ए डी IX न 5 पृष्ठ 170

3 सी ए डी वही, पृष्ठ 171

4 सी ए डी न 5 पृष्ठ 175

उन्हाने विभिन्न विद्वान सदस्यो द्वारा इन प्रावधानो की आलाचनाआ व उनके द्वाग सशोधनो पर विम्तार से अपने विचार रखे।

सवसे पहले उन्होने डा कामथ द्वारा रखे गये सधोधनो अपना विचार व्यक्त किया जो कि अनुच्छेद 277 (ए) के बारे म था।

(1) वास्तव मे पजाब म राष्ट्रपति शाससन की अवधि पाच वष के लिए की गयी थी उनकी भविष्यवाणी आगे चलकर सही साबित हुई। उन्होने बाह्य आक्रमण आर आन्तरिक उपद्रव म म "आर" शब्द हटाकर "या" करने का सुझाव दिया था लेकिन उनके विचार मे 'आर' शब्द किसी भी स्थिति की स्पष्ट व्याख्या करता हे।[1]

(2) दूसरा सशोधन जो श्री सक्सेना ने प्रस्तुत किया था कि राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिये कि वे विधायिका भग कर सके क्योकि राज्य की जनता को दूसरे प्रतिनिधि चुनने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

लेकिन उनका विचार था कि यह व्यस्था 278 के उप खण्ड (1) ( ए) म दी गयी थी, जिसमे राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा राज्य के सारे अधिकार अपने अपने हाथ मे ले लेगा। इस प्रकार विधान सभा भग कर नया चुनाव करवाने का अधिकार अपने आप राष्टपति मे हस्तान्तरित हो जायेगा।

(3) तीसरी आलोचना जो डा कुजरू ने की थी कि राज्य मे सवैधानिक तत्र विफल होने पर राज्य प्रशासन का अधिकार केन्द्र के हाथा सोपने का प्रावधान एकदम नया उपबध ह। जिसकी झलक विश्व के किसी भी सविधान मे दृष्टिगोचर नहीं होती वे इससे सहमत नही थे। उनका मत था कि व्यवस्था अमेरिकी सविधान मे मिलती है।[2]

एक अन्य बिन्दु जो कि इन सभी आलोचना का मुख्य आधार रहा वह था कि अनुच्छेद 278 व 278 (ए) अनावश्यक ह, क्योकि सविधान म आपात उपबध के रूप म अनुच्छेद 278 व 276 पहले से ही विद्यमान थे। उन्होने इसे स्पष्ट करते हुए कहा कि अनुच्छेद 278 केन्द्र व राज्यो के मामले मे हस्तक्षेप को सीमित करता ह, जबकि युद्ध अथवा अन्य कारणो से राज्य की प्रभुसत्ता को खतरा उत्पन्न हो गया हो उस हद तक

1 C A D IX No 5 Page-175

2 सा ए डी न 5 वाल्यूम IX, पृष्ठ 176 1994

जबकि वाह्यआक्रमण या आन्तरिक उपद्रव की स्थिति न हो, जबकि अनुच्छेद 277 केवल राज्यो मे सवधानिक तत्र विफल होने पर ही लागू होगा जो कि आतरिक उपद्रव और वाह्य आक्रमण से भिन्न किसी अन्य कारण से भी हो सकता है। दोनो अनुच्छेदो को एक साथ मिलाकर देखने पर भ्रम की स्थित उत्पन्न होगी।

डा अम्बेदकर द्वारा दिये गये इस व्यक्तव्य मे हस्तक्षेप करते हुए डा वुजरू ने कहा था कि क्या 278 का यह मतव्य है कि केन्द्र को राज्यो मे इस आधार पर हस्तक्षेप का अधिकार मिल जायेगा कि केन्द्र को राज्यो मे यदि कोई सरकार सतोषजनक कार्य नही कर रही है और उसके कार्यो से राज्य की शाति व व्यवस्था को खतरा पहुचने की सम्भावना हो।[1]

इसका उत्तर देते हुए डा अम्बेदकर ने कहा कि राज्य की सरकार अच्छी है या नही यह केन्द्र के विचार का विषय नही होगा, केवल केन्द्र को यह सुनिश्चित करने का अधिकार होगा कि राज्य का शासन सविधान के उपबधो के अनुरूप चलाया जा रहा है या नही।

डा वुजरू ने पुन यह स्पष्टीकरण चाहा कि सविधान के अनुसार का क्या आशय है। उन्होने स्पष्ट करते हुये कहा कि सवधानिक मशीनरी भग होने का प्रावधान 1935 के खण्ड 93 मे भी उपबधित है जिनसे सभी अच्छी तरह वाकिफ है।[2] उन्होने इसे स्पष्ट करने का आवश्यकता नही समझी।

अन्त मे इस अनुच्छेद पर हुयी चर्चा का समापन करते हुए डा. अम्बेदकर ने कहा कि वे इस बात से इन्कार नहीं करते कि अनुच्छेदो का दुरूपयोग होने की सम्भावना नही है। परन्तु यह आपत्ति सविधान के उन सभी अनुच्छेदो पर लागू होती है, जहाँ पर केन्द्र को प्रातीय सरकारो के ऊपर नियत्रण का अधिकार दिया गया है। उन्होने सदस्यो की भावनाओ मे सहमति व्यक्त करते हुये कहा कि इस अनुच्छेद से सम्बन्धित धारायें कभी

---

1 पूर्वाधृत

2 Everybody must be quite familiar therefore with its de facto and dejure meaning'—सी ए डी न 5, पृष्ठ, 177 पूर्वाधृत177

प्रयाग म नही लायी जायगी तथा यह एक "**मृत शब्दावली**" की तरह रहेगी, आर यदि इनका प्रयोग होता भी ह ता उन्होने आशा व्यक्त की कि राष्ट्रपति जिस ये शक्तियाँ प्रदान का गयी ह प्रान्ता क शासन को चेतावनी देगा कि सबन्धित राज्य म गतिविधिया उस प्रकार से नही चल रही है, जिस प्रकार से सविधान म अभिप्रेत थी। यदि यह चेतावनी विफल हो जाती ह तो उसके द्वारा की जाने वाली दूसरी कायवाही यह होगी कि वह चुनाव के आदेश दे, जिससे उस प्रदेश की जनता को अपनी समस्या का निपटारा करने का स्वय अवसर प्राप्त हो, और इस अनुच्छेद का सहारा केवल तभी अतिम उपाय के रूप म लिया जाये जबकि दोनो उपाय निष्फल हो जाये।

सविधान निर्माताओ ने इस उपबध की सकल्पना सघ को राज्या पर अभिभावी हान की शक्तितया प्रदान करने से भी अधिक व्यापक उद्देश्य के लिये की थी उन्होने इसे सविधान को बचाने का एक साधन माना था और इन्हे राज्यो मे जनता के प्रति उत्तरदायी आर प्रतिनिधि सरकार स्थापित करने के अचूक उपाय के रूप म देखा था। उन्होने आशा व्यक्त की थी कि इन असाधारण उपबधो का प्रयोग बहुत ही कम करना पडेगा आर इसका प्रयोग अत्यधिक गभीर मामलो मे जब सुधार के सभी वेकल्पिक उपाय निष्फल हो जायेगे, जबकि अवलम्ब के रूप मे किया जायेगा। सविधान निर्माताओ द्वारा अभिव्यक्त आशाआ आर आकाक्षाआ के बावजूद पिछले 49 वर्षा मे अनुच्छेद 356 का कम से कम 94 बार प्रयोग किया जा चुका ह।[1]

---

1 But unfortunately this expectation of Dr Ambedkar was belied and its misuse started immediately after the adoption of the new consitution in 1950 which provoked to Dr Ambedkar to say – ' in this constitution for the purpose of maintaining there own party in office in all parts of India **This is a rape of constitution**"-बी डी दुआ, प्रेसीडेन्ट रूल इन इण्डिया और दख एम ए टुसन, 'सेन्टर स्टेट रिलेसन्स' पृ-88

# अध्याय 3

## अनुच्छेद 356 : सामान्य विवेचन

# अनुच्छेद 356 – सामान्य विवेचन

राष्ट्रपति शासन के अब तक के मामलो के सर्वक्षण से एक बात स्पष्ट होती ह कि राज्य म राष्ट्रपति शासन लागू करने की शक्ति का प्रयोग सविधान निर्माताओ की आकाक्षा से कही अधिक व्यापक हे। यद्यपि जसा की पिछले अध्याय म भी इस बात की आर ध्यान आकृष्ट कराया गया था कुछ सदस्यो ने उन स्थितियो का स्पष्ट उल्लेख किया था जबकि इन उपबधो का सहारा लेकर इसका दुरुपयोग किया जा सकता ह।

यह एक विडम्बना ही ह कि सविधान लागू होने के कुछ ही सालो बाद डॉ अम्बेदकर जो सविधान निर्माता थे, साथ ही राष्ट्रपति शासन सबधी प्रावधान के प्रमुख शिल्पी थ इस बात पर खेद व्यप्त किया था कि इस प्रकार का प्रावधान सविधान म रखकर गलती की। इस सदर्भ मे उन्होने 1951 के पजाब का उदहारण देते हुये कहा कि केन्द्र सरकार की यह कार्यवाही निश्चय ही सविधान की आत्मा का हनन ह।[1] जब 1959 मे केरल की कम्युनिस्ट सरकार को भग कर दिया गया था, तब श्री राजगोपालचारी जो पहले गर्वनर जनरल थे तथा बाद मे स्वतन्त्र पार्टी के नेता थे, उन्होने यह विचार प्रकट किया था कि काग्रेस सरकार भारत वर्ष की प्रजातात्रिक व्यवस्था की जड पर कुठाराघात कर रही ह। 1965 म जब लालबहादुर शास्त्री प्रधानमत्री थे, तब उन्हाने राष्ट्रपति को केरल म राष्ट्रपति शासन लागू करने की राय दी तथा नव निर्वाचित विधान सभा को भग करने की सलाह दी जबकि कम्युनिस्ट पार्टी राज्य मे सरकार बनाने को तयार थी जब कि किसी नवनिर्वाचित विधान सभा को तत्काल भग कर देना सघीय व्यवस्था क नियमा क प्रतिकूल ह। 1967 म जब हरियाण म राज्य विधान सभा भग की गयी थी।[2] इसकी आलोचना करते हुये निर्वतमान मुख्यमत्री ने कहा था ,कि "जब राज्य मे कानून व व्यवस्था की स्थिति ठीक थी,

---

1 डी डी दुआ', प्रसीडेन्ट रूल इन इण्डिया पृष्ठ 17 ओर एम ए हुसेन, 'सेन्टर स्टेट रिलेशन्स, पृष्ठ-88

2 इस सबध म राज्यपाल की रिपोर्ट दख– 'द ट्रिब्यून नवम्बर 22 1967 पृष्ठ–1

| प्रधान मंत्री | राज्य जहाँ राष्ट्रपति शासन लागू किया गया | उद्घोषणा के समय मुख्यमंत्री तथा सत्तारूढ दल | राज्यपाल | उद्घोषणा जारी करने का कारण |
|---|---|---|---|---|
| 1 प जवाहर लाल नेहरू (26 05-1964) | पजाब 20 6 51-17 4 52 | डा गोपी चन्द्र भार्गव (काग्रेस) | सी एम त्रिवेदी | काग्रेस पार्टी मे अन्दरूनी फूट पैदा हो जाने के कारण डॉ गोपी चन्द्र भार्गव ने अपने मत्रिमडल का त्याग पत्र दे दिया। |
| 2 " | 2 पेप्सु 4 3 53-7 3 54 | श्री ज्ञान सिह राड़ेवाला (सयुक्त दल) | श्री याज्ञवेन्द्र सिह (राजप्रमुख) | विधायको व्दारा दल बदल के कारण चुनाव न्यायाधिकरण द्धारा मुख्यमत्री सहित चार के खिलाफ निर्णय के कारण मुख्यमत्री का त्यागपत्र। |
| 3 " | आन्ध्र प्रदेश 15 11 54-28 3 55 | श्री टी प्रकाशम् (काग्रेस तथा आन्ध्र प्रजा पार्टी का मिला जुला मत्रिमडल) | सी एम त्रिवेदी | राज्य वि स द्वारा अविश्वास प्रस्ताव पारित किये जाने के पश्चात श्री टी प्रकाशम् के नेतृत्व मे बने मत्रिमडल ने अपना त्याग पत्र दे दिया सत्तारूढ दलो के कुछ सदस्यो द्वारा विपक्ष के साथ मतदान किये जाने के कारण सरकार को हार का सामना करना पडा |
| 4 " | केरल (त्रावणकोर कोचीन) 23 3 56-1 11 56 (काग्रेस) | श्री पनमपल्लि गोविन्द मेनन | श्री राम वर्मा | काग्रेस पार्टी के छ सदस्यो द्वारा पार्टी से त्याग पत्र दे देने के कारण मत्रिमडल का त्याग पत्र किसी अन्य दल व्दारा सरकार बनाने की स्थिति मे ना |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | | | होने के कारण गज प्रमुख द्वारा राष्ट्रपति शासन की सिफारिश। |
| | केरल 1 11 56-5 4 57 | | श्री पी एस राव (कार्यकारी राज्यपाल) 1 11 56 21 11 56 ओर डॉ बी राम कृष्ण राव 22 11 56 से | 1 11 56 को राज्य के पुर्नगठन होने के पश्चात नय राज्य के बनन पर त्रावणकोर को कोचीन म रा शा का प्रतिसहरण, किन्तु उसी दिन पुन केरल राज्य मे रा शा लागू क्योकि वि स नही थी। |
| 6 " | केरल 31 7 59 से 22 2 60 | श्री ई एम एस नम्बूदरीपाद (साम्यवादी) | डॉ बी रामा कृष्ण राव | राज्यपाल द्वारा आन्तरिक विद्रोह के आधार पर बहुमत प्राप्त मत्रिमण्डल का पतन। |
| 7 | उड़ीसा 25 2 61-23 6 61 | डॉ हरे कृष्ण मेहताव -काग्रेस तथा गणतन्त्र परिषद का मिला जुला दल | श्री वाई एन सुथानकर | कग्रेस दल तथा गणतन्त्र परिषद के मत्रिमण्डल का पतन मुख्यमत्री के त्याग पत्र के कारण हो गया। अत विकल्प के बिना राज्य म राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। |
| 8 **लाल बहादुर शास्त्री** 9 6 64-11 1 66 | केरल 10 9 64-24 3 65 व 24 3 65-6 3 67 | श्री आर. शकर (काग्रेस)— | श्री वी वी गिरी— | मत्रिमण्डल के द्वारा राज्यपाल को त्याग पत्र दे दिया क्योकि उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास हो गया था। राज्य मे नये चुनाव होने पर कोई भी दल के सरकार बनाने की स्थिति |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | | | म ना होने के कारण रा शा लागू किया गया। |
| 1 इंदिरा गाधी 22 2 66--23 3 77 | पजाब 5 7 66 1 11 66 | राम किशन (काग्रेस) | श्री धर्मवीर | 22 6 66 को राज्य का पुर्नगठन किय जाने का निर्णय हो जाने पर मत्रिमण्डल ने त्याग पत्र दे दिया। |
| 2 " | राजस्थान 13 3 67-24 4 68 | श्री मोहन लाल सुखाडिया (काग्रेस) | डॉ सम्पूर्णानन्द | 1967 के आम चुनावो के पश्चात किसी भी पार्टी को बहुमत नही मिला। सबसे बड़े दल के सिद्धान्त के आधार पर श्री मोहन लाल सुखाड़िया (काग्रेस) को नये मत्रिमण्डल बनाने के लिये आमत्रित किया गया। परन्तु उन्होंने मत्रिमण्डल बनाने से इन्कार कर दिया जबकि उन्होने यह दावा किया था कि उनको वि स मे बहुमत का समर्थन प्राप्त है। |
| 3 " | हरियाणा 21 11 67 21 3 68 | श्री राव वीरेन्द्र सिह (सयुक्त दल) | श्री बी एन चक्रवर्ती | हरियाणा म दल बदल सक्रामक रोग हो गया था इसके कारण सविधान की प्रतिष्ठा और गरिमा नष्ट प्राय हो गयी थी और लोकतत्र का अस्तित्व ही खतरे मे पड गया था। |
| 4 " | पश्चिम बगाल 20 2 68-25 2 69 | डॉ पी सी घोष (प्रोग्रेसिव डमाक्रेटिक फ्रट) | श्री धर्मवीर | विभिन्न पार्टिया की सदस्य सख्या के बार म स्थिति सतोषजनक नही थी। मत्रिमण्डल के |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | | | बहुमत मे सदन या अध्यक्ष के विनिर्णय ने विधान सभा का कार्यकरण असभव बना दिया था। |
| 5 | उत्तर प्रदेश<br>25 2 68-26 2 69 | श्री चरण सिह<br>(सयुक्त विधायक दल) | डॉ बी गोपाल रेड्डी | श्री चरण सिह ने मुख्यमत्री पद से इस्तीफा दे दिया। सयुक्त विधायक दल तथा काग्रेस पार्टी दोना मे से कोई भी स्थायी मत्रिमण्डल का गठन करने की स्थिति मे नही थे। |
| 6 " | बिहार<br>29 6 68-26 2 69 | श्री भोला पासवान शास्त्री<br>(सयुक्त विधायक दल) | श्री नित्यानन्द कानूनगो | श्री भोला पासवान शास्त्री के नेतृत्व मे बने मत्रिमण्डल ने त्याग पत्र दे दिया। बहुत से विधायको द्वारा बार-बार दल बदल के कारण यह स्पष्ट हो गया कि वि स मे तत्कालीन सदस्यो की स्थायी सरकार बनाना असभव है। |
| 7 " | पजाब<br>23 8 68-17 2 69 | श्री लक्षमण सिह गिल<br>(पजाब जनता पार्टी) | डॉ डी सी पावटे | श्री लक्षमण सिह गिल ने राज्य काग्रेस विधायी पार्टी का समर्थन समाप्त हो जाने पर त्याग पत्र दे दिया। अत अन्य विकल्प ना होने के कारण रा शा लागू किया गया। |
| ८ ' | बिहार<br>4 7 69-16 2 70 | श्री भोला पासवान शास्त्री<br>(लोकतान्त्रिक दल) | | |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | केवल नौ दिन रहने के बाद (त्याग पत्र) | श्री नित्यानन्द कानूनगो | विधायकों द्वारा लगातार दल बदल करने के कारण स्थायी सरकार बनाने के बारे में अनिश्चितता। |
| 9 | पश्चिम बगाल 19 3 70 2 4 71 | श्री अजय कुमार मुखर्जी (यूनाइटेड फ्रट) | श्री एस एस धवन | श्री मुखर्जी के त्याग पत्र के बाद राज्यपाल इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि राज्य म वेकल्पिक मत्रिमण्डल का निर्माण सभव नही हे। |
| 10 " | केरल 4 8 70-3 10 70 | श्री जी अच्युत मेनन (सी पी आई) | श्री वी विश्वनाथ | मुख्यमत्री के परामर्श पर राज्यपाल न 26 6 70 को विधान सभा भग। नये चुनाव करवाने के दोरान मुख्यमत्री का 1 8 70 को त्याग पत्र अत राज्य मे रा शा राष्ट्रपति शासन। |
| 11 " | उत्तर प्रदेश 1 10 70-18 10 70 | श्री चरण सिंह भा का द-काग्रेस का मिलाजुला गठबन्धन | डॉ बी गोपाल रेड्डी | भा क्रा द तथा काग्रेस मे मतभेद हो जाने के कारण मु म ने राज्यपाल से काग्रेस के 13 मत्रियो को पदमुक्त करने की प्रार्थना की जिससे राज्यपाल ने इनकार कर दिया। तत्पश्चात काग्रेस ने अपना समर्थन वापस ले लिया। |
| 12 " | उडीसा 11 1 71 3 1 71 | श्री आर एन सिंह देव (स्वतन्त्र काग्रेस मिला जुला म म) | डॉ एस एस असारी | सदन मे बहुमत खो जाने के पश्चात त्यागपत्र 5 मार्च 1971 को राज्य म आम चुनावो म किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला अत |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | | | 23 3 71 को नयी उद्घाषणा लेकिन विधान सभा निलंबित। |
| 13 | कर्नाटक (मसूर)[1] 27 3 71-20 3 72 | श्री वीरेन्द्र पाटिल (काग्रेस ओ) | श्री धर्मवार | मख्यमत्री द्वारा त्यागपत्र के कारण। |
| 14 " | पजाब 15 6 71-17 6 72 | श्री प्रकाश सिह बादल, अकाली दल | डॉ डी सी पावटे | सत्तारुढ पार्टी अकाली दल म दल बदल के कारण मुख्यमत्री का त्याग पत्र |
| 15 " | पश्चिम बगाल 29 6 71-20 3 72 | श्री अजय कुमार मुखर्जी (डेमोक्रेटिकफ्रट) | श्री एस एस धवन | मुख्यमत्री का ज्ञापन मे बहुमत समाप्त हो गया था अत इन्होने पहले राज्यपाल से वि स को भग करने की सिफारिश की लेकिन बाद म स्वय ही त्याग पत्र दे दिया। |
| 16 " | गुजरात 13 5 71-17 3 72 | श्री हितेन्द्र देसाई (काग्रेस ओ) | श्री मन्नारायण | विधायको द्वारा बार-बार दल बदल से अनिश्चितता के कारण स्थाई सरकार नही बन सकी 11 मई, 1971 को मत्रिमण्डल की बेठक मे यह सकल्प लिया कि राज्यपाल को वि स भग करने की सिफारिश की गयी। |
| 17 ' | मणिपर (1972 से पूर्ण राज्य) 21 1 72- 19 3 72 | — | — | — |

नवम्बर 1973 से मसूर राज्य का नाम बदल कर कर्नाटक कर दिया गया।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 18 | बिहार<br>9 1 72 19 3 73 | श्री भोला पासवान शास्त्री<br>(मिला जुला मंत्रिमण्डल) | श्री डी के बरुआ | राज्य मे स्थायी सरकार के गठन के लिये मुख्यमंत्री का त्याग पत्र |
| 19 | आन्ध्र प्रदेश<br>18 1 73-10 12 73 | श्री पी वी नरसिंहाराव<br>(कांग्रेस) | श्री खण्डू भाई के देसाई | राज्य मे मुल्की आंदोलन के कारण मु म ने 17 1 73 को अपने मंत्रिमण्डल का त्याग पत्र दे दिया जबकि उसे पूर्ण बहुमत प्राप्त था। |
| 20 " | मणिपुर<br>28 3 73-4 3 74 | — | — | — |
| 21 " | उड़ीसा<br>3 3 73 6 3 74 | श्रीमती नन्दनी सत्पथी<br>(कांग्रेस) | श्री बी डी जत्ती | विधायको द्वारा बार-बार दल बदल के कारण मु म का त्याग पत्र। |
| 22 " | त्रिपुरा<br>21 1 72-20 3 72 | — | श्री बी के नेहरू | उत्तर पूर्वी क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम 1971 के अधीन 72 को नया राज्य त्रिपुरा बना। अत चुनाव होने तक राज्य मे रा शा लागू किया गया। |
| 23 | उत्तर प्रदेश<br>13 6 73-8 11 73 | श्री कमलापति त्रिपाठी<br>(कांग्रेस) | श्री अकबर अली खॉ | पी ए सी की कुछ कम्पनियो मे अनुशासन हीनता के कारण राज्य मे गभीर स्थिति उत्पन्न हो गयी था परिणामस्वरुप मुख्यमंत्री ने केन्द्रीय हस्तक्षेप की आवश्यकता महसूस करते हुये त्याग पत्र दे दिया था। |
| 24 ' | गुजरात 2 74 | — | — | — |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | नागालैण्ड 22 3 75-25 11 77 | श्री वेजी जोसोकी (नागालण्ड नेशनलिस्ट पार्टी) | श्री एल पी सिह | पदलोलुपता के कारण निराधार दल बदल से मत्रिमण्डल का बना रहना कठिन हो गया था। |
| 26 " | उत्तर प्रदेश 30 11 75-21 1 76 | श्री एच एन बहुगुणा (काग्रेस) | डॉ एम चेन्ना रेड्डी | काग्रेस पार्टी जिसको राज्य विस मे पूर्ण बहुमत प्राप्त था के मु म ने पार्टी हाईकमान के आदेश पर त्याग पत्र दे दिया। |
| 27 | तमिलनाडु 31 1 76-30 6 76 | श्री एम करुणानिधि (डी एम के) | श्री के के शाह | राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट मे सरकार पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाये थे। |
| 28 " | गुजरात 12 3 76-24 12 76 | श्री बाबू भाई जशभाई पटेल (जनता फ्रट) | श्री के के विश्वनाथ | सदन मे मत्रिमण्डल को मोर्चे के सदस्यो द्वारा विपक्ष मे मतदान करने के कारण हार का सामना करना पड़ा। |
| 29 " | उड़ीसा 16 12 76-29 12 76 | श्रीमती नन्दनी (सत्थी काग्रेस) | श्री एस एन शकर | सत्तारुढ काग्रेस मे गुटबदी के कारण राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हो गयी थी। जिसका असर राज्य के प्रशासन तथा काग्रेस व रातरथापर पडा था अत इस असाधारण स्थिति से निपटने के लिये रा शा की सिफारिश। |
| 30 इदिरा गाधी का दूसरा कार्यकाल 15 1 80 से 31 10 84 तक | उत्तर प्रदेश 17 2 80 9 6 80 | बनारसी दास (लोकदल) | जी डी तापसे | लोकसभा चुनावो मे इन राज्यो मे सत्तारुढ दलो द्वारा सफलता ना प्राप्त करने के आधार पर। |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| [illegible] | गजरात 17 2 80 7 6 80 | श्री बाबू भाई पटेल (जनता पार्टी) | श्रीमती शारदा मुखर्जी | — | |
| 32 | बिहार 17 2 80-8 6 80 | श्री राम सुदर दास (जनता पार्टी) | श्री ए आर किदवई | — | |
| 33 " | मध्य प्रदेश 17 2 80-9 6 80 | — | — | — | |
| 34 " | महाराष्ट्र 17 2 80-9 6 80 | श्री शरद पवार (पीपुल्स डेमोक्रेटिक फ्रट) | श्री सादिक अली | — | |
| 35 " | उड़ीसा 17 2 80-9 6 80 | श्री नीलमणि राउतराव (जनता पार्टी) | श्री बी डी शर्मा | — | |
| 36 " | पजाब 17 2 80 7 6 80 | श्री प्रकाश सिह बादल (अकाली दल) | श्री जय सुखलाल | — | |
| 37 " | राजस्थान 17 2 80-9 6 80 | श्री भैरो सिह शेखावत (भारतीय जनता पार्टी) | श्री रघुकुल तिलक | — | |
| 38 " | तमिल नाडु 17 2 80-9 6 80 | श्री एम जी रामचन्द्र (अन्नाद्रमुक) | श्री प्रभुदास पटवारी | — | |
| 39 " | मणिपुर 28 2 81-19 6 81 | श्री रिशाग किशिग (कांग्रेस इ) | श्री एल पी सिह | | पार्टी के दस सदस्या द्वारा त्याग पत्र दन म अल्पमत म रह गयी । अत विपक्ष की सरकार न बन सकने के कारण राशा |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | केरल<br>21 10 81 25 12 81 | श्री ई.के. नायनार<br>(मिली जुली सरकार) | श्रीमती ज्योति<br>वेंकटचल्लया | काग्रेस (एस) विधायक दल उसके बाद केरल काग्रेस मणिपुर गुप द्वारा समर्थन वापस लेने के कारण सत्तारुढ मत्रीमण्डल का बहुमत समाप्त हो गया । |
| 41 " " | केरल<br>17 3 82 24 5 82 | श्री के करुणाकरन<br>(यू डी एफ) | श्रीमती ज्योति<br>वकेटचल्लया | 140 सदस्या वाली वि स मे सत्तारुढ पार्टी की सदस्य सख्या 69 रह गयी तथा मु म के त्याग पत्र के बाद रा शा |
| 42 " | असम | श्रीमती अनवरा तैमूर<br>(काग्रेस इ) | श्री एलपी सिह | मु म के त्याग पत्र के कारण |
| 43 " | पजाब<br>6 1 83 29 9 85 | श्री दरबारा सिह<br>(काग्रेस) | श्री एपी शर्मा | राज्य म आतकवादी कार्यवाहियो के कारण |
| 44 " | सिक्किम<br>25 5 84 8 3 85 | श्री भीमबहादुर गुरुग<br>(काग्रेस) | श्री एच जे एच<br>तलयार खॉं | सत्तारुढ काग्रेस पार्टी के 17 सदस्यो द्वारा दल बदल करने के कारण अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। |
| 1 श्री मोरार जी देसाई<br>24 3 77 27 4 79 | उत्तर प्रदेश<br>30 4 77-23 6 77 | श्री नारायण दत्त तिवारी<br>(काग्रेस) | डॉ एम चन्ना रेड्डी | मार्च, 1977 के लोक सभा चुनावा म इन नौ राज्यो म सत्तारूढ दल को कोई भी स्थान नही प्राप्त हो सका । कुछ राज्या म तो बिल्कुल ही सफाया हो गया जिसका केन्द्रिय सरकार ने यह अर्थ लगाया कि राज्य सरकारो |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | | | म निर्वाचिका का विश्वास पूर्णत समाप्त हो गया है। |
| 2 " | पश्चिम बंगाल<br>30 4 77 21 6 77 | श्री एस एस राय<br>(कांग्रेस) | श्री एन्थनी डियास | " |
| 3 " | राजस्थान<br>30 4 77-22 6 77 | श्री हरिदेश जोशी<br>(कांग्रेस) | श्री वेदपाल त्यागी | " |
| 4 " | उड़ीसा<br>30 4 77-6 6 77 | श्री विनायक आचार्य<br>(कांग्रेस) | श्री हरचरण सिह बरार | " |
| 5 " | मध्य प्रदेश<br>30 4 77-23 6 77 | श्री एस सी शुक्ला<br>(कांग्रेस) | श्री एस एन सिन्हा | " |
| 6 " | बिहार<br>30 4 77-24 6 77 | डॉ जगन्नाथ मिश्र<br>(कांग्रेस) | श्री जगन्नाथ कोशल | " |
| 7 | हरियाणा<br>30 4 77-21 6 77 | श्री बनारसी दास गुप्त<br>(कांग्रेस) | श्री बी एन चक्रवर्ती | " |
| 8 | पंजाब<br>30 4 77-20 6 77 | — | — | " |
| 9 | हिमाचल प्रदेश<br>30 4 77 22 6 77 | श्री राम लाल<br>(कांग्रेस) | श्री अमानुद्दीन<br>अहमद खाँ | " |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | कर्नाटक<br>31 12 77 27 2 78 | श्री देवराज अर्स<br>(काग्रेस) | श्री गोविन्द नारायण | आन्तरिक मतभेदा के कारण काग्रेस विधायक दल क सदस्या ने सार्वजनिक घोषणा की कि वो मुग से समर्थन वापस ले रहे है। अत राज्यपाल न राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर दी। |
| 11 " | मणिपुर<br>16 5 77 29 6 77 | — | — | — |
| 12 ' | त्रिपुरा<br>5 11 77 4 1 78 | श्री राधिकारजन गुप्त<br>(जनता पार्टी तथा<br>सी पी आई एम का<br>मिला जुला मत्रिमण्डल) | श्री एल पी सिह | सी पी आई एम द्वारा मत्रिमण्डल से समर्थन वापस लेने के कारण त्याग पत्र |
| 13 | जम्मू व कश्मीर[1]<br>(27 03-1977 — 09 07-1977) | शेख मो० अब्दुल्ला<br>(ने का व का) | श्री एल के झा | काग्रेस पार्टी ने शेख मो अब्दुल्ला के नेतृत्व वाली सत्तारूढ नेका से अपना समर्थन वापस न लिया था। |

1 राज्य मे राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से राज्य मे पहली बार राज्यपाल का शासन लागू किया गया था—सविधान के अनु 92 के अतर्गत।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1 **चरण सिंह** 28 7 79 15 1 80 तक जनता एस बाद मे लोकदल | **सिक्किम** 18 8 79 17 10 79 | श्री काजी लैंडप दोरजी (जनता पार्टी) | श्री बी बी लाल | मु म के परामर्श पर वि स भग तत्पश्चात मु म ने त्याग पत्र दे दिया जिसके फल स्वरूप रा शा |
| 2 " | मणिपुर 14 11 79-13 1 80 | — | — | — |
| 3 " | केरल 5 12 79-25 1 80 | श्री सी एम मोहम्मद कोया (मिलीजुली सरकार) | श्रीमती ज्योति वेकेटचल्लया | अल्पमत मे आने के कारण |
| 4 " | असम 12 12 79 6 12 80 | श्री जे एन हजारिया (ओम जनता दल) | श्री एल पी सिह | राज्यपाल ने मुख्यमत्री की विधायका का समर्थन ना देकर वि स निलम्बित कर रा शा लागू कर दिया। |
| 1 **राजीव गाधी** 31 10 84- 30 11 89 | जम्मू व कश्मीर 7 9 86-6 11 86 | गुलाम मो शाह (राज्यपाल शासन के बाद राष्ट्रपति शासन) | श्री जगमोहन | राष्ट्रपति ने राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने तथा अन्य स्त्रोतो से प्राप्त सूचना के आधार पर राज्य मे राष्ट्रपति शासन का निर्णय किया। |
| 2 | पजाब 11 5 87 | सुरजीत सिह बरनाला (अकाली दल) | श्री एस एस राय | आतकवादी गतिविधियो के कारण। |
| 3 | तमिलनाडु | — | — | — |
| 4 | नागालण्ड 7 8 88-25 1 89 | श्री होकीशे सेमा (काग्रेस इ) | श्री के वी कृष्णराव | मत्रिमण्डल के अल्पमत मे आ जाने के कारण अन्य गुट को मोका नही दिया गया। |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| [illegible] | मिजोरम<br>7 9 88 21 1 89 | श्री. लालडेंगा<br>(एम एन एफ) | श्री हितेश्वर सकिया | शासक दल मिजो फ्रट के 9 विधायको न नया दल बनाया जिसके कारण 40 सदस्याक सदन म शासक दल के सदस्या की सख्या घटकर 16 रह गयी इसके अतिरिक्त अध्यक्ष द्वारा 8 सदस्यो को उनके ससद सदस्य बने रहने से निरहर्र करने की प्रक्रिया के दौरान निलम्बित किये जाने के कारण सवैधानिक सकट । |
| 6 " | कर्नाटक<br>21 4 89-30 11 89 | श्री एस आर. बोम्बई<br>(जनता दल) | श्री पी वेकेटसुब्बैया | राज्य मे शासक दल मे फूट के कारण नया दल जनता दल बना। नगगलि मे शासक दल बा गया। मत्रिमण्डल के विस्तार के शीघ्र बाद 18 सदस्यो ने अपना अल्पमत मे आ गर्या। राज्यपाल का आरोप था कि सदस्यो को कुछ अनैतिक तरीको से जनता दल म शामिल होने के लिये आर्कपित किया गया जिमके कारण (सर्वोच्चन्यायालय ने अपने निर्णय म केन्द्र के निणय को अवेध घोपित किया) |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1 वी.पी. सिंह<br>2 12 89 7 11 90<br>(जनता दल) | पंजाब पुन अवधि बढ़ायी गया 25 2 92 तक | पूर्व में वर्णित | पूर्व म वर्णित | पूर्व म उल्लखित |
| 2 ' | जम्मू व कश्मीर 18 7 90 जारी | डॉ फारुख अब्दुल्ला (ने का) (राज्यपाल शासन के बाद राष्ट्रपति शासन लागू किया गया ।) | श्री गिरीश सक्सेना | राष्ट्रपति इस बात से सतुष्ट थे कि राज्य म लागू भारतीय सविधान के उपबधा और जम्म व कश्मीर सविधान के प्रावधानो के अनुसार कार्य नही कर सकती चूकि अत्यधिक आतकवादी गतिविधियो के कारण राज्य मे सुरक्षा व राजनीतिक स्थिति खराब हो गयी थी । |
| 3 ' | कर्नाटक 10 10 90-17 10 90 | श्री वीरेन्द्र पाटिल | श्री भानु प्रताप सिह | — |
| 1 चन्द्र शेखर<br>11 11 90<br>(जनता दल एस) | असम 27 4 90-30 6 91 तक | श्री प्रफुल्ल कुमार मोहता (असम गण परिषद) | श्री डी डी ठाकुर | कानून व व्यवस्था की बिगडती हुयी स्थिति को देखते हुये राष्ट्रपति ने महसूस किया कि राज्य सरकार सविधान के प्रावधानो के अनुसार कार्य नही कर सकती । |
| 2 " | गोवा 14 12 90-25 1 91 तक | डॉ लुईस प्रोटो बारबोसा (पी डी एफ) | श्री खुर्शीद आलम खान | डॉ बारबोसा के अयोग्यता सबधी आदेश व उच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदन किये जाने पर |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | | | शासक दल से एम जी पी के द्वारा समर्थन वापस ले लेने के कारण। |
| 3 | तमिलनाडु 30 1 91-24 6 91 | श्री एम करुणानिधि (डी एम के) | श्री एस एस बरनाला | राज्य म लिट्टे की बढ़ती हुयी गतिविधियो के फलस्वरुप कानून व व्यवस्था को स्थिति बिगड़ गयी और राज्य सरकार इन गतिविधियो को रोक पाने म कारगर नही थी। |
| 4 " | हरियाणा 6 4 91-23 6 91 | श्री ओम प्रकाश चौटाला (जनता दल एस) | श्री धनिक लाल मडल | विधान सभा अध्यक्ष द्वारा तीन विधायको को अयोग्य करार दिये जाने के बाद श्री चौटाला की सरकार अल्पमत मे आ गयी। इसके बाद राज्यपाल ने मुख्यमत्री से 3 4 91 से पहले विधान सभा मे बहुमत सिद्ध करने के लिये कहा। मुख्यमत्री ने राज्यपाल के निर्देशो को मानने से इकार कर दिया चूँकि उन्होने पहले ही विधान सभा को भग करने की सिफारिश कर दी थी। निश्चित अवधि के बाद राज्यपाल ने राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर दी। |
| 1 पी वी नरसिम्हा राव | मेघालय 11 10 91-19 2 93 | — | — | सर्वोच्च न्यायालय ने 1993 म दिये गये अपने फैसले मे इसे अवध करार दिया। |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | नागालैण्ड<br>14 92 20 2 93 | श्री वामुजो<br>(नागा पापुल्स कॉउन्सिल) | श्री एम एम थामस | मुख्यमंत्री के त्याग पत्र ं ने के कारण। |
| 3' | उत्तर प्रदेश<br>6 12 92 | श्री कल्याण सिंह<br>(भाजपा) | मोती लाल वोरा | विवादित ढाचे के ध्वस्त किये जाने की प्रति जिम्मेदारी लेते हुये मुख्यमंत्री ने त्याग पत्र दे दिया। |
| 4' | हिमाचल प्रदेश<br>15 12 92 | शांता कुमार<br>(भाजपा) | — | अयोध्या काड के फलस्वरुप राज्य मे कानून व व्यवस्था की स्थिति के बिगड़ने का आरोप केन्द्र सरकार ने भाजपा शासित राज्यो पर लगाते हुये इन तीनो राज्यो मे राष्ट्रपति शासन लगा दिया। क्योकि भाजपा समर्थित सगठन आर.एस.एस पर सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था। |
| 5" | राजस्थान<br>15 12 92 | श्री भैरो सिंह शेखावत | डॉ एम चेन्ना रेड्डी | — |
| 6" | मध्य प्रदेश<br>15 12 92 | श्री सुन्दर लाल पटवा | कु महम्मद अली खान | — |
| 7" | त्रिपुरा<br>11 3 92-10 4 93 | — | — | — |

|  |  |  |  |  |
|---|---|---|---|---|
|  | मणिपुर<br>31-01 93 13 12 94 | आर.के. रणवीर सिंह<br>(युनाईटेड फ्रन्ट) | चिन्तामणि पाणिग्रही | पन्द्रह व पाच विधायकों द्वारा अपना समर्थन वापस ले लेने के कारण। |
| 8 | बिहार<br>28-03 95 04-04 95 | श्री लालू प्रसाद यादव | — | सरकार की निर्धारित अवधि 5 वर्ष पूर्ण हो जाने के कारण |
| 9 | उत्तर प्रदेश<br>19 10 95 जारी | कु मायावती<br>(भाजपा समर्थित) | श्री मोती लाल वोरा | समर्थक दल द्वारा मंत्रिमण्डल से अपना समर्थन वापस ले लेने के कारण |

GRAPH SHOWING PRESIDENT'S RULE IN THE STATES
10
8
6
4
2
0
1951
1952
1953
1954
1955
1956
1957
1958
1959
1960
1961
1962
1963
1964
1965
1966
shows the number of times President's rule was imposed in that year

GRAPH SHOWING PRESIDENT'S RULE IN THE STATES
10
8
6
4
2
0
1967
1968
1969
1970
1971
1972
1973
1974
1975
1976
shows the number of times President's rule was imposed in that year
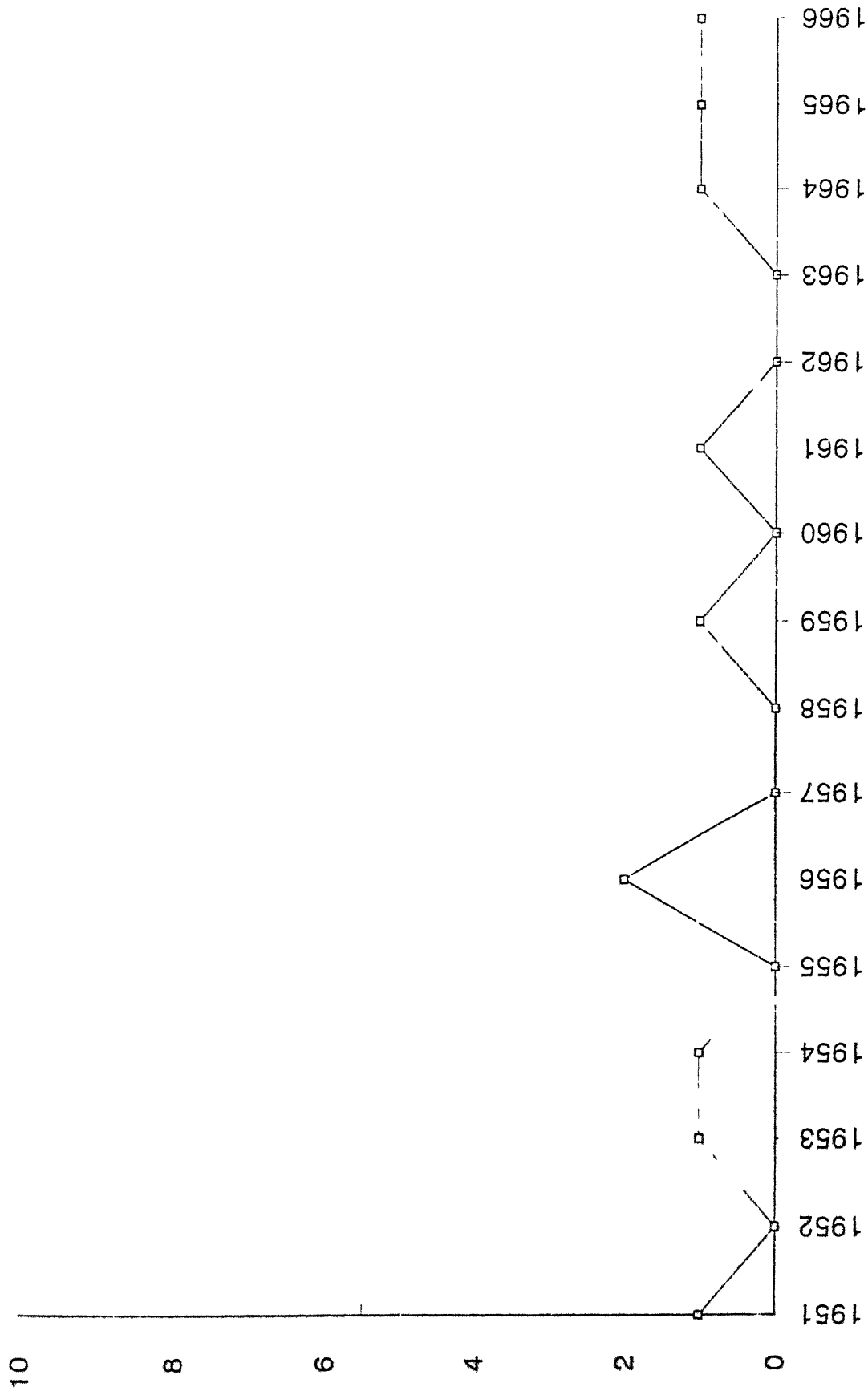
## GRAPH SHOWING PRESIDENT'S RULE IN THE STATES



shows the number of times President's rule was imposed in that year

GRAPH SHOWING PRESIDENT'S RULE IN THE STATES

shows the number of times President's rule was imposed in that year

जसा कि सलग्न तालिका से भी स्पष्ट ह अनुच्छद 356 का प्रयोग लागू करने का कोई निश्चित मापदण्ड नही अपनाया गया है। अनेको वार राष्ट्रपति शासन राजनीतिक वदले की भावना के कारण लागू किया गया जसे 1977 व 1980 के ना राज्यो की विधान मभाओ को एक माथ भग कर दिया गया था। इसी प्रकार राजनीति दलबदल भी राज्य म राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने का प्रमुख आधार रहा ह उदहारण के किये बिहार मे 1969 1969 व 1971 मे, पश्चिम वगाल मे 1970 केरल, 1970 उत्तर प्रदेश 1968 व 1970। इसी प्रकार गटबन्धन की सरकारो म मतभेद भी राज्य म राष्ट्रपति शासन का कारण रहे ह उदहारण के लिये पेप्सू म 1953 मे, त्रावनकोर कोचीन म 1956 म, आन्ध्रप्रदेश म 1954 उर्डीसा 1961, जम्मू व कश्मीर 1977 कर्नाटक 1977, त्रिपुरा 1977। इसके अतिरिक्त काग्रेस ने अपनी ही सरकारो के विरुद्ध भी इसका प्रयोग किया ह, जवकि काग्रेस हाईकमान मवधित राज्यो के मुख्यमत्रियो से असतुष्ट थे, उदहारण के लिये उत्तर प्रदेश 197^ व 1975 आन्ध्र प्रदेश 1973, पजाव 1951 गुजरात 1971। 1966 मे पजाव म लगाया गया राष्ट्रपति शासन भी इसी श्रेणी मे आता है, जवकि पजाब व हरियाणा का बॅटवारा हाना था। राज्य म काग्रेस का ही मत्रिमण्डल पदारूढ था लेकिन विधायको मे इस विभाजन को लेकर तीव्र असतोष था।

कुछ ऐसे भी उदहारण प्राप्त होते है जबकि चुनावो के वाद कोई भी दल मरकार वनाने का स्थिति मे नही था इस श्रेणी मे केरल 1965 व 1967 का राजस्थान व उडीसा का 1971 का उदहारण लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कानून व व्यवस्था क भग होने का आधार बनाकर भी राष्ट्रपति शासन लागू किया गया ह, इसमे केरल 1959, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश हिमाचल प्रदेश 1992 का उदहारण लिया जा सकता हे जवकि राज्यपाल ने राज्य मे सवेधानिक तत्र के विफल होने की रिपोर्ट केन्द्र को भेजी थी।

अत राष्ट्रपति शासन के उपरोक्त उदहारण इस वात पर प्रश्नचिन्ह खडा करत ह कि जिन आधारा पर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया ह वो वास्तव म सवधानिक तत्र क विफल होने के ही उदहारण ह। वर्गीकरण के आधार पर देखा जाये तो यह स्पष्ट ह

कि जो दल केन्द्र म सत्तारूढ़ हो, उसकी इच्छा ही वास्तव म सवधानिक तत्र विफल होने क पीछे कारण बन जाती ह।[1] लेकिन एक बात निश्चित तार पर कही जा सकती ह कि केन्द्र मे सत्तारूढ सभी दलो ने अभी तक सविधान के इस विवादास्पद अनुच्छेद का इस्तेमाल अपने हित मे किया है तथा साथ ही यह भी सदेहास्पद ह कि केन्द्र ने वास्तव म इसकी सवधानिक व्याख्या करने पर समुचित ध्यान दिया ह। सविधान का यह प्रावधान निश्चित तार पर केन्द्र को यह मनमाना करने का अधिकार प्रदान करता ह, क्योकि अनुच्छेद 356 (3) म यह कहा गया ह कि बिना ससद की अनुमति के, घोषणा दो माह तक प्रवृत्त बनी रहेगी अर्थात दो माह के लिये केन्द्र किसी भी राज्य की सरकार का बर्खास्त कर राज्य म अपनी सरकार बनाने का प्रभाव कर सकती ह। लकिन दो माह पश्चात अथवा उससे पूर्व भी (यदि ससद का सत्र चल रहा हो) ससद की स्वीकृति का बहुत महत्व नही होता, क्योकि ससद मे सरकार को बहुमत प्राप्त होता ह[2] अत कार्यपालिका द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर ससद अपनी की मोहर नही लगाती। राज्य म सवधानिक तत्र के विफल होने का शब्दार्थ यदि लिया जाये तो दूसरा महत्वपूर्ण अग जो इस पर रोक लगाता ह वो ह न्यायालय। सर्वाच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयो को सविधान की व्याख्या करने का कत्तव्य सोपा गया है।[3] लेकिन 1977 तक न्यायालयो ने इस प्रकार के राजनतिक प्रश्नो

---

1 तमिलनाड म करुणानिधि की सरकार को 1976 मे इस आधार पर बर्खास्त कर दिया गया था कि उनके विरुद्ध 1973 मे रिश्वतखोरी के आराप थे और वो राज्य की स्वायत्ता की माग भी कर रहे थ। 1977 व 1980 म बर्खास्तगी 'जनता का प्रतिनिधित्व ना करने के आधार पर 1977 म हा कर्नाटक म अर्स मत्रिमण्डल को बहुमत क बार म सन्देह क आधार पर, 1980 म मणिपुर व आसाम म क्रमश शैजा व हजारिका मत्रिमण्डल का राजनीतिक अस्थिरता तथा कुशासन क आधार पर बर्खास्त कर दिया गया था- जे() आर() सिवाच, दि पालिटिक्स ऑफ दि प्रसीडन्ट्स इन' इण्डिया, पृष्ठ 341-387 पूर्वोधृत

2 प्रसीडण्ट रूल इन दि स्टेट्स राजीव धवन पृष्ठ 106 एनएम त्रिपाठा प्राइवट लिमिटड (बाम्बे) 1979

3 वही

पर अपना निर्णय देने पर हिचक दिखायी थी।[1] लेकिन 1994 म 'बाम्बई बनाम भारत सघ के मामले म सर्वाच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 356 की वद्यता अथवा अवधता के प्रश्न पर विचार करन के लिये न्यायालयो ने इस प्रकार के विशुद्ध राजनीतिक प्रश्न पर अपना निर्णय देकर अपने को विवाद का विषय बना लिया हे। जिसका विस्तृत विवरण अध्याय पॉच म किया गया ह।

वास्तव मे अनुच्छेद 356 को केन्द्र द्वारा किये जाने वाले दुरूप्रयोग को रोकने का कारगर उपाय राजनीतिक दलो के पास हे। सविधान लागू होने के पिछले 46 वर्षा के इतिहास का देखे तो करीब -करीब हर साल आसतन दो बार किया गया ह। जसा कि सलग्न ग्राफ मे भी दर्शाया गया ह।

यद्यपि यह सख्या भारत जेसा विविधता पूर्ण विशाल राष्ट्र क लिये बहुत ज्यादा नहीं ह लेकिन उन कारणो की जॉच करना आवश्यक ह कि चाथे आम चुनावा से पूव जबकि 17 वषा के दारान केवल दस बार राज्यो मे राष्ट्रपति शासन लागू किया गया जबकि 30 सालो मे इसे इसका प्रयोग 77 बार किया गया। अभी तक भारत सघ का एक भी राज्य इसके प्रयोग से अछूता नही है। धारा 356 का इतना प्रयोग निश्चित तार पर इसके पीछे जनता की इच्छा होना भी दर्शाता है। केरल मे लगातर सरकारो के पतन के कारण राज्य मे राजनीतिक अनिश्चितता व्याप्त हो गयी थी, जिसके कारण जनता इस अवधि के दौरान लगने वाले राष्ट्रपति शासन मे अपने को ज्यादा स्वतन्त्र महसूस करता थी।[2] चूँकि राजनीतिक दला के नेता, जो जनता का ही प्रतिनिधित्व करते हे, ने भी यद्यपि समय-समय पर धारा 356 को लागू किये जाने की कड़ी आलोचना की ह, लेकिन किसी ना किसी समय सभी ने इसको लगाये जाने की माग रखी ह। वास्तव म सभी तथाकथित प्रगतिशील दलो ने इसकी आलोचना केवल उसी समय की है, जबकि इसका प्रयोग उनकी सरकारो के विरुद्ध किया गया है। सभी राजनीतिक दलो ने इसकी आचित्य को स्वीकार किया हे।

---

1 सरकारिया कमीशन रिपोर्ट भाग (1) पृष्ठ 154 (1988) केन्द्र राज्य सबध आयाग (भारत सरकार मुद्राणालय नासिक द्वारा मुद्रित और राज्यस्थान राज्य बनाम भारत सघ ए आईआर 1977 एस सी 1361 पैरा 147

2 प्रेसीडेन्ट रूल इन केरला' डॉ एनआर विशालाक्षी, यूनीवरसिटी ऑफ केरला, जरनल ऑफ कान्स्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियमेन्टरी स्टडीज (1967) पृष्ठ 61

यद्यपि भारत म सघीय प्रणाली स्वीकार की गयी ह सविधान मे केन्द्र व राज्यो को अधिकार के मामले मे पृथक्-पृथक् किया गया है तथापि कुछ विशेष परिस्थितियो से निपटने के लिये केन्द्र को आपात अधिकार प्रदान किये गये है। यद्यपि सविधान म इसे रखे जाते समय यह मशा कभी नही रही थी कि केन्द्र राज्यो पर हावी हो जाये जिससे राज्या की स्वतन्त्रता पर आँच आये। तथापि इस बात की आवश्यकता महसूस की गयी थी कि केन्द्र के पास कुछ ऐसी प्रभावी शक्तियाँ अवश्य होनी चाहिये जिससे सघीय व्यवस्था बची रहे[1] ओर केन्द्र ने इसी कर्तव्य के तहत इस अनुच्छेद का प्रयोग किया ह।[2] यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात ह कि राष्ट्रपति शासन का प्रावधान सकटकालिन स्थितियो के लिये किया ह ना कि सामान्य समया के लिये। अत इसको इसी परिपेक्षय मे देखा जाना चाहिये।

## अनुच्छेद 356 की राजनीतिक व्याख्या

राष्ट्रपति का राज्यो का शासन हस्तगत करने के अधिकार की राजनीतिक व्याख्या बहुत विस्तृत ह तथा इसमे विभिन्न प्रकार की स्थितियो का समावेश होता ह। कभी-कभी राज्या मे राष्ट्रपति शासन इसलिये लागू किया जाता है क्योकि केन्द्र मे सत्तारूढ दल ने इसे अपनी सुविधा के लिये लागू किया। कभी-कभी इसलिये भी लागू किया गया कि राज्य मे वास्तव मे कानून व व्यवस्था भग हो गयी थी तथा सार्वजनिक भ्रष्टाचार बढ गया था।[3] कभी-कभी राज्य म अस्थिरता के आधार पर लागू किया गया क्योकि सत्तारूढ दल को सदन म बहुमत का समर्थन प्राप्त ह या नही इसमे सदेह था, अथवा विधान सभा मे मत्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास हो गया था। कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते है जबकि आर्थिकस्थिति का हवाला देते हुये इस अनुच्छेद का सहारा लिया गया।

---

1 दि 'प्रेसीडेन्ट रूल इनदि स्टेट्स' राजीव धवन पृष्ठ 106, पूर्वाधृत

2 सविधान के अनुच्छेद 355 केन्द्र का तीन कर्तव्य सोपता है। (i) यह केन्द्र का कर्त्तव्य ह कि वो प्रत्येक राज्य को बाहय आक्रमण से करेगा। (ii) आन्तरिक उपद्रव स भी प्रत्येक राज्य की रक्षा करेगा साथ ही यह भी केन्द्र का ही कर्त्तव्य है कि वो यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक राज्य की सरकार सविधान के प्रावधाना के अनुरूप ही चलायी जा रही हो।"

3 १९५९ म केरल सरकार पर व 1990 म तमिलनाडु सरकार पर इसी प्रकार के आरोप लगाये गये थे। (यद्यपि ये आरोप सिद्ध नही हो पाये थे)

इम प्रकार राज्या म राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा के औचित्य का सही सिद्ध करने के लिये इस प्रकार के अनेको उदाहरण दिये गये हे। इस बात की निपक्ष जॉच अत्यन्त आवश्यक है कि य सभी कारण उचित थे या नही। जो समय-समय पर केन्द्रीय सरकार द्वारा दिये गये, इस प्रश्न की जॉच के लिये उन सभी कारणो की व्याख्या करना उपर्युक्त होगा जो कि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत प्रदान किये गये हे।

(1) सकीर्ण व्याख्या

(2) व्यापक व्याख्या

(1) **सकीर्ण व्याख्या** अनुच्छेद 355 जो की अनुच्छेद 356 स ही जुड़ा हुआ हे केन्द्र को राज्य की सुरक्षा का दायित्व सौपता है। इसमे पहला कर्तव्य जो केन्द्र का सविधान द्वारा प्रदान किया गया ह वो यह हे कि (1) राज्य को वाह्य आक्रमणो से बचाय (2) राज्य की आन्तरिक उपद्रवो की स्थिति मे रक्षा करे[1]

---

1 सविधान अनुच्छेद 355> और इसके साथ ही यह सुनिश्चित कर कि राज्य का प्रशासन सविधान के अनुसार चलाया जा रह हे या नही।

1971 मे ही प्रकाश मे आता है। जब जन काग्रस का समर्थन समाप्त हो जाने के बाद श्री आर.एन. सिह देव के नेतृत्व वाले मिले जुले मत्रिमण्डल न राज्य विधान सभा म अपना बहुमत खो दिया। मुख्य मत्री श्री आर.एन.सिह देव ने राज्यपाल को अपना त्याग पत्र प्रस्तुत कर दिया।तत्पश्चात राज्यपाल से सभा भग करने की सिफारिश कर दी लेकिन राज्यपाल डा.एस.एस.असारी न सभा निलम्बित कर दी इस आशा म कि काग्रेस पार्टी राज्य में सत्तारूढ़ हो सकेगी लेकिन वो ऐसा करने म विफल रही और तत्पश्चात् विधान सभा भग कर दी गयी। यहाँ इस बात को उदधृत करने की आवश्यकता है कि जब उड़ीसा म 1971 मे अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यपाल विधान सभा को भग करने की सिफारिश करने से बच रहे थे, तो गृह मामला के राज्य मत्री श्री के.सी.पत ने कहा कि 'यदि राज्यपाल विधान सभा को निलम्बित करने की सिफारिश करता है तो वह विभिन्न दलो को विधायको की खरीद फरोख्त करन का अवसर प्रदान करता है मेरे विचार म सभा इस पर अपना विरोध प्रकट करगी। वह मै समझ सकता हूँ। लेकिन मे यह नही समझ सकता कि राज्यपाल द्वारा जब सभा को सीधे भग कर देने की सलाह दी जाती हे, किसी को भी खरीद फरोख्त का अवसर नहीं दिया जाता, और सभी दलो के लोगो के पास पुन जाना चाहिय। और पुन लौट कर आकर सरकार का निर्माण करना चाहिये, किस प्रकार आलोकतात्रिक कार्यवाही की सज्ञा दी जाती है।'

अनुच्छेद 356 की यदि व्याख्या की जाये तो उसमे जो तीसरा कर्तव्य है वो पहले और दूसरे कर्तव्य का ही आधार है। इसका तात्पर्य यह है कि राज्य मे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गया हो जिससे राज्य का प्रशासन सविधान मे दिये गये प्रावधानो के अनुसार चलाया जाना सभव न हो। राज्या मे वाह्य अथवा आन्तरिक उपद्रव [1]की स्थिति उत्पन्न होने पर भी इस अनुच्छेद के अधीन कार्यवाही करने पर विचार किया जा सकता है।[2]

निश्चय ही यह सत्यभाषी व्याख्या है। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि अनुच्छेद 356 की आवश्यकता केवल उन स्थितियो पर निर्भर करेगी जहाँ राज्य का प्रशासन सविधान के अनुसार नहीं चलाया जा रहा हो। अनुच्छेद 356 वाह्य आक्रमण व आन्तरिक उपद्रव की स्थिति उत्पन्न होने पर भी कार्यवाही करने को आवश्यक करता है।

सकीर्ण व्याख्या का जो मुख्य सिद्धान्त है वो ये है कि राज्य मे सवधानिक तत्र की विफलता केवल उसी स्थिति मे मानी जाये जबकि उसकी प्रकृति बहुत गम्भीर हो। जबकि राज्य मे वाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक गडबडियो सबधी गतिविधियाँ बहुत बढ गयी हो, जिसमे राष्ट्रपति का हस्तक्षेप करना आवश्यक हो जाता हो।[3]

यदि इस प्रकार की वाह्य अथवा आन्तरिक गतिविधियाँ राज्य की सुरक्षा को खतरा पहुँचा रही हो, जिसका प्रभाव पूरे देश पर पड़ सकता है, ऐसी स्थिति मे सविधान के अनुच्छेद

---

1 यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि 1977 के पश्चात 'सशस्त्र विद्रोह' से कम किसी आतरिक अशाति के आधार पर आपात की उद्घोषणा करना सभव नही है। क्योंकि अपने सशोधन मे अनुच्छेद 352 मे "आतरिक अशाति" के स्थान पर "सशस्त्र विद्रोह' शब्द रख दिया गया है।

2 राष्ट्रपति अनुच्छेद 352 के अधीन राष्ट्रीय आपात की उद्घोषणा तभी कर सकता है जब युद्ध या वाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह द्वारा भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा सकट मे हो। जबकि सविधानिक तत्र की विफलता की उद्घोषणा तब करता है जब किसी भी कारणवश किसी राज्य मे सविधानिक सरकार नही चल सकती है। इसके लिये युद्ध या सशस्त्र विद्रोह से सबधित कारण आवश्यक नही है। "भारत का सविधान एक परिचय" डी डी बसु पृष्ठ 313 (प्रका प्रेंटिस हाल आफ इडिया प्रालि नयी दिल्ली 1989

3 १९८३ से ही पजाब मे लम्बी अवधि तक राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने का मुख्य कारण आतकवाद था जिसे भारत के पड़ोसी देशो द्वारा बढ़ावा दिया जा रहा था।

352 के अन्तर्गत कार्यवाही की जाती है।[1] इस प्रकार अनुच्छेद 356 म निहित शब्द "स्थिति" की किसी विश्लेषण से नही बॉधा जा सकता हैं। इससे यह स्पष्ट ह कि जानबूझ कर केन्द्र के अधिकार को विस्तृत करने का प्रावधान नही किया गया है। यदि जब तक के प्रयोगो को दखते हुये यह मान भी लिया जाये कि अनुच्छेद 356 बहुत विस्तृत अर्थ लिये हुय ह तब भी यह विचार करने योग्य है कि इसमे दिये गये शब्द सुझाव के तार पर ह। निश्चय ही दिये गये शब्द सीमित हे तथा सरकार को मनमार्नि करने का अधिकार नही प्रदान करते। यही कारण है। कि सरकारिया कमीशन ने यह सुझाव दिया ह कि अनुच्छेद 356 का प्रयाग बहुत कम अवसरा पर तथा अत्यावश्यक मामलो मे ही अतिम उपाय के रूप म उस समय किया जाना चाहिये जब अन्य उपलब्ध सभी विकल्पो मे से राज्य मे सवैधानिक तत्र को विफल होने से न रोका जा सके या उसम कोई सुधार न किया जा सके।[2] इन विकल्पो की उपलब्धता सवधानिक सकट के स्वरूप, उसके कारणा और स्थिति की अत्यावश्यक्ताओ पर निर्भर करेगी। इन विकल्पो को केवल ऐसे अत्यावश्यक मामलो मे छोडा जा सक्ता है, जिसमे केन्द्र द्वारा अनुच्छेद 356 के अधीन तत्काल कार्यवाही न करने के घातक परिणाम हो सकते है।

अब तक जो भिन्न-भिन्न अवसरो पर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया ह उसको देखने से यही प्रतीत होता है कि इस अनुच्छेद का वास्तविक आशय समझने मे शासको द्वारा भूल की गयी है। वास्तव मे इसका प्रयोग समुचित रूप मे नही किया गया है। साथ ही सविधान मे इस अनुच्छेद को रखने के पीछे सविधान निर्माताओ की मूल भावनाओ की अवहेलना की गयी ह,[3] क्योकि अब तक इसे लागू किये जाने के विभिन्न मोको पर केन्द्र द्वारा जो कारण दिये गये हे, वो कभी-कभा तो उचित प्रतीत होते ह। लेकिन अनेका अवसरा पर राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्ति करते हुये प्रतीत होते है। क्योकि केन्द्र ने अपने राजनीतिक फायदे के लिये इसका प्रयोग किया है और अपनी कार्यवाही को उचित

---

1 'लकिन 1978 म किये गये सशाधन के बाद अब ऐसी आतरिक अशाति के आधार पर आपात की उदघोषणा (352 अनु के तहत) वही की जा सकती ह जहा सशस्त्र विद्रोह" के कारण राज्य की सुरक्षा सकट न हा।" डी डी बसु पृष्ठ 315 पूर्वाधृत

2 सरकारिया कमीशन रिपोर्ट भाग 1 केन्द्र राज्य सबध आयोग, परा (6 7 4) पृष्ठ 164

3 क0 एन0 काटजू, पार्लियामेन्ट्री डिबेट्स, वाल्यूम–11, भाग 2, 1953 कॉलम 1892-94

सिद्ध करने क लिये विभिन्न कारण दिये गये ह। जिमसे केन्द्र का कायवाही उचित व सविधान मम्मत प्रतीत हो।

सवधानिक तत्र के असफल होना राज्यो मे विभिन्न कारणो से हो सकता ह आर जिन कारणा से इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होती है वो भिन्न भिन्न आर अतिसूक्ष्म होती ह। अत इस अभिव्यक्ति कि किसी राज्य की सरकार सविधान क अनुसार नही चलायी जा सकती ह ' के अन्तर्गत आने वाली सभी स्थितियो का विस्तार से उल्लेख करना कठिन ह। वास्तव म यह निश्चित करना केन्द्र का कर्तव्य होता है कि किसी राज्य म सवधानिक विफलता की स्थिति तो नही उत्पन्न हो गयी है।

पिछले उदाहरणो को देखते हुये तो निश्चित तार पर इसका वर्गीकरण मुश्किल हे कि किन-किन स्थितिया से राज्य मे सवधानिक तत्र की विफलता का आशय निकाला जाये क्योकि अनगिनत ऐसे उदाहरण भरे पड़े है जबकि उन्ही परिस्थितियो म एक राज्य मे कार्यवाही की गयी आर दूसरे राज्य म नही। फिर भी इस अनुच्छेद की सकल्पना के अन्तगत कानसी स्थितिया म सवधानिक तत्र असफल माना जाये आर कान सी स्थितिया मे न माना जाय, इस बात के उदाहरण निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता ह।

1 राजनीतिक सकट

2 आन्तरिक विद्रोह

3 प्रत्यक्ष रूप से गतिराध उत्पन्न् होना

4 सघ कार्यपालिका के सवधानिक निर्देशो का पालन न करना।

5 वित्ताय कारण।

## I राजनीतिक सकट

एक वडी सख्या मे राष्ट्रपति शासन लगाये जाने का कारण राजनीतिक रहा ह जो की निम्नलिखित स्थितिया मे हो सक्ता ह–

(1) आम चुनावो के बाद कोई भी दल या दला का गठबन्धन विधान सभा मे पूर्ण बहुमत ना प्राप्त कर सके आर राज्यपाल द्वारा सभी सभव विकल्पा की तलाश करने के बावजूद ऐसी स्थिति हो गयी हो, जिसमे किसी ऐसी सरकार का गठन करना मुश्किल हो जाये, जिसे विधान सभा का विश्वास प्राप्त हो। जसा कि केरल मे 1965 मे जबकि चुनावो के बाद किसी

भा दल को स्पष्ट बहुमत नहा प्राप्त हुआ।[1] अत राज्यपाल न राज्य म सरकार बनने की सभावना न होने के कारण राज्य मे राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर दी।

(2) ऐसा सकट उस समय भी उत्पन्न हो सकता ह जबकि राज्य विधान सभा मे बहुमत न मिल पाने के कारण मत्रिमण्डल त्याग पत्र दे दे अथवा उसके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पास हो जाने के कारण राज्यपाल उस बर्खास्त कर दे आर राज्य म वकल्पिक सरकार बनाये जान की कोई सभावना न बची हो जिसे विधान सभा मे विश्वास मत प्राप्त हो सकता हो—

1 यदि किसी राज्य की सरकार, यद्यपि जिसका विधान सभा मे पूर्ण बहुमत हो कुछ समय से जानबूझकर सविधान और कानून की अवहेलना कर रही हो उत्तर प्रदेश म 1995 म असवधानिक गतिविधियो मे लिप्त था[2]

2 यदि किसी राज्य की सरकार जानबूझ कर गतिरोध उत्पन्न करती ह या एसी नीति अपनाती ह जिससे सविधान म परिकल्पित उत्तरदायी सरकार चलाने म गतिरोध उत्पन्न होता हो।

3 यदि राज्य सरकार चाहे वह प्रकट रूप से सवेधानिक तरीके से कार्य कर रही हो किन्तु किसी विशिष्ट उद्देश्य से उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्तो आर परम्पराओ की इसलिये अवज्ञा कर रही हो कि वह उसके स्थान पर तानाशाही ढग से कार्य करना चाहती ह।

---

1 केरल म 1965 म केरल विधान सभा चुनावो मे यद्यपि किसी भी दल का बहुमत नही प्राप्त था परन्तु कम्युनिस्ट पार्टी सबसे बडा विधायक दल था और इसके नता श्रीनम्बूदरीपाद सरकार बनाने तथा अपना बहुमत सिद्ध करने को तैयार थे परन्तु फिर भी सरकार बनाने का अवसर नहीं दिया गया और निर्वाचित विधायको को शपथ दिलवाने से पूर्व ही विधान सभा को भग कर दिया गया जबकि आन्ध्र प्रदेश मे 1954 म व राजस्थान म 1967 म 'सबसे बडे दल क सिद्धान्त' क आधार पर मत्रिमण्डल क गठन का अवसर राज्यपालो द्वारा दिया गया जबकि इन दोनो ही अवसरो पर काग्रस पार्टी को सदन म बहमत नहीं प्राप्त था।

2 उत्तर प्रदश म मुलायम सिह यादव की सरकार द्वारा चलाये जा रह 'हल्ला बोल' कार्यक्रम से स्पष्टत राज्य म अराजकता का माहाल बन गया था। उन्हान केन्द्रीय ग्रहमत्री श्री चव्हाण क निर्देशो का स्पष्टत उल्लघन किया था। लेकिन उनके खिलाफ उस समय कार्यवाही नहीं की गयी थी। 1995 में केरल सरकार पर 1991 मे तमिलनाडु की प्रमुख सरकार पर भी इसी प्रकार के आरोप लगाये गये थे।

4 यदि कोई मत्रिमण्डल चाहे वह उचित रूप से गठित ही क्या न किया गया हो, सविधान के उपबधो का उल्लघन करता ह, या सविधान द्वारा प्राधिकृत ना किये गये प्रयोजनो के लिये अपनी शक्तियो का प्रयोग करता ह उसपर चेतावनियो का असर न हो तो राज्य मे सवधानिक तत्र की विफलता ही माना जायेगा।

5 यदि कोई राज्य सरकार हिंसात्मक क्राति या विद्रोह करने के लिये बढावा दे रहा हो, या विदेशी शक्ति से मिलकर या अकेले हिसक विद्रोह करती हो।

## II प्रत्यक्ष रूप से गतिरोध उत्पन्न होना

कभी-कभी ऐसी भी परिस्थितिया उत्पन्न हो सकती ह, जबकि राज्य सरकार अपने उत्तरदायित्वा के निर्वहन से इनकार कर देता हो अथवा समस्याओ के उत्पन्न होने पर उनको दूर करने मे कोई रुचि नही लेता हो–

1 यदि कोई मत्रिमण्डल चाहे वो लोकप्रिय ढग से चुन कर ही क्यो न सत्तारूढ हुआ हो, आन्तरिक उपद्रव की स्थिति मे कार्यवाही करने से इनकार कर दे[1] या ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर उचित कार्यवाही न करे जिसके परिणामस्वरूप प्रशासन पगु हो जाये आर राज्य की सुरक्षा खतरे मे पड जाये।

2 यदि भूचाल व तूफान, महामारी और बाढ आदि जसी अभूतपूर्व आर गभीर प्राकृतिक आपदाओ से राज्य का प्रशासन पूर्णतया पगु हो जाये आर राज्य की सुरक्षा को खतरा हो साथ ही राज्य सरकार इसको दूर करने के लिये अपनी शासकीय शक्ति का प्रयोग करने की इच्छुक न हो या असमर्थ हो।

---

1 आन्ध्र प्रदेश म 1973 म व उत्तर प्रदश म 1975 म जहाँ काग्रस मत्रिमण्डल सत्तारूढ था क मुख्यमत्रिया ने राज्य मे चल रहे उपद्रवो को रोक पाने म अपनी असमर्थता जतायी थी इसी प्रकार गुजरात मे 1974 म मुख्यमत्री श्री चिमन भाई पटल जो काग्रस के ही थे, ने राज्य म चल रहे आदोलना को रोक पाने मे असमर्थ होने पर त्यागपत्र दे दिया था। 'राज्य व सघ क्षेत्रो मे राष्ट्रपति शासन पृष्ठ 16 लोकसभा सचिवालय 1991

प्राय राज्यपाल को अपने मत्रिमण्डल के परामश से ही विधान सभा भग करने का शक्ति का प्रयोग करना होता ह। परन्तु यदि मत्रिमण्डल का बहुमत न हो तो राज्यपाल उक्त परामश बाध्यकर नहीं होता ह अनुच्छेद 164 (2) की यह अपेक्षा कि मत्रिमण्डल सामूहिक रूप मे विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होगा, पूरी नही होगी। इस सम्बन्ध मे यह उचित होगा कि यदि विधान सभा अपनी सामान्य अवधि से आधी अवधि तक बनी रही हो तो इसे भग किया जा सकता ह। मतदाताओ के राजनीतिक विचार आर राज्य मे विभिन्न राजनीतिक दलो को प्राप्त उनके समर्थन मे पिछले हे चुनावा क बाद तव तक परिवतन हो सकता ह।

ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर राज्यपाल को सभी सगत तथ्या पर ध्यान पूर्वक विचार कर लेने के बाद यह निर्णय लना चाहिये कि चुनाव कराय जाये या नहा। क्योकि बार-बार चुनाव कराने से प्रशासन की निरन्तरता नहीं बनी रहती आर इससे विकास सबधी कार्यकलापो मे व्यवधान आता है। इससे जनता की भावनाये उत्तेजित हो सकती है इसके अलावा अल्पअवधि के अन्तराल के दौरान होने वाले चुनावो का व्यय सहन करने म व्यवस्था असमर्थ होती है। अत सभावित राजनीतिक गडबडी की स्थिति म राज्यपाल को ऐसी सभी सभावनाओ का पता लगाना चाहिये जिससे विधान सभा म बहुमत प्राप्त सरकार बनायी जा सकती हो। और यदि इस प्रकार की सरकार बनाना सभव न हो आर बिना किसी विलम्ब के नये चुनाव कराये जा सकते हो तो ऐसे मत्रिमण्डल को जिसकी अवधि समाप्त होने वाली हो काम चलाऊ सरकार के रूप मे बो रहने देना उचित होगा अनुचित नही। तत्पश्चात राज्यपाल के लिये यह उचित होगा कि सवेधानिक सकट सबधी निर्णय निर्वाचको पर छोडकर विधान सभा को भग कर दे। ऐसी अन्तरिम अवधि के दौरान कामचलाऊ सरकार को कार्य करने की अनुमति होगी। लेकिन नीति सबधी कोई बड़ा निर्णय नही करेगी केवल दनिक कार्य करेगी।

लेकिन उपरोक्त स्थितियाँ न होने पर राज्यपाल के लिये विधान सभा भग कर काम चलाऊ सरकार बनाना उचित नही होगा राज्यपाल विधान सभा को भग किये बिना राष्ट्रपति शासन लागू करने की घोषणा उचित होगी।

III आन्तरिक विद्रोह

अनुच्छेद 355 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सविधान म राज्या की सरकार के "प्रजातात्रिक ससदीय स्वरूप" की रक्षा करने के सघ के कर्तव्य के साथ-साथ राज्यो का भी कर्तव्य ह कि वो राज्य की सरकार को सविधान के उपबन्धो के प्रतिकूल या निष्ठाहीन तरीके स न चलाये। इसी सिद्धान्त को दृष्टि मे रखते हुये नीचे कुछ ऐसी परिस्थितियो का उल्लेख किया गया ह, जिससे आन्तरिक विद्रोह के कारण सवेधानिक व्यवस्था भग हो सकती ह।

ऐसी परिस्थिति को दो भागो मे बॉटा जा सकता ह, पहला/ जबकि विधान सभा मे बहुमत की सभावना न होने पर मत्रिमण्डल स्वय त्यागपत्र दे देता ह जसाकि बिहार में 1969 मे, उडीसा मे 1973 मे आर आन्ध्र मे 1954 मे हुआ। लेकिन इन सभी मामलो म राज्यपाल ने विपक्षी दलो द्वारा बहुमत के समर्थन का दावा पेश करने के बाद भी वेकल्पिक मत्रिमण्डल के निर्माण के लिये कोई कदम नही उठाया।

दूसरा/ जबकि बहुमत प्राप्त मत्रिमण्डल को केन्द्र इशारे पर बर्खास्त कर दिया जाये जसा पेप्सू मे 1953 मे, केरल म 1959 म, हरियाणा म 1967 म और 1992 मे हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान मे किया गया।

3 ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर जबकि विधान सभा म बहुमत प्राप्त पार्टी मत्रिमण्डल का गठन करने अथवा सत्ता मे बने रहने से इनकार कर दे आर विधान सभा मे बहुमत प्राप्त बहुत से दल मिलाकर मत्रिमण्डल का गठन करने के राज्यपाल के सभी प्रयास असफल हो गये हो।

ऐसी स्थिति आन्ध्र प्रदेश मे 1973 मे उत्पन्न हुयी जबकि मत्रिमण्डल को सदन मे बहुमत प्राप्त था। राज्य के तेलगाना क्षेत्रो को पृथक करने के प्रश्न का लेकर दल मे विभाजन की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी।[1]

---

1 राष्ट्रपति को राज्यपाल का प्रतिवेदन, 17 1 73 तथा लोकसभा वाद विवाद, 28 2 73 कॉलम—230–231

ऐसी ही उदाहरण उत्तर प्रदेश को 1973 का मिलता ह जबकि मुख्यमत्री श्री कमलापति त्रिपाठी ने उस समय त्यागपत्र दे दिया था जबकि राज्य विधान सभा म उन्ह पूर्ण बहुमत प्राप्त था। क्योकि राज्य मे पी एसी की अनुशासन हीनता सबधी कठिनाइया के कारण राज्य के प्रशासन के निष्पादन तथा मनोबल पर प्रतिकूल प्रभाव पडा था। मुख्यमत्री का विचार था कि सघ सरकार द्वारा प्रत्यक्ष सत्ता अपने हाथ मे लेने से शाति स्थापित करने तथा राज्य की सुरक्षा बनाये रखने म सहायता मिलेगी।[1]

उपरोक्त सभी स्थितियो मे अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने से पहले राज्यपाल के पास एक या इससे अधिक विकल्प हो सकते ह। वह विधान सभा को भी भग कर सकता ह ताकि नये चुनाव करवाये जा सके आर मतदाताओ द्वारा राजनीतिक गतिरोध को समाप्त किया जा सके।

जसी की स्थिति दूसरे खण्ड मे दर्शायी गयी है, उल्लिखित स्थिति आने पर राज्यपाल ऐसे मत्रिमण्डल को जिसकी अवधि समाप्त होने वाली ह, उतनी अवधि के लिये कामचलाऊ सरकार बनाकर सरकार चलाने के लिये कह सकता है, जब तक नये चुनाव न हो जाये आर नया मत्रिमण्डल कार्यभार न सभाल ले। परन्तु इन विकल्पो की वधता एक अलग विषय है, और उनका औचित्य या व्यवहार्यता दूसरा विषय।

## IV सघ के सवैधानिक निर्देशो का पालन न करने पर

उपरोक्त स्थितियो मे ही केवल सवैधानिक तत्र की विफलता नहीं मानी जायेगी अपितु केन्द्र सरकार द्वारा दिये गये निर्देशो का पालन न करने पर भी केन्द्र को सविधान के अन्तर्गत कार्यवाही का अधिकार प्रदान किया गया है।

(1) सविधान के किसी उपबध के अन्तर्गत जैसे अनुच्छेद 256 257 और 339 (2) या आपात् स्थिति के दारान अनुच्छेद 253 के अन्तर्गत यदि सघ सरकार अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करते हुये कोई निर्देश जारी करे और पर्याप्त चेतावनी आर अवसर देने के बावजूद राज्य सरकार उसका पालन न करे और साथ ही अनुच्छेद 365 के अन्तर्गत राष्ट्रपति यह समझता हो कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है जिसमे अनुच्छेद 356 मे उल्लिखित कार्यवाही की जा सकती ह।

---

1 लोकसभा वाद विवाद, 23 7 73, कॉलम 254–255

(2) यदि किसी भी स्तर की लोक अव्यवस्था फलाने के कारण राज्य की सुरक्षा को खतरा हो तो राज्य सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस अव्यवस्था की सूचना संघ सरकार को दे और यदि राज्य सरकार इस सम्बन्ध में संघ को सूचना न दे सके तो इस प्रकार से सूचित न करने से संघ सरकार की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में बाधा उत्पन्न की है। यह माना जा सकता है और ऐसी स्थिति में संघ सरकार का अनुच्छेद 257 (1) के अन्तर्गत उपयुक्त निर्देश दे देना उचित होगा। यदि राज्य सरकार संघ कार्यपालिका द्वारा अनुच्छेद 257 (1) के अन्तर्गत दिये गये निदेशों का पर्याप्त चेतावनी देने के बावजूद पालन न करे तो राष्ट्रपति के लिये यह समझना उचित होगा कि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत कार्यवाही की जा सकती है।

## V आर्थिक अस्थिरता

संविधान सभा में श्री के संथानम ने भविष्यवाणी की थी कि आर्थिक आधार भी राष्ट्रपति शासन लागू करने का एक महत्वपूर्ण कारण बन सकता है। यद्यपि केवल आर्थिक आधार पर कार्यवाही करने का एक मात्र कारण नहीं बन सकता लेकिन अन्य कारणों के साथ एक महत्वपूर्ण कारण अवश्य बन सकता है। 1959 में केरल में जबकि राज्य सरकार के खिलाफ इस आधार पर कार्यवाही की गयी थी कि राज्य की वित्तीय स्थिति बहुत खराब हो गयी है क्योंकि राज्य ने रिजर्व बैंक से ओवर ड्राफ्ट लिया है, जबकि सच्चाई यह थी कि केवल केरल में ही यह स्थिति नहीं थी अन्य दूसरे राज्यों की भी यही स्थिति थी। उडीसा मे 1961 मे वित्त मंत्री श्री आर.एन सिंह देव ने उस समय तक विधान सभा में बजट प्रस्तुत करने से इनकार कर दिया जब तक कि कांग्रेस गणतन्त्र परिषद के गठबन्धन के बने रहने का आश्वासन नहीं प्राप्त हो जाता।[1] पश्चिम बंगाल में राज्यपाल श्री धर्मवीर ने जब राज्य मे राष्ट्रपति शासन की सिफारिश की तब उन्होंने उन कठिनाइयो

---

1 'राजीव धवन, प्रैसीडेन्ट्स रुल इन द स्टेट्स, बाम्बे, एन0 एम0 त्रिपाठी प्रा0 लि0,1979, पृष्ठ—112-113

का भी जिक्र करना आवश्यक समझा जो कि उन्हे राज्य बजट पास करने मे उठानी पड रही थी, क्योकि अध्यक्ष ने विधान सभा को अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर दिया था, जबकि विधान सभा को बजट पर तथा महत्वपूर्ण अध्यादेशो को नियमित करने के लिये विल लाना आवश्यक था।

विहार मे 1968 मे राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट मे यह इगित किया कि राज्य म राष्ट्रपति शासन इसलिये अनिवार्य ह क्योकि जिससे उन्हे उन आवश्यक कदम उठाने का मौका मिले सके, जिससे पहली जुलाई 1968 से पहले राज्य की आकस्मिक निधि मे मे धन निकाल सके।

पजाब मे 1968 मे गभीर स्थिति उत्पन्न हो गयी जबकि अध्यक्ष श्री जोगिन्दर सिह मान ने विधान सभा को स्थगित कर दिया। राज्यपाल ने ऐसी स्थिति म अपने अधिकारो का प्रयोग करते हुये वित्तीय अध्यादेश जारी किया। और विधान सभा का सत्र बुलाया आर आदश दिया कि सदन विल पर तथा अन्य आर्थिक मामलो पर विचार करे। आर यह सब अध्यक्ष द्वारा सभा का स्थगन करने के दारान किया जा रहा था।[1] 18 मार्च 1968 का जबकि सभा पुन एकत्रित हुयी तब अध्यक्ष ने पुन व्यवस्था दी कि वे सभा को स्थगित कर चुके हे अत कानूनन कार्यवाही नही हो सकती है। तत्पश्चात आर्थिक मामलो पर विचार करने हेतु उपाध्यक्ष को सदन की अध्यक्षता करनी पडी। इसी दौरान पजाब उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय म यह व्यवस्था दी कि यद्यपि राज्यपाल विधान सभा को पुन बुलाने का ओदश दे सकता ह लेकिन चूँकि अध्यक्ष ने सदन को पुन स्थगित करने की व्यवस्था दी थी अत इस दोरान सदन द्वारा जो भी कार्यवाही की गयी थी वो असवधानिक थी लेकिन उच्च न्यायालय के उक्त फैसले को सर्वोच्च न्यायालय ने उलट दिया क्योकि राज्य मे आर्थिक गत्यावरोध की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी जबकि ऐसी स्थिति म अध्यादेश जारी करना आवश्यक था।[2] गुजरात मे 1971 मे राज्यपाल द्वारा मुख्यमत्री को यह सलाह दी गयी कि वो विधान सभा को भग करने की सस्तुति कर दे ताकि आगामी वर्ष के लिये बजट पास किया जा सके।

1 दलबदल आर राज्यो का राजनीति, सुभाष सी0 कश्यप', पृष्ठ–276 मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।

2 वही पृष्ठ–280

प्रत्येक राज्य की सरकार के लिये आर्थिक मामला महत्वपूर्ण होता है। प्रत्येक राज्य की सरकार व जनता के प्रति जवाबदेह होती है और उसे बजट पास करना आवश्यक होता है। बजट पास करने को राजनीतिक मुद्दा बनाया जाता है। हर बार ऐसी स्थिति उत्पन्न की जाती है जिससे सरकार बजट न पास करा सके। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि कभी-कभी यह राज्य के राजनीतिज्ञों द्वारा किया जाता है और कभी-कभी यह सरकार और विपक्ष के उन राजनीतिज्ञों द्वारा किया जाता है, जिससे राज्य में विवाद उत्पन्न किया जा सके, ताकि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत कार्यवाही करने का आधार बने। यद्यपि इस प्रकार की आर्थिक परिस्थितियाँ बहुत अधिक नहीं उत्पन्न होती जिनके आधार पर कार्यवाही की जाय, लेकिन फिर भी अनुच्छेद 356 के लिये इसको बार-बार आधार बनाना उचित नहीं होगा।

इसमे कोई शक नहीं कि कुछ ऐसे राज्य मे जहाँ राष्ट्रपति शासन कानून व व्यवस्था की गम्भीर स्थिति उत्पन्न होने प्रशासनिक और आर्थिक स्थिति का वास्तविक सङ्कट उत्पन्न होने पर ही लागू किया गया।

## व्यापक व्याख्या

अनुच्छेद 356 को व्यापक व्याख्या बहुत विस्तार से नहीं की जा सकती, क्योंकि इसके अन्तर्गत उन स्थितियो को रखा जा सकता है जबकि केन्द्र सरकार ने उपरोक्त स्थितियो के ना होने पर भी इस धारा का प्रयोग किया है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रारम्भ में न्यायालय ने भी केन्द्र के कथित अधिकारो मे हस्तक्षेप से बचने का प्रयत्न किया था। उसके अनुसार, अनुच्छेद 356 का प्रयोग वास्तव मे केन्द्रीय कार्यपालिका द्वारा लिया गया एक राजनैतिक निर्णय है।[1] लेकिन बाद के वर्षो मे न्यायालयों ने अपने पूर्व के दृष्टिकोण को बदलते हुये कार्यपालिका के अधिकारो मे हस्तक्षेप किया है। 'बोम्बई बनाम भारत सघ' के मामले में न्यायालय का मत था कि यद्यपि अनुच्छेद 74 (2) में न्यायालय राष्ट्रपति को दी गयी सलाह की जॉच नहीं कर सकता तथापि न्यायालय का मानना है कि जिन तथ्यों के आधार पर ऐसी उद्घोषणा की गयी है वो उस सलाह का भाग नहीं माना

1 राजस्थान बनाम भारत सघ एआई आर 1977 (एससी 1361) परा 147

जा सकता। अत न्यायालय अनुच्छेद 356 की वधता की जॉच कर सकता ह।[1] न्यायालय ने यद्यपि केन्द्रीय कार्यपालिका द्वारा अनुच्छेद 356 का मनमाना प्रयोग करने पर रोक लगाने का अवश्य प्रयत्न किया ह, लेकिन न्यायालय ने अपने इसी निर्णय द्वारा दुरुपयोग करने का अधिकार भी केन्द्र को सुर्पुद कर दिया ह जोकि काफी विवादास्पद ह।[2]

वास्तव म केन्द्र को प्रदत्त शक्ति का क्षेत्र काफी व्यापक हे। यहाँ कुछ ऐसी स्थितियो का उल्लेख किया जा रहा ह जबकि यद्यपि अनुच्छेद 356 के प्रयोग को उचित नही ठहराया जा सकता परन्तु इसका प्रयोग किया गया हे।

1 किसी राज्य मे कुशासन का मामला जहाँ विधिवत रूप से गठित मत्रिमण्डल जिसे विधान सभा मे बहुमत का समर्थन प्राप्त हो, कार्य कर रहा हो जसा कि केरल मे 1959 का मामला, तमिलनाडु मे 1976 मे प्रमुख मत्रिमण्डल का बहुमत होने के बावजूद उसपर शक्तियो के दुरूप्रयोग करने भ्रष्ट कार्यो म लिप्त रहना तथा 'आपातकाल' के दारान सम्परशिप सबधी सघ के अनुदेशो को लागू ना करने सबधी आरोपा क आधार पर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था,[3] जबकि इन सभी आरोपो की पुष्टि नहा हो पायी थी। 1992 म भाजपा शासित राज्य सरकारो को भी राज्य मे प्रतिबधित सगठनो पर रोक लगाने मे असमर्थता के आरोप के आधार पर ही हटाया गया था। वास्तव म इन मामला को उस श्रेणी मे रख सकते है जबकि ऐसी स्थिति मे राष्ट्रपति शासन लागू करना उस प्रयोजन से असगत होगा, जिसके लिये अनुच्छेद 356 म शक्ति प्रदान की गयी ह। सविधान निर्माताओ ने भी यह सुनिश्चित रूप से स्पष्ट किया है कि इस शक्ति का प्रयोजन यह नही हे कि इसे अच्छी सरकार बनाने के प्रयोजन के लिये किया जाये।

---

1 एस आर बोम्बई बनाम भारत सघ ए आई आर 1994 1970 एस सी (परा 57)

2 1992 का विवादित ढाचे के मुझे पर भाजपा की चार राज्य सरकारो का केन्द्र सरकार द्वारा बर्खास्त करने की कार्यवाही का सर्वोच्च न्यायालय ने समर्थन किया जबकि कार्यवाही का मूल आधार ही गलत था-- विस्तार के लिये देखे अध्याय पॉच

3 दि ट्रिब्यून 1 अप्रैल 1973, पृष्ठ 9

2 यदि कोई मत्रिमण्डल त्यागपत्र दे देता ह या उसे बहुमत ना होने के कारण बर्खास्त कर दिया जाता ह। और राज्यपाल किसी वेकल्पिक सरकार की सभावना की जॉच किये विना राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर देता ह।

आन्ध्र प्रदेश मे 1954 मे काग्रेस मत्रिमण्डल के विरुद्र अविश्वास प्रस्ताव पास हो जाने के कारण पतन हो गया। परिणामस्वरूप विपक्षी गठबन्धन प्रजा समाजवादी पार्टी तथा साम्यवादी दलो ने राज्यपाल के समक्ष सरकार बनाने का दावा किया, जिसे राज्यपाल ने अस्वीकार कर राष्ट्रपति शासन लागू करने की सस्तुति कर दी थी। इसी प्रकार 1965 म केरल मे, राजस्थान मे 1967 मे उडीसा मे 1971 व 1973 म आदि एसा उदहारण ह जबकि वकल्पिक सरकार बनने की स्थितियाँ होने के बावजूद सरकार बनाये जाने का प्रयत्न नही, किया गया।

3 विधिवत् गठित मत्रिमण्डल को हटाने के लिये आर राज्य विधान सभा को केवल इस आधार पर भग करने के लिये कि लोक सभा के आम चुनावा मे राज्य की सत्ताधारी पार्टी की बुरी तरह हार हुयी है, अनुच्छेद लागू किया जाना। ऐसी स्थिति 1977 व पुन 1980 मे उत्पन्न हुयी 1977 मे चुनावो के पश्चात जनता पार्टी को समस्त उत्तर भारत म भारी विजय मिली, जिसके परिणामस्वरूप जनता सरकार जो केन्द्र मे पहली बार सत्तारूढ हुयी थी, ने काग्रेस शासित ना राज्यो की सरकारो को बिना राज्यपाल क प्रतिवेदन के बर्खास्त कर दिया कारण था उन राज्यो के निर्वाचको ने सरकार के विरुद्ध मत दिया ह। इसी की पुनरावृत्ति 1980 मे हुयी जबकि काग्रेस पार्टी पुन अपार बहुमत से केन्द्र म सत्तारूढ़ हुयी उसने भी जनता सरकार द्वारा किये गये कृत्य का ही अनुसरण करते हुये ना राज्यो की विधान सभाओ को भग कर दिया जबकि इन दोना ही अवसरा पर 'सवधनिक तत्र की विफलता' जसी कोई बात नही थी। निश्चित रूप ये दोना हा कार्यवाही राजनतिक बदल का परिणाम थी।

4 ऐसे भी उदाहरण दिये जा सकते हे, जबकि विधिवत रूप से गठित मत्रिमण्डल जिसे सदन म ना हराया गया हो, के परामर्श के बावजूद राज्यपाल विधान सभा को भग करने से इनकार कर देता है और मत्रिमण्डल को सदन मे बहुमत की जॉच करवाने और

बहुमत के प्रदर्शन का अवसर दिये बिना केवल अपने ही व्यक्तिगत मूल्याकन के आधार पर कि मत्रिमण्डल को बहुमत का विश्वास प्राप्त नही हो सकता, उसको बर्खास्त करने और राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर सकता ह।

1977 म कर्नाटक मे काग्रेस को विधान सभा म पूर्ण बहुमत का समर्थन प्राप्त था। लेकिन मुख्यमत्री श्री देवराज अर्स को काग्रस की सदस्यता से निलम्बित कर दिया गया था अत वो काग्रेस विधायक पार्टी के नेता नही रहे गये थे। लेकिन मुख्यमत्री ने दावा किया था कि उन्हे विधान सभा मे बहुमत का समर्थन प्राप्त हे तथा इस बात की जॉच सदन मे की जानी चाहिये लकिन राज्य म राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर दी गयी, जो कि निश्चित तार पर केन्द्र के ही इशारे पर किया गया था, क्योकि उस समय जनता पार्टी केन्द म सतारूढ थी। इसी प्रकार की कार्यवाही 1968 म हरियाणा म व पश्चिम बगाल 1970 मे की गयी थी।

राज्या म राष्ट्रपति शासन लागू करने के अनेको कारण रहे ह। न्यायालय ने यद्यपि समय-समय पर अपने निर्णयो द्वारा इसको निश्चित सीमा म बॉधने का प्रयास किया ह तथापि ससदीय प्रणाली मे जहॉ ससद व विधान मण्डल का गठन जनता के चुने हुये प्रतिनिधियो द्वारा होता ह, वहॉ तथा सरकार का गठन भी उसी गुट से होता है, जिसे विधान सभा म सार्वाधिक विधायको का समर्थन प्राप्त होता ह, अत यह कार्यपालिका पर ही निर्भर करता ह कि वो ससदीय प्रणाली की मूल भावना को बचाये रखे तथा उन मूलभूत सिद्धान्तो का पालन करे, जिससे हमारी सघीय प्रणाली का मूलभूत ढॉचा सुरक्षित रह सके।

## विधान सभाओ को राष्ट्रपति शासन के दौरान भग अथवा निलम्बित करना

राज्या म अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा करने के पश्चात या तो विधान सभा को पूर्णत विघटित कर दिया जाता ह अथवा उस कुछ अवधि के लिये निलम्बित कर दिया जाता ह। निलम्बन का तात्पर्य ह कुछ अवधि के लिय विधायिका को उसके अधिकारा और शक्तियो से वचित कर देना अर्थात् ऐसी अवस्था मे विधान सभा का पुर्नजीवन सभव होता ह। लेकिन जब राष्ट्रपति की उद्घोषणा द्वारा विधान सभा भग कर दी जाती हे तो उसका तात्पर्य हे विधायिका का जीवन समाप्त कर देना, उसकेअधिकारा और शक्तियो के प्रयोग से पूर्णत वचित कर देना। क्योकि यदि विधान सभा भग करने की घोषणा की जाती है तब

ऐसी अवस्था म पुन नये चुनावा के माध्यम से ही उसे बहाल किया जा सकता ह। हाल ही मे सर्वाच्च न्यायालय ने अपने निर्णय मे राज्य मे राष्ट्रपति शासन की उदघोषणा के साथ विधान सभा भग किये जाने को अनुचित बताया ह। न्यायालय का विचार ह कि ससदीय प्रणाली मे ससद की सर्वाच्चता के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाना चाहिये। अत जब तक ससद राष्ट्रपति शासन सबधी उद्घोषणा पर अपनी स्वीकृति नही दे देती तब तक विधान सभा को भग किया जाना अनुचित होगा क्योकि विधान सभा भग किये जाने के पश्चात उसका पुर्नजीवन सभव नही होगा जबकि केवल निलम्बित रखे जाने पर यह ससद के निर्णय का विषय होगा कि यदि घोषणा का आधार उचित नही ह, उस स्थिति म उसको बहाल किया जा सकता ह।

## राज्यो मे राष्ट्रपति शासन की घोषणा सबधी चार्ट

विभिन्न राज्यो को बार-बार राष्ट्रपति शासन के अधीन रखे जाने की सूची अग्रलिखित ह—

| *राज्य* | *उद्घोषणा तिथि* | *उद्घोषणा समाप्ति तिथि* | *उद्घोषणा की अवधि* |
|---|---|---|---|
| *(1) पजाब (पेप्सू)* | *20 6 51 (निलम्बन)* | *17 4 52* | *302 दिन* |
| | *4 3 53 (भग)* | *7 3 54* | *378 दिन* |
| | *5 7 66 (निलम्बन)* | *1 11 66* | *118 दिन* |
| | *23 8 68 (भग)* | *17 2 69* | *178 दिन* |
| | *15 6 71 (भग)* | *17 3 72* | *280 दिन* |
| | *30 4 77 (भग)* | *20 6 77* | *51 दिन* |
| | *17 2 80 (भग)* | *7 6 80* | *105 दिन* |
| | *6 10 83 (भग)* | *29 9 85* | *721 दिन* |
| | *11 5 87 (भग)* | *22 2 92* | *1733 दिन* |
| *(2) केरल (त्रावणकोरकोचीन)* | *23 3 56 (भग)* | *5 4 57* | *378 दिन* |
| | *31 7 59 (भग)* | *22 2.60* | *206 दिन* |
| | *10 9 64 (भग)* | *24 3 65* | *145 दिन* |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | 24 3 65 (भग) | 6 3 67 | 712 दिन |
| | 4 8 70 (भग) | 3 10 70 | 64 दिन |
| | 5 12 79 (भग) | 25 1 80 | 51 दिन |
| | 21 10 81 (निलम्बन) | 28 12 81 | 68 दिन |
| | 17 3 82 (भग) | 24 5 82 | 68 दिन |
| (3) उत्तर प्रदेश | 23 2 68 (भग) | 23 2 69 | 367 दिन |
| | 1 10 70 (निलम्बन) | 18 10 70 | 18 दिन |
| | 13 6 73 (निलम्बन) | 18 11 73 | 158 दिन |
| | 30 11 75 (निलम्बन) | 21 1 76 | 52 दिन |
| | 30 4 77 (भग) | 23 6 77 | 51 दिन |
| | 17 2 80 (भग) | 9 6 80 | 107दिन |
| | 7 12 92 (भग) | 4 12 93 | 358 दिन |
| | 24 11 95 (नि० पुन भग) | जारी | — |
| (4) बिहार | 29 6 68 (भग) | 26 2 69 | 246 दिन |
| | 4 7 69 (निलम्बन) | 16 2 70 | 227 दिन |
| | 9 1 72 (भग) | 19 3 72 | 70 दिन |
| | 30 4 77 (भग) | 24 6 77 | 51 दिन |
| | 17 2 80 (भग) | 8 6 80 | 106 दिन |
| | 18 3 95 (भग) | 4 4 93 | 17 दिन |
| (5) उडीसा | 25 2 61 (भग) | 23 6 61 | 118 दिन |
| | 11 1 71 (भग) | 3 4 71 | 82 दिन |
| | 3 3 73 (भग) | 6 3 74 | 368 दिन |
| | 16 12 76 (निलम्बन) | 29 12 76 | 43 दिन |
| | 30 4 77 (भग) | 26 6 77 | 53 दिन |
| | 17 2 80 (भग) | 9 6 80 | 107 दिन |
| (6) मणिपुर | 21 1 72 (भग) | 20 3 72 | 59 दिन |
| | 28 3 73 (भग) | 4 3 74 | 341 दिन |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | 16 5 77 (निलम्बन) | 29 6 77 | 43 दिन |
| | 14 11 79 (भग) | 13 1 80 | 59 दिन |
| | 28 2 81 (निलम्बन) | 19 6 81 | 111 दिन |
| | 31 12 93 (भग) | 13 12 94 | 347 दिन |
| (7) कर्नाटक (मसूर) | 27 3 71 नि० पुन भग | 20 3 72 3 | 59 दिन |
| | 31 12 77(भग) | 27 2 78 | 60 दिन |
| | 21 4 89 (भग) | 30 11 89 | 234 दिन |
| | 10 10 90 (निलम्बन) | 17 10 90 | 8 दिन |
| (8) गुजरात | 13 5 71 (भग) | 17 3 72 | 313 दिन |
| | 9 2 74 (नि० पुन भग) | 8 6 75 | 494 दिन |
| | 12 3 76 (निलम्बन) | 4 12 76 | 287 दिन |
| | 17 2 80 (भग) | 7 6 80 | 115 दिन |
| (9) असम | 12 12 79 (निलम्बन) | 6 12 80 | 359दिन |
| | 30 6 81 (निलम्बन) | 13 1 82 | 167 दिन |
| | 19 3 82 (भग) | 27 2 83 | 362 दिन |
| | 27 11 90 (निलम्बन) | 30 6 91 | 241 दिन |
| (10) राजस्थान | 13 3 67 (निलम्बन) | 26 4 67 | 44 दिन |
| | 30 4 72 | 2 6 77 | 49 दिन |
| | 17 2 80 (भग) | 6 6 80 | 104 दिन |
| | 16 12 92 (भग) | 4 12 93 | 358 दिन |
| (11) तमिलनाडु | 30 1 76 (भग) | 30 6 77 | 153 दिन |
| | 17 2 80 (भग) | 9 6 80 | 107 दिन |
| | 30 1 88 (भग) | 27 1 89 | 363 दिन |
| | 30 1 91 (भग) | 24 6 91 | 147 दिन |
| (12) पश्चिम बगाल | 30 2 68 (भग) | 25 2 69 | 371 दिन |
| | 19 3 70 (नि० पुन भग) | 2 4 71 | 377 दिन |
| | 29 6 71 (भग) | 20 3 72 | 261 दिन |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | 30 4 77 (भग' | 21 6 77 | 48 दिन |
| (13) हरियाणा | 21 11 67 (भग) | 21 5 68 | 181 दिन |
| | 30 4 77 (भग) | 21 6 77 | 48 दिन |
| | 6 4 91 (भग) | 23 6 91 | 76 दिन |
| (14) हिमाचल प्रदेश | 30 4 77 (भग) | 22 6 77 | 49 दिन |
| | 16 12 92 (भग) | 3 12 93 | 357 दिन |
| (15) जम्मू व कश्मीर | 7 9 86 (निलम्बन) | 6 11 86 | 63 दिन |
| | 18 7 90 (भग) | जारी | — |
| (16) आन्ध्र प्रदेश | 15 11 54 (भग) | 28 3 55 | 128 दिन |
| | 18 1 73 (निलम्बन) | 10 12 73 | 326 दिन |
| (17) मध्य प्रदेश | 30 4 77 (भग) | 23 6 77 | 50 दिन |
| | 17 2 80 (भग) | 9 6 80 | 104 दिन |
| | 16 12 92 (भग) | 17 12 93 | 368 दिन |
| (18) नागालेण्ड | 22 3 75 (नि० पुन भग) | 25 1 77 | 578 दिन |
| | 7 8 88 (भग) | 25 1 89 | 141 दिन |
| | 3 4 92 (भग) | 22 2 93 | 322 दिन |
| (19) सिक्किम | 18 8 79 (भग) | 17 10 79 | 59 दिन |
| | 25 5 84 (भग) | 8 3 85 | 286 दिन |
| (20) त्रिपुरा | 21 1 72 (भग) | 20 3 72 | 59 दिन |
| | 5 11 77 (भग) | 4 1 78 | 60 दिन |
| | 11 3 93 (भग) | 10 4 93 | 30 दिन |
| (21) गोवा | 14 12 90 (निलम्बन) | 25 1 91 | 42 दिन |
| (22) महाराष्ट्र | 17 2 80 (भग) | 9 6 80 | 104 दिन |
| (23) मिजोरम | 7 9 88 (भग) | 24 1 89 | 139 दिन |
| (24) मेघालय | 11 10 91 (भग) | 19 2 93 | 465 दिन |

कन्द्र शासित दल के हिता को ध्यान मे रखते हुये राज्या मे सवैधानिक तत्र के विफल होने की घोषणा करते समय विधान सभाओ को निलम्बित अथवा विघटित करने के सबन्ध

म भी अनुच्छेद 356 का दुरूपयोग किया गया ह। जब कभी भी कन्द्र शासित दल को यह विश्वास होता ह कि विधान सभा को निलम्बित करके विपक्ष के विधायको को दल बदल का प्रलोभन देकर अपने दल का बहुमत विधान सभा म प्राप्त कर लेगा तब विधान सभा को निलम्बित कर दिया जाता ह आर जब इस प्रकार की आशा नही होती उस स्थिति म राज्य विधान सभा का भग किया जाता ह।

राज्य म राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा के बाद राज्य म विधान सभा को निलम्बित रखा जाये अथवा भग कर दिया जाये, यह प्रश्न पूर्णत कन्द्र म सत्तारूढ़ शासक दल की इच्छा पर निर्भर करता है। इस प्रकार विधान सभाओ के जीवन का मामला पूर्णत केन्द्रीय सत्तारूट दल के राजनीतिक हिता के सवर्धन का विषय बन गया ह।

सरकारिया आयोग ने भी विधान सभा भग करन की कारवाही को अनुचित बताया ह। आयोग का विचार ह कि यदि परिस्थितियाँ बहुत विपरीत ना हो तो राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा बिना विधान सभा भग किये ही की जानी चाहिये।[1]

विधान सभा के निलम्बन और भग करने के प्रश्न पर राजनीतिज्ञो म बहुत मतभेद ह। किसी ने विधान सभा के भग करने की कार्यवाही का समर्थन किया ह, जबकि कुछ अन्य नेताओ का विचार है कि राज्य मे सवैधानिक मशीनरी के भग होने की अवस्था म विधान सभा का विघटन उचित नही ह वरन् यदि विकल्प की सरकार बनने की सभावना हो तो ऐसी परिस्थितियो मे विधान सभा निलम्बित ही की जानी चाहिये।

इस सबध मे 1990 के कर्नाटक के मामले को लिया जा सकता ह जहाँ केवल 8 दिना के विधान सभा निलम्बित रख कर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था, क्योकि काग्रेस अध्यक्ष श्री राजीव गाधी व मुख्यमत्री श्री वीरेन्द्र पटिल के मध्य मतभेद ना जान के कारण राज्य म राजनीतिक असमजसता व्याप्त हो गयी थी। जिसका असर राज्य की प्रशासनिक मशीनरी पर पड रहा था, अतत जनता दल सरकार जो उस समय केन्द्र म सत्तारूट दल थी, ने स्थिति का राजनीतिक लाभ उठाने हेतु राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया था तथा विधान सभा निलम्बित

---

1 सरकारिया आयोग रिपोर्ट भाग-1 पृष्ठ 766।

रखी थी लेकिन अतत राजनैतिक दबाव के कारण वे अपने इरादा म सफल नही हो पायी। अब तक कुल 25 बार विधान सभाय निलम्वित रखी गयी ह। यद्यपि कुछ ऐंसे भी उदाहरण मिलते ह जबकि विधान सभाये पहले तो निलम्वित रखी गयी आर बाद म उन्हे भग कर दिया गया क्याकि वहाँ वहाँ वैकल्पिक मत्रिमडल बनने की सभावना नही थी।

उदाहरण के लिये राजस्थान मे 1967 मे, उत्तर प्रदेश 1970 म, उड़ीसा मे 1971 मे, आसाम म 1979 मे, पजाब मे 1983 मे विधान सभाय को इसलिये निलम्बित किया गया था ताकि वहाँ पर काग्रेस पार्टी को सरकार बनाने का अवसर प्राप्त हो सके परन्तु इसके विपरीत आन्धप्रदेश मे 1954 मे, केरल मे 1965,1970 व 1982 म, मणिपुर मे 1969, त्रिपुरा तथा पश्चिम बगाल मे 1971 म, उडीसा मे 1973 आसाम मे 1982 मे, विधान सभाओ को इसलिये भग कर दिया गया था ताकि वहाँ पर विपक्ष की सरकार ना बन सके।

कुछ ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते है जबकि कुछ राज्यो म विपक्ष की सरकारा को बर्खास्त करने के पश्चात् केन्द्रीय सरकार ने तुरत विधान सभाओ को भग कर दिया। ऐसा पेप्सू म 1953 मे, केरल म 1959 मे, हरियाणा मे 1967 म, तमिलनाडु म 1976 म, कर्नाटक मे 1977 व 1979 मे पाडिचेरी मे 1978 तथा अन्य नौ राज्यो मे 1980 [1] मे किया गया। ऐसा इसलिये किया गया क्योकि इन राज्यो मे विधान सभा मे सत्तारूढ़ दल का ही बहुमत था आर वहाँ पर काग्रेस पार्टी की सरकार बनने का कोई अवसर नही था। यहाँ पर यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि 1965 मे केरल मे मध्यावधि चुनाव के तुरत बाद तथा नव निर्वाचित विधायको के पद की शपथ ग्रहण करने के पूर्व ही विधान सभा को भग का दिया गया था।

इस प्रकार इस प्रश्न का उत्तर देना कि विधान सभाये कब निलम्वित होनी चाहिये अथवाव कब भग की जानी चाहिये, राष्ट्रपति शासन के अब तक के इतिहास से यही प्रतीत होता ह कि इस सबध मे कोई निश्चित मापदण्ड नही अपनाया गया है। मुख्यमत्री पद के लिये विवाद को दूर करने के लिये विधान सभा निलम्वित रखी गयी।[2]

---

1 एशियन रिकार्डर,वाल्यूम 26ए न 12 मार्च 16-20, 1980,पृष्ठ 15361

2 उत्तर प्रदेश 1973 व 1975,व आन्ध्र प्रदेश 1973 के मामला स इसी बात की पुष्टि होती ह । — ज आर सिवाच, पॉलिटिक्स ऑफ दि प्रेसीडट रुल इन इण्डिया, पृष्ठ 523, पूर्वोधृत

कनाटक के 1990 मामले म निलम्बन के पीछ जो मुख्य ध्येय था कि सत्ता म बठी राष्ट्रीय मोर्चा सरकार दल बदल के माध्यम से राज्य म सरकार का गठन करना चहती थी, लेकिन ऐसा कर सकने मे असफल रहने पर उसे राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा वापस लेनी पडी आर पुन काग्रेस दल द्वारा नये नेता का चुनाव करने पर उसे मुख्यमत्री के पद की शपथ दिलायी गयी।

यद्यपि उपरोक्त मामले मे गभीर राजनीतिक स्थिति उत्पन्न हो गयी थी क्योकि मुख्यमत्री भी श्री वीरेन्द्र पाटिल के विरुद्ध असतुष्टो ने मुहिम चला रखी थी आर मुख्यमत्री ने पार्टी हाईकमान के निर्देशो की अवहेलना करते हुये त्यागपत्र दने से इनकार कर दिया था। जिससे अनिश्चितता का वातावरण राज्य मे व्याप्त हो गया था।

लेकिन यह मामला शुद्ध रूप से पार्टी अर्न्तकलह का मामला था, जिसके आधार पर राज्य सरकार के विरुद्ध कार्यवाही नही की जा सकती। ऐसा करना सवधानिक मर्यादाओ के विपरीत कार्य था।

इस प्रकार राज्य सरकार मे हस्तक्षेप कर विधानसभा को निलम्बित किये जाने की कायवाही का नेताओ आर विद्वानो द्वारा समय-समय पर आलोचना की जाती रही ह।

इस सदर्भ मे पूव लोकसभा अध्यक्ष श्री मावलकर के विचारो को उद्धृत करना अत्यन्त आवश्यक होगा। उनका विचार था कि विधान सभाओ को निलम्बित करने की कार्यवाही काग्रेस पार्टी द्वारा गलत परम्परा की शुरूआत है जो अतिरिक्त उत्साह मे की गयी आर इस प्रकार सभा को निलम्बित करने की बात सविधान मे कही उपबधित नही है। यह सविधान का अजन्य उल्लघन ह।"[1]

एक सी परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर भी राज्यपालो ने अपने विवेकानुसार कार्य किया ह। लेकिन इस सम्बन्ध म एक बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि चुनावो क तुरन्त बाद विधान सभा भग नही की जानी चाहिये। जेसाकि केरल म 1965 म उड़ीसा म 1971 म आर राजस्थान मे 1967 मे नये चुनाव होने के तुरन्त बाद नई विधान सभाओ का गठन हो जाने के पश्चात् भी किसी भी एक दल को स्पष्ट बहुमत नही मिल सका

1 पी जी मावलकर,लोक सभा वाद विवाद न.2,जुलाई 24 1973 वॉलम 179

तथा कोई भी दल अन्य दलो के सहयोग से सरकर बनाने का स्थिति म नही था। इन परिस्थितिया म राज्यपाल ने अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन लागू करने की सस्तुति केन्द्र को भेज दी आर इस दारान विधान सभाओ को भग न कर निलम्वित रखा गया। उपरोक्त मामलो से जो एक बात स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आती ह वो यह यह जव कभी भी केन्द्र म शासित दल को यह विश्वास हो जाता ह कि वह विधान सभाओ को निलम्वित करके विपक्षी विधायको को प्रलोभन देकर अपने दल का बहुमत विधान सभा मे प्राप्त कर लेगा, उस स्थिति मे विधान सभाओ को निलम्वित रखा जाता ह आर जब उसे इस प्रकार का विश्वास नही होता या ऐसी सम्भावना नहीं होती ह तो विधान सभाओ को तत्काल ही भग कर दिया जाता ह। इस सम्वन्ध म श्री लालकृष्ण आडवानी का विचार ह कि 1969 के बाद से विधान सभाओ को निलम्बित करन का जो नया सिद्धान्त शुरू हुआ ह, वह राजनीतिक रूप से सदिग्ध व सम्भवत वेधानिक बुराइ की शुरुआत हे।

जसा कि सविधान के अनुच्छेद 356 (1) (ग) मे व्यवस्था ह कि राष्ट्रपति राज्य के किसी निकाय अथवा प्राधिकारी से सम्बन्धित सविधान के प्रावधाना के प्रवर्तन को पूर्णतया अथवा भागत निलम्वित भी कर सकता है, साथ ही उद्घोषणा के उद्देश्या को प्रभावी करने के लिये आवश्यक उपलब्ध कर सकता है। (यहाँ निकाय शब्द का तात्पर्य विधान सभा से ह।) अत जो उपवन्ध उससे सम्बन्ध रखता है उसको राष्ट्रपति निलम्बित कर सकता है। निलम्वन का अर्थ हे कुछ समय के लिये सदन को अकार्यकर करना या अस्थायी तौर पर उसको कार्यालय व तत्सम्बन्धी कार्या से वचित करना, क्योकि अनुच्छेद 356 राष्ट्रपति को यह अधिकार प्रदान करता हे कि राज्य के विधान मडल से भिन्न राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी म निहित या उसक द्वारा प्रयोक्तव्य सभी या कुछ शक्तिया को पूर्णतया या भागत निलम्बित करेगा। यह राष्ट्रपति के विवेक पर निर्भर करेगा कि विधान मण्डल की शक्तिया को भग किये बिना निलम्वित करे।

यहाँ विधान मण्डल की शक्तियो को निलम्बित करने से आशय सभा के निलम्वन से ही ह। अत यहाँ इस बात की कोई आवश्यकता नही होती कि ऐसा राष्ट्रपति की उद्घोषणा द्वारा आपचारिक रूप से भी घोषित किया जाये जैसाकी उत्तर प्रदेश म 1968 म किया गया था

जबकि मुख्य मत्री श्री चरण सिह के त्याग पत्र के बाद राज्य म राष्ट्रपति शासन तो लागू कर दिया गया लेकिन मुख्य मत्री की सलाह के बाद भी सभा भग नहीं की गयी, वरन् राज्यपाल ने केन्द्र मे सत्तारूढ़ दल के इशारे पर काय करते हुये सभा को अस्थायी तौर पर निलम्बित करने की सस्तुति की, जिससे विभिन्न दलो के आपसी समझ के बाद निकट भविष्य म सरकार बनाने का मार्ग प्रशस्त हो सके।

केन्द्र द्वारा की गयी कार्यवाही का औचित्य सिद्ध करते हुये तत्कालीन गृह मत्री श्री एसवी चव्हाण ने लोक सभा मे सदस्यो का ध्यान इस ओर आकृष्ट कराया कि अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति की उद्घोषणा केवल राज्य विधान सभा के अधिकारो को निलम्बित करती है, नाकि विधान सभा को।[1] राज्यपाल ने इस सम्बन्ध मे राष्ट्रपति को सलाह दी थी कि वे सविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन कुछ समय के लिये विधान सभा को निलम्बित कर दे, जिससे शायद राजनीतिक शक्तियो मे पुन ऐसा तालमेल स्थापित हो जाये, जिसके परिणामस्वरूप निकट भविष्य मे सुदृढ सरकार की स्थापना हो सके। राज्यपाल के अनुसार इससे एक अन्य आम चुनाव की अशान्ति व व्यय से बचाव हो सकता था। राज्यपाल द्वारा मुख्यमत्री के सभा विघटन सम्बन्धी सलाह ना मानने के सम्बन्ध म यह तर्क दिया गया था कि यह बहुत गम्भीर कदम था और इसका आश्रय तभी लिया जा सकता है जबकि यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो कि ऐसा कदम उठाये बिना स्थायी लोकप्रिय शासन के निमाण की कोई सम्भावना नही थी लेकिन अधिकतर मामलो मे राज्य विधान सभा को राष्ट्रपति के उद्घोषणा के आधार पर अतिरिक्त उतावली मे निलम्बित रखा गया जबकि वहॉ इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी।

यहॉ यह ध्यान देने योग्य बात है कि ना तो जवाहर लाल नेहरू के समय और न ही लालबहादुर शास्त्री के समय सभा निलम्बन के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया लेकिन श्रीमती इन्दिरा गाधी के काम मे प्रमुख रणनीति के रूप मे इसका प्रयोग किया गया।

---

1 दि ट्रिब्यून,अप्रेल 12 1968,

राष्ट्रपति शासन के अबतक क इतिहास को देखते हुये कहा जा सकता ह कि इस सवध मे कोई निश्चित मापदण्ड नही अपनाया गया है कि कब सभा भग की जानी चाहिये और कब निलम्बित रखनी चाहिये। क्योकि एक से मामलो मे राज्यपालो ने अपने-अपने विवेकानुसार कार्य किया है। लेकिन फिर भी निम्नलिखित कुछ मापदण्डो को ध्यान म रखा जा सकता है।

1 आम चुनाव के तुरन्त बाद विधान सभा भग नही की जानी चाहिये, जबकि कोई भी दल अथवा गठबन्धन सरकार बनाने की स्थिति मे न हो तो ऐसी स्थिति म विधान सभा को केवल निलम्बित करना चाहिये जिससे व्यवस्था पर पड़ने वाले एक ओर चुनाव के बोझ से बचा जा सके। क्योकि हो सकता है कि कुछ समय पश्चात आपसी समझ के आधार पर विभिन्न दल अथवा गुट सरकार बनाने की स्थिति मे हो जाये।

2 यदि राज्य विधान सभा के कार्यकाल को केवल कुछ माह ही शेष रह गये हो तब ऐसी परिस्थिति मे विधान सभा निलम्बित करने का कोई औचित्य नही होता। ऐसी स्थिति म सबसे बच्छा उपाय यह होगा कि विधान सभा को तत्काल भग कर देना चाहिये।

3 राज्य मे सत्तारूढ दल के अन्तरापार्टी कलहो को दूर करने क लिये सभा निलम्बित नही की जानी चाहिये यदि सभा मे उस दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त हो।

4 राष्ट्रपति शासन के अब तक मामलो के अध्ययन से एक और तथ्य उभर कर सामने आता हे वह यह है कि चुनावो के तत्काल बाद के निलम्बन को छोडकर मध्य का अवधि म लागू किया गया निलम्बन के लिये हानिकारक साबित होता हे। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर सभा निलम्बित करने के स्थान पर तत्काल भग कर देना अधिक लाभप्रद होता है, क्योकि इस दौरान राज्य मे राजनीतिक गतिविधियाँ ठप पड जाती है। विधान सभा के पुर्नजीवन की सम्भावना बनी रहने के कारण राजनीतज्ञो व उनके दलालो द्वारा विधायको की खरीद फरोख्त का गन्दा खेल खेला जाता ह।

लेकिन दुर्भाग्यवश सविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तगत उपरोक्त बातो को दृष्टि म रखते हुये विधान सभा को निलम्बित नही किया गया है। अब तक के उदाहरणो को देखते हुये यही प्रतीत होता है कि इसका मुख्य ध्येय केन्द्र म सत्तारूढ़ दल (काग्रेस) के हित को ध्यान मे रखकर ही किया गया। इस दौरान निलम्बित की गयी सभाओ के अध्ययन के बाद निम्न बातें सामने आती है—

1 चुनावो के तुरन्त बाद यदि काग्रेस पार्टी कुछ अपवादो को छोडकर राज्य म सबसे बडा दल होते हुये भी राज्य चुनावो मे पूर्ण बहुमत नही प्राप्त कर सका और साथ ही मत्रिमण्डल के गठन के लिये भी उत्सुक है लेकिन अपने इस ध्येय की पूर्ति के लिये उसे कुछ समय चाहिये ताकि वो विधान सभा मे दल बदल की व्यवस्था कर सके। ऐसी स्थिति मे विधान सभा को निलम्बित कर दिया गया जबकि विपक्षी दलो ने भी सरकार बनाने के लिये अपना दावा किया था साथ ही वे विधान सभा मे अपना बहुमत सिद्ध करने को भी तैयार थे, उनके दावे को नकार दिया गया।

2 जब कभी भी गैर काग्रेसी सरकार असफल हुई तो विधान सभा को निलम्बित कर दिया गया ताकि काग्रेस पार्टी सरकार बनाने के लिये दल बदल की व्यवस्था कर सके। परन्तु जब कभी काग्रेस पार्टी की सरकार या उसके समर्थन से बनी सरकार हो तो ऐसी स्थिति म विधान सभा तत्काल ही भग कर दी गयी।

3 कुछ ऐसे उदाहरण भी प्राप्त होते है जबकि काग्रेस पार्टी विधान सभा मे पूर्ण बहुमत प्राप्त दल था, लेकिन विधान सभाओ को निलम्बित किया गा।

(क) पार्टी के आन्तरिक मतभेदो का निपटारा करने के लिये

(ख) कुछ राजनीतिक कठिनाइयो को जोकि पार्टी के अनुशासन तथा एकता को प्रभावित करते थे सुलझाने हेतु।

(ग) सरकार मे व्याप्त भ्रष्टाचार तथा अकुशलता को छिपाने क लिये।

## चुनावो के तुरन्त बाद सभा का निलम्बन

1967 से पूर्व तक चुनावो के पश्चात अधिकतर राज्यो मे काग्रेस पार्टी ही बहुमत प्राप्त करने मे सफल होती थी और यदि ऐसा नही भी होता था तब भी यदि सबसे बड़े दल के रूप म रहती थी और यदि राज्य मे सरकारबनाने के लिये वा उत्सुक रहती थी तो उसे सरकार बनाने का अवसर दिया गया। बिना इस बात का विचार किये कि उसे विधान सभा मे बहुमत प्राप्त ह अथवा नही, जेसा कि राजस्थान मे 1967 मे किया गया।

लेकिन 1967 के बाद से भारतीय राजनीतिक पटल पर बहुत बदलाव आया। राज्य स्तर पर दलो मे उपजे असतोष के परिणाम स्वरूप कई क्षेत्रीय दलो का प्रादुर्भाव

हुआ आर यहीं से भारतीय राजनीति ण्ण् समस्याओ के काल बादल मडराने लगे। यहीं से भारत मे दलवदलू राजनीति का शुभारम्भ भी माना जा सकता है।

1967 से हालांकि राज्यपालो ने विधान सभा मे बहुमत सिद्ध करने की प्रक्रिया लागू कर दी आर साथ ही यदि राज्यपाल के विचार मे यदि काग्रेस पार्टी का नेता विधान सभा मे बहुमत रखता था तो उसे सरकार बनाने का मौका दिया गया। यह तो सविधान के अनुसार ही था। लेकिन यदि काग्रेस पार्टी विधान सभा मे बहुमत नही भी रखती थी फिर भी यदि सदन मे सबसे बड़ा दल था तो उसे सरकार बनाने का अवसर दिया गया आर इसको कार्यरूप मे परिणित करने के लिये विधान सभाओ को निलम्बित रखा गया ताकि तो दल बदल द्वारा बहुमत की स्थिति मे आ सके।

उदाहरण के लिये राजस्थान मे जहाॅ 1967 के चुनावा के बाद किसी भी दल को विधान सभा मे पूर्ण बहुमत नही प्राप्त हो सका।[1]

184 स्थानो म से 89 स्थान लेकर काग्रेस पार्टी सभा मे सबसे बड़े दल के रूप म उभरी थी।

राज्यपाल डा सम्पूर्णानन्द ने सभी दावो को नकारते हुये काग्रेस पार्टी के नेता को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया। केवल इस आधार पर कि उसकी पार्टी विधान सभा मे सबसे बडी पार्टी थी और 4 मार्च 1967 को भी सुखाड़िया मुख्यमत्री पद पर आसीन भी हो गये। मार्च 12, 1967 को विधान सभा की बैठक बुलायी गयी, लेकिन उन्हाने सदन का सामना करने से पूर्व ही त्याग पत्र यह कहते हुये दे दिया कि विपक्षी दल राज्य मे कानून व व्यवस्था की समस्या पैदा कर सकती है और ये बात बहुत ही सदहात्मक थी कि सरकार बनाने से मनाकर देने का ये कारण सचमुच मे वास्तविक था? वास्तविकता यह ह थी कि 4 मार्च व 12 मार्च के बीच वह विपक्षी दला मे फूट डालकर दल बदल कराने मे सफल नही हुये। यदि वो 12 मार्च को मत्रिपरिषद का गठन कर भी लेते तो बहुत सम्भावना थी कि उनकी सरकार 14 मार्च को सदन म विश्वास मत के

1 हिन्दू 22 फरवरी 1967

अभाव म गिर जाती। वास्तविकता यह थी कि श्री सुखाडिया अपनी सरकार बनाने से पूर्व दल बदलुओ को अपने पक्ष मे करने के लिये आर अधिक समय चाहते थे।[1]

जव श्री मोहन लाल सुखाडिया ने सरकार बनाने से इन्कार कर दिया और जब विपक्षी दल सरकार बनाने को उत्सुक थे, ऐसी स्थिति मे विपक्षी मोर्च को मरकार बनाने का अवसर दना चाहिये था, जैसा कि 1967 मे पजाब मे राज्यपाल ने किया था। राज्यपाल श्री डीसी पावटे ने यूनाइटेड फ्रट की सरकार की सदन मे हार के पश्चात मुख्य मत्री द्वारा सभा भग करने का परामर्श न मानते हुये काग्रेस पार्टी के सहयोग से बने मोर्च को मरकार वनाने का अवसर प्रदान किया।[2]

लेकिन राजस्थान के राज्यपाल डा सम्पूर्णानन्द ने इस व्यवहार को न अपना कर राष्ट्रपात शासन लागू कर सभा भग करने की सिफारिश कर दी। राज्यपाल की इस सस्तुति पर राज्य म राष्ट्रपति शासन को लागू किया गया, लेकिन विधान सभा भग करने के परामर्श को नही स्वीकार किया गया। उसके स्थान पर राज्य मे विधान सभा को निलम्वित रखा गया। जिसके कारण श्री मोहन लाल सुखाडिया को दल बदल करने की अनेतिक चाल चलने हेतु पूरा समय मिल सक तथा समय पाकर वह इस राजनतिक दॉव पेच मे सफल भी हुये।

यह वात बिना किसी सदेह के कही जा सकती हे कि जिस दिन राष्ट्रपति शासन लागू किया गया, श्री सुखाड़िया को विधान सभा मे बहुमत नही प्राप्त था क्योकि सयुक्त विधायक दल ने 93 विधायको की सूची राष्ट्रपति के सम्मुख विधान सभा मे बहुमत के दशनि हेतु प्रस्तुत की थी।[3]

---

1 दि स्टेट्समैन, 14 मार्च 1967

2 एशियन रिकार्डर, 1-16 मार्च, 1967, पृ 1118

3 लोक सभा वाद विवाद, वाल्यूम -1,न 1-10, मार्च 18,1967, कॉलम -157

इसी प्रकार उडीसा मे जब चुनाव हुये तब किसी भी पाटी पूण बहुमत की स्थिति म नही थी लेकिन 1967 मे जेसा कि राजस्थान मे हुआ था काग्रेस पार्टी 140 मे से 51 स्थान लेकर सबसे बडी पार्टी थी।[1]

काग्रेस के तत्कालिन नेता डा. हरे कृष्ण मेहताब राज्य म अपनी सरकार बनाने को उत्सुक थे, लेकिन राज्यपाल ने उनको सरकार बनाने के लिये आमत्रित नही किया क्योंकि वो इस बात से सतुष्ट नही थे कि उनको विधान सभा मे बहुमत हासिल है। अत राज्यपाल ने राष्ट्रपति शासन लागू करने व विधान सभा का निलम्बित करने की सस्तुति राष्ट्रपति से कर दी। लेकिन इसके विपरीत यदि काग्रेस पार्टी के स्थान पर कोई और दल विधान सभा मे सबसे बड़े दल के रूप मे होता, जिसको कि काग्रेस पार्टी दल बदल की व्यवस्था पर सरकार बनाने का मौका देना नही चाहती थी, तब उस अवसर पर विधान सभा सीधे बिना निलम्बित किये हुये ही भग कर दी जाती।

केरल म ऐसा मामला प्रकाश म आता ह जब 1965 में चुनावो के बाद कम्युनिष्ट पार्टी (मार्किस्ट) सबसे बडी पार्टी थी। उसके नेता श्री ई एम एस नम्बूदरीपाद सरकार बनाने को तयार थे, लेकिन विधान सभा इस आधार पर भग कर दी गयी कि कोई भी पार्टी मत्रिमण्डल बनाने की स्थिति मे नही है और विभिन्न पार्टियो के गठजोड़ की मिली जुली सरकार बनाना भी सभव नही है अत विधान सभा भग कर दिया जाय।[2]

यह मामला यही दर्शाता है कि जब कभी भी चुनावों के तुरन्त बाद काग्रेस विधान सभा म सबसे बडी पार्टी थी तब या तो उसके नेता को सरकार बनाने के लिये बुलाया गया या विधान सभा को इसलिये निलम्बित कर दिया गया कि वो दल बदल कराने के लिये समय पा सके।

---

1 दलो की स्थिति इस प्रकार थी – कागेस (आर) 51, स्वतन्त्र 36, उत्कल काग्रेस 32, जन काग्रेस 1 पीएसपी 4, काग्रेस ओ 1,सीपी आई 4, सीपी आई(एम) 2, झारखण्ड 4,और निर्दलीय 4, कुल 139 – एशियन रिकार्डर, मई 7–13, 1971, पृ 01136

2 केरल की स्थिति के बारे मे राष्ट्रपति को केरल के राज्यपाल की रिपोर्ट का साराश लोक सभा वाद विवाद- 24 मार्च 1965 कालम 5696-5698 साथ ही देख – एशियन रिकार्डर,26 मार्च–1 अप्रैल, 1965, पृ6367

यह बात अलग है कि राजनीति के इस घिनाने खेल म ब्राजी क्सि पक्ष द्वारा मारी गयी पर ये बात एकदम साफ है कि यदि काग्रेस पार्टी को विधान सभा मे अपेक्षित स्थान नही मिला हो जिसके आधार पर वह सरकार बना सके और किसी गैर काग्रेसी दल को विधान सभा मे उपेक्षित स्थान प्राप्त हो, तो काग्रेस पार्टी उसको दल बदल की व्यवस्था के आधार पर सरकार बनाने का मौका देने के लिये उत्सुक नही थी, और ऐसी स्थिति आने पर विधान सभा का निलम्बन करने के स्थान पर सीधा ही भग कर दिया गया। [1]

## केन्द्र सरकार के हित को दृष्टि मे रखते हुये विधान सभा को भग करना और निलम्बित करना

राज्यो मे राष्ट्रपति शासन की सस्तुति करते हुये इस बात का निर्णय केन्द्र मे सत्तारूढ दल अपने हित को ध्यान मे रखते हुये लेती है कि सभा को भग कर दिया जाय या कुछ समय के लिये निलम्बित कर दिया जाय। इस बात को सिद्ध करने के लिये हमे व कुछ उदाहरण दिखायी पड़ते है जो ये सिद्ध करने है कि राज्यो मे जब भी विरोधी पक्ष की सरकार गिरी, केन्द्रीय सत्तारूढ़ दल ने साधारणतया विधान सभा निलम्बित कर दिया जिससे सत्तारूढ़ दल (केन्द्र मे, अधिकतर मामलो मे काग्रेस) को सरकार बनाने का मौका मिल सके, लेकिन दूसरी तरफ जब काग्रेस या काग्रेस के द्वारा समर्थित सरकार या ऐसी सरकार जिसमे काग्रेस पार्टी सबसे बडी पार्टी थी गिरी विधान सभा को भग कर दिया गया।

उदाहरण के लिये 1967 मे मणिपुर की विधान सभा को निलम्बित कर दिया गया जब विधान सभा मे यूनाइटेड फ्रट (काग्रेस व यूनाइटेड फ्रट की मिली जुली सरकार) के मुख्य मत्री श्री लोगजाम थम्बू सिंह के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पर बहस चल रही

1 राजस्थान मे 1967 म मोहन लाल सुखाड़िया (काग्रेस पार्टी) सरकार बनानेम सफल हुये लेकिन उड़ीसा म 1971 मे डा हरे कृष्ण मेहताब दल बदलुओ के समर्थन न पा सकने के कारण नही सफल हुये।

थी, अध्यक्ष व उपाध्यक्ष दोना द्वारा इस्तीफा दे दिया गया आर काग्रेस व यूनाईडेड फ्रट दोना द्वारा ही अध्यक्ष पद के उम्मीदवार मनोनीत करने से इनकार कर दिया गया क्योकि सभा म दोनो के ही 16-16 सदस्य थे।अत अध्यक्ष के चुनाव से स्वत ही दूसरे पक्ष को बहुमत मिल जाता। अत मुख्य आयुक्त श्री बालेश्वर प्रसाद न राष्ट्रपति शासन लागू कर विधान सभा निलम्बित करने की सलाह दे दी ओर इस प्रकार कुछ समय मिल जाने के कारण दल बदल के काग्रेस दल पुन बहुमत मे आ गयी आर श्री एम कुरियन सिह ने मुख्यमत्री का पद ग्रहण किया। इस प्रकार राज्य मे राष्ट्रपति शासन का अत हुआ[1]

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश मे फरवरी 1968 मे सयुक्त विधायक दल क नेता, मुख्यमत्री श्री चरण सिह द्वारा राज्यपाल को अपना इस्तीफा सोप दिया आर साथ ही राज्यपाल से विधान सभा भग करने की सलाह दी जिससे नये चुनाव कराने हेतु मार्ग प्रशस्त हो सके क्योकि चरण सिह के इस्तीफे के बाद सयुक्त विधायक दल अपना नया नेता चुनने म असमर्थ थे।

राज्यपाल ने राज्य मे राजनेतिक दलो के आपसी मतभेदो को देखते हुये राष्ट्रपति को सभा का अस्थायी तोर पर निलम्बित करने की सलाह दे दी ताकि निकट भविष्य मे दल बदल द्वारा काग्रेस सत्ता मे पुन आ जाय,[2] लेकिन अतत इस राजनेतिक अनिश्चित का समापन राज्य म तब, हुआ जब किसी भी राजनैतिक दल को सरकार बनाने की स्थिति म न होन के कारण विधान सभा भग कर दी गयी।[3]

बिहार मे 1969 मे मध्यावधि चुनावो के पश्चात कोई भी दल विधान सभा मे पूर्ण बहुमत प्राप्त करने म असफल रही। चुनावा के पश्चात विभिन्न दलो की स्थिति इस प्रकार थी–[4]

| | |
|---|---|
| *काग्रेस* | *128* |
| *ससोपा* | *68* |
| *जनसघ* | *20* |
| *साम्यवादी दल* | *24* |
| *जन-काग्रेस* | *24* |

1 एशियन रिकार्डर नवम्बर 5, 1967, पृष्ठ 6002

2 पट्रियाट म राज्यपाल का प्रतिवेदन फरवरी 22, 1968

3 राष्ट्रपति का राज्यपाल का प्रतिवेदन फरवरी 22, 1968

4 गृह मत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 1968-69, पृष्ठ 67

| | |
|---|---|
| *प्रसापा* | *18* |
| *स्वतत्र* | *3* |
| *झारखड* | *9* |
| *साम्यवादी (मार्क्सवादी)* | *4* |
| *निर्दलीय तथा अन्य* | *14*[1] |
| *कुल स्थान* | *318* |

राज्यपाल श्री नित्यानन्द कानूनगो ने काग्रेस पार्टी के नेता श्री हरिहर सिह को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया, जिनकी सरकार 20 जून 1969 को गिर गयी। दूसरे दिन 21 जून 1969 को राज्यपाल ने श्री भोला पासवान शास्त्री को (नेता लोकतान्त्रिक दल) को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया, क्योकि उन्होने राज्यपाल के समक्ष स्पष्ट बहुमत का दावा किया था। इस प्रकार 22 जून को श्री शास्त्री ने पद व गोपनीयता की शपथ ली लेकिन। जुलाई को विधायको द्वारा लगातार दल बदल के कारण कुल 9 दिना के पश्चात ही नही सरकार का पतन हो गया। लेकिन राज्य मे विधान सभा भग नही की गयी जबकि चुनावो के पश्चात से दो मत्रिमण्डलो का पतन हो चुका था।[2] वास्तव में ऐसा इसलिये किया गया था ताकि यदि दलगत निष्ठाओ के पुन उभरने से स्थिर सरकार सम्भव हो तो एक बार पुन प्रतिनिधिक शासन स्थापित किया जा सके। लेकिन वास्तव म विधान सभा को जीवित रखने का वास्तविक कारण था, राष्ट्रपति पद के लिये शीघ्र होने वाले चुनावा मे विहार के विधान सभा सदस्यो के मतो का लाभ प्राप्त करने की इच्छा आर आशा, क्योकि दलो के आपसी गुटबाजी को देखते हुये निकट भविष्य मे सरकार बनाये जाने की कोई सभावना नही थी।

राष्ट्रपति शासन का समापन 16 फरवरी 1969 को किया गया[3] जबकि श्री दरोगा प्रसाद राय जो काग्रेस विधायक दल के एक घटक दल के नेता थे, ने मत्रिमण्डल का गठन

1. एशियन रिकार्डर अगस्त 6-12, 1969, पृष्ठ 9065
2. एशियन रिकार्डर, अगस्त 6-12 1969, पृष्ठ 9065
3. दि ट्रिब्यून, फरवरी 16,1969

किया। इस प्रकार की राजनीति 1970 म दिखायी देती ह जबकि पश्चिम बगाल म मध्यावधि चुनावा के बाद काग्रेस यूनाइटेड फ्रट को विधान सभा का 282 सीटा म से 225 स्थान प्राप्त हुआ। उसके नेता श्री अजय कुमार मुखर्जी को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया गया, लेकिन दल के आतरिक असतोष के कारण श्री अजय कुमार मुखर्जी को शीघ्र अपना त्याग पत्र दना पडा, जबकि उसे सदन मे पूर्ण बहुमत प्राप्त था। मुख्यमत्री के त्याग पत्र के बाद भारतीय साम्यवादी पार्टी (मार्क्सवादी) के नेता श्री ज्योति बसु ने राज्यपाल से अनुरोध किया कि उन्हे सबसे बडे दल के नेता होने के कारण सरकार बनाने के लिये आमत्रित करना चाहिये (क्योकि उनके दल को विधान सभा मे 282 मे से 80 स्थान प्राप्त थे) जेसा कि राजस्थान के राज्यपाल डा सम्पूर्णानन्द ने 1967 म काग्रेस पार्टी के साथ किया था आर साथ ही श्री बसु ने राज्यपाल म भारतीय साम्यवादी पार्टी (कम्युनिष्ट) के मत्रिमण्डल बनाये जाने की सम्भावनाओ का पता लगाने के लिये अधिक समय की माग की। बाद मे उन्होने इस तर्क पर अपने समर्थको के नामो को बताने से इनकार कर दिया कि उनकी पार्टी ने ऐसे नामो को प्रकट करने सम्बन्धी राज्यपाल के अनुराध को अस्वीकार कर दिया ह।[1] लेकिन वो सभा मे अपना बहुमत सिद्ध करने को तयार थे लेकिन यह राज्यपाल द्वारा नही स्वीकार किया गया।

अतत राज्यपाल ने राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू करत हुये विधान सभा निलम्बित करने की सिफारिश कर दी और बाद मे काग्रेस द्वारा सरकार बनाने से इन्कार करने के कारण विधान सभा भग कर दी गयी।[2]

उत्तर प्रदेश मे 1970 मे भारतीय क्राति दल के मुख्य मत्री श्री चरण सिह ने राज्यपाल से 13 काग्रेसी मत्रियो को जो कि उनकी सरकार मे शामिल थे को पदमुक्त करने की प्रार्थना की। चूँकि मुख्य मत्री अल्पमत पार्टी के थे, राज्यपाल डा बी गोपाल रेड्डी न इस सबध मे भारत के महा न्यायवादी से राय मागी। महान्यायवादी से राय व्यक्त करते हुय कहा कि मुख्य मत्री को 14 मत्रिया को पदच्युत करनेका सवैधानिक अधिकार प्राप्त नही है। आर चूँकि उनकी सरकार के एक बड़े भागीदार काग्रेस ने मत्रिमण्डल

1 टि टाइम्स आफ इण्डिया मार्च 18, 1970 पृष्ठ - 1 साथ ही दख – लोक सभा वाद विवाद, वाल्यूम XXXVIII न 26, मार्च 30, 1970, कॉलम 218-19

2 लाक सभा वाद विवाद 30 मार्च 1970 वाल्यूम 111, नम्बर 26 कालम 21819

का अपना समर्थन दना बद कर दिया ह, अत वे अल्पमत म ह व उन्हे विधान सभा का विश्वास मत नही प्राप्त ह, राज्यपाल उनसे त्यागपत्र की माग कर सकते ह आर यदि व ऐसा नही करते तो राज्यपाल उन्हे वर्खास्त कर सकते ह।

राज्यपाल ने मुख्यमत्री को वर्खास्त कर विधान सभा को निलम्बित कर दिया। ऐसी ही विवादास्पद स्थिति मसूर मे 1971 व उड़ीसा मे 1971 म उत्पन्न हुई जब वहाँ के मुख्य मत्रिया क्रमश श्री वीरेन्द्र पाटिल व के.पी सिंह देव ने सम्मान पूर्वक अपन पद से त्याग पत्र द दिया।

गुजरात म मार्च 1976 म भी विधान सभा निलम्बित की गयी[1] जब जनता फ्रट[2] बनाने की स्थिति मे नही था। अत राज्यपाल ने राज्य म राष्ट्रपति शासन लागू करने व सभा निलम्बित करने की सिफारिश कर दी थी। क्योकि जनता फ्रट सरकार का समर्थन करन वाले किसान मजदूर लोकदल पार्टी ने फरवरी 1976 को सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया[3] जबकि विधान सभा मे खाद्य तथा नागरिक आपूर्ति की अनुदान की मागो पर मतदान होने वाला था। बाबू भाई पटेल की अध्यक्षता वाली जनता फ्रट मत्रिमण्डल 12 मार्च को सदन म हार का सामना करना पडा। तत्पश्चात मुख्यमत्री ने अपना त्यागपत्र द दिया। राज्यपाल ने राष्ट्रपति को भेज गये अपने प्रतिवेदन मे कुछ समय के लिये सभा को निलम्बित रखने की सिफारिश की क्योकि उनके विचार मे कुछ समय पश्चात विभिन्न गुट आपस म समझाता कर गठबन्धन की सरकार बनाने की स्थिति मे हो सकते थे।

---

1 दि टाइम्स आफ इण्डिया मार्च 13 1976

2 राज्य म 1975 जून म हुय मध्यावधि चुनावा के बाद पाच पार्टिया काग्रेस (स) भारतीय जनता सघ भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी तथा राष्ट्रीय मजदूर पक्ष आर 77 निदलीय सदस्यो न 181 सदस्यो वाली विधान सभा मे 86 सदस्यो से जनता फ्रट विधायक दल का गठन किया। फ्रट को 5 निर्दलीय तथा किसान मजदूर लोक पक्ष के 12 सदस्यो का भी समर्थन प्राप्त कर लिया था-पूर्वाधृत

3 प्रेसीडेन्ट रूल व इण्डिया श्रीराम महेश्वरी, पृष्ठ-109 द मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड (1977)

ऐसी ही विवादास्पद स्थिति मसूर [1]म 1971 म उत्पन्न हुया। जब "काग्रेस ओ" के मुख्य मत्री ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। राज्यपाल ने मुख्यमत्रा के त्यागपत्र के बाद वकल्पिक मत्रिमण्डल बनने की सभावनाआ को तलाशने के आधार पर विधान सभा निलम्बित कर दी लेकिन काग्रेस आर.के. नेता सिद्धवीरप्पा द्वारा सरकार बनाने से इनकार करने के कारण विधान सभा म भग कर दी गयी।

इसी प्रकार उडीसा मे 1971 मे ही प्रकाश मे आता ह। जब उन काग्रेस का समर्थन समाप्त हो जान के बाद श्री आर.एन सिह देव के नेतृत्व वाले मिले जुले मत्रिमण्डल ने राज्य विधान सभा मे अपना बहुमत खो दिया। मुख्य मत्री श्री आर.एन.सिह देव ने राज्यपाल को अपना स्थान पत्र प्रस्तुत कर दिया।[2]तत्पश्चात राज्यपाल से सभा भग करने की सिफारिश कर दी लेकिन गज्यपाल डा.एस.एस.असारी ने सभा निलम्बित कर दी[3] इस आशा मे कि कान्रेस पार्टी राज्य मे सत्तारूढ हो सकेगी लेकिन वो ऐसा करने मे विफल रही और तत्पश्चात विधान सभा भग कर दी गयी। यहाँ इस बात को उदधृत करने की आवश्यक्ता है कि जब उडीसा मे 1971 म अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यपाल विधान सभा को भग करने की सिफारिश करने से बच रहे थ तो गृह मामला के राज्य मत्री श्री के.सी.पत ने कहा कि "यदि गज्यपाल विधान सभा को निलम्बित करने की सिफारिश करता ह तो वह विभिन्न दलो को विधायको की खरीद फ्रोख्त करने का अवसर प्रदान करता है मेरे विचार मे सभा इस पर अपना विराध प्रकट करेगी। वह म समझ सकता हूँ। लेकिन मे यह नही समझ सकता कि राज्यपाल द्वारा जब सभा को सीधे भग कर देने की सलाह दी जाती है, किसी को भी खरीद फरोख्त का अवसर नही दिया जाता, आर सभी दलो के लोगो के पास पुन जाना चाहिये। और पुन लोट कर आकर सरकार का निर्माण करना चाहिये किस प्रकार आलोकतात्रिक कार्यवाही की सज्ञा दी जाती ह।[4]"

कुछ ऐसे भी उदाहरण मे प्राप्त होते है जबकि राज्यपाल को ज्ञात हाता ह कि विकल्प की सरकार बनाने की कोई सभावना नही हे, लेकिन फिर भी विधान सभा भग न कर उसे निलम्बित रखा गया। ऐसा ही उदाहरण विहार का जुलाई 1969 को मिलता ह जबकि विधान

---

1 नवम्बर 1973 से मैसूर राज्य का नाम बदल कर कर्नाटक कर दिया गया।

2 दि स्टटसमेन अप्रेल 12, 1971 पृष्ठ -7

3 लाक सभा वाद विवाद 5 वी कड़ी कालम 269, नम्बर 25, मार्च 26 1973,

4 लावसभा वाद विवाद, वाल्यूम XXV न 25 मार्च 26 1973 कॉलम– 269

सभा निलम्बित करन की सिफारिश इस सत्य को जानत हुये कर दी कि राज्य म स्थायी सरकार बनान की सभावना समाप्त हो चुकी थी जेसा पूर्व मे वर्णित हे।

जबकि काग्रेस सरकार या उसके द्वारा समर्थित दल सत्ता म रहता ह, का किसी कारण वश सदन मे जाता है तो ऐसी स्थिति मे विधान सभा को निलम्बित करने के स्थान पर भग कर दिया गया हे। आध्र म नवम्बर 1954 म जबकि श्रीप्रकाश मत्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास हो गया था। विपक्षी दल को सरकार बनाने के दावे को नजरदाज करते हुये सभा को भग कर दिया गया। पश्चिम बगाल म 1968 व पुन 1971 म मणिपुर म 1969, उडीसा मे 1969 मे इसी की पुनरावृत्ति की गयी, जबकि राज्य मे कुछ माह पूर्व ही चुनाव कराये गये थे। पश्चिम बगाल 1971 का मामला काफी रोचक ह जबकि श्री अजय कुमार मुखर्जी की सरकार का पतन हो गया, जिसम काग्रस प्रमुख सहयोगी पक्ष था। विधान सभा को 25 जून 1971 को भग कर दिया गया जबकि 2 अप्रल 1970 को ही राज्य विधान सभा के चुनाव कराये गये थे। इस सभी मामलो मे विपक्ष सरकार का गठन करने के लिये तयार था।

इस सम्बन्ध मे यह विचारणीय तथ्य ह कि जब गर काग्रेसी मुख्य मत्री द्वारा विधान सभा भग करने की सिफारिश को नकार दिया गया जहाँ काग्रेस पार्टी सरकार बनाने की इच्छुक थी। लेकिन इसका अपवाद केवल एक मामले मे मिलता है। जबकि पजाब म 1971 मे राज्यपाल श्री डी सी पावटे ने श्री प्रकाश सिह बादल की सिफारिश पर विधान सभा का विघटन कर दिया। लेकिन इस मामले मे राज्यपाल को काग्रेसी सदस्यो की कडी आलोचना का शिकार होना पडा था।

इसी प्रकार हरियाणा मे राव वीरेन्द्र सिह, पजाब मे गुरूनाम सिह (1967) उत्तर प्रदश म चरण सिह (1968) भोला पासवान शास्त्री, विहार म 1968 म आर हितेन्द्र देसाई का गुजरात म 1971 म अनुच्छेद 356 के अधीन विधान सभा भग करने की सिफारिश को अस्वीकार कर दिया गया था।

काग्रेस पार्टी के आतरिक झगड़ों को सुलझाने के लिय भी निलम्बन के उदाहरण मिलत ह। जिससे काग्रेस विधायक दल को एकता को पुन कायम रखा जा सके। ऐसा

उदाहरण 1951 म पजाव का प्राप्त होता ह जबकि वहाँ पहली बार विधान सभा निलम्वित की गयी थी।[1] इसी प्रकार का उदाहरण 1973 को उत्तर प्रदेश का प्राप्त होता ह जबकि श्री एचएन वहुगुणा के स्थान पर श्री एनडी तिवारी को मुख्यमत्री पद पर प्रतिष्ठित करना था।[2]

विधान सभा के विघटन आर निलम्बन का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण ह क्योंकि अधिकतर अवसरा इसका राजनीतिक स्वार्थमूर्ति हेतु दुरूप्रयोग किया गया ह। हाल ही म सवाच्च न्यायालय द्वारा दिये गये अपने निर्णय द्वारा राज्य म राष्ट्रपति शासन क घोषणा के साथ ही विधान सभा के भग करने पर रोक लगा दी गयी ह। न्यायालय का विचार है कि राष्ट्रपति शासन अध्यादेश को ससद द्वारा अनुमोदित किये जाने के पश्चात ही विधान सभा भग की जा सकती ह, आर जब तक ऐसा अनुमोदन नही प्राप्त हो जाता राष्ट्रपति विधान सभा को अपने आदेश द्वारा केवल निलम्वित कर सकता ह विघटित नही। इस प्रकार न्यायालय के उपरोक्त निर्णय से कम से कम दो माह तब जब तक कि ससद इस पर अपना अनुमोदन नही प्रदान कर देगी, राजनीतिक दला मे सरकार बनाने की होड़ बनी रहेगी।[3] इस फसले के बाद से केन्द्र सरकार उस प्रवृत्ति पर भी रोक लगने म सहायता होगी जिसके तहत विधान सभा के निलम्बन व विघटन के प्रश्न को केन्द्रीय सरकारो ने अपने राजनीतिक हितो के पूर्ति का साधन बना लिया था।

1 काजिग कन्टम्पररा आरर्चीब्स, जुलाई 7-14 1951 पृ 11577

2 दि स्टटसमन, मार्च 23 1973

3 एस आर बाम्बई बनाम भारत सघ,ए आई आर एससी 1994 वाल्यूम 81, पैरा 365 पृ 1928

# राष्ट्रपति शासन मे विधि निर्माण की प्रक्रिया

अनुच्देद 356 की अधिघोषणा के उपरात कार्यपालिका के अधिकारा के प्रयोग क लिये राष्ट्रपति अलग से एक आदेश जारी करता ह तथा सम्बन्धित राज्य के विधान मण्डल के समस्त अधिकारो के उपयोग की व्यवस्था अनुच्छेद 357 म की गयी हे।[1]इस अनुच्छेद म इस बात की व्यवस्था का उपयोग ससद करेगी या ससद इन अधिकारा के उपयाग के लिये राष्ट्रपति को अधिकृत कर देगी आर राष्ट्रपति अपने इस अधिकार को किसी भी अन्य व्यक्ति या सस्था को स्थानान्तरित कर सकता ह।

विधान मण्डल के अधिकारा के सदर्भ मे यह स्पष्ट करना आवश्यक ह कि इसके अन्तर्गत सामान्य विधेयको के अधिकार एव वित्तीय अधिकार दोना आते ह। उस अनुच्छेद 357 म जो व्यवस्था की गयी हे उसके अन्तर्गत आज तक ससद ने सबधित राज्य के लिये सामान्य कानून निर्माण के अधिकार का प्रयोग स्वय नहीं किया ह। सामान्यत राज्य विशेष के लिये वित्तीय व्यवस्थाये (अनुदान माँगे) ससद पारित करती ह सामान्य कानून के निर्माण के लिये प्रारम्भ से ससद राष्ट्रपति का एक अधिनियम के अन्तर्गत अधिकृत कर देती रही ह। उस अधिनियम को शक्ति स्थानान्तरण अधिनियम [2] के नाम से पुकारा जाता ह। इसके अन्तर्गत यह व्यवस्था होती ह कि ससद के दोना सदना के सदस्यो की एक

---

1 अनु 357 म किये गये 42वे सशोधन के बाद से निम्न व्यवस्था की गयी है "राज्य के विधान-मडल की शक्तियाँ ससद द्वारा या उसके प्राधिकार क अधान प्रयोक्तव्य होगी जिसे समय राष्ट्रपति म हस्तातरित कर सकता हे।"

2 डलागशन ऑफ पॉवर एक्ट दख जआर सिवाच, पूर्वाधृत पृष्ठ 87 91 उल्लखनाय ह कि 1952 क प्रथम निर्वाचन क पूर्व समद अन्तरिम ससद) कवल एक सदन वाला था। सविधान सभा ही 26 जनवरी 1950 से एक सदन वाली ससद के रूप म कार्य कर रही थी। इसीलिये पजाब क सदर्भ म जो डेलीगेजन ऑफ पॉवर एक्ट पारित किया गया था उसमे केवल ससद शब्द का प्रयोग किया गया है जबकि बाद के अधिनियमा म ससद के दोना सदन शब्द का प्रयोग हुआ है क्योंकि 1952 के प्रथम निर्वाचन के बाद ससद दो सदन वाली हो गयी थी।

समीति गठित की जायेगी और इसे परामर्श दात्री समीति के नाम से पुकारगे। समीति के सदस्या की सख्या प्रत्येक राज्य के लिये समान नही होती। इस ममीति म लोक्सभा तथा राज्यसभा के सदस्या के मध्य 21 का अनुपात रहता ह। इन सदस्या के अध्यक्ष सभापति नामजद करते ह। यह समीति राष्ट्रपति को अधिनियमो के निर्माण म परामश द सकती हे।

1959 मे पेप्सू लेजिस्लेचर डेलीगेशन ऑफ पावर बिल पर लोक सभा मे विचार हो रहा था, तब ठाकुर दास भार्गव ने एक सशोधन[1] प्रस्तुत किया जिसके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गयी कि राष्ट्रपति एक समीति के परामर्श से विधि निर्माण करेगे।[2] कलाश नाथ काटजू ने जो तत्कालिन गृहमत्री थे, ने यह सुझाव दिया कि समिति के सदस्यो को राष्ट्रपति नामजद ना करे जसा कि ठाकुर दास भार्गव के सशोधन म कहा गया ह वरन, ससद के सदना के अध्यक्षो द्वारा उन्ह नामजद किया जाये आर अत म लोक सभा ने विधयक का जिस रूप मे पारित किया, उसके अनुसार राष्ट्रपति राज्य विशेष के लिये अधिनियम का निर्माण करने स पूर्व एक समीति से परामर्श करे। यह परामर्श प्रत्येक स्थिति म अनिवार्य आर वाध्यकारी नही है।[3] विधेयक मे यह स्पष्ट उल्लेखित ह कि जहा ऐसा परामर्श सभव नही हे वहाँ पर परामर्श नही भी किया जा सकेगा।[4]

राष्ट्रपति ससद का अधिवेशन चल रहा हो अथवा नही दोना ही परिस्थितियो म स्वय राज्य विशेष के लिये अधिनियमो का निर्माण उपर्युक्त विधि स कर सकता ह। इस बात की व्यवस्था की गयी हे कि ऐसे समस्त अधिनियम लागू किये जाने के बाद ससद को दोना सदनो के समक्ष रखा जायेगा और कोई भी सदन एक प्रस्ताव के द्वारा 30 दिन के अदर इसमे परिवर्तन का निर्देश दे सकता ह।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि ससद के दोना सदनो म सामान्यत चूँकि सत्तारूढ दल का वहुमत रहता हे और राष्ट्रपति के द्वारा निर्मित अधिनियम उसके अपने विवेक

1 लाक सभा वाद विवाद, 1953 खण्ड 4, कॉलम 5487

2 पूर्वोधृत कॉलम 5498

3 समीति से परामर्श बाध्यकारी नही है। यह निम्न से स्पष्ट है ' The president's shall whenever be consider's it practicable to do so"

4 पूर्वाधृत

स निर्मित अधिनियम नहीं होता परन्तु मंत्रिपरिषद के परामर्श के उपरात निर्मित अधिनियम होता ह अत राष्ट्रपति निर्मित अधिनियमो म परिवर्तन को सम्भावना नही रहती। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक ह कि ससद के किसी भी सदन ने आज तक राष्ट्रपति अधिनियमो मे परिवर्तन नहीं किया ह।[1]

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति अधिनियम वास्तव मे कार्यपालिका द्वारा निर्मित अधिनियम ही है। यह उसी श्रेणी म रखा जा सकता ह, जिस श्रेणी म अध्यादेश आता ह, लेकिन राष्ट्रपतीय अधिनियम अध्यादेश की उपेक्षा एक स्थायी अधिनियम हो सकता ह, क्योंकि अनुच्छेद 357 म इस बात की व्यवस्था ह कि ऐसा कानून जब तक सबधित राज्य के विधान मण्डल द्वारा निरसित या सशोधित नहीं किया जाता[2] तब तक प्रभावी बना रहेगा।

इस विवेचन से यह निष्कर्ष स्पष्ट रूप से निकाला जा सकता ह कि राज्य विशेष के लिये यथार्थत कार्यपालिका और विधायी अधिकार केन्द्रीय कार्यपालिका को प्राप्त हो जाते हे, जिस पर ससद का प्रभावी नियत्रण नही रह जाता। यद्यपि ससद ने राज्य विशेष के लिये वित्तीय अधिकारो का प्रयोग स्वय किया ह लेकिन अनुच्छेद 357 की भाषा एव डेलीगेशन ऑफ पॉवर एक्ट के अन्तर्गत यदि राष्ट्रपति चाहे तो अधिनियम बनाने के

---

1 ज आर सिवाच, पॉलिटिक्स ऑफ प्रैसीडेन्ट रूल इन इडिया इन्सटीट्यूट ऑफ एडवास स्टडीज, राष्ट्रपति निवास शिमला, 1979, पृष्ठ 89-डेलीगेशन ऑफ पावर एक्ट के अन्तर्गत अब 30 दिन की अवधि रखी जाती है जिसके अन्तर्गत ससद के दोनो सदन प्रेसीडेण्ट अधिनियम मे परिवर्तन कर प्रस्ताव पारित कर सकते है और उस प्रस्ताव मे सुझाये गये परिवर्तन को राष्ट्रपति कार्यान्वित करेगा। सिवाच ने यह शका व्यक्त की है कि ससद के द्वारा परिवर्तन सुझाने की प्रक्रिया वास्तव म एक सवैधानिक विडम्बना प्रस्तुत कर देती है और इसस राष्ट्रपति और ससद क अधिकारा म टकराव उत्पन्न हो सकता है वस्तुत विधि निर्माण का अधिकार वास्तव मे ससद का ही हे और राष्ट्रपति अधिनियम का ही एक रूप है। इसलिये ससद इस प्रकार के अधिनियमो म परिवर्तन का सुझाव दे सकती है। इसमें किसी भी प्रकार की सवैधानिक विकृति नहीं है।

2 अनुच्छेद 357 मे 42 व सवैधानिक सशोधन के बाद की व्यवस्था यही है।

अधिकार का प्रयोग वित्तीय क्षेत्र म भी कर सकते ह।[1] राज्य विशेष के सदर्भ म अधिनियम निर्माण का अधिकार राष्ट्रपतीय अधिनियम के अतिरिक्त राज्यपाल के अध्यादेश क माध्यम स भी प्राप्त होता ह क्याकि अनुच्छेद 213 के अनुसार केवल दो परन्तुक अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत जारी की गयी अधिघोषणा मे स्थगित किये जाते हैं। इन दो परन्तुको के स्थगन का केवल इतना ही प्रभाव होता ह कि अध्यादेश जारी करने के लिये जिन सदर्भो मे राष्ट्रपति की पूर्व सहमति या समवर्ती सूची के विषया पर प्रख्यापित अध्यादेश, यदि किसा केन्द्रीय अधिनियम के विरुद्ध जाते ह और उस हद तक अवेद्य हो सकते हे पर राष्ट्रपति की पूर्व सहमति की व्यवस्थाये स्थगित हो जाती ह। ऐसे अध्यादेश की अवधि अनिश्चित हो जाती ह।

## राष्ट्रपतीय अधिनियम

राष्ट्रपतीय अधिनियम के स्वरूप पर विचार करने से पूव इस बिन्दु पर विचार करना आवश्यक ह कि राष्ट्रपति शासन कसा शासन ह ? क्या यह एक अतरिम व्यवस्था ह ? जो केवल दिन प्रतिदिन के कार्या को देख रेख करता ह या नीति निर्धारण भी करता ह। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक हे कि कोई भी शासन अतरिम शासन नही होता। प्रत्येक शासन एक पूर्णशासन होता है और वह वो सभी काय करता है जो निर्वाचन के माध्यम से गठित विधान सभा के गठन के उपरात निर्मित एक मत्रिमण्डल कर सकता ह। वधानिक रूप से किसी भी शासन की कार्यपालिका शक्ति पर कोई नियत्रण नही होता, ऐसा नियत्रण सभव भी नही है, क्योकि वर्तमान परिस्थितियो मे समाज और देश में घटनाये तेजी से घटित होती है तथा उसके सदर्भ मे त्वरित निर्णय आवश्यक होता है।

इसके अतिरिक्त लोक कल्याणकारी लोकतात्रिक राज्य मे आर्थिक विकास योजनाये राज्य के द्वारा चलायी जाती है। इसका उद्देश्य न्यायसगत समाज की स्थापना होता है। यह

1 अनु 357 (1) (सी) इस बात की व्यवस्था करता है कि ससद क द्वारा खर्चे की स्वीकृति क पूर्व भी राष्ट्रपति राज्य के सचित कोष से धन खर्च करने के लिय अनुमति दे सकता है। यह कवल उसी समय सभव है, जब लोक सभा का सत्र नही चल रहा हो। इस व्यवस्था स यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्रपतीय अधिनियम के द्वारा धन विधयक को छोड़कर शष सभी प्रकार के वित्तीय विधेयको का निर्माण सभव है। सिवाच पूर्वोधृत पृष्ठ 91

विकास योजनाये एक बार प्रारम्भ होने के बाद यदि स्थगित कर दी जाय तो उसमे लगाया गया सम्पूर्ण धन वांछित उद्देश्य की प्राप्ति के बिना ही बरबाद हो जायेगा। इसलिये विकास योजनाये उस समय भी स्थगित नही होती, जब राज्य मे अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू किया जाता है।

अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत हस्तक्षेप के बाद राज्य प्रशासन विधायको के दबाव व भागो से मुक्त हो जाती है। ऐसी स्थिति मे नयी नीति के व्यापक रूप पर विचार करना अधिक उपर्युक्त हो सकता है। राष्ट्रपतीय अधिनियम सभी प्रकार के क्षेत्र मे निर्मित किये गये है तथा सभी उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये निर्मित किये गये है।

ये अधिनियम, सामान्य अधिनियम और अध्यादेश तीनो एक ही (वैधानिक) वर्ग मे आते है। तीनो की वैधानिक शक्ति समान है।

राज्य विधान मण्डल को राष्ट्रपतीय अधिनियमो मे संशोधन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। इस संदर्भ मे एक बिन्दु पर शंका प्रकट की जा सकती है कि समवर्ती सूची के विषयो पर राष्ट्रपतीय अधिनियम का निर्माण किया जा सकता है अथवा नहीं। संविधान मे यह व्यवस्था है कि सामान्यतया राज्य का विधान मण्डल समवर्ती सूची के विषयो पर कानून का निर्माण कर सकता है, लेकिन उसके द्वारा निर्मित कानून यदि उसी विषय पर निर्मित केन्द्रीय कानून के विरुद्ध होता है तो उस पर राष्ट्रपति की सहमति आवश्यक है अन्यथा विरोध की स्थिति होने पर वह अवैध हो जायेगा।

अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत जब हस्तक्षेप होता है, तो कार्यपालिका और विधायी शक्ति यथावत राष्ट्रपति (केन्द्रीय कार्यपालिका) को प्राप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति मे यह कहना अनुचित नही होगा कि राष्ट्रपतीय अधिनियम के माध्यम से समवर्ती सूची के विषयो पर कानून का निर्माण किया जा सकता है और ऐसे भी कानून बनाये जा सकते है, जो समवर्ती सूची के किसी विषय पर बनाये गये कानून के भी विरुद्ध हो। ऐसी स्थिति मे राष्ट्रपति की पूर्व सहमति लेना आवश्यक नही है, क्योकि प्रत्येक राष्ट्रपतीय कानून संसद के द्वारा राष्ट्रपति को दिये गये अधिकारो के अन्तर्गत निर्मित होते है। इसलिये राष्ट्रपति की सहमति या पूर्वानुमति आवश्यक नही है। इस संदर्भ मे अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत की जाने वाली उद्घोषणा का उल्लेख करना अनुचित नही है। इस अधिघोषणा मे अनुच्छेद 213 के

दाना परन्तुक स्थगित कर दिये जाते ह। ये दोना परन्तुक राष्ट्रपति की पूवानुमति ओर सहमति से सबधित हे, अर्थात् राज्यपाल किसी भी प्रकार का कोइ भी अध्यादेश राज्य सूची तथा समवर्ती सूची के विषयो पर जारी कर सकता हे। राज्यपाल जो अनुच्छेद 356 क हस्तक्षेप के उपरात मात्र राष्ट्रपति के आदेश के अन्तर्गत कार्य करने वाला व्यक्ति हो जाता ह उसे ऐसे आधिकार प्राप्त हो जाते ह, तो राष्ट्रपति, राष्ट्रपतीय अधिनियम के अन्तर्गत राज्यसूची तथा समवर्ती सूची के किसी विषय पर कानून निर्मित कर सकता हे। प्रकारान्तर से केन्द्रीय सरकार राष्ट्रपति कानून के माध्यम से केन्द्र की नीतियो को, राज्य मे लागू करता रही ह। राजनीतिक दृष्टिकोण से यह अन्यन्त महत्वपूर्ण हे, क्योकि राज्य मे जिस दल को जनादेश प्राप्त होता ह वह अपनी नीतियो को लागू करती ह। ये नीतिया केन्द्रोय इच्छा के विपरीत भी हो सकती है। यह सत्य है कि राष्ट्रपतीय अधिनियमो मे सशोधन या उसके निरसन के लिये राष्ट्रपति की पूर्वानुमति लेना आवश्यक नही ह। प्राय राष्ट्रपतीय अधिनियम स्थायी अधिनियम का रूप ले लेते हे।

# अध्याय 4

## राष्ट्रपति शासन की बारम्बारता : कारण और परिणाम

# राष्ट्रपति शासन की बारम्बारता : कारण और परिणाम

भारतीय सविधान के निमाता डॉ भीमराव अम्बेदकर ने सदस्या का आशकाओ को दूर करते हुये यह आशा व्यक्त की थी भविष्य मे इस अनुच्छेद के उपयोग की आवश्यकता नही पडेगी आर ये उपबध **'मृतप्राय'** ही रहेगे लेकिन उनकी आशकाआ के विपरीत आज सविधान के लागू होने के बाद से अनेको बार इनका प्रयोग किया ह और आज भारत का कोई भी राज्य इस धारा के प्रकोप से वचित नही रह गया है, यहॉ तक कि सघ शासित प्रदेशा म भी इसके प्रयोग की आवश्यकता पडी है। यद्यपि सभी राज्यो मे इसका प्रयोग किया गया ह लेकिन कुछ राज्य ऐसे भी रहे है, जहॉ इनका बारम्बार प्रयोग किया गया है। इनमे पजाव का प्रथम स्थान पर ह जहॉ सर्वाधिक बार व अवधि तक राष्ट्रपति शासन कायम रहा। उसके बाद केरल का स्थान ह, जहा पजाव के बराबर ही नौ बार राष्ट्रपति शासन लागू करना पडा। तत्पश्चात् उत्तरप्रदेश आर उडीसा का स्थान आता हे जहॉ क्रमश सात व छ बार राष्ट्रपति शासन लागू करना पडा।

इस अध्याय मे हमारे अध्ययन का विषय यही चारो राज्य ह जहा अधिकता मे राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। यह विचारणीय प्रश्न है कि वे कौन से कारण रहे जबकि इन राज्यो की जनता को इतनी लम्बी अवधि तक निर्वाचित सरकारो से शासित होने से वचित रखा गया।

यद्यपि इन सभी राज्यो म राष्ट्रपति शासन लगाये जाने के कारण भिन्न-भिन्न रहे लेकिन एक कारण जो इन सभी मामलो मे सामान्य रहा वो यह है कि अधिकतर सरकारो के पतन का कारण वे स्वय थीं। वास्तव मे सविधान मे ता ससदीय व्यवस्था को स्वीकार कर लिया था लेकिन केवल सिद्धान्त रूप मे। लेकिन व्यवहार मे वास्तव मे अभी जनता उससे पूरी तरह परिचित नही हो पायी थी। जिसकी परिणति बार-बार राष्ट्रपति क रूप मे दिखायी देती ह। जिन राज्यो का इस अध्याय मे विवेचन किया गया हे वे है-

1 केरल

2 पजाब

3 उत्तर प्रदेश

4 उड़ीसा

GRAPH SHOWING FREQUENCY OF PRESIDENT'S RULE IN STATES (1951-1995)
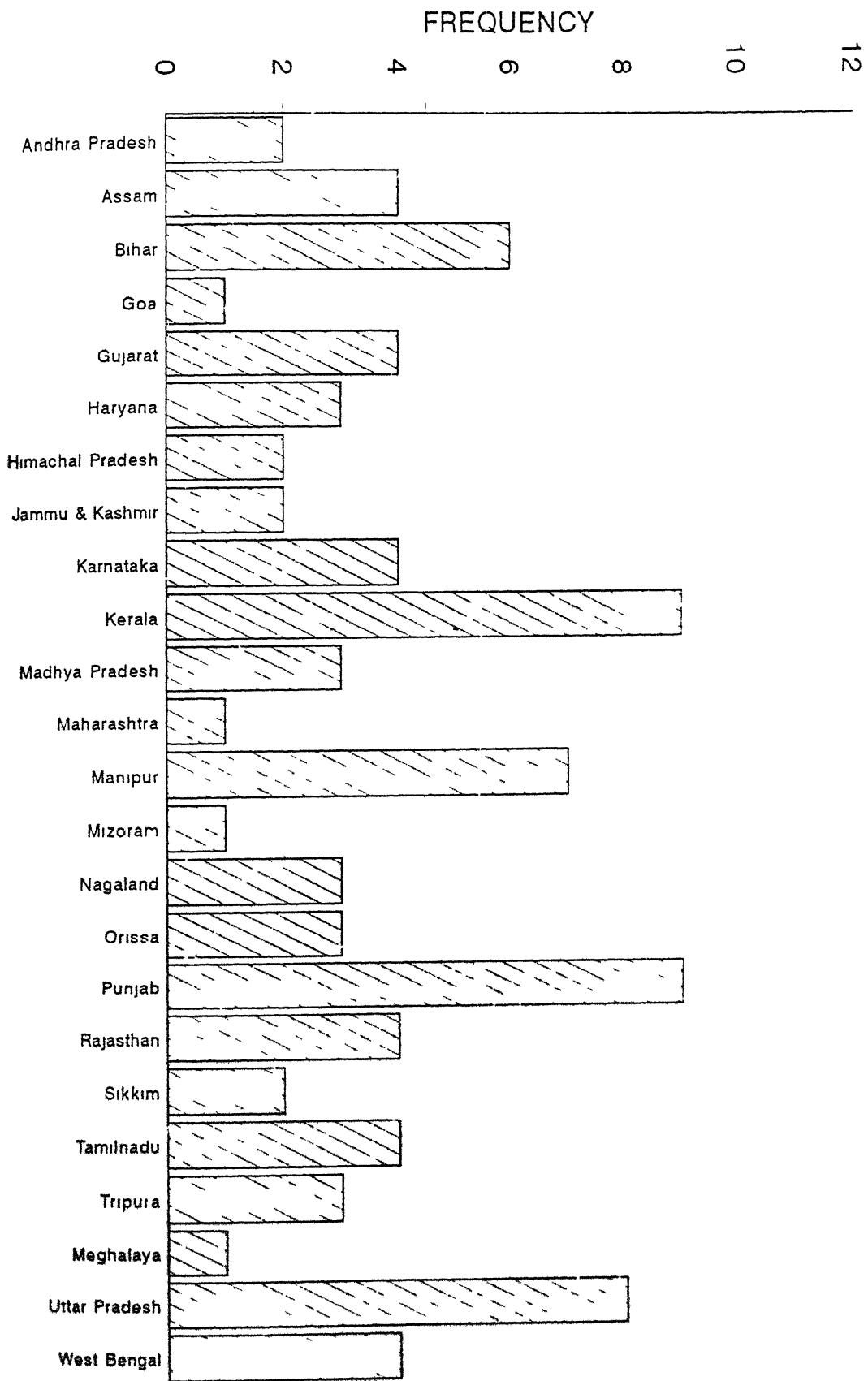
इन चारा राज्या म राष्ट्रपति शासन की विवेचना से अब तक का उन सभी परिस्थितिया का समावेश हो जाता है, जिसके कारग राज्यो मे राष्ट्रपति शासन लगाया जाता रहा ह। जसा कि सलग्न ग्राफ से भी स्पष्ट होता है कि पजाब व केरल म सर्वाधिक बार इस धारा का प्रयोग किया गया ह। उत्तर प्रदेश व उडीसा मे राष्ट्रपति शासन का प्रमुख कारण राजनीतिक अस्थिरता रही ह। पजाब म यद्यपि प्रारम्भ म अधिकतर अवसरा पर वहाँ की आन्तरिक राजनीति ही इसके लिये जिम्मेदार रही लेकिन बाद के वर्षा म राष्ट्रपति शासन का कारण बना-राज्य मे बढ़ता हुआ उग्रवाद। केरल राज्य भारत का समस्याग्रस्त राज्य रहा है। प्रारम्भ मे हा वहाँ किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नही प्राप्त हो पाया।

## त्रिवाकुरकोचीन (केरल) 23-3-56—1-11-56

करल मे राष्ट्रपति शासन का शुभारम्भ वर्तमान केरल राज्य क अस्तित्व म आने म पूव ही शुरू हो गया था। [1]

पूर्व का त्रिवाकुरकोचीन ही 1 नवम्बर 1956 के राज्यो का पुर्नगठन होने पर केरल राज्य बना कोचीन म राष्ट्रपति शासन श्री गोविन्दमेनन के नेतृत्व वाली सयुक्त मोर्च की सरकार क पतन के [2]परिणामस्वरूप लगाया गया था।2 विधान सभा चुनावा के बाद स कोचीन मे यह दूसरा मत्रिमण्डल था जिसका पतन हुआ था। इससे पूर्व भी प्रजा समाजवादी पार्टी [3]ने श्री

---

1 इडिया– 1956 पृ 474

2 इण्डिया–1956 पृ 47

3 प्रजा समाजवादी पार्टी का गठन 1950 म कुछ उद्देश्या को दृष्टि म रखकर किया गया था। आचार्य कृपलानी इस पार्टी के सस्थापक थ। वास्तव म पार्टी का गठन काग्रेस व उन असन्तुष्टो द्वारा किया गया था जिनकी विचारधारा काग्रेस से नही मिलता था लकिन आग चलकर यह पार्टी सयुक्त साशलिस्ट पार्टी से मिल गयी। इस पार्टी का ढाचा लगातार बदलता रहा अत इस पार्टी क कार्यक्षेत्र और विचारा का स्पष्टीकरण बहुत मुश्किल था। केरल म एक मध्यम दल क रूप म श्री पिल्लै के नेतृत्व म इसका गठन किया गया था। जिसक आदर्श बहुत उच थ कि प्रजा समाजवादी पार्टी काग्रेस तथा कम्युनिस्टा के विकल्प क रूप म उभरेगी, लकिन बाद म काग्रेस से लगातार गठबन्धन कर अपने द्वारा निर्धारित उच्च आदर्शा को तिलाजली द दी। डायनामिक्स आफ स्टेट पालीटिक्स इन केरला एनजास चन्दर' पृष्ठ 63

पट्टमथानु पिल्ल के नेतृत्व मे राज्य मे सरकार का गठन किया था। जिसका काग्रेस ने सरकार से वाहर रहकर सर्मथन दिया था।[1] कांग्रेस जो कि चुनावो के बाद राज्य विधान सभा म सबसे वड दल के रूप म उभर कर सामने आया था, द्वारा सरकार बनाने का दावा पेश नही करने का फसला वहुत आश्चयजनक था।

राजनीतिक विश्लेषको के विचार मे काग्रेस के इस फसल के पीछे राजनीतिक स्वार्थ निहित था मार्च, 1954 को विधान सभा के लिये हुये चुनावा म विभिन्न दला की स्थिति निम्न प्रकार से थी काग्रेस-45 कम्युनिस्ट-23, पी एसपी-19 क्रातिकारी सोशलिस्ट-9, त्रिवाकुर तमिलनाडु काग्रेस–12, स्वतन्त्र–9-कुल योग-117[2]

काग्रेस पार्टी विधायक दल के नेता श्री गोविन्दमेनन का स्पष्टीकरण था कि काग्रेस पार्टी राज्य म सरकार के निर्माण मे जल्दी नही करना चाहती ना ही कोई ऐसा कदम उठाना चाहती ह जो मर्यादा के प्रतिकूल हो[3] कांग्रेस के द्वारा पहल ना करने का एक प्रमुख कारण यह था कि कम्युनिस्ट पार्टी जो कि विधान सभा मे दूसरा सवसे वडा दल थी ने जनता द्वारा उत्साही समथन मिलने के कारण गैर काग्रेसी दलो ने सरकार बनाये जाने म रुचि दिखायी थी।[4] साथ ही कम्युनिस्टो ने यह भी घाषित किया था कि विना प्रजा समाजवादी पार्टी के सरकार मे शामिल हुये वे सरकार का राज्य मे सर्मथन नही करेगे।तत्पश्चात प्रजासमाजवादी पार्टी की राज्य इकाई ने कम्युनिस्टो के सहयोग से सरकार बनाने की सभी तैयारी पूरी कर ली थी। राज्य विधायक दल ने श्री पट्टम थानु पिल्लै को अपना नेता चुना और राज्यपाल के समक्ष 59 सदस्यो की सूची रखते हुय सरकार बनाने का दावा पेश किया था। लेकिन मार्च 16, मार्च, 1954 को पीएसपी के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री कृपलानी ने कम्युनिस्टो से सहयोग के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।[5]

---

1 अमृत बाजार पत्रिका, 10 मार्च, 1954

2 अमृत बाजार पत्रिका-10 मार्च, 1954

3 वही–10 मार्च, 1954

4 इण्डियन पालिटिकल पार्टिस-स–एस0सी0 कश्यप, पृष्ठ– 232

5 डायनामिक्स आफ स्टेट पालटिक्स इन करला, एन जोन्स, पृष्ठ– 152

लेकिन 17 मार्च को अचानक ही कांग्रेस विधान मंडलीय पार्टी ने भविष्य में राज्य में स्थिर कांग्रेसी सरकार की संभावना को देखते हुए पीएसपी के समर्थन का फैसला लिया था, और फलस्वरूप श्री पट्टम थानु पिल्ले मुख्यमंत्री नियुक्त किये गये। संविधान के लागू होने के बाद से यह पहला अवसर था जबकि कांग्रेस के अलावा कोई अन्य दल किसी राज्य में सत्तारूढ़ हुआ था।[1]

आगे चलकर राजनीतिक विश्लेषकों का यह अनुमान सच साबित हुआ कि कांग्रेस का राज्य में आधार बढ़ते ही तो सरकार से अपना समर्थन वापस ले लेगा। कांग्रेस द्वारा पिल्ले सरकार से अपने समर्थन वापस लेने की घोषणा के साथ ही श्री थानु पिल्ले ने त्यागपत्र दे दिया। उसके तुरत बाद फरवरी 1955 मे कांग्रेस विभिन्न दलो के सहयोग से संयुक्त मार्च की सरकार बनाने में सफल हो गयी और श्री गोविन्द मेनन के नेतृत्व में राज्य मे कांग्रेसी सरकार सत्तारूढ़ हुयी थी।[2]

लेकिन श्री गोबिन्द मेनन की कांग्रेसी सरकार पर पार्टी के असंतुष्टों के विद्रोह का खतरा बराबर बना रहा। वास्तविक संकट उत्पन्न हुआ जब राज्यो के पुर्नगठन का काम चल रहा था और कोचीन राज्य के तमिल भाषी जिलो को मद्रास को हस्तान्तरित किया जाना था। इस प्रश्न पर कांग्रेसी विधायकों मे मनभेद उभर कर सामने आया और जब बजट पर मतदान के लिये सदन की बैठक बुलायी जाने का प्रस्ताव था[3] उससे पूर्व ही 10 मार्च को छ कांग्रेसी सदस्यो ने कांग्रेसपार्टी से अपना इस्तीफा दे दिया। इन छ विद्रोही सदस्यो के इस्तीफे के बाद सरकार के सदन मे हारने की संभावना हो गयी क्योकि पक्ष के सदस्यो की संख्या घटकर 54 रह गयी थी।(3)

इन सदस्यो के पार्टी छोडने के कारण आये संकट को देखते हुये मुख्यमंत्री श्री गोविन्द मेनन ने अपने एक वर्षीय पुराने मंत्रिमण्डल का त्याग पत्र 12 मार्च 1956 को राज्यप्रमुख श्री रामवर्मा को सौंप दिया।[4]

---

1 अमृत बाजार पत्रिका 17 मार्च, 1954

2 अमृत बाजार पत्रिका–17 मार्च, 1955

3 अमृत बाजार पत्रिका–10 मार्च, 1956

4 वही 12 मार्च, 1956

राज्य के विपक्षी दलो ने राष्ट्रपति शासन की सभावना को देखते हुए मिली जुली सरकार बनाने का प्रयास आरम्भ कर दिया। इस दिशा म राज्य कम्युनिष्ट पार्टी ने प्रजा समाजवादी पार्टी को सरकार बनाने मे सहयोग देने की बात कही थी। कम्युनिस्ट पार्टी की राज्य इकाई ने अपने वक्तव्य मे कहा था कि ऐसे समय मे जबकि केरल राज्य आकार ग्रहण कर रहा ह राष्ट्रपति शासन ना लागू होने देने का प्रयास करना प्रत्येक दल का कर्तब्य है।

लेकिन सयुक्त सरकार बनाने के प्रयास को उस समय आघात पहुचा जबकि काग्रेस के कुछ विद्रोही सदस्यो ने कम्युनिष्टो के सहयोग से बनने वाली किसी भी सरकार का सर्मथन करने से इनकार कर दिया और इन सदस्यो ने काग्रेस और पीएसपा के सहयोग से मिल कर बनने वाली सरकार के सर्मथन की बात कही थी। लेकिन काग्रेस ने किसी भी दल की सरकार को अपना समथन देने से इनकार कर दिया।

लेकिन राज्य म सभी वामपथी पार्टिया मिलाजुला मत्रिमण्डल बनाने का प्रयास कर रही थी। कम्युनिष्ट पार्टी के श्री टीवी थाम्स ने राजप्रमुख के मिलकर राज्य मे श्री पट्टमथानु पिल्ल को सरकार बनाने के लिये आमत्रित करने की बात कही। उन्होने राज्यप्रमुख के समक्ष सर्मथको की जो सूची प्रस्तुत की थी उसमे 118 सदस्सीय सदन म 61 सदस्य सूची म थे जिसमे काग्रेस पार्टी के कुछ सदस्यो के भी नाम सम्मलित थे।[1] लेकिन अन्तत 24 मार्च, 1956 को राजप्रमुख ने सभी दावों की जाच के बाद में राष्ट्रपति शासन की सस्तुति कर दी। राष्ट्रपति ने राज्यपाल के प्रतिवेदन के आधार पर राज्य म राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा जारी कर दी साथ ही राज्य विधान सभा भी तत्काल भग कर दी गयी।[2]

राष्ट्रपति द्वारा जारी उद्घोषणा मे कहा गया था कि वे (राष्ट्रपति) इस बात से सतुष्ट ह कि राज्य मे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी कि वहा सविधान की व्यवस्थाओ के अनुसार सरकार का निर्माण सभव नही था। गजट म प्रकाशित विज्ञप्ति म कहा गया था कि राष्ट्रपति ने जो अधिकार प्राप्त किये है उसका उपयोग कोचीन राज्य के राज प्रमुख

---

1 अमृत बाजार पत्रिका 13 मार्च, 1956

2 वही – 13 मार्च 1956

राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त सलाहकारो के माध्यम से करेगा।[1] राज्य म राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा क बाद श्री पी.एस राव को राज्यपाल का सलाहकार नियुक्त किया गया था।

## राजनीतिक दलो द्वारा आलोचना

कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा राज्य मे राष्ट्रपति शासन लगाये जाते की कड़ी आलोचना की। गयी। कम्युनिस्ट नेता श्री ए.के. गोपालन ने राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने की कार्यवाही को अन्यायपूर्ण व अनुचितकहते हुये इसे लोकतन्त्र की परम्परा के प्रतिकूल बताया। उनका विचार था कि सरकार ने कोचीन के इस वैधानिक शासन का अत कर दिया क्योकि राज्य मे काग्रेस सरकार बनान की स्थिति मे नही थी।[2] क्योकी इससे पूर्व भी श्री मेनन की काग्रेसी सरकार को जिसे पूण बहुमत नही था, को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया गया था जिसे टी.टी.एन का सर्मथन प्राप्त था। जबकी गठबन्धन के केवल 57 सदस्य ही थे। आर यह देखते हुये कि 118 सदस्यीय सदन मे सरकार पूर्ण बहुमत प्राप्त करने मे असफल थी को सरकार बनाने के अवसर दिया गया था। जबकि पी.एस.पी. के उसी दावे को नकार दिया गया था जबकि उसे 57 सदस्यो के सर्मथको की सूची पेश की थी।[3]

लोकसभा मे सदस्यो की आलोचना का जबाब देते हुए तत्कालीन गृहमत्री श्री गोविन्द वल्लभ पत ने यह स्पष्ट किया कि प्रजा समाजवादी पार्टी का जिनके विधान सभा मे 19 सदस्य ही थे, उन्हे केवल 59 सदस्यो का ही सर्मथन प्राप्त था। अत विस्तृत जाच के बाद राज्यपाल इस निष्कर्ष पर पहुचे कि 118 सदस्यीय सदन मे 57 सदस्य, जो कि आधे से भी कम थे। अत बहुमत मे ना होने के कारण पी.एस.पी. सरकार बनाने मे वास्तव म सक्षम ही नही था।[4]

## कोचीन मे राष्ट्रपति शासन लगाये जाने का औचित्य

कोचीन मे लगाये गये राष्ट्रपति शासन का निष्पक्ष विश्लेषण करने पर यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि विरोधी दावो को देखते हुये यदि पुन सरकार आमत्रित की जाती

---

1 पूर्वाधृत-25 मार्च, 1956

2 लोक सभा वाद-विवाद—भाग 2 वाल्यूम—3, 29 मार्च, 1956

3 वही

4 लोक सभा वाद-विवाद, वही

तो उसका भी वही हश्र होगा जोकि पिछली दो सरकारो का हुआ था आर वहा की अस्थिर स्थिति को देखते हुये राष्ट्रपति शासन ही एकमात्र विकल्प था क्योकी किसी भी दल मे मत्रिपरिषद गठित करने की सामर्थ्य नही थी। श्री पट्टम थानु पिल्लै ने 60 सदस्यो के समर्थको की जो सूची राजप्रमुख [1]को भेजी थी उसमे से उनके दल के तीन और काग्रेस के एक सदस्य ने अपनी अनिच्छा राजप्रमुख को भेज दी थी। अत इन सभी विरोधी दावो की जाच के बाद ही विवश होकर राज्यपाल को राज्य मे राष्ट्रपति शासन की सस्तुति करनी पडी थी।

राज्य मे जिस प्रकार की राजनतिक अनिश्चितता का वातावरण था, उसको देखते हुये कहा जा सकता ह कि राज्यपाल को पुन किसी गुट को सरकार बनाने के लिये आमत्रित ना करने का फसला उचित था, क्योकी वामपथी दल जिन्होने राज्यपाल के सम्मुख सरकार बनाने का दावा पेश किया था, वो अतिरिक्त उत्साह मे किया जा रहा था, क्योकि 117 सदस्यीय सदन मे उनको स्पष्ट रूप से केवल 32 सदस्यो का ही समर्थन प्राप्त था, क्योकि काग्रेस दल ने किसी भी दल को समर्थन देने से इनकार कर दिया था, जिसके सदस्यो की सख्या 39 थी। काग्रेस क 6 विद्रोही सदस्यो ने भी कम्युनिस्टो को सहयोग देने से इन्कार कर दिया था। अत राज्यपाल का निर्णय उचित था कि कोई भी गुट सदन मे बहुमत का समर्थन प्राप्त करने मे अस्मर्थ था।

लोक सभा ने 29 मार्च 1956 को राष्ट्रपति शासन सम्बन्धा उद्घोषणा के प्रस्ताव पर अपनी सहमति प्रदान कर दी। उसी दिन 1 नवम्बर 1956 को राज्य के पुनगठन के पश्चात तथा नया राज्य केरल बनने पर त्रावनकोर कोचीन मे राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा को वापस ले लिया गया, लेकिन पुन उसी दिन राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। क्योकि नये राज्य के लिए विधान सभा का गठन नही हो पाया था। राज्य मे राष्ट्रपति शासन की समाप्ति अप्रेल 1957 को हुई । जबकी आम चुनावो के बाद श्री ईएमएस नम्बूदरी पाद के नेतृत्व मे कम्युनिष्ट पार्टी ने सरकार का गठन किया। [2]

---

1 सविधान (सॉतवा सशोधन) अधिनियम, 1956 की धारा 29 और अनुसूची (1)द्वारा 'राजप्रमुख' शब्दा का लोप किया गया।

2 A केरल की स्थिति के बारे में राज्यपाल की रिपोर्ट का सारांश-लोक सभा वाद विवाद-17 8 59, कॉलम 2854 व अमृत बाजार पत्रिका-6 4 57

केरल-31-7-59-22-2-60[1]

1957 के आम चुनावो मे कम्युनिस्ट पार्टी ने केरल मे कुछ निर्दलीय उम्मीदवारो के समर्थन से सदन मे पूर्ण बहुमत प्राप्त किया था। कुल स्थाना म पार्टी ने 51 58% मत प्रात कर नयी सरकार बनाने मे सफल हुयी थी।[2]

राज्य मे विभिन्न दलो की चुनावो के बाद स्थिति निम्न प्रकार सेथी-

| दलो का नाम | | प्राप्त स्थान |
|---|---|---|
| *1-* | *कम्युनिस्ट पार्टी* | *60* |
| *2-* | *कांग्रेस पार्टी* | *43* |
| *3-* | *प्रजा सोशलिस्ट पार्टी* | *9* |
| *4-* | *कान्तिकारी सोशलिस्ट पार्टी* | *2* |
| *5-* | *निर्दलीय* | *14*[3] |

1957 के केरल के चुनाव परिणाम समूचे विश्व को आश्चर्य मे डालने वाले थे जबकि यह पहला अवसर था कि साम्यवादी दल ने विश्व मे कही प्रजातांत्रिक पद्धति से सत्ता प्राप्त की थी। [4] दक्षिण भारत के इस छोटे से प्रदेश ने समस्त विश्व का ध्यान अपनी ओर खींचा था, क्योकि राज्यपाल डा.बी राम कृष्ण राव के निमत्रण पर कम्युनिस्ट पार्टी के नेता श्री ई.एम.एस नम्बूदरीपाद ने राज्य मे सरकार का गठन किया था। यह एक ऐतिहासिक क्षण था जबकि चुनावो के माध्यम से विश्व मे किसी भी स्थान मे कम्युनिस्ट पार्टी सत्तारूढ हुयी थी।[5]सत्ता ग्रहण करने के पश्चात मुख्य मत्री श्री नम्बूदरीपाद ने यह

---

1 केरल की स्थिति के बारे मे राज्यपाल की रिपोर्ट का साराश–लोक सभा वाद-विवाद–17-08-1959

2 B विक्टर एम0फिक, केरला येनान ऑफ इण्डिया (बाम्बे-नचिकेता पब्लिकशन लिमिटेड, 1970) पृष्ठ 78

3 १४ निर्दलीय उम्मादवारो मे से 8 मस्लिम लीग द्वारा समर्थित थे जबकि 5 कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थक थे–डायनमिक्स ऑफ स्टेट पालिटिक्स इन केरल–एन0 जास चन्द्र, पृष्ठ –781

4 स्टट गवर्नरर्स इन इण्डिया-ट्रेण्ड एण्ड इश्यूश–एन0एस0 गहलौत–गिताजली पब्लिकेशिंग हाउस (दिल्ली) 1985, पृष्ठ– 245

घोषणा की कि उनकी सरकार राज्य मे भ्रष्टाचार हटाने की पूरी कोशिश करेगी। भूमि सुधार अभियान आरम्भ करेगी साथ ही प्रशासनिक नीतियो को सम्पादित करने के लिये कम्युनिस्टो का लगायेगी साथ ही केरल के लोगो का सास्कृतिक स्तर ऊचा उठाने का प्रयास करेगी।[1] दूसरे शब्दो मे कम्युनिरस्ट सरकार ने अपने वादो और शर्तो को कायरूप मे परिणित करने के लिये कृतसकल्प थी।

सत्ता ग्रहण करने के तुरत बाद ही सरकार ने अपने सवधानिक अधिकारो का दुरूपयोग करना प्रारम्भ कर दिया तथा अधिनायकवादी प्रवृति अपना लिया। इस कारण केरल मे कम्युनिस्ट मत्रीपरिषद के खिलाफ विरोध शुरू हो गया था। अपनी नीतियो के तहत कार्मिक वर्ग को काफी सहायता दी गयी जिससे सरकार के विरोधियो का सफाया हो गया। राज्य पुलिस तत्र कमजोर हो गया था। भेदभाव की नीति अपनायी जिसके तहत कम्युनिस्ट विचारधारा के समर्थको को अत्याधिक महत्व प्रदान किया गया। दिसम्बर 1958 को 1780 मुकदम वापस ले लिये गये।[2]

12 जून 1959 को राज्य के विपक्षी दलो, ने राज्य की स्थिति को देखते हुये एक सयुक्त कार्यकारी समिति बनायी जिसमे काग्रेस, प्रजा समाजवादी पार्टी और मुस्लिम लीग सम्मलित थे और इसके तहत श्री नम्बूदरीपाद की सरकार के आयोग्य शासन को समाप्त करने के लिये एक अहिंसक आन्दोलन चलाया।[3] इसके साथ ही एक और समानान्तर विरोधी सगठन नायर सर्विस सोसायटी और रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा भी चलाया जा रहा था जोकि राज्य मत्रिमण्डल द्वारा नयी घोषित शिक्षा अधिनियम के खिलाफ था। इन दोनो सगठनो द्वारा चलाये गये अभियान के दौरान राज्य पुलिस से मुठभेड़ में बहुत से

---

6 But Nehru did not give any importance to the assumption of the power of the state by the Communist Party" दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, अप्रैल 13 1957

1 जार्ज वुडकुक, करल–25 पोट्रेट ऑफ मालबार कौस्ट पृष्ठ–263 (लन्दन, फेबर एण्ड फेबर लिमिटेड, 1967)

2 एशियन रिकार्डर, पृष्ठ– 1448, 1957

3 केरल अडर कम्युनिज्म-ए रिपोर्ट–पब्लिश्ड–डेमोक्रेटिक रिसर्च साइस सर्विस, 1959 पृष्ठ–89

लोग मारे गये आर सकडो घायल हो गये थे। पूरे राज्य मे भय का वातावरण व्याप्त हो गया [1] इन घटनाआ के कारण राज्य म असुरक्षा का वातावरण बन गया था जिसमे जनजीवन को खतरा पदा हो गया था। हडताल राज्य प्रशासन का सामान्य हिस्सा बन गयी थी। राज्य के विपक्षी दलो ने जो सयुक्त समिति बनायी थी उसने राज्य सरकार के खिलाफ 37 सूत्रो का एक आरोप पत्र तैयार किया था जिसकी प्रमुख बाते इस प्रकार थी –[2]

1- कम्युनिस्ट सरकार ने अपने प्रशासनिक अधिकारा का दल के सदस्यो हेतु दुरूपयोग किया जबकि गेर कम्युनिस्टो की अवहेलना की गयी ।

2- कम्युनिस्ट पार्टी का सरकार प्रथम पचवर्षीय योनना क अनुसार राज्य की सभी विकास योजनाआ को सुचारु रूप से चलाने मे विफल हो गयी थी।

3- राज्य मे लोगो के मालिक अधिकारो को अस्वीकार किया गया साथ ही लोगो की जान माल की सुरक्षा तथा कानून व व्यवस्था भग हो गयी थी।

4- राज्य मे भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा था। कम्युनिस्ट सहकारी सस्थाय विशेष रूप से नये श्रमिक ठेका समीतियॉं तथा ताड़ी निकालने वाली समीतियो को राजकोष से पसा दिया गया जबकि गेर कम्युनिस्ट पार्टी को पजीकरण या किसी प्रोत्साहन से मनाकर दिया गया। सरकारी कार्या हेतु जो जमीन खरीदी गयी तथा जो आधोगिक लोन बॉंटे गये या जो लोक निर्माण कार्यो के ठीके दिये गये, वो इस प्रकार से चलाये गये ताकि उससे कम्युनिस्ट पार्टी का फड बढ़े।

5- राज्य का खजाना बिल्कुल खाली हो गया तथा राज्य आर्थिक दृष्टि से बिल्कुल खाली हो गया तथा राज्य आर्थिक दृष्टि से बिल्कुल नीचे चला गया था।

6- राज्य के कर्मचारी आर पुलिस कम्युनिस्टा के सेवक हो गये थे। पुलिस को मजबूर किया जाता था कि गर कम्युनिस्टो को उत्पीड़ित किया जाय। राज्य म कम्युनिस्ट

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 13 जून 1959

2 दि स्टटमैन, 13 सितम्बर, 1958

विना किसी भय के अत्याचार ढाते रहे जहाँ कहीं भी उनके विरुद्ध कार्यवाही की भी गयी वहाँ मामले को तुरन्त रफा-दफा कर दिया गया।

7- राज्य मे नयी शिक्षा नीति का निर्माण इस प्रकार किया गया था जिससे निजी स्कूलो का अस्तित्व पूरी तरह समाप्त हो जाय। लोगो की धार्मिक भावनाओ को ठेस पहुचायी जा रही थीं तथा स्कूलो की पाठ्य पुस्तके कम्युनिस्टो के सिद्धान्त की प्रचार पुस्तिका बन गयी थीं। 8- विशेष कान्सटेबिलो की भर्ती का अभियान चलाया गया जिसमे कम्युनिस्टो के विरुद्ध उभर रहे आदोलनो को दबाया जा सके, साथ ही कम्युनिस्ट पार्टी को हथियार बद किया जा सके।[1]

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि इस पूरे आरोप पत्र का यह आशय था कि राज्य का शासन इस प्रकार चलाया जा रहा था कि दल व सरकार के एक होने का सिद्धान्त लागू हो सके सत्ता मे आने के बाद से कम्युनिस्टो ने प्रशासन के लाभ के पदो पर अपने पार्टी के सदस्यो को बठाना आरम्भ कर दिया था। विपक्षी दल कम्युनिस्ट पार्टी की अधिनायकवादी प्रवृत्ति स बहुत ज्यादा चिंतित थे। राज्य मे कम्युनिस्ट सरकार के खिलाफ बहुत व्यापक आन्दोलन चलाया जा रहा था जिसके कारण सरकार के सामान्य काम का निपटना भी मुश्किल हो गया था। इन आन्दोलन रत लोगो की एक ही माग थी कि राज्य सरकार का तुरन्त हा बरखास्त कर दिया जाय। राज्य म इन आन्दोलनरत लोगो का नेतृत्व काग्रेस पार्टी द्वारा किया जा रहा था, जो राज्य का प्रमुख विपक्षी दल था। अत इस आरोप मे कि वास्तव मे राज्य सरकार सविधान के विरुद्ध कार्य कर रही थी, सदेह था। **केरल की स्थितियो के सम्बन्ध मे पण्डित नेहरु का कहना कि वे राज्य सरकार के विरुद्ध कोई टिप्पणी नही करना चाहते क्योकि वे राज्य के मामले मे दखल देना पसन्द नही करते थे, क्योकि वे नही चाहते थे कि विपक्षी दल उन पर इस** बात पर आरोप लगाये **कि वे विपक्षी दल की सरकार को हटाने के लिए उस पर अनुचित** दबाव डाल रहे है।[2]

---

1 दि स्टेट्समैन—सितम्बर 13, 1958

2 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 7 जून, 1959

12 जून 1959 को व्यापारिया आर गेर काग्रेसी श्रमिक मगठना के लोगा ने भी वहुत सफ्ल हडताल की। इन आदोलनो के दौरान सात व्यक्ति मारे गये आर बहुत से गिरफ्तार किये गये।[1] राज्य की इस खतरनाक स्थिति को देखते हुए केन्द्रिय पर्यवेक्षक श्री के. एम मुशी जो कि राज्य की स्थितियो पर अपने राय देने के लिये केन्द्र द्वारा भेजे गये थे, ने केरल मे अनुच्छेद 356 के तहत सरकार भग कर कार्यवाही करने की वकालत की। प्रधानमत्री पडित नेहरू ने 22 जून को राज्य की नाजुक स्थिति को देखते हुये वहाँ का दौरा किया जिससे हालात सामान्य बनाये जा सके।[2] उन्होंने इस सबध मे राज्य के विभिन्न सगठनो व राजनीतिक दलो के नेताओ से विचार विमर्श किया।

नेहरू ने बहुत से सुझाव स्थिति को सामान्य बनाने हेतु प्रस्तुत किये जिसमे से एक सुझाव केरल शिक्षा अधिनियम को समाप्त करने से भी सम्बन्धित था। साथ ही साथ राज्य मे मध्यावधि चुनाव कराने का प्रस्ताव रखा। मत्रिमण्डल ने नेहरू द्वारा प्रस्तुत दोना सुझावो को स्वीकार कर लिया लेकिन यह शर्त रखी कि विपक्षी दल सरकार के खिलाफ चलाये जा रहे आदोलन को भी स्थगित कर देगी।[3]

29 जून को गेर कम्युनिस्टो ओर उनके समर्थको द्वारा एक शाति पूर्ण हड़ताल का आयोजन किया गया राज्य की राजधानी मे करीब 2000 लोगो ने सरकारी कार्यालयो को ईटो व पत्थरो से तोड़ने की कार्यवाही मे हिस्सा लिया। पुलिस ने उग्र भीड़ को तितर वितर करने के लिये गोली चलायी जिसमे तीन लोग मारे गये और बहुत से घायल हो गये।

जुलाई 7 को पडित नेहरू ने विचार व्यक्त किया कि केन्द्रिय सत्ता का राज्य मे हस्तक्षेप का कोई इरादा नही है।[4]

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया,14 जून, 1959

2 दि रिपोर्ट ऑफ केरल अडर कम्युनिज्म, पृष्ठ–137

3 दि हिन्दू, जून 26, 1959

4 पूर्वाधृत–जून 30, 1959

जुलाई 10 को केरल काग्रेस पार्टी के अध्यक्ष श्री आर. शकर ने राष्ट्रपति डा राजेन्द्र प्रसाद को एक ज्ञापन प्रस्तुत किया जिसम केरल मत्रिमण्डल के खिलाफ आरोप लगाये गये थे साथ ही राज्य मे मध्यावधि चुनाव कराने का भी माग की गयी थी।[1]

ज्ञापन मे आरोप लगाया गया था कि राज्य मत्रिमण्डल ने प्रजातत्र का विध्वस कर दिया ह साथ ही सविधान द्वारा जनता के मूल अधिकारो की सरक्षा की जो गारण्टी दी गयी है, उसका भी समाप्त किया जा रहा था। राज्य की कानून व व्यवस्था अत्यधिक खराव हो गयी ह। राज्य की पुलिस को नपुसक वना दिया गया है। ऐसी स्थिति पदा कर दी गयी है कि लोक सेवको व पुलिस तत्र को मत्रियो के इशारे पर काम करना पड़ रहा है। लोगो की जानमाल की सुरक्षा को भी खतरा हो गया है सिवाय कम्युनिस्टो के। राज्य का शासन सवधानिक व्यवस्थाओ के अनुसार नही चलाया जा रहा है। सरकार की जन विरोधी नीतिया के चलते राज्य की बहुसख्यक जनता सरकार के खिलाफ खडी हो गयी है।[2]

केरल की स्थिति को सुधारने क सबध मे 11 जून 1959 का नेहरू– नम्बूदरिपाद की बठक शिमला मे हुयी जिसम राज्य की गभीर स्थिति से निपटने क लिये नेहरु ने पुन पहले के ही सुझाव प्रस्तुत किये। जिसके तहत मध्यावधि चुनाव कराने का प्रस्ताव रखा गया साथ ही वर्तमान मत्रिपरिषद कार्यवाहक सरकार के रूप म बनी रहेगी। प्रधान मत्री नेहरू के इस प्रस्ताव पर सहमत हो गये लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी की राष्ट्रपति कार्यकारिणी इस प्रस्ताव पर सहमत नही हुयी।[3]

इसी बीच बहुत से विरोधी गुटो व बार ऐशोसिएशनो ने भी सरकार बर्खास्त कर राज्य म चुनाव कराने की माग की थी। राष्ट्रीय स्तर के बहुत से महत्वपूर्ण नेताओ ने जोकि गर कम्युनिस्ट थे ने भी राज्य मे राष्ट्रपति शासन लगाये जाने की माग की।[4]

---

1 पूर्वाधृत–जुलाई 8, 1959

2 लोक सभा वाद विवाद, 28055, अगस्त 19, 1959 कालम–3058

3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 15 जुलाई, 1959

4 दि रेड- रिडेल-ऑफ केरला, डॉ मानवेकर पृष्ठ–105 (बाम्ब पी सा मानाक्टाला प्रा लि 1965)

केन्द्रिय मत्रिमण्डल ने भी राज्य की स्थिति पर विचारविमश किया जिसम राज्य सरकार को भग कर नये चुनाव कराये जाने की सम्भावना पर विचार किया गया। इसी सम्बन्ध म केन्द्र न श्रीमती सुचेता कृपलानी को राज्य की स्थितिया की रिपोर्ट देने के लिये भेजा उन्हाने राज्य म आपातकाल लागू करने की माग की।[1]

तत्पश्चात केन्द्र के इशारे पर राज्य के राज्यपाल ने रिपोर्ट प्रषित का जिसमे राज्यपाल श्री कृष्ण राव ने कहा राज्य मे गभीर स्थिति पेदा हो गयी ह आर राज्य का प्रशासन सविधान के अनुसार नही चलाया जा रहा ह। अत राज्य म राष्ट्रपति शासन लागू करना ही एकमात्र विकल्प बचा है जिससे राज्य म नये चुनावा के लिये मार्ग प्रशस्त हो सके।

राज्यपाल ने अपनी विस्तृत रिपोर्ट मे कहा था कि-

विपक्षियो के इस आरोप पर कि राज्य मे कुव्यवस्था फल गयी ह तथा प्रजातन्त्र का हनन हो रहा है साथ ही केरल की सरकार से जनता का विश्वास उठ गया है पर विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि सरकार ने राज्य की जनता की आस्था ही खो दी है।

कम्युनिस्ट सरकार को राज्य विधान सभा मे कुछ ही मता से बहुमत का समर्थन ह। यह दावा नही किया जा सकता कि वास्तव मे बहुमत समर्थन प्राप्त ह क्योंकि लोगो के विचारा म लगातार बदलावा आ रहा था।[2]

राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट मे यह भी कहा कि लागो के विचारो की अनदेखी नही की जानी चाहिये जिससे भविष्य मे गभीर स्थिति उत्पन्न होने का खतरा हो। इस समस्या का समाधान केवल यही हे कि राज्य म अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाय।[3]

---

1 वही—जुलाई 29 1959

2 एशियन रिकाडर, 20055 अगस्त 29 से सितम्बर 4 1959

3 एशियन रिकार्डर, पूर्वोधृत, 1959

केन्द्राय सरकार ने राज्यपाल द्वारा प्रेषित रिपोर्ट पर विचार करन के पश्चात 29 जुलाई, 1959 को इस निष्कर्ष पर पहुँची कि केरल मे नागरिक स्वतन्त्रता वनाये रखने के लिये राष्ट्रपति शासन लागू करना आवश्यक ह और इसी के साथ 31 जुलाई, 1959 को राष्ट्रपति ने करल का शासन अपने हाथा मे लेने का घोषणा जारी कर दी।[1]

17 अगस्त, 1959 प्रस्ताव को लोक सभा के समक्ष मजूरी प्रदान करने के लिये रखा गया था। केन्द्र सरकार चूँकि राज्यपाल की रिपोर्ट की एक गोपनीय दस्तावेज की सज्ञा दे रही थी। अत राज्यपाल की रिपोर्ट का सक्षिप्त रूप ही रखा गया।[2]

तत्कालीन कानून मत्री श्री बीएन दातार ने राज्य सभा के समक्ष कार्यवाही की अनिवार्यता बताते हुये कहा कि प्रशासन मे हस्तक्षेप करना आवश्यक हा गया था क्योकि–[3]

1- कम्युनिस्टो और उनके सहयोगियो को जेल से छोड दिया गया था।

2- राज्य मे लोगो के जीवन व सम्पत्ति को खतरा हो गया था।

3- राज्य मे राजनीतिक हत्याओ का दार चल रहा था आर राज्य म दुर्व्यवस्था व्याप्त थी।

4- छात्रा के विरुद्ध गैर सेद्धान्तिक कार्यवाही की कोशिश की जा रही थी।

5- राज्य प्रशासन मे कम्युनिस्टो के हस्तक्षेप के परिणाम स्वरूप जन सेवाओ का नतिक पतन हो रहा था।

6- प्रशासनिक भेदभाव किया जा रहा था।

7- सहकारी समीतियो का प्रयोग पार्टी हितो के लिये किया जा रहा था।

8- वित्तीय ससाधनो का दल के लिये लगाये जाने से राज्य की आर्थिक स्थिति का दिन प्रतिदिन ह्रास हो रहा था।

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 15 अगस्त, 1959

2 राज्य सभा वाद विवाद, 2005-26, 1959 पृष्ठ-1552

3 राज्य सभा वाद विवाद-वाल्यूम XXVI, भाग-1, 1959 पृष्ठ 1552-63

लेकिन दूसरी ओर केन्द्र की इस कार्यवाही की आलोचना करते हुये **कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ट नेता श्री एस ए डागे** ने कहा कि कम्युनिस्ट सरकार के विरुद्ध केन्द्र ने षड्यन्त्र किया है क्योकि राज्य मे कम्युनिस्टो का बढता प्रभाव केन्द्र की सत्तारूढ सरकार पसन्द नही था।[1] केरल सरकार ने देश मे स्वीकृत लक्षयो को ही लागू किया था जिसकी लोकप्रियता को देखते हुये केन्द्र सरकार भयभीत थी। कम्युनिष्टो का मुख्य ध्येय वास्तव मे समाजवाद की स्थापना करना था जिसको मूर्तरूप मे परिणत नही होने दिया गया। वर्तमान योजनाओ को क्रियान्वित करने का उद्देश्य निम्नवर्गीय लोगो के हितो को सुरक्षा प्रदान करना था जोकि केरल सरकार राज्य मे करने का प्रयास कर रही थी और यही उसके विरुद्ध शिकायतो का कारण बना। कम्युनिस्ट सरकार के विरुद्ध की गयी साजिश मे कांग्रेस सफल हुयी जो किप्रजातात्रिक मूल्यो का ह्रास था। केन्द्र सरकार ने पक्षपातपूर्ण कार्यवाही कर जनता द्वारा चुनी हुयी सरकार का शासन समाप्त कर दिया जो कि निश्चित रूप मे गलत है।[2]

**सी राजगोपालाचारी ने** केन्द्र द्वारा की गयी इस कार्यवाही की आलोचना करते हुये कहा कि इस प्रकार की कार्यवाही कर राज्यो की चुनी हुयी सरकारो को बदलना स्वस्थ परम्परा की शुरूआत नही है इस प्रकार की व्यवस्था को भूल जाना चाहिये तथा संसदीय सिद्धान्तो का पालन किया जाना चाहिये जैसे कि परिस्थितियाँ केरल मे उत्पन्न हुयी थी।[3]

लेकिन प्रधानमत्री पडित नेहरू ने विपक्षियो द्वारा लगाये गये आरोपो को गलत बताते हुये कहा कि कांग्रेस पार्टी ने केरल सरकार के विरुद्ध कोई षडयन्त्र नही रचा था।केन्द्र का हस्तक्षेप बहुत आवश्यक हो गया था क्योकि यदि केन्द्र हस्तक्षेप नही करता तो राज्य मे जन युद्ध की आशका उत्पन्न हो गयी थी।

के.एम मुशी ने पडित नेहरू से सहमति व्यक्त करते हुये कहा कि राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू करके अधिनायकवादी तत्वो पर रोक लगायी गयी है।[4]गृह मत्री श्री जी.बी पत ने

---

1 श्रीराम महेश्वरी प्रसीडेन्ट रूल इन इण्डिया, प्रकाशित–मैकमिलन इण्डिया लिमिटड 1977 पृष्ठ–41

2 पूर्वाधृत

3 हाप्स अगस्ट होप्स–सी राजगोपालाचारी–दि हिन्दू, 1 अगस्त 1959

4 दि हिन्दू-1 अगस्त 1959

लाक सभा म कहा कि राज्य म कम्युनिष्टो क ढाई साल के शासन के दारान जनता स्पष्ट रूप से दा वगा मे वट गयी थी। एक—कम्युनिस्टो का दूसरा—गर कम्युनिस्ट विचाग का समर्थन करने वाला वर्ग। प्रधानमत्री द्वारा स्थिति को सुधारने के सम्बन्ध मे जो विकल्प सुझाए गये थे उसको स्वीकार ना करने के कारण केन्द्र के पास उद्घोषणा के अतिरिक्त कोई विकल्प नही बचा था[1] राष्ट्रपति शासन सम्बन्धी उद्घोषणा पर लोक सभा ने 20 अगस्त को व राज्य सभा ने 25 अगस्त को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। [2] वास्तव मे इस पूरे मामले का निष्पक्ष दृष्टि से अवलोकन करने के पश्चात जो मुख्य तथ्य उभर कर सामने आते है, वे प्रमुख हैं—

1- क्या केन्द्र को सविधान के अन्तर्गत यह अधिकार है कि वहुमत प्राप्त मत्रिमण्डल को वर्खास्त कर दे ?

2- क्या सविधान राज्यपाल या राष्ट्रपति को यह अधिकार देता है कि जनता द्वारा चुनी गयी विधान सभा को बिना किसी सवैधानिक तत्र के विफल हुये भग की जा सकती है ?

3- क्या अनुच्छेद 356 केवल इस आधार पर लागू किया जाय कि राज्य के विपक्षी दलो ने ऐसी स्थिति पेदा कर दी हो जिससे राज्य का प्रशासन चलाना मुश्किल हो गया हो ?

4 क्या केन्द्र सरकार का यह दायित्व नही होता कि कि 356 को लागू करने से पूर्व 355 के अन्तर्गत राज्य सरकार को सहायता दे साथ ही पूर्व चेतावनी दे?

वास्तव मे केरल श्री नम्बूदरीपाद के नेतृत्व वाली सरकार जिसे की बहुमत का समथन प्राप्त था को भग करना स्वस्थ परम्परा की शुरूआत नही थी।

अनुच्छेद 356 का प्रयोग बहुत कम अवसरा पर तथा अत्यावश्यक मामला म ही अन्तिम उपाय के रूप म किया जाना चाहिय, जब अन्य उपलब्ध सभा विकल्पो द्वारा

---

1 लोकसभा वाद विवाद, 17 अगस्त 1959 कॉलम 2814–2926

2 वही—कॉलम 3327–3424 व राज्य सभा वाद विवाद 24 अगस्त, 1959 कालम 1542–1698

ान्य म सवधानिक तत्र भग होने स रोका ना जा सके या काट सुधार नही किया जा मक। अनुच्छेद 356 के उपवधो का सहारा लेने से पहले राज्य स्तर पर ही इस सकट का दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिये।

सविधान के उपवधो के अनुसार शासन कार्य न चलाने वाली राज्य सरकार को स्पष्ट शब्दो म यह चेतावनी दी जानी चाहिये कि वह राज्य का शासन कार्य सविधान क अनुसार नही चल रही ह। अनुच्छद 356 के अधीन कार्यवाही करने से पहले राज्य सरकार से प्राप्त किसी स्पष्टीकरण पर विचार अवश्य किया जाना चाहिये। किन्तु किसी स्थिति म जसाकि सविधान व भी यह विचार व्यक्त किया गया था कि इस उपबन्ध का सहारा इस आधार पर नही किया जाना चाहिये कि राज्य मे जो सरकार शासन चला रही है तो वो अच्छी नही ह। यह सम्भव नही होगा जब तत्काल कार्यवाही न करने के घातक परिणाम हो सक्ते हो।

वास्तव मे राज्य के प्रमुख विपक्षी दलो द्वारा जो सरकार को सत्ता से हटाने का जो आदोलन चलाया जा रहा था वह उचित नही था ये आदोलन सवधानिक तरीके का होना चाहिये। वास्तव म कम्युनिष्टोपर जो आरोप लगाये गये थे उनकी जॉच केन्द्र द्वारा नही करायी गयी थी कि वास्तव म विपक्षी दलो द्वारा जो आरोप सरकार के खिलाफ लगाय जा रहे थे, वे उचित थे। क्याकि जो भी आरोप सरकार के खिलाफ लगाये जा रहे थे वे राज्य म काग्रेसियो के शह पर लगाये जा रहे थे, ओर बाद मे इस बात की पुष्टि श्री मोरार जी देसाई के विचारो से होती थी[1] जब उन्होने यह स्वीकार किया था कि केरल की सरकार को श्रीमती इदिरा गॉधी के दबाव म बर्खास्त कि गया था जबकि पडित नेहरू राज्य विधान सभा भग करने के पक्ष म नही थे।क्योकि राज्य मे नम्बूदरी पाद सरकार को विधान सभा मे बहुमत का समर्थन प्राप्त था साथ ही राज्य म सवधानिक अव्यवस्था की स्थिति भी नही उत्पन्न हुयी थी।

---

1 मारार जी देसाई न ये विचार 11 मार्च 1974 को उस समय व्यक्त किय जबकि वो गुजरात विधान सभा का भग करने की माग को लकर अनिश्चित कालीन भूख हड़ताल पर थे —एशियन रिकार्डर 1975, पृष्ठ 11943

केरल के राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट भेजने म भेदभाव किया था जसाकि प्रो पायली का विचार ह कि "**केरल का उदाहरण भविष्य के लिये महत्वपूर्ण सवक होगा और ऐसी ही स्थितियो मे आपात की उद्घोषणा करने की भूल केन्द्र सरकार पुन नही दाहरायेगी**"।[1]

वास्तव म राज्यपाल की रिपोर्ट का अवलोकन करने के पश्चात यह प्रश्न उठता ह कि राज्यपाल द्वारा अपनी रिपोर्ट मे कम्युनिष्ट सरकार के विरुद्ध जो दोपारोपण किया गया था क्या वो उचित था और यदि वास्तव मे आरोप सही थे तो इस स्थित म जव केरल की सरकार अप्रजातात्रिक कृत्यो म सलग्न थी, तब केन्द्र क्या कर रहा था ?[2]

ऐसी स्थिति मे सह महत्वपूर्ण तथ्य है कि जब राज्यपाल अपना पद ग्रहण करता ह तब वह शपथ लेता है कि सविधान की रक्षा करगा साथ ही उसका सचालन सुनिश्चित करेगा। उस स्थिति मे यह राज्यपाल का कर्तव्य था की राज्य म सवधानिक कानूना का पालन होना सुनिश्चित करे, ताकि विभिन्न विपक्षी दला द्वारा जव राज्यमत्री परिपद पर भ्रष्टाचार तथा प्रशासन मे भेदभाव की नीति अपनाने का आरोप लगाया जा रहा था तव उसने राज्य मत्रीपरिपद को सचेत करने के अपने सवधानिक कर्तव्यो का प्रयोग नही किया।

राज्यपाल की रिपोर्ट से यह स्पष्ट होता था कि कम्युनिष्ट मत्रिपरिपद राज्य म विपक्षियो द्वारा उसके द्वारा जारी की गयी योजनाओ व सिद्धान्तो का विरोध किया जा रहा था साथ ही विपक्षी दलो द्वारा चलाये जा रहे आदोलनो का भी मुकाबला कर रही थी।

---

1 एम वी पायली—दि स्टेट अडर कान्सटीट्यूशनल इमरजेन्सी कान्सटीट्यूशन एण्ड पारलियामेन्टरी स्टडाज पृष्ठ, 23

2 इसी प्रकार की स्थिति 1992 म उत्पन्न हुयी थी जब विवादित ढाचा ध्वस्त किये जाने के पश्चात उत्तर प्रदश विधान सभा को भग कर दिया गया था, जब कि केन्द्रिय जॉच ब्यूरो ने इस बात की आशका पहले ही केन्द्र के समक्ष व्यक्त कर दी थी लकिन केन्द्र ने सविधान प्रदत्त अपने राज्या की सुरक्षा के महत्वपूर्ण कर्तव्य का निर्वहन नही किया था। देखे-यस0 सहाय- आरविटरी यूज आफ आर्टिकल 396, मेनस्ट्रीम, दिसम्बर 26 1992 वाल्यूम-XXXI न0 7 पृष्ठ—7

रिपोट म यह भी कहा गयाथा कि राज्य के लिये आवंटित किये गय फड को कम्युनिष्ट सरकार अपने राजनतिक उद्देश्यो के लिये खर्च कर रही थी।

प्रश्न यह उठता ह कि जब सरकार के खिलाफ इस प्रकार के तमाम आराप सही थे तो केन्द्र का यह कर्तव्य बनता ह कि इन तमाम आरोपा की जॉच करवायी जाती। जॉच समिति यदि आरोपो की पुष्टि करती तो केन्द्र की यही कायवाहा न्योचित होती।

वास्तव म क्या राज्य के राज्यपाल को सविधान द्वारा यह अधिकार प्रदान किया गया ह कि राज्य के प्रश्नो पर विचार करे कि लोगो का बहुमत सरकार के पक्ष मे नही रहा ह। इसी आधार पर भग करने की सिफारिश कर दे, और यदि यह अधिकार राज्यपाल को जो कि केन्द्र द्वारा मनोनीत होता है, को प्रदान किया गया है तो राज्य म सवेधानिक प्रजातत्र का कोई अर्थ नही रह जाता।जहॉ तक विधान सभाओ को भग करने का प्रश्न ह। वह दो प्रकार का ह

1 सामान्यत राज्यपाल अनुच्छेद 1742बी के अन्तर्गत विधान सभा भग कर सकता ह जबकी वह सतुष्ट हो जाय कि कोई भी दल या दलो का गठबन्धन राज्य म सरकार बनाने म समर्थ नही ह।

2 अनुच्छेद 356 के तहत केन्द्र सरकार के दूत के रूप मे कार्य करते हुये विधान सभा भग करने की सस्तुति केन्द्र से करता है।

वास्तव मे एक और बात जो केरल के मामले मे उठायी जा सकती है वह यह ह कि बर्खास्त की गयी मत्रिपरिषद को विधान सभा मे बहुमत का सर्मथन प्राप्त था आर बहुमत का समर्थन होते पर राज्य विधान सभा को राज्यपाल को मुख्यमत्री की सलाह पर ही भग करना चाहिये। सरकारिया आयोग ने भी इस बात की पुष्टि की है कि यह एक स्वीकृत सिद्धान्त है कि जब तक मत्रिपरिषद को विधान सभा का विश्वास प्राप्त ह। राज्यपाल क लिये इसकी सलाह मानना बाध्यकारी माना जायेगा साथ ही राज्यपाल को मत्रिपरिषद को तब तक बर्खास्त नही करना चाहिये जब तक सदन म राज्य विधान सभा न उसमे अविश्वास व्यक्त न कर दिया हो।[1]

श्री नम्बूदरीपाद मत्रिमण्डल पतन के बाद से केरल का लगातार राजनैतिक अस्थिरताओ का शिकार हाना पड़ा । इस दोरान लगातार कई मत्रिमण्डलो का पतन हुआ[2] इसके

पीछे जो मुख्य कारण था वो वामपंथिया का सत्ता से दूर रखना था, जबकि 1959 का मामला भी इसी सत्य का उजागर करता है। केरल राज्य को राष्ट्रपति शासन का अनेको बार सामना करना पडा ऐसी स्थिति -1964,1965,1970,1979,1981 व 1982 मे उपस्थित किया गया पजाब के बाद केरल ही ऐसा राज्य है जहाँ सबसे अधिक अवसरो पर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया है।

1960 व 1962 के दौरान केरल मे प्रजा समाजवादी पार्टी व काग्रेस का मिला जुला मत्रिमडल पीएसपी के नेता श्री पट्टम थानु पिल्लै के नेतृत्व म सत्तारूढ़ था, [1]लेकिन अक्टूबर 1962 को गठबन्धन की सरकार का अत हो गया जबकि मुख्यमत्री श्री पिल्ल ने पजाब के राज्यपाल का पद स्वीकार कर लिया था मुख्यमत्री के त्याग पत्र के बाद उप मुख्यमत्री श्री आर. शकर जो काग्रेस विधायक दल के नेता थे ने मुख्यमत्री पद की शपथ ली। लेकिन काग्रेस की इस चाल की कारण पीएसपी ने सरकार स अपना समर्थन वापस ले लिया क्योकि काग्रेस दल पीएसपी के विधायको को लालच देकर अपनी ओर करने का प्रयास कर रहे थे।[2]

लेकिन पीएसपी के समर्थन वापस ले लेने के बावजूद काग्रेस मत्रिमण्डल 7 सितम्बर 1964 को श्री के. एम जार्ज के नेतृत्व मे 15 असतुष्ट काग्रेसी सदस्यो ने पार्टी की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया और केरल काग्रेस नामक पृथक दल का गठन कर लिया[3]इस प्रकार असतुष्टो द्वारा चलायी जा रही मुहिम जो कारण काग्रेसी सरकार अल्पमत म आ गयी थी लेकिन इसके बावजूद श्री आर. शकर ने अपना इस्तीफा तुरन्त राज्यपाल श्री गिरि को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिये कि उन्होने विभिन्न दलो के नेताओ

---

6 सरकारिया रिपोर्ट पृष्ठ, 120, भाग I, 1988, पैरा, 4 11 25

7 दि पायनियर, मार्च 3, 1961

1 दि टाइम्स आफ इण्डिया, 26 फरवरी 1961

2 लोक सभा वाद विवाद, खण्ड न 12 22 सितम्बर, 1964

3 वही–सितम्बर 8 1994

मे राज्य मे सविद सरकार बनाये जाने की सम्भावनाओ पर विचार विमर्श किया, लेकिन कोई भी दल सरकार बनाने की स्थिति मे नही था। इसके तत्काल बाद राज्यपाल ने विधान सभा भग कर राष्ट्रपति शासन की सस्तुति कि दा।

राष्ट्रपति द्वारा लिया गया निर्णय वास्तव मे उचित तथा समयाचित था राज्य म करल काग्रेस की आपसी गुटबाजी के कारण राज्य मे राजनतिक उथल पुथल बना हुआ था ।[1] जिसने राज्य प्रसाशन को बुरी तरह से प्रभावित किया था। राज्य मे ऐसी स्थिति बन गयी थी जिससे राज्य मे राष्ट्रपति शासन लगाये जाने का लोगो ने स्वागत किया व राहत महसूस की थी क्योकी केरल के लोगो की पिछली चुनी हुयी सरकारा का अच्छा अनुभव नही रहा था। राज्य मे दलो के आपसी विवाद, दलबदी तथा उनके बीच जो दलबदल व अर्न्तकलह था उससे कोई भी दल राज्य मे स्थायी मत्रिमडल के गठन करने म समर्थ नही था। परिणामस्वरूप राजनैतिक दलो की आपसी गुटबाजी के कारण राज्य मे शाति व व्यवस्था भग हो गयी थी जिसका एक मात्र समाधान राष्ट्रपति शासन द्वारा ही सभव था। वास्तव मे केरल मे इस प्रकार की स्थिति बन गया थी जहॉ लोगो ने लोकपिय मत्रिमडल की उपस्थिति को राज्य के विकास के लिये अभिशाप मान लिया था। केरल के तत्कालीन परिस्थितियो को देखते हुए यह बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि यदि राज्य मे राष्ट्रपति शासन के लिये पृथक पेटी रख दी जाती तो उसके पक्ष मे ही लोगो द्वारा समर्थन किया जाता। कुछ लोग तो राजनीतिज्ञो द्वारा खेले जा रहे घृणित खेल से इतने तग आ चुके थे कि वे राज्य मे राष्ट्रपति शासन को जारी रखने के पक्ष मे थे।यहॉ तक की ऐसी व्यवस्था करने के लिए सविधान मे ससोधन की माग की जा रही थी,[2] फिर भी ऐसा नही था कि वहॉ की जनता राज्य मे लोकप्रिय सरकार की पक्षधर नही थी। लेकिन राजनेताओ द्वारा जो सत्ता पद की होड़ मची हुयी थी, उसी के परिपेक्षय

---

1 वही–10 सितम्बर, 1964

2 लोकसभा वाद विवाद, खण्ड XXIV, 23 सितम्बर, 1964

म लोगो की ऐसी धारण बनी थी क्योकि राज्य म लोकप्रिय शासन ना होने के कारण लोगो की आम समस्याओ की सुनवायी के लिये कोई सत्ता नही था।[१]

राष्ट्रपति शासन सबध उद्घोषणा को लोक सभा ने दो दिन की विस्तृत चर्चा के बाद २३ सितम्बर १९६४ को पास कर दिया था।[2] सदस्यो ने भी केरल म लोकतात्रिक सरकार की पद्धति के स्थान पर नये प्रयोग लिये जाने की आवश्यकता पर बल दिया था क्योकि राज्य मे जाति विभाजन के कारण कोई भी दल बहुमत प्राप्त करने मे असफल रहा था। अत सदस्यो ने सभी दलो को मिलाकर राज्य मे एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना पर बल दिया था। गृह मत्री श्री जय सुखलाल हाथी ने यह स्पष्ट किया कि ऐसा करने के लिये सविधान मे आवश्यक सशोधन करना होगा जो कि सम्भव नही था।[3]

राज्य सभा ने प्रस्ताव पर अपना अनुमोदन 30 सितम्बर 1964 का प्रदान कर दिया। केरल की कहानी का अत यही नहो हुआ। 4 मार्च 1965 को राज्य विधान सभा के चुनावो का परिणाम पुन किसी भी दल को बहुमत दिलाने म असमर्थ रहा। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी 134 सदस्यीय सदन मे से 40 स्थान अर्जित कर सबसे बड़े दल क रूप म सामने आयी। अन्य दलो की स्थिति इस प्रकार थी – काग्रेस 36, के एम जार्ज काग्रेस 23 सयुक्त समाजवादी पार्टी 13 1 कुछ अन्य छोटे-छोट दल आर निर्दलीय उम्मीदवारो की सदस्य सख्या 21 थी।[4]

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 24 सितम्बर, 1964

2 केरल राज्य एडमिनिस्ट्रशन रिपोर्ट, 1964 पृष्ठ 16

3 पूर्वाधृत

4 महश्वरी पृष्ठ 48

गज्यपाल श्री वीवी गिरि ने किसी दल को स्पष्ट बहुमत ना होने के कारण विभिन्न दला के नेताओ से सरकार गठित किये जाने की सभावनाओ पर विचार विमर्श किया। काग्रेस न पहले ही सरकार बनाये जाने म अपनी अनिच्छा प्रकट की थी।[1]

कम्युनिस्ट पार्टी के नेता श्री ईएमएस नम्वूदरीपाद का विचार था कि विभिन्न दला व निर्दलीय सदस्यो के समर्थन से राज्य मे गैर काग्रेसी सरकार बनाये जाने का प्रयास किया जाना चाहिये। लेकिन काग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने कम्युनिस्टा स किसी प्रकार का सहयोग देने मे इनकार कर दिया। काग्रेस पार्टी ने पहले ही यह बात स्पष्ट कर दी थी कि उसका दल एक सवधानिक विपक्ष की भूमिका अदा करेगा। राज्य म किसी भी दल की सरकार बने उसको उस हद तक सहयोग व समर्थन देगा जहाँ तक उसकी नीतिया का पालन होता हो अन्यथा नही।[2]

इसी प्रकार के विचार सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी ने भी व्यक्त किये जिसके विधान सभा म 13 सदस्य थे। उनका विचार था कि राज्यपाल को सबसे बड़े दल को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया जाना चाहिये। कम्युनिस्टो द्वारा बनाये गये मत्रिमण्डल स सहयोग नही करेगे तथा इसके बजाय वे विपक्ष की भूमिका अदा करना ज्यादा अच्छा समझेगे। लेकिन कम्युनिस्ट मत्रिपरिषद का विरोध नहा करेगे।[3]

इस प्रकार केवल एस.एस.पी को छोड़कर कोई भी दल कम्युनिस्ट पार्टी से सहयोग को तयार नही था आर इस प्रकार राज्य मे आगे की अवधि के लिये राष्ट्रपति शासन की सस्तुति कर दी जबकि राज्य मे राष्ट्रपति शासन पहले से ही जारी थी। इस प्रकार यह पहला अवसर था

---

1 राजीव धवन, प्रेसीडेन्ट रूल इन इण्डिया, पृष्ठ 76, प्रकाशित— एनएम त्रिपाठी प्राइवेट लिमिटेड बाम्बे 1979

2 माहेश्वरी पृष्ठ 49, पूर्वोधृत

3 पूर्वोधृत

जबकि विधिवत चुनी हुयी विधान सभा को बिना आपचारिकता पूरी किय हुय ही भग कर दिया गया था।[1]

इस सम्बन्ध मे यह प्रश्न उठता है कि क्या राज्यपाल द्वारा लिया गया निर्णय उचित था जबकि सबसे बडे दल को सरकार बनाने के लिये आमत्रित नही किया गया था, 3 जबकि उसने सरकार बनाने का दावा राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत किया था। वास्तव मे यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण था कि पहली बार विधान सभा के लिये चुनकर आये सदस्यो का उनकी विजय का रसास्वादन करने स वचित कर दिया गया था। लेकिन राज्यपाल के समक्ष इसके अलावा आर कोई विकल्प भी शेष नही था क्योकि कम्युनिस्ट पार्टी जो राज्य मे सरकार बनाने का दावा पश कर रही थी उसके 134 सदस्यीय सदन मे मात्र 40 सदस्य थे और शेष सभी दलो ने कम्युनिस्टो से सहयोग करने से इनकार कर दिया था।

राज्य मे राजनीतिक दलो का इस प्रकार की स्थिति को देखते हुये राज्यपाल के समक्ष निम्नलिखित विकल्प थे –

1 – राज्य मे राजनीतिक अनिश्चितता की स्थितिया को देखते हुये राज्य म राष्ट्रपति शासन की घोषणा कर दी जाये।

2 – विभन्न दलो से बातचीत कर राज्य मे मत्रिमण्डल क निर्माण की सम्भावनाआ पर विचार करने के बाद राष्ट्रपति शासन की घोषणा कर दे।

3 – काग्रेस के अल्पमत को बहुमत मे होने का प्रमाण पेश करके सरकार का निमाण करके।

4 – सबसे बडे अल्पमत दल को सरकार बनाने के लिये आमत्रित करके उसे राज्य विधान सभा मे अपना बहुमत करने को कहे।

---

1 इसी प्रकार की स्थिति उडीसा मे 1971 मे हुयी थी जबकि राज्य म आम चुनावा के बाद किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नही हुआ था अत 23 मार्च 1971 को राज्य मे राष्ट्रपति शासन की घाषणा कर दी गयी थी लेकिन विधान भग ना कर केवल निलम्बित रखी गयी था।–'राज्या म राष्ट्रपति शासन-1991' पृष्ठ 62, दि हिन्दू 25 मार्च 1965

इस मामल मे राज्यपाल न दूसरे विकल्प का सहारा लिया। राज्यपाल का विचार था कि राज्य मे कोई भी दल सरकार बनाने की स्थिति मे नही था और किसी भी दल को सरकार बनाने के लिये आमत्रित करना केवल दल बदल ओर राजनीतिक अनिश्चितता को बढ़ावा देना ह।[1] राष्ट्रपति को भेजी गयी अपनी रिपोर्ट मे कहा था कि राज्य म कोई भी दल सरकार बनाने की स्थिति मे नही था अत राज्य विधान सभा विघटित कर दी जाये। इस प्रकार 24 मार्च 1965 को नव निर्वाचित विधान सभा को भग कर दिया गया।[2]

**केरल 1970**

फरवरी 1967 मे केरल विधान सभा के लिये हुये आम चुनावो के बाद श्री ई.एम.एस नम्बूदरीपाद जो की कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया मार्क्सिस्ट के नेता थे, ने राज्य मे दुबारा मुख्य मत्रित्व पद सभाला।[3] केरल मे 1967 के चुनावो मे भी किसी भी पार्टी को पूर्ण बहुमत ना मिलने के कारण विभिन्न दलो के सयुक्त मोर्चे ने पदभार सम्भाला था लेकिन गठबधन मे आन्तरिक कलह के कारण 24 अक्टूबर 1969 को मुख्यमत्री श्री नम्बूदरीपाद ने त्यागपत्र दिया।[4]

नम्बूदरीपाद के दूसरे मत्रिपरिषद के त्याग पत्र के बाद राज्य म नये गठबन्धन का प्रयास होने लगा। नवम्बर 1969 को भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता श्री अच्युत मेनन

---

1 वास्तव मे इस मामले मे के.आर. सिवाच के इस कथन की पुष्टि होती ह कि 1952 से 1967 की अवधि मे जब कभी भी विधानसभा मे किसी भी दल को बहुमत नही था, तब उस विधानसभा म सबसे बड़े दल के नेता को सरकार बनाने क लिए आमत्रित किया जाता था जसाकि 1952 म उडीसा मे, मद्रास म पेप्सू तथा कोचीन म व दो बार 1952 म उड़ीसा मे किया गया। साधारणतया यह नेता काग्रेसपार्टी का ही होता था परन्तु जब कोई गैर काग्रसी दल विधानसभा मे सबसे बड़े दल के रूप म उभर कर आया तब इस सिद्धान्त का उल्लघन किया गया। पुन 1967 मे राजस्थान म भी राज्यपाल डॉ सम्पूर्णानन्द ने सबसे बड़े दल क सिद्धान्त के आधार पर काग्रेस को ही सरकार बनाने के लिए आमत्रित किया जबकि वो अल्पमत म थी–जे.आर. सिवाच, 'पॉलिटिक्स ऑफ प्रेसीडेन्ट रूल इन इण्डिया'–'इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवास स्टडीज', राष्ट्रपति निवास, शिमला, 1977 पृ 171

2 दि हिन्दू 26 मार्च 1965

3 दि टाइम्स आफ इण्डिया 6 मार्च 1967

4 पूर्वाधृत – अक्टूबर पृष्ठ 25 1969

के नेतृत्व म केरल मे सयुक्त मोर्चे की सरकार पदारूढ हुई। जिसम सीपीआई, मुस्लिम लीग, आईएसपी आर केरल काग्रेस सम्मतित थी व आरएसपी सरकार को बाहर से अपना समथन दे रही थी। अप्रल 1970 मे आईएसपी जोकि सयुक्त मार्च का प्रमुख दल था म अन्तरकलह शुरू हो गया। आईएसपी के अनुरोध पर मुख्यमत्री श्री मेनन ने वित्तमत्री श्री एन के शेषन को त्याग पत्र देने को कहा क्योकि वे आइएसपा को छोडकर असतुष्ट ग्रुप म सम्मलित हो गये थे। अप्रैल 26 को इस ग्रुप के तीन विधायका ने इसका कड़ा प्रतिवाद किया तथा वे सभी विधायक पीएसपी मे सम्मलित हो गये। इस प्रकार मोर्चे के दो प्रमुख दलो आईएसपी और पीएसपी के मध्य द्वन्द्व छिड़ गया।[1]

क्याकि पीएसपी ने मोर्च के सहकारी समीति का सदस्य होने का दावा प्रस्तुत किया था। आरएसपी ने यह धमकी दी कि यदि पीएसपी को इस समीति म शामिल किया जाता ह तो आरएसपी मोर्चे से अपने को अलग कर लेगी।[2] वास्तव म मेनन की सरकार दोना ही तरफ के खीचतान के बीच धार पर खडी हो गयी थी। क्याकि दोना ही दला का समर्थन सरकार का अस्तित्व बचाये रखने के लिये अति आवश्यक था।

इस असमजस की स्थिति से उबरने का कोई मार्ग शेष ना देखकर श्री मेनन ने राज्यपाल श्री वी विश्वनाथन को विधान सभा भग करने की सलाह दे दी। राज्यपाल द्वारा उनकी सलाह पर विधान सभा भग करने के बाद ही उन्होने अपने मत्रिपरिषद को अपने इस निर्णय की सूचना दी कि उन्होने ही सभा भग करने की सिफारिश की थी।[3] जिससे राज्य म अस्थिरता का वातावरण समाप्त किया जा सके व नय चुनाव कराने के लिये मार्ग प्रशस्त हो सके।

---

1 दि हिन्दुस्तान टाइम्स 28 अप्रैल 1970

2 महश्वरी पृष्ठ 77

3 राष्ट्रपति को राज्यपाल का प्रतिवेदन 1 अगस्त 1970

जब राज्य में नये चुनावों के प्रबन्ध किये जा रहे थे मुख्यमंत्री ने अगस्त 1970 को अपना त्याग पत्र यह कहते हुये सौंप दिया कि उनके पद पर बने रहने से यह आलोचना हो रही थी कि उनके पद पर रहने से राज्य में निष्पक्ष चुनाव सम्भव नहीं थे। मुख्यमंत्री द्वारा त्याग पत्र न देने के बाद राज्यपाल श्री वी विश्वनाथन ने राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर दी।[1] जिसकी उद्घोषणा 4 अगस्त 1970 को राष्ट्रपति द्वारा जारी की गयी। यह राष्ट्रपति शासन केवल दो माह तक लागू रहा जबकि सितम्बर 1970 के चुनावों के बाद भी अच्युत मेनन के नेतृत्व में पुन अक्टूबर 1970 को नये मंत्रिमण्डल का गठन हुआ।

इसी प्रकार केरल राज्य मे एक बार पुन राष्ट्रपति शासन की घोषणा की गया जबकि राज्य व्यापी विरोध को देखते हुये कोया मंत्रिमण्डल ने 4 दिसम्बर 1979 को अपना त्यागपत्र दे दिया।[2]

जबकि 16 नवम्बर 1979 को केरल कांग्रेस (मणि ग्रुप) ने मोहम्मद कोया की मिली जुली सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया था। साथ ही जनता पार्टी जार्ज सहयोगी पार्टी था ने भी अपने समर्थन वापस लेने की घोषणा कर दी थी। दोनो दलो द्वारा अपना समर्थन वापस लेने की घोषणा करने के साथ ही कोया की मुस्लिम लीग सरकार तत्काल अल्पमत में आ गयी थी। 141 सदस्यीय सदन मे मुस्लिम लीग के केवल 12 सदस्य ही थे जबकि अन्य दलो की स्थिति निम्नानुसार थी --

| | |
|---|---|
| *कांग्रेस* | *20* |
| *केरल कांग्रेस (मणिगुट) -* | *21* |
| *कम्युनिस्ट पार्टी-* | *21* |
| *जनता पार्टी-* | *8* |
| *क्रांतिकारी समाजवादी दल-* | *17* |
| *अन्य दल-* | *11*[3] |

---

1 पूर्वाधृत

2 टाइम्स ऑफ इण्डिया, 5 दिसम्बर 1979

3 नवभारत टाइम्स -- नवम्बर 19, 1979

वास्तव मे कोया के नेतृत्व मे सरकार का गठन किये जाने के समय ही यह सदिग्ध था कि मणिगुट और जनता पार्टी ने किस आधार पर अपेक्षाकृत छोटे दल का समर्थन देना क्या स्वीकार किया जबकि केन्द्र मे दोनो परस्पर विरोधी दल थे।

कोया मत्रिमण्डल के निर्माण के समय ही इस बात का अनुमान लगाया गया था कि सरकार ज्यादा दिना तक सत्ता मे नही बनी रहेगी और यह आशका वास्तव म सच साबित हुयी। एक अन्य दल जो कोया मत्रिमण्डल को समर्थन दे रहा था वो काग्रेस था। कोया मत्रिमण्डल ने अपनी सरकार को बचाने के अतिम प्रयास के तौर पर काग्रेस पार्टी के तीन सदस्या को मत्री के रूप म अपनी सरकार मे शामिल किया था लेकिन सरकार बचाने का उनका प्रयास असफल साबित हुआ क्योकि काग्रेस ने भी अपने समर्थन वापस लेने की घोषणा कर दी था।[1]

सरकार के अवश्म्भावी पतन को देखते हुये मुख्यमत्री श्री सी एच कोया ने विधान सभा भग करने की सिफारिश कर दी जिससे नये चुनावो के लिए मार्ग प्रशस्त हो सके। उनका विचार था कि राज्य की विद्यमान राजनीतिक अनिश्चितता को देखते हुये नये चुनाव कराना ही सबसे अच्छा उपाय है। कोया मत्रिमण्डल के शपथ ग्रहण करने से पूर्व सयुक्त मोर्चे द्वारा समर्थित श्री वी के वासुदेवन नायर की कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार का पतन हो चुका था।[2] इसी बीच मणिगुट ने सयुक्त मोर्चे के 20 सदस्या के समर्थन का दावा करते हुये राज्यपाल से उन्हे सरकार बनाने लिये आमत्रित करने का अनुरोध किया।

लेकिन राज्यपाल श्रीमती ज्योति वेकेटचलम् ने अल्पमत मुख्यमत्री की सिफारिश मानते हुये राज्य विधान सभा को तत्काल भग कर दिया साथ ही राज्य मे नये चुनाव होने तक श्री कोया से पद पर बने रहने का अनुरोध किया।[3]

सभी विपक्षी दलो ने राज्यपाल के निर्णय को सविधान विरुद्ध बताते हुये उसकी कड़ी आलोचना की। विपक्षी दलो द्वारा जारी किये गये सयुक्त व्यक्तव्य म कहा गया कि

---

1 पूर्वोधृत 29-नवम्बर 1979

2 वही

3 वही – दिसम्बर 2 1979

अल्पमत मुख्यमत्री द्वारा स्वय त्यागपत्र देने के स्थान पर विधान सभा भग करने का सुझाव दना मविधान तथा जनतात्रिक भावनाओ के प्रतिकूल था।[1] राज्यपाल की भूमिका निश्चित नार पर सदिग्ध थी क्योकि 12 सदस्यो वाली अल्पमत मत्रिमण्डल को कार्यवाहक सरकार क रूप मे बने रहने देने का कोई औचित्य नही था।

केरल के सात विपक्षी दलो ने राज्यपाल श्रीमती वेंकेटचलम् को वापस बुलाने की माग की और राज्यपाल के निर्णय के विरोध मे पूरे केरल राज्य म 5 दिसम्बर को हडताल को आहवान किया था।[2] इन सभी दलो ने राज्यपाल पर केन्द्र मे मत्तारूढ जनता पार्टी के इशारे पर चलने का आरोप लगाया था।

अतत राज्यव्यापी विरोध के चलते श्री कोया के 51 दिन पुराने मत्रिमण्डल ने अपना त्याग पत्र दे दिया इसी के साथ राज्य मे राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर राष्ट्रपति शासन की घोषणा कर दी गयी।[3]

वास्तव मे राज्य मे राज्यपति शासन लगाये जाने का फैसला उचित था क्याकि केरल मे कोया सरकार के पतन से यह स्पष्ट हो चुका था कि राज्य म कोई दल स्थायी सरकार का गठन करने की स्थिति मे नही था जबकि चुनावा क तीन वर्षा के भीतर राज्य म तीन मत्रिमण्डलो का निर्माण किया जा चुका था।[4]

इसी बीच सभा दलो ने राज्य मे स्थायी सरकार बनाने का प्रयास किया था लेकिन कोई भी दल या उनका समुच्चय राज्य मे ऐसी सरकार देन म असफल रहा था जो जनता की भावनाओ का प्रतिनिधित्व कर सके। कोया मत्रिमण्डल तो अपने आप मे राजनतिक विसगतियो का अद्‌भुत नमूना था।

---

1 दिटाइम्स आफ इण्डिया –दिसम्बर 3, 1979

2 दिटाइम्स आफ इण्डिया –दिसम्बर 3, 1979

3 लाक सभा वाद विवाद 4 अगस्त 1970

4 पूर्वाधृत– दिसम्बर 4 1979

केरल 1981

केरल भारत के उन चद राज्यो मे स हे जहा राजनैतिक अस्थिरता अपवाद नहीं वरन् नियम ह। आधुनिक केरल के 25 वर्षो के इतिहास मे वहाँ 8वी बार राष्ट्रपति शासन लागू हुआ था आर माथ ही पदच्युत होने वाली 11वी सरकार थी।[1] इस बीच केवल अच्युत मेनन की दूमरी सरकार का ही 1970 से 1977 तक की लम्बी अवधि तक अखण्ड शासन करने का मोका मिला था।[2] शेष सभी सरकारे अपनी निर्धारित अवधि पूरा करने मे असफल रही थी।केरल मे श्री ई.के. नयनार मन्त्रिमण्डल का पतन तब हुआ था जबकि शरद काग्रेम और केरल काग्रेस (मणिगुट) ने मोर्चे से समर्थन वापस ले लेने की घोषणा कर दी थी।[3]इससे पूर्व शरद काग्रेस द्वारा 21 माह पुरानी वामपथी लोकतात्रिक मोर्चे मत्रिमण्डल से अलग होने तथा ममर्थन वापस ले लन की घोषणा के बाद मुख्यमत्री ने राज्यपाल से विधान सभा मे अपना बहुमत सिद्ध करने की बात कही थी। लेकिन केरल काग्रेस मणिगुट द्वारा भी ममर्थन वापस ले लेने की घोषणा के उपरान्त मत्रिमण्डल स्पष्ट रूप से अल्पमत मे आ गया था।[4] इस प्रकार दोनो दलो के मोर्चे से अलग हो जाने की घोषणा के बाद विधानसभा अध्यक्ष (जो कि सत्तारूट वामपथी दल का था) को छोडकर 141 सदस्यीय सदन मे कुल 62 हो गयी थी।[5] शरद काग्रेस के चार मत्री सहित विधायक ओर मणिगुट वाली काग्रेस के तीन मत्री सहित नौ विधायक वामपथी मार्चे मे शामिल थे। काग्रेस एस सत्तारूढ मोर्चे का सबसे बड़ा घटक था। मक्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के 34 सदस्य थे। तीसरा स्थान भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का था जिसके सदस्यो की सख्या 7 थी।[6]

काग्रेस एस ने 18 अक्टूबर को मोर्चा छोड़ने की घोषणा की और उसके चार मत्रियो इस्तीफे सरकार द्वारा स्वीकार कर किये गये थे। मोर्चों छोड़ने का फैसला राज्य के विभिन्न भागो म हिसा के बढते प्रभाव के कारण किया गया था। क्योकि इस दौरान राज्य मे राजनैतिक हत्याओ

---

1 एसियन रिकार्डर–नवम्बर 19-25, 1981 पृष्ठ-16322

2 दि टाइम्स आफ इण्डिया अक्टूबर 24, 1981

3 एसियन रिकार्डर–वही

4 एसियन रिकारर्डर–वही

5 पूर्वोधृत–एसियन रिकार्डर

6 हिन्दुस्तान टाइम्स – अक्टूबर 23 1981

आ कानून व व्यवस्था मे लगातार गिरावट आ रही थी। मार्क्सवादी वित्त मत्री श्री इ के रामकृष्णन ने स्वीकारा था कि काग्रेस एस के कुछ नेताओ की हत्या का षडयन्त्र रचा गया था। इसी के बाद ही यह फैसला लिया गया था। राज्य मे राज्य मे सत्तारूढ़ मोर्चे म शामिल दलो की स्थिति इस प्रकार थी —

| | | |
|---|---|---|
| *मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी* | — | *35,* |
| *भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी* | — | *17* |
| *काग्रेस (मणिग्रुप)* | — | *9* |
| *क्रातिकारी सोशलिस्ट पार्टी* | — | *6* |
| *अखिल भारतीय मुस्लिम लीग* | — | *5* |
| *वामपथी लोक तांत्रिक मोर्चा* | — | *72 (सत्तारूढ)*[1] |

एक मनोनीत सदस्य सहित काग्रेस (एस) के 22 सदस्यो के अलावा विपक्षी लोकतान्त्रिक मोर्चे के सदस्यो की सख्या 41 थी। इसमे —

| | | |
|---|---|---|
| *काग्रेस (इ)* | — | *17* |
| *मुस्लिम लीग* | — | *14* |
| *केरल काग्रेस (जो सेवा ग्रुप)* | — | *6* |
| *एन डी पी* | - | *3* |
| *जनता पार्टी* | — | *5*[2] |

इसके अलावा एक निर्दलीय सदस्य का भी समर्थन सत्तारूढ मोर्चे को प्राप्त था यह सदस्य असुन्तुष्ट मार्क्सवादी था। वामपथी लोकतान्त्रिक मोर्चा केरल म जनवरी 1980 के चुनावो के बाद सत्ता मे आया था। इसकी विशेषता यह थी कि राज्य मे प्रमुख दल की हैसियत रखते हुये 16 वर्षो बाद सत्ता मे आया था।[3] अतत वामपथी नयनार सरकार का पतन 22 अक्टूबर को मन्त्रिमण्डल द्वारा त्यागपत्र ने 22 अक्टूबर को मन्त्रिमण्डल द्वारा

---

1 पूर्वाधृत — 31 अक्टूबर, 1981 (दिल्ली)

2 वही — अक्टूबर 18 1981

3 वही

त्यागपत्र दन के बा' हा गया। वकल्पिक सरकार की मम्भावना न ऋ ना देखते हुये राज्यपाल श्रीमती ज्योति वेंकेट चलम् न राज्य विधान सभा निलम्बित कर दी और राज्य म राष्ट्रपति शासन की सस्तुति कर दी।

**राज्यपाल की रिपोर्ट** – राज्य मे केन्द्रिय शासन लागू करने की सिफारिश करते हुये राज्यपाल ने कहा कि नयनार सरकार के त्याग पत्र के बाद कोई अन्य स्थिर सरकार के गठन का फिलहाल राज्य म कोई सभावना नहीं थी। केन्द्र ने राज्यपाल की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया।

भूतपूर्व मुख्यमत्री श्री नयनार ने विधान सभा को निलम्बित रखने का फसला केवल अल्पमत की सरकार को कायम रखे रहने वाला बताया। इस फसले से जोड़-तोड़ की राजनीति का बढावा मिलेगा।

## सरकार गिरने मे पूर्व केरल मे अस्थिरता

केरल मे आये इस सकट की झलक पूर्व से ही दिख रही था जबकि नयनार मत्रिमण्डल की कार्य क्षमता अत्यधिक सदिग्ध रही थी। 21 माह पूव गठित केरल सरकार के कामकाज से हर बीते दिन यह स्पष्ट होता जा रहा था कि मार्क्सवादी मत्री आर विधायक अपने पार्टी के तो को हर तरह से आगे बढ़ाने मे प्रयत्नशील थे। इस दौरान जसा कि आराप लगाया जा रहा था मार्क्सवादियो ने करोडो की धनराशि एकत्र की थी। साथ ही मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यालय के लिये राज्य के एक कोने से दूसरे कोने तक तक आलीशान इमारतो का निर्माण इस बात का सकेत था कि मार्क्सवादियो ने बढ़ बढ़ कर हाथ मारे थे आर दूसरी और राज्य के गृहमत्री की शह पर राजनेतिक हिसा का जो दौर चला था, वही राज्य सरकार की नीव हिलाने के लिये काफी था।[1]

वामपथी मोर्च से शरद काग्रेस को निकालने की पूरी जिम्मेदारी मार्क्सवादियो का थी क्योकि मार्क्सवादियो के मुखपत्र (देशाभिमानी) ने शरद काग्रेस के नेत श्री एथोनी क खिलाफ गभीर आरोप प्रकाशित किये गये थे। इसके अलावा मार्क्सवादी मुख्यमत्री श्री

1 दि टाइम्स आफ इण्डिया – अक्टूबर 19 1981

एक त्यनाग के इशारे पर मार्क्सवादी कार्यकर्ता और पुलिस ने शरद कांग्रेस के नेताओ की हत्या का षडयन्त्र रचा था[1]

लेकिन इस राजनैतिक परिप्रेक्षय म राष्ट्रपति शासन लागू कर विधान सभा भग ना कर निलम्बित रखने का निर्णय औचित्य से परे था क्याकि इससे पूर्व 1965 मे केरल म चुनावा के तुरत बाद विधानसभा निलम्बित ना रख भग कर दी गयी थी जबकि कम्युनिस्ट पार्टी राज्य म सरकार बनाने को तेयार थी लेकिन राज्यपाल ने इस आधार पर वहाँ विधान सभा भग करन का घोषणा कर दी थी कि कोई भी दल राज्य मे स्थिर सरकार नही दे सकता था। तब या अब के दल म विपक्षी मोर्चा स्थिर सरकार दे सकता था क्योकि राज्य विधान सभा मे कांग्रेस (इ) के 17 व शरद कांग्रेस के 22 विधायक थे जिन्हे कुछ अन्य सदस्यो का समर्थन प्राप्त था क्याकि वे राज्य मे स्थिर सरकार द सकते थे। वास्तव म इस पूरे मामले मे राज्यपाल ने केन्द्र को इशारे पर काम किया था। वास्तव मे विधान सभा निलम्बित रखने का फेसला अनुचित था जिससे विधायको की राज्य म खरीदफरोख्त का मोका मिलता था ओर जनतात्रिक मूल्यो का ह्रास ही होता है।

केरल म 21 अक्टूबर 1981 को लगे राष्ट्रपति शासन का समाप्ति 28 दिसम्बर 1981 को हुयी जबकि कांग्रेसी नेता श्री के करूणाकरण के नेतृत्व म सुयुक्त लोकतात्रिक मोर्चे ने मत्रिमण्डल का निर्माण किया। लेकिन श्री करुणाकरण की 78 दिन पुरानी सरकार का अत भी तब हो गया जब केरल कांग्रेस (मणिग्रुप) ने मोर्चे से समर्थन वापस ले लेने की घोषणा कर दी। और क्योकि राज्य मे विकल्प की सरकार बनने को कोई सम्भावना नहा थी अत राज्य मे विधान सभा भग कर 17 मार्च को राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया था।

---

1 पूर्वाधृत

इस प्रकार जसा कि अनुमान था श्री करूणाकरण की सरकार भी अस्थिर सावित हुयी। इस मोर्च म शामिल विभिन्न दल ने दोना काग्रेस पार्टी दाना केरल काग्रेस पार्टी, मुस्लिम लीग, नेशनल प्रजातात्रिक पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पाट्री व एक निर्दलीय।

इससे पूर्व केरल विधान सभा मे माक्सवादी मोर्च द्वारा लाया गया प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया था। यह प्रस्ताव विधान सभा अध्यक्ष श्री एसी जोस के विरुद्ध लाया गया था। प्रस्ताव पारित होने के लिये 71 मत चाहिये थे लेकिन इसके पक्ष मे केवल 70 मत ही पड़े थे क्योकि मणिगुट के एक विधायक ने मोर्चे से समर्थन वापस लेने की घाषणा की थी जिससे राज्य सरकार अल्पमत म आ गयी थी। और इसी के साथ 17 मार्च, 1982 को राज्य मे विधान सभा भग कर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया क्योकि सरकार सरकार व विपक्ष दोनो की शक्ति बराबर होन क कारण सभाध्यक्ष के निर्णायक मत से जीवित थी लेकिन एक विधायक द्वारा समर्थन वापस ल लेने की घोषणा के बाद सरकार अल्पमत मे आ गयी थी फलस्वरूप उसे इस्तीफा दना पडा था।[1]

1 नवभारत टाइम्स – 19 मार्च 1981

# पजाब

देश का अन्न भण्डार और ढाल, बरछा, तलवार से सुसज्जित, बाहु कहलाये जाने वाले पजाब का दो दशकों मे दो बार विभाजन हुआ। सन् 1947 मे मुस्लिम बहुल पश्चिमी पजाब पाकिस्तान मे मिल गया। पजाब का जो पूर्वी भाग बाद म शेष रह गया था, उसको भी 1966 मे चार भागो मे विभक्त कर दिया गया है।[1]

जनसख्या की दृष्टि से 1966 मे पुर्नगठित पजाब मे सिखो का प्रतिशत हिन्दुओ के मुकाबले अधिक रहा। भारत के अन्य राज्यो की तरह पजाब की भी राजनीति मे जातीयता का बोलबाला था। जिसके कारण धार्मिक सगठन हमेशा से ही राज्य की राजनीति म अपनी प्रमुख भूमिका निभाते रहे और विभिन्न कारणो से राजनीति विभिन्न दलो, विशेष रूप से काग्रेस ने, जो कि स्वतन्त्रता के बाद से ही भारत मे अकेली राष्ट्रीय पार्टी रही, ने इन सगठनो को फलने फूलने मे मदद की, जिसका की फायदा आगे आने वाले कुछ सालो तक तो काग्रेस को मिलता भी रहा लेकिन सन् 1981 के बाद स जिन अराजक तत्वो का सहारा लेकर अभी तक काग्रेस राज्य मे सत्तारूढ़ होने मे सफल हुयी थी उन्ही तत्वो ने पजाब मे आतकवादी कार्यवाहियो मे हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। पजाब मे असतोष के बीज विभाजन के बाद से ही पड़ गये थे।[2]

पजाब की राजनीति का सचालन केन्द्र जाट रहे है। इसका मुख्य कारण यही रहा कि गावा मे जाटो ही की अधिकता है व सिक्खो के धार्मिक मामलो का सचालन जाट ही करते आये है। यह भी अफवाह है कि पजाब की पूरी राजनीति जाटों तथा

1 (a) हिन्दी भाषी क्षेत्र—वर्तमान मे हरियाणा राज्य
(b) रमणीय द्विभाषी राजधाना चण्डीगढ़ को सघ राज्य क्षत्र घापित वर दिया गया।
(c) पर्वतीय क्षेत्र हिमाचल प्रदेश म भाग बने
(d) शेष पजाबी भाषी पजाब के नाम से पूर्ववत रहा 'भारत 1967'

2 'दल-बदल की राजनीति'—सुभाष सा कश्यप, पूर्वोधृत

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रवन्धक सभी निर्वाचनो क इर्द गिर्द ही घूमती रही ह। श्री प्रताप सिह क्रा, जो आठ वर्ष तक पजाब के मुख्यमत्री रहे से लेकर श्री बेअत सिह सभी प्रभावशाली नता जाट जाति के ह।

पजाब ही वह पहला राज्य है जहॉ सर्वप्रथम अनुच्छेद 356 का प्रयाग किया गया आर इसका प्रयोग सविधान लागू होने के मात्र एक वर्ष बाद ही कर दिया गया जवकि भारत वर्ष म पहले आम चुनाव भी नही हुये थे।[1]

20 जून 1951 को लगाये गये राष्ट्रपति सर्वप्रथम राष्ट्रपति शासन का कारण था, काग्रेम पार्टी की राज्यस्तरीय इकाई मे मतभेद उत्पन्न हो गया था।

गोपी चन्द्र भार्गव जो कि पजाब के मुख्यमत्री थे, साथ ही काग्रेस विधायक दल क नेता भी थे, ने पार्टी के अन्दर उपजे मतभेदो को करने का प्रयास किया। लेकिन दूसर गुट के नेता भा, भीमसेन सच्चर ओर प्रतापसिह कैरो जो प्रधानमत्री नेहरू के समर्थक थ, न किसी भी प्रकार के समझौते से साफ इनकार कर दिया जिससे राज्य की सरकार के सामन अस्तित्व का खतरा उत्पन्न हो गया। राज्य मे उपजे इन मतभदो को देखते हुये काग्रेस ससदीय समीति ने डॉ भार्गव को सूचित किया कि भारतीय विधान के सकटकालीन अधिकारा के अन्तर्गत पजाब विधान सभा तत्काल भग कर दी जायेगी और डॉ भार्गव इस निणय की पूर्ति लिये अपना त्याग पत्र दे दे, साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया कि ऐसी स्थिति म राज्य का शासन राज्यपाल सलाहकारो की सहायता से चलायेगा।[1]

केन्द्रीय ससदीय बोर्ड के निर्णय पर विचार करने के लिये डॉ भार्गव ने असम्वली के वहुसख्यक दल की बैठक 15 जून को बुलाई ओर उस मे बोर्ड के निर्णय पर विचार किया गया। लकिन चूकि भार्गव द्वारा ससदीय बोर्ड के निर्णय को ना मानने क प्रश्न पर नेहरू ने बोर्ड की सदस्यता से त्याग पत्र की धमकी दी थी, अत 16 जून 1951 को बोर्ड के दबाव क आगे डॉ भार्गव के अपना इस्तीफा राज्यपाल श्री चन्दू लाल त्रिवेदी को सौप दिया। डॉ भार्गव के त्यागपत्र के बाद बोर्ड इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि

---

1 दी स्टेट्समेन 13 जून 1951।

अन्य कोई व्यक्ति राज्य म मत्रिमण्डल बनाने मे सक्षम नही ह। अत पजाब विधान सभा को शासन के उत्तरदायित्व से मुक्त कर देने का निर्णय लिया गया।[1]

वास्तव म कन्द्र मे सत्तारूढ काग्रेस पार्टी ही राज्य मे भी सत्तारूढ थी, ऐसा कडा कदम इस कारण उठाना पड़ा क्योकि--

1 सच्चर व भार्गव के मध्य कराये गये समझोते के सभी प्रयास असफल रहे उनके मध्य पिछले 20 वर्षा से प्रतिद्वन्द्विता चली आ रही थी और वे दोना ही अलग अलग गुट की अध्यक्षता करते थे।

2 एक अन्य प्रमुख कारण जोकि इन अर्न्तकलहो के अलावा भी था वो यह था, कि राज्य मे हिन्दू तथा सिखो के मध्य साम्प्रदायिक तनाव की स्थिति घटती जा रही थी। जिसमे आरएसएस तथा अकाली दल सक्रिय भाग ले रहे थे जिनकी गतिविधियो पर कोई प्रभावी रोक सरकार द्वारा नही लगायी गयी थी।

3 धारा 356 को लगाये जाने का राजनीति कारण भी रहा, वह यह था कि राज्यो म काग्रेस दल के प्रधानो पर हाईकमान से स्वतन्त्र होकर कार्य करने की मनोवृत्ति पर रोक लगाना था। तत्कालीन प्रधानमत्री नेहरू हाईकमान की पुरानी प्रतिष्ठा को बनाये रखना चाहते थे।

इस पूरे प्रकरण की समाप्ति डॉ भार्गव के इस्तीफे स हुयी जोकि बोर्ड के दवाव म दिया गया था।[2] आगे के अनेक मामलो मे देखने म आया कि राज्य के मुख्यमत्रिया को केन्द्र के इशारे पर बदलने की परम्परा की रीति, जो नेहरू के समय से ही पड गयी थी उसका बीजाकुरण उनकी पुत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी के प्रधानमत्रित्व काल

---

1 काग्रेस आई शासन ने हमेशा से ही राज्यो मे मुख्य मत्रिया को अपने हाथ की कठपुतली बनाया ह। 1973 मे उत्तर प्रदेश आन्ध्रप्रदेश म भी राष्ट्रपति शासन लगाय जाने का प्रमुख कारण काग्रेस हाइ कमान का इन राज्यो के मुख्य मत्रियो से असतुष्ट होना ही था। डॉ भार्गव का त्याग पत्र वास्तव म इसी की शुरुआत थी। बाद म नेहरू ने कामराज योजना के तहत अनेको मुख्यमत्रिया को हटाया लेकिन इदिरा ने 1969 के बाद मुख्यमत्रिया को अपनी मरजी से नियुक्त करना व बर्खास्त करना अपना धधा बना लिया। उनके शासन काल में मुख्यमंत्री पद दो ही बातो से तय किया जाता था इन्दिरा द्वारा स्वय मनोनीत हो, वह स्वतन्त्र राजनीतिक प्रर्दशन ना करे। 1975 मे श्री कमलापति त्रिपाठी को हटाया जाना इसी बात की अगली कड़ी मात्र थी—दि पायनियर, 1 नवम्बर, 1977

2 अमृत बाजार पत्रिका, जून 21, (कलकत्ता)

म हुआ, जबकि राज्य के मुख्यमंत्रियो का अधिकाश समय अपने राज्य मे कम दिल्ली म अधिक व्यतीत होता था। वास्तविकता यही थी कि नेहरू व उसके परिवार के लोगो ने कांग्रेस पार्टी को एक व्यक्ति का दल बना दिया। पार्टी का सारी गतिविधियो की धार नेहरू, इन्दिरा या बाद म राजीव के चारो ओर ही घूमती थी, जैसा कि भार्गव के मामले म दृष्टिगोचर होता हे वसा ही मामला 1973 मे उप्र मे हुआ जब मुख्यमंत्री श्री बहुगुणा न हाइ कमान के आदेश अपना पर इस्तीफा राज्यपाल को सोप दिया था। इस्तीफा देने के बाद श्री भार्गव ने कहा कि वे केवल बोर्ड के आदेश का मान रखन के लिये इस्तीफा दे रहे ह। कांग्रेस के सदस्य होने के नाते उनका धर्म है कि वे बोर्ड के आदेशो का पालने करे लेकिन उन्होने अपने त्याग पत्र के बाद राज्य मे राज्यपाल के शासन की सम्भावना को देखते हुये उसे अनुपयुक्त बताया था और कहा था कि वे किसी भी अन्य दल का सरकार का स्वागत करेगे। जनमत के आधार पर जोकि लोकतन्त्रीय व्यवस्था की रीढ ह बहुमत दल को राज्य मे सरकार कायम रखने का अधिकार होता ह, लेकिन पजाब के मामले मे इसके ठीक विपरीत काम किया गया जोकि अनुचित था। सवधानिक व्यवस्था का स्पष्ट उल्लघन था।

इस प्रकार पजाब मे आपातकालीन प्रावधानो का प्रयोग करते हुय 20 जून का राज्य का शासन राष्ट्रपति के अध्यादेश के तहत राज्यपाल को सुपुर्द कर दिया गया।[1] इस प्रावधान को सविधान लागू होने के कुल 17 माह बाद ही पजाब राज्य म क्रियान्वित किया गया था। जिसकी सर्वत्र आलोचना हुयी थी।

राज्य के विरोधी गुट (कांग्रेस) के नेता सरदार प्रताप सिंह केरो ने भी केन्द्र के इस निर्णय से अपनी असहमति जताया थी और आशा व्यक्त की थी कि यह जितना जल्दी समाप्त हो उतना ही अच्छा ह।

विधान विशारदो ने पजाब मे राज्यपाल शासन को सविधान के प्रतिकूल बताया था क्योकि अनुच्छेद 356 के तहत राज्य का शासन राष्ट्रपति स्वय ले सकता है, राज्यपाल को नही सोप सकता ह। यह असवधानिक कार्य था और इस पर निर्णय के लिये मामले

1 ए.पी.पी. जून 21 पृष्ठ, 1951 ( कलकत्ता)

का उपर्युक्त अदालत म पेश किया जा ना चाहिये जिससे न्यायालय के विचार इस सबध म जाने जा सके।[1]

वास्तव म सविधान विशेषज्ञो की आपत्ति उचित नही थी। राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद द्वारा जारी उदघोषणा मे कहा गया था कि उन्हे राज्यपाल का प्रतिवेदन प्राप्त हुआ ह आर वे इस बात से सतुष्ट है कि राज्य का शासन सविधान क प्रावधानो के अनुरूप नही चलाया जा सकता हे अत अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य शासन उनके राष्ट्रपति के माध्यम से राज्यपाल में निहित रहेगा।[2]

वास्तव मे सविधान विशेषज्ञो की यह आलोचना उचित नही थी कि राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 को तहत राज्य का शासन राज्यपाल मे नही सौप सकता ह। वास्तव अनुच्छेद 356 को तहत राज्य का शासन राज्यपाल मे नही सौप सकता हे। वास्तव मे यह सविधान म ही निहित ह कि अनुच्छेद 356 की घोषणा के पश्चात राष्ट्रपति उस राज्य की सरकार के सभी कृत्य राज्यपाल के माध्यम से सम्पादित करेगा।[3]

जून 1951 को लगाये गये राष्ट्रपति शासनकी समाप्ति अप्रैल 1952 को हुयी जबकि आम चुनावो के बाद श्री भीम सेन सच्चर जोकि कांग्रेस विधायक दल के नेता थे, ने नये मत्रिमण्डल का गठन किया।

पजाब मे राष्ट्रपति शासन का वास्तव मे कोई औचित्य नही था। डॉ एच.एन कुजरू ने अनुच्छेद 356 क विरूद्ध गभीर आपत्ति रखी ओर केन्द्र द्वारा राज्य प्रशासन मे हस्तक्षेप का कड़े शब्दो मे विरोध किया। उनका विचार था कि वास्तव मे अनुच्छेद 356 को सविधान मे रखे जाने के पीछे जो प्रमुख बात थी वह यह थी कि यदि राज्य की सरकार वहा की जनता के हितो

---

1 एबी पी जून 21, पृष्ठ, 1951, वही

2 दि स्टेटस मैन 21 जून 1951

3 इस सम्बन्ध मे सविधान मे स्पष्ट उल्लखित है कि 'उस राज्य की सरकार के सभी या कोई कृत्य और राज्यपाल म या राज्य क विधान मण्डल से भिन्न राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी म निहित या उसके द्वारा प्रयोग की जाने वाला सभी या कोई शक्तिया (राष्ट्रपति) अपने हाथो म ले सकेगा अनुच्छेद 356 (1) (क) भारत का सविधान पृष्ठ 101, 1990 भारत सरकार विधि व न्याय मत्रालय विधायी विभाग, राजभाषा खण्ड (नयी दिल्ली)

के विरुद्ध कार्य करने लगे तो केन्द्र सरकार को हस्तक्षेप का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिय। लक्नि जसा कि इस मामले मे अनुच्छेद का प्रयोग किया गया है उससे यही प्रतीत होता था कि केन्द्रीय सरकार जो अत्यधिक शाक्तिशाली होनी है तो अपने विचार राज्य सरकार पर थोप रही थी आर जब राज्य सरकार ने केन्द्र की इच्छा के विरुद्ध वाम करना शुरू किया तब केन्द्र ने उसे तुरत हटा दिया। वास्तव मे सविधान सभी मे इस अनुच्छेद पर परिचर्चा के समय यही वात कही गयी थी कि जब राज्य की सुरक्षा व व्यवस्था को खतरा हो तभी अनुच्छेद 356 के तहत राज्य प्रशासन मे हस्तक्षेप का अधिकार केन्द्र को प्रदान किया जाना चाहिये, लेकिन पजाब म इस धारा को जोकि सर्वप्रथम प्रयोग था पार्टीहितो को ध्यान मे रखकर किया गया था नाकि राज्य हित को[1]

एनजी रगा ने भी इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये कहा था कि जबकि राज्य सरकार से केन्द्र सतुष्ट ना हो तो अनुच्छेद 356 लागू की सभावना बनी रहेगी। इस पर अपना सुझाव रखते हुये कहा था कि जब राज्यपाल को यह प्रतीत हो कि राज्य म मत्रिपरिषद गठित करना असभव हो जो उसे बखास्त करने के स्थान पर विभिन्न दला के नेताओ को मिलाकर कार्यवाहक सरकार गठित करने का प्रयास किया जाना चाहिये।

श्री देशमुख ने उस आधार की ही आलोचना की जिनका आश्रय लेकर अनुच्छेद 356 का प्रयोग किया गया था, उनका मत था कि यदि यह परम्परा आगे के लिये स्वीकार ली जायेगी तो मुख्यमत्रियो मे भी इस बात की आशका रहेगी कि जब भी केन्द्र सरकार राज्य सरकार से असतुष्ट है तो इनके प्रावधानो का सहारा लेकर इनका दुरूप्रयोग कर सकता ह आर पजाब मे तो इसका प्रयोग ऐसे मत्रिपरिषद के विरुद्ध हुआ था, जिसको कि बर्खास्त किये जाने के समय तक स्पष्ट बहुमत पाप्त था।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि केन्द्र में काग्रेसी सरकार ने अनुच्छेद 356 का सर्वप्रथम प्रयोग अपनी ही दल की बहुमत प्राप्त सरकार क विरूद्ध किया था।[2]

---

1 सीएडी भाग II'I वाल्यूम XIV No 4 9 अगस्त 1901 कालम 195

2 इसी प्रकार का उदहारण हमे 1973 आन्ध्र प्रदेश उत्तर प्रदेश मे व 1975 मे पुन उत्तर प्रदेश म किया था जबकि इन तीनो ही अवसरो पर काग्रेसी मत्रिमण्डलो को पूर्ण बहुमत प्राप्त था।

## पटियाला पूर्वी राज्य सघ (पेप्सु)

**1953**

1952 मे पटियाला तथा पूर्व पजाब यूनियन (पेप्सु)[1] जोकि पजाब राजवाडो तथा पजाब के आस पास के क्षेत्रो को मिल कर बनाया गया था पहला आम चुनाव 1952 मे हुआ। लकिन 60 सदस्यीय विधान सभा मे किसी भी दल को सदन मे स्पष्ट बहुमत नही मिल सका। उनमे विभिन्न दलो की स्थिति इस प्रकार थी-

| | | |
|---|---|---|
| *1* | *काग्रेस* | *26* |
| *2* | *अकाली दल* | *22* |
| *3* | *जन सघ* | *1* |
| *4* | *कम्युनिस्ट पार्टी* | *3* |
| *5* | *क एम पी पी* | *1* |
| *6* | *निर्दलीय* | *7* |
| | *कुल सदस्य* | *60* [2] |

काग्रेस विधायक दल ने जिसे पूर्ण बहुमत नही प्राप्त हुआ था राज्य मे मत्रिमण्डल का गठन किया। लेकिन सत्ताग्रहण करने के कुछ हफ्तो बाद ही उसकी सरकार का पतन हो गया क्योकि पक्ष के कुछ विधायको ने दल बदल कर लिया था। 22 अप्रेल 1952 को पुन युनाइटड फ्रट ने राज्य म शासन की बागडोर सभाल ली। लेकिन सरकार का अस्तित्व खतरे मे पडा रहा क्योकि विधायको का सत्ता पक्ष व विपक्ष मे आना जाना चलता रहा। विधायको की अस्था का ही पता चलना मुश्किल था क्योकि राज्य मे प्रतिक्षण स्थिति वदल रही थी। आर राज्य की सरकार का अधिकतर समय सतुलन बनाये रखने मे ही व्यतीत हो गया। बजटसत्र की समाप्ति के बाद विधान सभा सात दिन भी नही चल सकी क्योकि विधायको के बार-2 आस्था बदलन के कारण सरकार विधान सभा का सामना करने से डरती थी। अत इसका परिणाम यही हुआ कि विधान सभा अपन महत्वपूर्ण विधेयको पर चर्चा कर उनको पास नही कर सकी जो कि आवश्यक था।

---

1 राज्या का पुर्नगठन होने पर 1 11 56 को 'पेप्सु' का 'पजाब' मे विलय कर दिया गया। भारत 1953 पृष्ठ 169

2 श्री राममेश्वरी' प्रसीडेन्ट रूल इडिग्न पूर्वोधृत पृष्ठ 28

इस प्रकार पेप्सु की प्रतिक्षण बदलती राजनीति के कारण राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू होने की पूरी सम्भावना बन गयी थी क्योकि जब तक दूसरे चुनाव नही होते राज्य की स्थिति यही रखने की आशा थी।[1]

राज्य की स्थिति और गंभीर हो गयी थी जब पाटेयाला सघ के मुख्यमत्री श्री ज्ञान सिह राडेवाला तथा श्रम मत्री श्री सरदार मिहान सिह गिल की सदस्यता चुनाव अदालत ने अवध घोषित कर दी थी[2] इसके पूर्व मे भी राज्य के छ सदस्य अपदस्थ किये जा चुके थे।[3] आठ सदस्यो के आयोग्य घोषित हो जाने के बाद सत्तारूढ यूनाइटेड फ्रट के सदस्यो की सख्या मात्र 25 रह गयी थी। अन्य की स्थिति इस प्रकार थी काग्रेस 22 कम्युनिस्ट-3 स्वतन्त्र -2, इस प्रकार सदस्यो के अयोग्य घोषित होने के कारण उपचुनाव लम्बित हो गये थे और साथ ही वर्तमान सरकार का भी सत्ता म बने रहना असभव हो गया था जबकि दूसरा तरफ मुख्यमत्री श्री राडेवाला का दावा था कि उनका सयुक्त बिना किसी विघटन के शासन की बागडोर सभाले रह सकता है किन्तु राज्य मत्रालय का मत था कि विधान सभा के सदस्यो का प्रतिक्षण एक दल को छाड़ कर दूसरे दल मे मिल जाने से शासन की स्थिति अत्यधिक खराब हो गयी थी[4] जिसका एक मात्र विकल्प राष्ट्रपति शासन ही था।[5]

5 मार्च 1953 को राज्य मे राष्ट्रपति की अधिसूचना द्वारा राष्ट्रपति शासन (2) लागू कर लिया गया साथ ही विधान सभा भी भग कर दी गयी। यह पहला अवसर था जबकि राज्य का प्रशासन चलाने मे राज्यपाल की मदद के लिये सलाहकार की नियुक्ति का गयी थी। इस प्रकार देश मे गैर काग्रेसी मत्रिपरिषद के गठन का प्रथम प्रयोग असफल रहा था।

---

1 अमृत बाजार पत्रिका '28 फरवरी 1953 पृष्ठ। (कलकत्ता)

2 'एबापी '22 फरवरी 1953 पृष्ठ 1

3 'एबीपी ' 23 फरवरी 1953 पृष्ठ 4

4 'एबीपी ' 23 फरवरी 1953 पृष्ठ 4

5 एबीपी ' 23 फरवरी 1953

पेप्सू मे पहली बार विना राज्यपाल की रिपोर्ट के ही राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था जो निश्चित रूप म गलत परम्परा की शुरूआत था यद्यपि सविधान का अनुच्छेद 356 राष्ट्रपति को राज्यपाल की रिपोर्ट के अलावा भी उसकी सतुष्टि के आधार पर कार्यवाही का अधिकार प्रदान करता है लेकिन सविधान सभा मे सदस्यो ने यही आशा थी कि सामान्य परिस्थितियो मे राष्ट्रपति राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर ही कार्यवाही करेगा क्याकि राज्य की वास्तविक स्थितियो का ज्ञान राज्यपाल ही करा सकता ह।[1]

इस सबध मे सरकारिया आयोग का भी विचार हे कि सामान्यतया राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर ही राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू किया जाना चाहिये। आयोग का विचार हे कि ऐसा करने से न केवल इस आसाधारण शक्ति की मनमाने ढग से या उतावले पन से प्रयोग करने पर नियत्रण रहेगा और गलती होने पर सघ सरकार की शर्मिन्दा भी नही होना पडेगा।[2] इसमे सघ सरकारो को पर राज्य सरकारा को दुर्भावना से प्रेरित होकर उसे बर्खास्त करने का आरोप भी नही लगेगा साथ ही चूँकि सघ सरकार ससद की कार्यवाही के लिये उत्तरदायी होती हे, अत यदि केन्द्र पर गलत कार्यवाही का आरोप लगाया जाता ह तो वह अपने बचाव मे राज्यपाल की रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकती ह, जिसको आधार वना कर कार्यवाही की गयी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने भी कार्यवाही के लिये राज्यपाल की रिपोर्ट की आवश्यकता बतायी हे।[3]

केन्द्र सरकार के इस कृत्य की विभिन्न राजनीतिक दलो ने कडी आलोचना की थी लोक सभा मे कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यो ने केन्द्र की कार्यवाही को शर्मनाक कृत्य कह कर सम्बोधित किया। सविधान के निर्माता डॉ अम्बेदकर ने भी राज्य मे राष्ट्रपति शासन लगाये जाने के फेसले को अनुचित बताया था। राज्य मे अकालिया ने केन्द्र की कार्यवाही का विरोध करते हुये हडताल की। उन्होने इस लोकतन्त्र की हत्या कह कर विरोध प्रकट किया। लेकिन वास्तव मे ये सभी आरोप यर्थाथ के विपरीत थे, क्योकि राज्य मे

---

1 'अमृत बाजार पत्रिका (कलकत्ता)' 23 फरवरी 1953

2 सरकारिया कमीशन रिपोर्ट' –पूर्वोधृत भाग 1, पृष्ठ 161

3 एस आर बाम्बई बनाम भारत सघ' एआईआर ( ) एससी 1993

लनदन का व्यापार निरन्तर चल रहा था। विधायको की आस्थाये प्रतिक्षण बदल रही थी जिसके कारण विधान सभा का सब चलना असभव हो गया था।

लोक सभा मे तत्कालिन स्वराष्ट्रमत्री श्री केलाश नाथ काटजू ने अपना व्यक्तव्य देते हुये कहा कि राज्य ऐसे हालात बन गये थे जिससे सविधान के अनुरूप शासन चल नामुमकिन हो गया था। जिसके कारण राष्ट्रपति को शासन सूत्र अपने द्वारा मे लेने का फमला करना पडा। आम चुनावो के बाद से ही विधान सभा मे राजनैतिक अस्थिरता बनी हुयी थी जिसका प्रशासन पर बुरा प्रभाव पडा था। राज्य मे शासन के दोरान कानून व्यवस्था की स्थिति सतोषजनक नही रही थी।

उनका विचार था कि राज्य के विकास योजनाओ को कायन्वित करने के लिये एक सुयोग्य सरकार की आवश्यकता थी जिसका की सर्वथा अभाव था अत यह आवश्यक था कि राज्य प्रशासन सुव्यवस्थित किया जाये जिससे जनता निष्पक्ष रूप से अपने प्रतिनिधियो को चुन सके।

वस्तुस्थिति का निष्पक्ष अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता ह कि पेप्सु मे लगाया गया राष्ट्रपति शासन अनुचित नही था बावजूद इसके कि सयुक्त मोर्चा सरकार ने अन्य दलो के साथ सरकार बनाये रखने का अनुरोध किया था। साथ ही यह भी अनुरोध किया था कि उन्हे छ माह तक आपने पद पर बने रहने दिया जाये जब तक कि वे पुन निर्वाचित नही हो जाते। ज्ञातव्य है कि मुख्य मत्री श्री राडेवाला सहित छ अन्य सदस्यो की सदस्यता चुनाव अदालत द्वारा रद्द की जा चुकी थी लेकिन उसके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया गया था और तत्काल ही विधान सभा भग कर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। केन्द्र ने मुख्यमत्री श्री राडेवाला की बर्खास्तगी निम्न आधारो पर की थी—

1 मुख्यमत्री श्री ज्ञान सिह रारेवाला के साथ-साथ 8 अन्य विधायको की सदस्यता निरस्त कर दी गयी थी जिसके परिणाम सयुक्त दल का बहुमत सदन म नही रह गया था।

2 मई 1952 के बाद से दीर्घ अवधि तक सदन ने कोई आवश्यक कार्य नही सम्पादित किया था क्योकि विधायको के लगातार निपटाये बदलते रहने के कारण कोई भी दल सदन का सामना करने के लिये तैयार नही था।

3 राज्य म कानून व व्यवस्था की स्थिति भी सतोषजनक नहीं था। सरकार क स्थायित्व क बारे म बनी अनिश्चितता के कारण राज्य म अराजकता बटी थी किसाना ने भूमि कर नही अदा किया था। अपराधियो की सख्या मे भी वृद्धि हुयी थी। हत्याय आर डाके की घटनाआ म भी बटोत्तरी हुयी थी।

4 विधान सभा सदस्यो द्वारा लगातार दलबदल किया जा रहा था। सत्तारूढ दल का अर्न्तद्वन्द्व आर काग्रेस पार्टी का असामर्थ्य इन दोना के बीच राष्ट्रपति शासन ही एक मात्र हल था।

अत निपक्षियो द्वारा जो आलोचनाये का जा रही थी, वे पूणत अनुचित थी, क्योकि ऐसी ही आकस्मिक परिस्थितियो से निपटने के लिये सविधान म अनुच्छेद 356 का प्रावधान किया गया ह जबकि राज्य सरकार की गतिविधियो के कारण सम्पूण व्यवस्था के विश्रखलित होन का ही भय हो जाये, उस स्थिति म अनुच्छेद 356 का प्रयाग करना उचित होता ह।

16 सितम्बर 1953 को राष्ट्रपति शासन की अवधि छ माह की लिये बढाया गया जिसका समापन 8 मार्च 1954 को हुआ, जबकि राज्य मे आम चुनावा क बाद काग्रेस विधायक दल के नेता श्री रघुवीर सिह को मुख्यमन्त्री पद की शपथ दिलाया गयी।

**पजाब-1966**

1951 मे काग्रेस पार्टी हाई कमान के आदेशानुसार श्री गोपाचन्द्र भार्गव के मत्रिमण्डल न इस्तीफा दे दिया था, उसी मामले की पुनरावृत्ति पजाब मे ही 1966 म हुयी जब काग्रेस पार्टी क ही श्री रामकिशन मत्रिमण्डल ने हाई कमान के निर्देश पर अपना त्यागपत्र दे दिया। लेकिन इस बार परिस्थितिया कुछ भिन्न थी। 1966 मे राष्ट्रपति शासन वास्तव में राज्य का पुर्नगठन करन क लिये किया गया था।[1]

पजाब राज्य को भाषायी आधार पर पुर्नगठित करने से लिये 23 अप्रल 1966 को पजाब सीमा आयोग की स्थापना की गयी थी जिसने 31 मई 1966 को रिपोर्ट पेश की थी।[2] आयोग ने चण्डीगढ़ को हरियाणा राज्य को देने का निश्चय किया था। आर विवाद की शुरूआत यही से शुरु हो गयी थी। पजाबी सूबे की माग थी कि चण्डीगढ़ को उनके सूबे में शामिल

1 भारत 1966 पृष्ठ 451

2 दि स्टटसमन' 11 जून 1966

कर लिया जाय आर हरियाणा क्षेत्र के लोगो का आग्रह था किआयोग का सिफारिशा को ज्यो का त्या मानते हुये चण्डीगढ़ उनके प्रात मे मिला दिया जाय। इसी बात पर काग्रेस पार्टी व सत्तारूढ मत्रिमडल के सदस्यो बीच भी मतभेद हो गया था क्याकि तत्कालीन मत्रिमण्डल मे दोना हा पक्ष के लोग शामिल थे।[1]

उभय पक्ष द्वारा धमकिया दी जा रही थी। पजाव के मुख्यमत्री श्री रामकिशन के नतृत्व म प्रतिनिधि मण्डल केन्द्रीय नेताओ से मिल चुका था आर उनसे इस अन्याय को समाप्त करने का आग्रह वर चुका था, साथ ही मामले का उचित निवारण न हाने पर मत्रिमण्डल के त्यागपत्र को भी पेशकश भी की जा चुकी थी। इस प्रकार प्रजातात्रिक पद्धति द्वारा चुनी हुयी सरकार द्वारा दी जा रही धमकिया शुभ सकेत नही था। इसी बीच पजाव हरियाणा सूत्रा के विभाजन को अनुचित प्रकार से कार्यान्वित करने के लिये राज्यपाल उज्जवल सिह जोकि पजाव के ही थे के स्थान पर श्री धर्मवीर की नियुक्ति की जा चुकी थी।

इस प्रकार राज्य मे राष्ट्रपति शासन निश्चितप्राय हो चुका था। क्योकि इस मामले से शासक दल मे ही फूट पड चुकी थी। केन्द्र द्वारा आतम रूप से आयेगा की रिपोर्ट को कुछ सशोधनो से स्वीकार कर लेने की घोषणा के साथ ही मुख्यमत्री श्री राम कृष्ण ने 23 जून को अपना इस्तीफा सोप दिया। अपना त्यागपत्र प्रस्तुत करते हुये मुख्यमत्री ने कहा कि यदि केन्द्र सरकार को यह ज्ञात हो जाय कि कुछ कारणो से राज्य मे सवधानिक गतिरोध उत्पन्न होने की आशका हो तो उसे किसी भी राज्य के कार्य मे हस्तक्षेप करने का अधिकार होता है। वास्तव मे यह दुर्भाग्य का विपय था कि इस प्रकार के व्यापक हितो वाली बातो को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से सोचा जाय इससे इस बात की आशका उत्पन्न हो गयी थी कि नेताओ की इस प्रवृत्ति से जनता इस पूरे मामले को गलत परिपेक्षय म आकलन करेगी जिसका परिणाम दूरगामी होगा।

यह पहला अवसर था जब आम चुनावो के बाद राज्य विधान सभा लम्वित की गयी थी भग नही। इस सत्रध मे भारत सरकार के महान्यायवादी से सलाह ली गयी कि क्या विधान सभा भग किये बिना राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है, क्योकि केन्द्र पजाब के पुर्नसघटन स पूर्व वहा राष्ट्रपति शासन लागू करने के सबध मे विचार कर रहा था। इसके पीछे मुख्य

---

1 दल बदल की राजनीति –' सुभाष सी कश्यप' पृष्ठ 251, पूर्वोधृत

कारण यह था कि केन्द्र सरकार पुर्नगठन सबधी विधेयक पर राज्य विधान सभा की स्वीकृति लना जो आवश्यक था चाहती थी।

16 जून 1966 का महान्यायवादी ने राष्ट्रपति को सलाह दी थी कि पजाब विधान सभा भग किये बिना ही राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता ह। इसम कोई सवधानिक अड़चन आडे नही आयेगी।

इस प्रकार 2 अक्टूबर तक पजाबी सूबा ओर हरियाणा राज्या के पुर्नगठन की कार्यवाही पूरी होने तक पजाब मे राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया था। केन्द्र सरकार ने इसका आचित्य बताते हुये कहा था कि पजाबी और हरियाणा सूब के नेताआ के मध्य बढ़ते मतभेद के चलते कोइ भी दल या नेता सरकार चलाने के लिये तय्यार नही थे। इसलिये ऐसा कदम उठाना अपरिहार्य हो गया था।[1]

समसामयिक वकील श्री बलराज त्रिखा ने केन्द्रीय विधि मत्रा श्री जीएस पाटक ने पूछा था कि क्या पजाब मे राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने के सवैधानिक आचित्य पर आपत्ति नहा उठायी जा सकती। केन्द्र के इस कदम को सविधान के विरूद्ध गर कानूनी ओर प्रजातन्त्र विरोधी बताते हुये कहा था कि राम किशन मत्रीपरिषद को (जो बहुमत म था) सहर्ष विधान सभा को कायम रखने की महान्यायवादी की सलाह सविधान के अन्तर्गत क्षम्य हो सकती है परन्तु इसका कोई आचित्य नही था।

राष्ट्रपति शासन की समाप्ति 1 नवम्बर, 1966 को हुयी जब श्री गुरमुख सिह मुसाफिर न राज्य म काग्रेसी मत्रिमण्डल के रूप म शपथ ली। इस प्रकार निलम्बित सभा को ही पुन बहाल किया गया था। राज्य मे पुन चुनाव नही काराये गये थे।

इस प्रकार पजाब मे पुन 1951 के मामले की ही पुनरावृत्ति की गयी थी। यद्यपि यह ठीक ह पजाब व हरियाणा राज्यो के पुर्नगठन को लेकर काग्रेस पार्टी के अन्दर मतभेद उत्पन्न हो गया था लेकिन वास्तविकता यही थी कि प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गॉधी मुख्यमत्री को बदलना चाहती थी—ज्ञातव्य हे कि 1951 म भी इसी कारण राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा था। इसी प्रकार के उदाहरण आन्ध्र प्रदेश (1973) गुजरात (1974) व 1973 व 1975 उत्तर प्रदश क प्राप्त होने ह जबकि मुख्यमत्रियो से असतोष के कारण राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था।

1 दि स्टेट्समैन'-6 जुलाई, 1966 साथ ही देखे-यूनियन एक्जीक्यूटिव डॉ एच एम जैन-पृष्ठ, 1969

1966 म लागू किये गये गाष्ट्रपति शासन की विपक्षी पक्षा द्वारा काइ आलोचना नहीं की गयी थी।[1]

**पजाब 1968**

चाथे आम चुनाव, 1967 मे कोई भी पार्टी 104 ससदीय सदन म पूर्ण बहुमत प्राप्त करने म असफल रही थी। विभिन्न दलो की स्थिति इस प्रकार थी-

| *दल का नाम —* | *1967 के चुनावो मे प्राप्त स्थान* |
|---|---|
| *काग्रस* | *47* |
| *अकाली दल (सत गुट)* | *24* |
| *अकाली दल (मास्टर गुट)* | *2* |
| *जन सघ* | *9* |
| *साम्यवादी (दक्षिण पथी)* | *5* |
| *साम्यवादी (मार्क्सवादी)* | *3* |
| *रिपब्लिकन* | *3* |
| *ससोपा* | *1* |
| *निर्दलीय* | *10* |
| *कुल स्थान* | *104*[2] |

पजाब विधान सभा मे काग्रेस दल यद्यपि सबसे बड दल के रूप मे उभर कर सामने आया था लेकिन अत उसने राज्य मे मत्रिमण्डल बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। अनेको गेर काग्रेसी दलो ने सयुक्त मोर्चा बनाने के लिये प्रयत्न शुरू कर दिया था। उन्होंने अपने नेता के रूप मे पजाब अकाली दल (सत गुट) सरदार गुरुनाम सिह को मोर्च का नेता चुना था। मोर्चे मे गेर काग्रेसी सदस्यो म से 3 को छाडकर सभी निर्दलीय सदस्य भी शामिल हो गये थे 3 मार्च को सरदार गुरुनाम सिह के नेतृत्व मे मोर्चा मत्रिमण्डल सयुक्त मोर्चे के 53 सदस्य थे लेकिन पद ग्रहण करन कुछ ही दिन बाद अनुसूचित जाति के एक निर्दलीय सदस्य श्री भजन लाल सत्तारूढ मोर्चे से निकल कर

---

1 यूनियन एक्जीक्यूटिव'– डॉ एच एम जैन पृष्ठ पूर्वाधृत

2 नार्दन इडिया पत्रिका फरवरी 26, 1967

काग्रस म सम्मिलित हो गये जिससे शक्ति सतुलन बिगड गया। इसा के साथ दल बदल का खेल शुरू हो गया।[1] दल बदलुआ तथा अन्य घटको को मत्रिपद का लालच देखकर खुश करन का प्रयत्न जारी रहा। काग्रसी विपक्षी दल के नेता श्री ज्ञान सिंह राडेवाला ने मोच को भानमती क कुनबे की सज्ञा दी जिसम सात दल व निर्दल प्रत्याशी केवल स्वार्थ सूत्र मे बधे थे।

**विघटन की शुरूआत-** सरकार को शासन की बागडोर सभाले अभी कुछ ही दिन हुये थे तभी अप्रल 5 को, निम्न सदन मे सयुक्त मोर्चे के चार सदस्यो ने राज्यपाल क अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के सबध मे विपक्षी काग्रेस द्वारा प्रस्तुत किये गये सशोधन प्रस्ताव पक्ष के म मतदान किया। पक्ष मे 53 तथा विपक्ष म 49 मत पड़े।[2] ज्योही सदन म सशोधन प्रस्ताव को स्वीकार किया वसे ही काग्रेस न यह माग रखी कि सदन म हुयी हार को देखते हुये मत्रिमण्डल अपना त्याग पत्र दे दे। लेकिन मुख्यमत्री श्री गुरनाम सिह ने यह कहते हुये यह माग अस्वीकार कर दी क्योकि-

(1) सशोधन की मुख्य बातो को सरकार ने स्वय स्वीकार कर ली थी।

(2) मतदान मुक्त था।

(3) मोर्च ने सदस्यो को कोई सचेतक जारी नही किया था।

(4) किसी विधायक ने सरकार के विरुद्ध मत देने के बावजूद दल बदल नहीं किया था।

(5) सरकार को सदन मे बहुमत का समर्थन प्राप्त था।

दूसरी तरफ काग्रेसी जोकि सदन मे हुयी सरकार की हार के बाद त्यागपत्र की माग कर रहे थे खरीदफराख्त व जोड-तोड की राजनीति म लग गये। इन तथा कथित अवसरवादी तत्वो द्वारा राज्य की राजनीतिक स्थिरता को नष्ट करन का प्रयत्न किया जाने लगा था। जसाकि हमेशा से ही होता आया हे राज्य म विधायको की बोली लगने लगी

---

1 पुन पप्सू वाली स्थिति राज्य मे उत्पन्न हो गयी थी।

2 दि हिन्दुस्तान टाइम्स मार्च 6, 1967 (दिल्ली)

तथा हर दिन उनकी कीमत बढती जाती थी। मुख्यमत्री श्री गुरनाम सिह न काग्रस पर आरोप लगाया कि सतगुट के श्री बलदेव सिह को उसने कद कर रखा था।[1]

तत्कालीन राज्यपाल श्री धर्मवीर ने अपनी उचित सवधानिक भूमिका का निर्वाह करते हुये पार्टी के आन्तरिक मामलो मे दखल देने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि व राज्य म राष्ट्रपति शासन के पक्षधर नही है राज्य के सवैधानिक प्रमुख की हेसियत से उनका कर्तव्य ह कि वे लोकतन्त्र की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाये।

इसी बीच राज्य की राजनीति मे नया मोड़ आया जब काग्रेस छोड़कर मोर्चे म सम्मिलित सात विधायको को नोटिस दी गयी कि सन् 1967 के चुनाव म काग्रेस ने जो रुपया उन्ह दिया था उसे दो सप्ताह के भीतर ही अदा कर दे [2] नही तो उन पर न्यायालय म मुकदमा चलाया जायेगा।[3] शक्ति परीक्षा हाने वाली थी ओर दजन भर विधायक जो किसी भी तरह सत्ता मे बने रहने के प्रयास मे लगे हुये थे अनिर्णय की स्थिति मे झूल रह थे। जिनको दोनो ही पक्ष मोर्चा व काग्रेस अपनी ओर अपनी ओर मिलाने के प्रयास म लगे हुय थे। सत्तापक्ष के लोगो मे भी असतोष के स्वर उभरने लगे थे। श्री हुडियार जो कि सत गुट के थे और मुख्यमत्री पद के प्रवल दावेदार भी माने जाते थे, ने भी खुली आलोचना शुरू कर दी थी।

विधान सभा के सत्र के शुभारम्भ होते ही 26 मई को काग्रेस के नेता श्री प्रबोध चन्द्र द्वारा लाया गया अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा शुरू हुयी। प्रस्ताव का उत्तर देते हुये मुख्यमत्री काग्रेस पर पेसा देकर विधायको को खरीदने का आरोप लगाया, जिससे वे सरकार को उलटने के लिये काग्रेस की ओर मिल जाये। काग्रेस ने राज्य मे दल बदलुओ का बटारा देकर राज्य मे राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण पेदा कर दिया था लेकिन

---

1 दि हिन्दुस्तान टाइम्स अगस्त 4 1967

2 दल बदल की राजनीति-सुभाष सी कश्यप, पृष्ठ–244

3 इन दल बदल करने वाले काग्रसी विधायको मे छविधायक सयुक्त मार्चे म मत्री बन गये थ। इन विधायको का एक लाख रुपये से अधिक दिया गया था। इस बात से विधायको की खरीद फरोख्त के आरोप की पुष्टि होती है—— एससी कश्यप——' दल बदल की राजनीति' पूर्वाधृत, पृष्ठ 259

यदि हम मुख्यमत्री के इस आरोप प दृष्टिपात करे तो पायगे कि सनापन भी इस आरोप स बचा नही था क्याकि खरीद फरोन्त की घृणित राजनीति का खल दाना ही पक्षा द्वारा बराबर से चलाया जा रहा था।–

काग्रेस द्वारा लाया गया अविश्वास प्रस्ताव 57 मता से गिर गया इस प्रकार कुल 77 दिनो की अल्पविधि के कार्यकाल मे ही यह विपक्ष के साथ चाथा मुकाबला था। वास्तव म प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान किसी भी सदस्य ने दल बदल की निन्दा नही की। राजनीति दल बदल जोकि स्वस्थ लोकतन्त्रीय व्यवस्था का कोढ बनता जा रहा था के विरूद्ध प्रभावकारी कदम उठाने के लिय कोई तेयार नही था। पजाब म 1953 म भी इसी तरह का मामला प्रकाश मे आता हे जहाँ विधायको द्वारा बार-बार आस्थाये बदलने के कारण सरकार का अस्तित्व खतरे म पड गया था।[1]

**सामूहिक दल बदल**–पुन पजाब विधान सभा के शीतकालीन अधिवेशन के प्रारम्भ होते ही 22 नवम्बर 1967 को मोर्चे के श्री लक्षमण सिह गिल के नेतृत्व मे 16 विधायका ने मोर्च से यह कहते हुये नाता तोड लिया कि जिस उद्देश्य को लेकर मोच का निमाण किया गया था, उसे सिद्ध करने मे मोर्चा असफल रहा।

**मोर्चे द्वारा त्याग पत्र**–यद्यपि दलबदलू श्री हरिदत्त सिह उसी दिन पुन मोर्चे म शामिल हो गये थे लेकिन विघटन की राजनीति से घबडा कर मुख्यमत्री श्री गुरूनाम सिह न राज्यपाल श्री डी सी पावटे को 22 नवम्बर को अपना त्यागपत्र सौप दिया जिसमे राज्यपाल का विधान सभा भग करने की सलाह दी गयी थी जिससे राज्य मे चुनावो के लिये मार्ग प्रशस्त हो सके।

लेकिन राज्यपाल श्री पावटे ने यह कहते हुये मुख्यमत्री की सलाह मानने से इनकार कर दिया कि गुरुनाम सिह को पुन नवम्बर 24 तक सरकार निर्माण करने का प्रस्ताव दिया। राज्यपाल द्वारा एक ऐसे नेता को जिनका लगातर दलबदल के कारण सदन बहुमत भी नही रह गया था तो सरकार बनाने करना बहुत आश्चर्यजनक था। साथ ही सविधान के दायरे से बाहर की बात थी। राज्यपाल की यह कार्यवाही बहुत ही अनुचित

1 दल बदल की राजनीति–'सुभाष सी कश्यप' पृष्ठ 260

थी क्याकि यदि राज्य म मुख्यमत्री ने स्वय ही त्याग पत्र देकर सरकार चलाने म असमर्थता व्यक्त कर दी थी तो कोई कारण नही था कि पुन उसे राज्यपाल द्वारा आत्रित किया जाता। अपनी इस कायवाही का स्पष्टीकरण प्रस्तुत हुये राज्यपाल श्री पावटे ने कहा कि विधायको की डवॉ डोल स्थिति के बारे मे कुछ भी नही कहा जा सकता था क्योकि विधायक लगातर पतरा बदल रहे थे, यह नितान्त सम्भव था कि कुछ दलबदलू पुन गुरुनाम सिह के साथ आ मिलते और पुन उन्हे विधान सभा के सदस्यो का समर्थन प्राप्त हो जाता।

लेकिन चूँकि सम्भव नही हो सका तत्पश्चात् राज्यपाल ने श्री ज्ञान सिह राडेवाला को जोकि इका विधायक दल के नेता थे, सरकार बनाने के लिये आमत्रित करे।[1]

लेकिन श्री राडेवाला ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया आर राज्यपाल से प्रार्थना की कि श्री लक्षमण सिह गिल को क्योकि उन्हे काग्रेस दल का पूर्ण समर्थन प्राप्त था राज्यपाल उन्हे सरकार बनाने क लिये आमत्रित करे।[2] श्री गिल ने 104 सदस्यीय सदन मे 66 सदस्या के समर्थन का दावा किया था। गिल के मत्रिमण्डल म सभी दलवदलू सदस्य थे, जो कि सयुक्त मोर्चा से आय थे।

**अल्पसख्यक मत्रिमण्डल की वेधानिकता को चुनोती**—विधान सभा म गिल मत्रिमण्डल की वधता और वधानिकता को इस आधार पर चुनौती दी गयी कि सत्तारूढ जनता पार्टी जिससे गिल सम्बद्ध थे के कुल 18 सदस्य ही थे। लेकिन विधान सभा मे मतगणना के समय सयुक्त मोर्चा के 39 सदस्यो के अलावा सभी ने जनता पार्टी की सरकार का समर्थन किया। अत इस प्रकार सदन के अध्यक्ष ने विपक्षी सयुक्त मोर्चे के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया कि गिल मत्रिमण्डल सवधानिक या वैधिक नही ह। चर्चा के दौरान उन्होने कहा कि सविधान मे ऐसा कोई उपबध नही जिसके अनुसार बहुमत प्राप्त दल का नेता ही मुख्मत्री बने। सैद्धान्तिक रूप से यह बात सोची जा सकती है कि राज्यपाल कुछ विशेष अवधि के लिये बाहर के व्यक्तियों को भी मुख्यमत्री नियुक्त कर सकता है।[3]

---

1 श्री गिल अकाली दल सत गुट क उम्मीदवार की हैसियत से विधान सभा क लिय निर्वाचित हुय थ।

2 २५ नवम्बर 1967 आज पृष्ठ 1, 26, 1967

3 एसे व्यक्ति का जिसे राज्य विधान सभा म बहुमत प्राप्त हो जाये और वह इस शक्ति का प्रयोग विधान सभा के गठन के पूर्व भी कर सकता है। ऐसा करने पर राज्यपाल की दुर्भावना सिद्ध नही होती डी डी बसु भारत का सविधान—एक परिचय,पूर्वोधृत पृष्ठ 221

**गिल मत्रिमण्डल मे असतोष के बीज** गिल मत्रिमण्डल का पजाब म सत्तारूढ़ हुये अभी एक माह भी नही हुआ था, काग्रेसी क्षेत्रो म उनके विरुद्ध तीव्र असतोष उभरने लगा। असतोष का कारण था काग्रेसियो को अपेक्षित मत्रिपद ना मिलना।

मुख्यमत्री श्रा गिल ने पॉच जनवरी को घोषणा की कि वे काग्रेस के तीन दल बदलू विधायको को मत्रिमण्डल मे सम्मलित करना चाहते हे। लेकिन उनकी इस इच्छा के विरुद्ध काग्रेस दल के नेता श्री ज्ञान सिह राडेवाला ने साफ शब्दा म कहा कि काग्रेस को गिल मत्रिमण्डल को अपना समर्थन जारा रखने पर पुर्नविचार करना पडेगा। उनका कहना था कि वे दल बदल को प्रोत्साहन देना नही चाहते थे क्योकि इसस गम्भीर परिणाम हो सकते थे।

काग्रेस दल का यह दृष्टिकोण वास्तव मे पूर्व के उसके द्वारा किये गये व्यवहार क अनुरुप नही था। विपक्षी नेता श्री गुरूमान सिह ने जोकि पूर्व मुख्यमत्री थे, ने इस पर अपनी टिप्पणी करते हुये कहा कि यह तो राक्षसो द्वारा रामायण की दुहाई देने वाली बात हुयी क्योकि काग्रेस पजाब मे सरकार का तो पहले से ही समर्थन कर रही थी आर उसने यह भी इरादा कर रखा था कि जसे भी सम्भव हो वह दल बदल की घटनाओ प्रोत्साहन देकर गर काग्रेसी सरकारो का उलट दे।

## अध्यक्ष मे अविश्वास का प्रस्ताव और सदन का स्थगन

6 मार्च को विधान सभा अध्यक्ष श्री जोगिन्दर सिंह मान के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। लेकिन अध्यक्ष ने अविश्वास प्रस्ताव के अनुच्छेद 179 (ग) के तहत असविधानिक करार देते हुये अस्वीकार कर दिया। इस दौरान सदन की उच्श्रृखला को देखते हुये अध्यक्ष ने सदन को दो माह के लिये यह कहते हुये स्थगित कर दिया कि बजट सत्र के प्रारम्भ से ही वे देख रहे थे कि कागेस पार्टी ओर जनता पार्टी का व्यवहार सदन की गरिमा के अनुकूल नही था। उक्त दोनो दलो का लगातार यही प्रयास था कि सदन की कार्यवाही न चलने दी जाय। ऐसे म दन की बेठक स्थगित करना ही उचित था।[1]

---

1 'एस सी कश्यप'- पूर्वाधृत, पृष्ठ 272

लेकिन अचानक ही सदन की बेठक स्थगित करन का परिणाम यह हुआ कि राज्य म सवधानिक सकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। क्योकि वर्ष 1968-69 के लिये मार्च समाप्त होने से पूर्व ही बजट पास कराना था। यदि यह ना किया जाता तो। 1 अप्रल से राज्य सरकार के किसी भी कर्मचारी को वेतन नही मिल पाता। सारी सरकारी गतिविधियॉ ठप्प पड जाती।

पजाब मे गिल मत्रिमण्डल पश्चिम बगाल के बाद दूसरी काग्रेसी सर्मथित अल्पसख्यक सरकार थी जिसे एक माह से भा कम समय म सवधानिक प्रतिरोध का सामना करना पडा। दोनो ही स्थितियो मे सकट का कारण अध्यक्ष की व्यवस्था थी।

काग्रेस विधान मण्डलीय दल ने अध्यक्ष की कार्यवाही को असवधानिक, अससर्दाय तथा अभूतपूर्व बताया था।[1]

काग्रेस दल ने राज्यपाल से अध्यक्ष को बर्खास्त किये जाने की माग रखी। दूसरी ओर सयुक्त मोर्चा विपक्षी दल के नेताओ ने दावा किया था कि सकट का कारण दल बदलुआ की अल्पसख्यक सरकार को अवध आर असवेधानिक रीति से सत्तारूढ़ किया जाना था। उन्होंने राज्यपाल से अनुरोध किया कि वे सभा का विघटन कर दे और राष्ट्रपति शासन की सस्तुति कर दे। विपक्षी दलो का विचार था कि राज्य म गतिरोध दूर करने का यह एक मात्र विकल्प था और यदि इसका सहारा नही लिया जाता तो अराजकता उत्पन्न होने का खतरा था।

वास्तव मे इस घटना के परिपेक्ष्य मे राज्यपाल की स्वय की भी यह धारण थी कि राज्य की खेदजनक घटनाओ की कुछ हद तक जिम्मेदारी जनता और काग्रेस पार्टी के गठबन्धन पर थी। राज्यपाल ने केन्द्र को इस पूरी स्थिति की रिपोर्ट केन्द्र को भेजी गयी थी जिस पर राज्य के मुख्यमत्री श्री गिल और केन्द्रीय विधिमत्री श्री गोविन्द मेनन ने विचार किया और श्री मेनन का विचार था कि पजाब मे सविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन लागू

1 पूर्वोधृत

करनी की कोई आवश्यकता नहीं थी। उनका विश्वास था कि सविधान के अधीन अन्यथा भी स्थिति का सामना करने के लिये राज्यपाल को पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त थी।

वास्तव मे उनका अभिप्राय 174 से था जिसके तहत राज्यपाल सत्रावसान कर सकता था साथ ही 213 के अधीन वित्तीय प्रक्रिया का नियमन करने के लिये अध्यादेश निकाल सकता था।

राज्यपाल श्री डी सी पावटे ने विधान सभा का सत्रावसान कर दिया साथ ही अनुच्छेद 213 के अधीन एक अध्यादेश निकाला जिसमे अनुच्छेद 209 का आशय लिया गया था जिसमे यह व्यवस्था की गयी थी कि बिना वित्तीय कार्यवाही पूरी किये बिना सदन की बैठक स्थगित नहीं कि जा सकती थी।

लेकिन सयुक्त मोर्चा विपक्षी दल के नेता श्री गुरुनाम सिंह ने व्यवस्था सबधी प्रश्न उठाया कि राज्यपाल द्वारा पुन सदन को फिर से बुलाना असवधानिक था क्योकि—

1 सत्रावसान उसी दिन से प्रभावी हो सकता था जिस दिन सदस्यो को राजपत्रित अधिसूचना प्राप्त हुयी थी और चूँकि राजपत्रित अधिसूचना 18 मार्च से पहले प्राप्त नहीं हुयी थी अत सदन का वास्तव मे सत्रावसान 18 मार्च को हुआ था।

2 अत 14 मार्च को ही सदन को आहूत करने का अर्थ था कि उस सदन का आहूत करना जिसका सत्र पहले से ही हो रहा था और नियम यह है कि जब सत्र चल रहा था, तब राज्यपाल अध्यादेश नहीं निकाल सकते। ऐसी स्थिति मे अध्यादेश स्वय ही अवैध हो जाता था।

अध्यक्ष ने गुरूनाम सिह द्वारा उठायी गयी व्यवस्था सबधी आपत्ति स्वीकार कर ली और उन्होने सदन को स्थगित कर दिया और सदन छोड़ कर चले गये। लेकिन सदस्य सदन मे विराजमान रहे और तीव्र कोलाहल और नारेबाजी के बीच उपाध्यक्ष की अध्यक्षता मे सदन का सम्पूर्ण वित्तीय कार्य पूरा हो गया। साथ ही 1968 69 के लिये बजट तथा सम्बद्ध विनियोग विधेयक पास कर दिये गये। इसके साथ ही सदन की बैठक स्थगित कर दी गयी।

राज्य के मुख्यमत्री श्री लक्ष्मन सिह गिल ने दावा किया कि विधान सभा द्वारा बजट पास होने के बाद उत्पन्न सकट समाप्त हो गया जो कि अध्यक्ष द्वारा सदन स्थगित करने के बाद उत्पन्न हो गया था। लेकिन दूसरी ओर अध्यक्ष श्री जोगिन्दर सिह मान ने घोषणा की कि सभा की जिस बैठक मे बजट पास हुआ है वह असवैधानिक और सुनिर्धारित ससदीय प्रक्रिया के विरुद्ध था।[1]

लेकिन केन्द्र मे ससद की जो कि सत्र मे थी, मे गृहमत्री श्री चहवाण ने अपना विचार रखते हुये कहा कि राज्यपाल द्वारा सभा का सत्रावसान करना और अध्यादेश निकालना पूर्णरूप से सविधानिक था। चर्चा के दौरान लोक सभा मे विपक्षी दलो ने माग की कि गिल मत्रिमण्डल को बर्खास्त कर दिया जाय व राज्य मे राष्ट्रपति शासन के अधीन कर दिया जाय जिससे राज्य मे नये चुनाव कराने के लिये मार्ग प्रशस्त हो सके।

20 मार्च 1968 को विपक्षी दल के 20 सदस्यो ने श्री गुरुनाम सिह के नेतृत्व मे राष्ट्रपति से भेट की उन्होने राष्ट्रपति के समक्ष एक ज्ञापन प्रस्तुत किया जिसमे राज्य मे सकट का समाधान करने के लिय अनुच्छेद 356 का आशय ना लेकर अवैध अनुचित और फासिस्ट उपायो का उपयोग करने के लिये राज्यपाल की आलोचना की गयी थी।

सदन द्वारा पास किये गये बजट को चुनौती देते हुये विपक्षी दलो ने राज्य सरकार को कानूनी नोटिस दे दी कि विधिता बजट पास ही नही हुआ है। साथ ही सरकार को चेतावनी भी दी गयी थी कि यदि। 1 अप्रेल के बाद राज कोष से कोई खर्च हुआ तो सरकार के खिलाफ कानूनी कार्यवाही की जायेगी।

हरियाणा उच्च न्यायालय ने सयुक्त मोर्चे के नेताओ की समादेश याचिका विचार हेतु स्वीकार कर ली गयी।

1-राज्य की विधान सभा का सत्रावसान करने वाला राज्यपाल का आदेश।

---

1 श्री मान का दावा था कि जब वे अपने कर्तव्य पालन के लिये उपस्थित थे तो उपाध्यक्ष को वित्तीय विधेयक प्रमाणित करने की शक्ति नही थी। सविधान के अनुच्छेद 199 (4) के अन्तर्गत अध्यक्ष ही वित्तीय विधेयक को प्रमाणित कर सकता है।

2-विनीय कार्य के सम्बन्ध मे पजाब विधान मण्डल (प्रक्रियाअधिनियम) अध्यादेश सन 1968 पजाब विनियोग विधेयक तथा अधिनियम (पजाब बजट) आर राज्य विधान परिषद तथा विधान सभा की 18 मार्च आर 20 मार्च की बेठक असवधानिक था।

उच्च न्यायालय की एक विशेष पीठ ने सर्वसम्मति से निर्णय दिया कि दोना विनियोग अधिनियम सविधान के विरुद्ध थे अत अवध थे। इसके अलावा 13 मार्च का अध्यादेश भी जिसमे सभा के विनीय कार्य का विनियमन किया गया था सविधान के विरुद्ध था।

मुख्य न्यायाधीश ने निर्णय देते हुये कहा कि उध्यक्ष की व्यवस्था अतिम हे आर न्यायालय म उसका प्रतिवाद नही किया जा सकता।

उच्च न्यायालय के निर्णय का तत्कालीन प्रभाव यह हुआ कि राज्य सरकार न तो सरकारी खजाने से खर्च कर सकती थीं ओर नाही कर एकत्रित कर सकती थी।

उच्च न्यायालय के निर्णय के बाद ससद मे विपक्षी दलो ने गिल मत्रिमण्डल को बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लगाये जाने की माग की।

मुख्यमत्री श्री गिल ने उच्चतम न्यायालय मे अपील दायर की। उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द कर दिया। उच्चतम न्यायालय के मत मे राज्यपाल द्वारा सभा का सत्रावसान करना तथा उसके पुन बुलाना सर्वथा उचित तथा विवेक सम्मत कार्य था क्योकि स्थगन से छुटकारा पाने तथा राज्य की विधायी व्यवस्था म फिर से प्राण सचार करने की यही एकमात्र उपाय शेष था। न्यायालय ने अध्यादेश को भी सविधान के अनुच्छेद 209 तथा 213 द्वारा प्राप्त शक्तियो के आधार पर विधिसम्मत ठहराते हुये कहा कि यदि अनुच्छेद 209 के अधीन विधि द्वारा वित्तीय प्रक्रिया के सम्बन्ध म राज्य विधान मण्डल की प्रक्रिया को विनियमित करने का कभी कोई अवसर था तो वह यही था। विधान मण्डल को इस बात का अनुमति नही दी जा सकती थी कि वह दो मास तक स्थगित रहे आर इस बीच मे वित्तीय कार्य रूका रहे तथा सावधानिक व्यवस्था तथा स्वय लोकतन्त्र का ही दम घुट जायगा।"

लेकिन उच्चतम न्यायालय के इस फसले के वाद काग्रस विधान मण्डलीय दल म इस वात को लेकर तीव्र मतभेद वना रहा कि गिल मत्रिमण्डल का समथन जारी रखा जाय अथवा नही।

अतत 20 अगस्त 1968 को निजलिगप्पा ने गिल की अल्पसख्यक सरकार से समर्थन वापस लेने की घोषणा कर दा। क्योकी श्री गिल की जनता पार्टी की सरकार के केवल 20 विधायक ही थे आर वो पूरी तरह काग्रेस विधान मण्डलाय दल क 43 सदस्यो क समथन पर निर्भर थी अत गिल ने 9 माह पुराने मत्रिमण्डल का त्यागपत्र दे दिया। साथ ही राज्यपाल से रा०शा० लागू करने की सिफारिश कर दी। अगस्त 23 को राष्ट्रपति न राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर एक उद्घोषणा निकाली जिसके अनुसार विधानसभा विघटित कर रा०शा० लागू कर दिया गया।

उसी दिन उद्घोषणा ससद के दोनो सदनो के पटल पर रखी गयी लोकसभा ने इस कार्यवाही का 27 अगस्त को और राज्य सभा ने 29 अगस्त को अपना अनुमोदन प्रदान कर दिया। तत्कालिन केन्द्रीय गृह मत्री श्री यशवन्त राव चहवाण ने राज्यसभा मे कहा कि पजाब की राजनीतिक घटनाओ से दो शिक्षाये ग्रहण की जा सकती ह-

1-सयुक्त सरकारे उस समय तक सफल नही हा सकती जव तक कि न्यूनतम राजनीतिक कार्यक्रमो के आधार पर निर्वाचनो से पहले ही समझौते न हो जाय।

2-अल्पसख्यक सरकार चलाने का राजनीतिक प्रयोग विफल हो गया।

ससद मे काग्रेसी व विरोधी दोनो पक्षो के सदस्या ने केन्द्र की इस कार्यवाही का स्वागत किया व गिल मत्रिमण्डल की आलोचना करते हुये कहा कि उनके शासन के दौरान भ्रष्टाचार तथा अन्धेरगर्दी का बोलवाला हो गया था।

एक कम्युनिस्ट सदस्य का कहना था कि "गिल के शासन के दारान डाकुआ, ठगा, गुण्डा, मुनाफाखोरो तथा कालाबाजार करने वालो को खुला मेदान मिला।

लेकिन श्री गिल ने इन सभी आरोपो का खण्डन किया आर कहा कि ये सारे आरोप मनगढन्त आर झूठे है आर उनका लक्ष्य गिल सरकार को वदनाम करना भर था और कुछ नही।

निष्कषत यही कहा जा सकता ह कि काग्रेस ने स्वस्थ गजनतिक परम्पराआ की नीव नही रखी। गिल के दल को जिन्हे विधान सभा मे केवल 18 सदस्या का ही समर्थन प्राप्त था का माका दिया जाना असवेधानिक कार्यवाही थी।

पजाव-1971

पजाब राज्य पाचवी बार राष्ट्रपति शासन के अधीन 1971 म रखा गया[1] जबकि काग्रस समर्थित अकाली दल की श्री प्रकाश सिह बादल की सरकार का पतन हो गया था कारण रहा दल बदल की दूषित राजनीति बादल मत्रिमण्डल के पतन क पूर्व भी जनसघ द्वारा समर्थित श्री गुरूनाम सिह मत्रिमण्डल का पतन हो चुका था।[2] जबकि फरवरी 1969 का हुये मध्यावधि चुनावो मे अकाली दल सबसे बडे दल के रूप म उभर कर सामने आया था। लेकिन कोई भा दल पूर्ण बहुमत प्राप्त करने मे सफल नही हो पाया था। विभिन्न दला की चुनावो के बाद स्थिति इस प्रकार थी—

| | |
|---|---|
| *अकाली दल* | *43* |
| *काग्रेस* | *38* |
| *जनसघ* | *8* |
| *सी पी आई एम* | *2* |
| *एम एस पी* | *2* |
| *जनता पार्टी* | *1* |
| *स्वतन्त्र दल* | *1* |
| *निर्दलीय* | *4* |
| *सी पी आई* | *4* |
| *कुल योग* | *103*[3] |

1 राज्या ओर सघ राज्य क्षेत्रो मे राष्ट्रपति शासन' लोक सभा सचिवालय, नया दिल्ली 1991 पृष्ठ 69

2 दि स्टटसमेन इयर बुक 1970-71

3 कुल स्थान 104 था। एक स्थान उम्मादवार के निधन के कारण चुनाव स्थगित किय जाने क कारण रिक्त था।

अकाली दल व जनसघ निनका की चुनावा के पूव ही गठबन्धन हो चुका था, चुनावा के बाद फरवरी 1979 को अकाली दल के श्री गुरूनाम सिह क नेतृत्व म अकाली दल व जन सघ की मिली जुली सरकार बनी। लेकिन अलग-अलग विचारधारा वाले इन दाना दला म विभिन्न विषयो मे मतभेद बरकरार रहे विशेष रूप से भाषा के प्रश्न पर आपस म गतिरोध बना रहा।

दूसरी तरफ अकाली दल भी आपसी गुटबाजी के कारण राज्य की समस्याआ की ओर पूरा ध्यान दे पाने मे असमर्थ था क्योकि मत्रिमण्डल का अधिकाश समय दाना तरफ समझाता कर समर्थन बनाये रखने मे व्यतीत हो रहा था।

लेकिन इन विरोधाभासो के बावजूद अगस्त 1969 के मध्य तक स्थिति यह थी की। श्री गुरूनाम सिह की सरकार को कोई खतरा नही था क्योकि काग्रेस विधायका द्वारा अपना दल त्याग कर अकाली दल मे मिल जाने के कारण अकाली दल की सदस्य सख्या 53 हो गयी थी। लेकिन अकाली दल के भीतर ही श्री गुरूनाम सिह व जन सघ स छुटकारा पाने की प्रवृत्ति जोर पकड रही थी। [1] इसी बीच 25 मार्च 1970 को गठबन्धन को विधान सभा म हार का सामना करना पडा आर तत्काल बाद जिसके कारण मुख्यमत्री श्री गुरूनाम सिह को त्याग पत्र देना पडा।

इसके तत्काल बाद 27 मार्च 1970 को राज्यपाल ने श्री प्रकाश सिह बादल का मुख्यमत्री पद की शपथ दिलायी। गठबन्धन अपने पुराने रूप म बना रहा केवल नेता बदल दिया गया था। लेकिन जनसघ ने अकाली मत्रिमण्डल का समर्थन जारी रखने की यह शर्त रखी थी कि जालधर मे एक विश्वविद्यालय स्थापित किया जायेगा और शिक्षा सस्थाआ म हिन्दी को भी शिक्षा के माध्यम के रूप मे स्वीकार किया जायगा। लेकिन अकाली दल ने उनकी इस माग को अस्वीकार कर दिया था जिसके कारण जुलाई 1 1970 का जनसघ ने गठबन्धन से हटाने का अहम् फैसला कर लिया था।

जनसघ के हटते ही सरकार अल्पमत मे आ गयी थी साथ ही दल के अन्दर भी असतोष उभरने लगा था। लेकिन 24 जुलाई 1970 को राज्य विधान सभा म बहुमत

1 डिफेक्सन ऑफ पालिटिक्स, सुभाष सी कश्यप पृष्ठ 273 पूर्वोधृत

परीक्षण के समय कांग्रेस पार्टी ने सरकार के समर्थन म मत देकर सरकार गिरने से बचा लिया था। लेकिन कांग्रेस द्वारा सरकार को दिये गये समर्थन के पीछे अकाली दल (सत फतह सिह) व कांग्रेस के बीच समझौता था।[1]

इसी बीच भूतपूर्व मुख्यमत्री श्री गुरूनाम सिह के नेतृत्व म 18 अकाली विधायको न सत फतेह सिह के नेतृत्व के विरुद्ध विद्रोह कर प्रतिद्वन्दी शिरोमणि अकाली दल का गठन किया। इन 18 विधायको मे बादल मत्रिमण्डल के छ सदस्य भी थ।[2]

इन 18 विधायको के दल से हट जाने के बाद विधान सभा म बादल मत्रिमण्डल काग्रस द्वारा समर्थन के बावजूद अल्पमत मे हो गया था। विधान सभा म अकाली दल के केवल 39 विधायक रह गये थे। सदन मे कुल सदस्य सख्या 103 थी।[3]

मुख्यमत्री श्री प्रकाश सिह बादल ने जून 14 को ही अपना इस्तीफा राज्यपाल श्री डी सी पावटे को भेज दिया, साथ ही राज्यपाल से विधान सभा भग करने की भी सिफारिश कर दी।[4]

राज्यपाल श्री पावटे ने मुख्यमत्री की सलाह को स्वीकार करते हुये राज्य विधान सभा विघटित कर दी। साथ ही राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट प्रेषित कर दी जिसमे कहा गया था कि पजाब म सवधानिक तत्र समाप्त हो गया है और प्रकाश सिंह बादल मत्रिमण्डल के त्यागपत्र के बाद कोई भी दल या दलो का गठजोड राज्य मे स्थायी सरकार बनाने की स्थिति मे नही था।[5]

पजाब के भूतपूर्व मुख्यमत्री श्री गुरूनाम सिह ने जिन्होने अकाली दल बनाया था राज्यपाल से मिलकर विधान सभा भग करने का विरोध किया था। क्योकि उनका कहना था कि 17 विधायको द्वारा समर्थन वापस ले लेने और बादल मत्रिमण्डल को अल्पमत मे आ जाने के कारण विधान सभा भग करने की सिफारिश नही स्वीकार की जानी चाहिये थी। इसे राज्यपाल

---

1 प्रसीडेन्ट रूल इन इण्डिया श्री राम महश्वरी पृष्ट 87, पूर्वाधृत

2 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 15 जून 1971

3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, वही

4 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 16 जून 1971

5 'दि टाइम्स ऑफ इण्डिया',17 जून 1971

द्वारा बहुत जल्दी म उठाया गया कदम बताया था। उन्होने राज्यपाल क समक्ष अपनी सरकार बनाने का दावा भी पेश किया था।[1]

लेकिन राज्यपाल श्री डी.सी. पावटे का कथन था कि उन्होने विधान सभा भग करने की घोषणा पर हस्ताक्षर बादल मत्रिमण्डल से समर्थन वापस लेने की घोषणा के एक घण्टे पूर्व ही कर दी थी। मुख्यमत्री श्री बादल ने भी इस आरोप का खण्डन किया था कि उन्होने अल्पमत सरकार के प्रतिनिधि के रूप मे राज्यपाल को सभा विघटित करने की सलाह दी थी वरन यह सलाह देते समय उनकी सरकार को सदन मे पूर्ण बहुमत प्राप्त था।

पजाब म राष्ट्रपति शासन सबधी घोषणा पर हस्ताक्षर 16 जून 1971 को राष्ट्रपति ने कर दिया जिसके सविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य के प्रशासन को लेने की बात कही गयी थी।[2]

## लोक सभा मे प्रस्ताव पेश

16 जून को राज्य मे राष्ट्रपति शासन सबधी प्रस्ताव को राज्यपाल के प्रतिवेदन के साथ लोकसभा म पेश किया गया।[3] तत्कालीन प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाधी ने लोक सभा म कहा था कि राज्यपाल की पजाब विधान सभा भग करने सबधी रिपोर्ट केन्द्र को मिल गयी थी। लेकिन उन्होने सदस्यो के इस व्यक्तव्य की आलोचना की कि राज्यपाल ने सभा विघटित करने से पूर्व केन्द्र को सूचना दी थी। केन्द्र का यह विधारणा थी कि राज्यपाल ने सभा विघटित करने मे जल्दबाजी का परिचय दिया था। राज्यपाल को सभा विघटित करने से पूर्व अन्य राजनीतिक दलो से मत्रणा कर लेना चाहिये था तथापि मत्रिमण्डल की राय इसके विरूद्ध थी कि राज्यपाल द्वारा सम्पादित कार्य को बदल दिया जाय। क्योंकि ऐसा करना सत्तारूढ काग्रेस (अकाली दल के साथ) तथा केन्द्रीय सरकार के मध्य गलत फहमी पैदा कर सकता था।[4]

---

1 वही

2 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 17 जून 1971

3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 16 जून 1971

4 पूर्वाधृत 17 जून 1971

काग्रेस कार्य समीति ने भा राज्यपाल के इस कृत्य की कटु आलोचना की गयी थी। सदम्या न कहा था कि ऐसे मुख्यमत्री की सलाह विधान सभा भग कर राज्यपाल म मविधान की गभीर अवज्ञा की थी।

गाधी ने कहा था कि ऐसी स्थिति जसी कि पजाब म उत्पन्न हो गयी थी राज्यपाल कन्द्रीय सरकार से परमर्श करने के लिये बाध्य नही होता। उसे सविधान की व्यवस्थाओ के अनुसार ही निर्णय करना होता है।

जेसा की सरकारिया रिपोर्ट मे भी इस सबध मे सिफारिश की गयी ह कि यदि राज्य की मत्रिपरिषद राज्यपाल को विधान सभा भग करने की सलाह इस आधार पर दती ह कि वह मतदाताओ से नया आदेश प्राप्त करना चाहती ह तो राज्यपाल को मत्रिपरिषद द्वारा दी गयी सलाह को स्वीकार कर लेना चाहिये, जबकि मत्रिमण्टल को राज्य विधान सभा म स्पष्ट बहुमत प्राप्त हे।[1] इस मामले मे भी जसा की मुख्यमत्री श्री प्रकाश सिह बादल ने यह दावा किया था कि उन्होने सदस्यो द्वारा समर्थन वापस लेन की घोषणा के कुछ घटा पूर्व ही राज्यपाल को सभा भग करने की सलाह दी थी साथ ही राज्यपाल श्री डीसी पावटे ने भी यह स्वीकार किया था कि जब मुख्यमत्री द्वारा सलाह दी गयी थी तव उन्ह बहुमत का समर्थन प्राप्त था।[2]

## राज्यपाल के कृत्य की आलोचना

इस पूरे मामले में राज्यपाल की भूमिका को कडी आलोचना की गयी। पजाब के तत्कालिन विधान सभा अध्यक्ष श्री दरबारा सिंह का कहना था कि राज्यपाल का पजाब विधान सभा भग करने का फेसला सवैधानिक दृष्टि से अनुचित था और राज्यपाल के इस फैसले से राज्य म ससदीय व्यवस्था क्षतिग्रस्त हुयी थी।

---

1 सक रिपोर्ट भाग I 1988 पृष्ठ 125 पैरा 4 ·6 14

2 एसा ही मामला गुजरात मे देखने को मिलता है जहाँ समसामायिक रा विधायको की निष्ठाओ क लगातार बदलते रहने के कारण मुख्यमत्री श्री छितेन्द्र पेसाइ ने राज्यपाल को विधान सभा भग करने की सिफारिश कर दी थी और राज्यपाल ने औचित्य की जाँच कर उसे तत्काल स्वाकार कर लिया था। 14 5 71 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया

काग्रस पार्टी के ही श्री शकर दयाल शर्मा का कहना था कि राज्यपाल द्वारा वैकल्पिक सरकार की सम्भावना पर विचार किये बिना ही सभा भग करने का फसला अनुचित था। यह पहला अवसर था जबकि राज्यपाल के निर्णय पर राष्ट्रपति ने राज्य का प्रशासन अपने हाथ म लिया। सामान्यत राज्यपाल ऐसा निर्णय राष्ट्रपति (व्यवहार मे केन्द्रीय मत्रिमण्डल के) के परामर्श पर ही करता ह। यदि राज्यपालो ने इस प्रकार के स्वेच्छाचारी निर्णय लेना शुरू किया तो केन्द्र व राज्यो के मध्य टकराव की सम्भावना अधिक हो जायेगी।[1]

केन्द्र सरकार की इस चाल की झलक पजाब काग्रेस के महामत्री श्री हसराज शर्मा के इस व्यक्तव्य म मिलता है जिसम कहा गया था कि बादल मत्रिमण्डल को अपदस्थ करन के लिय काग्रेस, जनसघ आर कम्युनिस्टो म समझाता हो गया था। बादल न काग्रेस से समर्थन माँगा था, लेकिन काग्रेस पार्टी के ससदीय बोर्ड ने अकाली दल सरकार को अपदस्थ करने की मशा जाहिर की थी।

उनका यह कथन राज्यपाल की भूमिका को भी विवादास्पद बना देता ह कि क्या वास्तव म राज्यपाल ने केन्द्र के ऐजेण्ट की भूमिका का निर्वाह किया था या अपने सवधानिक प्रमुख की भूमिका अदा की थी[2]

राज्यपाल श्री डीसी पावटे ने विभिन्न राजनीतिक दलो द्वारा की जा रही आलोचना को देखते हुये राष्ट्रपति को इस सबध मे एक रिपोर्ट प्रेषित की थी जिसमे कहा गया था कि यदि वे ऐसा पक्ष नही ग्रहण करते तो इससे स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओ के माग म रूकावट आती है।रिपोर्ट मे आगे कहा गया था कि राज्य मे ढुल-मुल नीति के कुछ ऐसे विधायक थे जो प्रत्येक राजनीतिक दल के लिये सुलभ थे। ओर ऐसी स्थिति के कारण सादेबाजी का द्वारा सदेव खुला हुआ था। निश्चय ही ऐसी स्थिति स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओ के माग म बाधा डालने वाली थी आर राज्य की जनता को स्वच्छ प्रशासन नहीं मिल पाता। राज्य के मुख्यमत्री ने इस सभी स्थितियो को देखते हुये राज्य मे नये सिर से चुनाव कराने की सिफारिश की थी जिस पर पूर्व अनुभवो को दृष्टि में रखते हुये

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 15 जून 1971 ऐसा विचार मध्य प्रदेश के तत्कालिन मुख्यमंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल ने व्यक्त किया था

2 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 14 जून 1971

विचार किया आर अन्तत वे इम निष्कर्ष पर पहुचे कि राज्य विधान सभा का भग कर देना ही राज्य के हित म था।[1]

इस पूरे मामल का निष्पक्ष विश्लेषण करने पर यह बात निश्चित तौर पर कही जा सकती ह कि राज्यपाल की भूमिका निश्चित रूप से असवधानिक नही थी। क्योकि राज्य मे लगातार दल बदल के कारण अनिश्चय का वातावरण बना हुआ था। इस समय राज्यपाल ने मुख्यमत्री की सलाह के अनुसार कार्यवाही न की होती तो निश्चित रूप से राज्य के लिय हानिकारक होती क्योकि मुख्यमत्री श्री प्रकाश सिह बादल ने स्वय ही अपन मत्रिमण्डल का त्यागपत्र दे दिया था और त्याग पत्र देते समय उनका सदन मे बहुमत था। अत इस सम्बन्ध मे जसा की सरकारिया आयोग का भी विचार ह कि "जब तक मत्रिपरिषद का विधान सभा का विश्वास प्राप्त ह। राज्यपाल के लिये सभी मामला म उसकी सलाह मानना जब तक वह स्पष्टतया असवैधानिक न हो बाध्यकारी माना जायेगा।[2]

पजाब को पुन राष्ट्रपति शासन के अधीन अप्रेल 1977 का लाया गया जबकि मार्च 1977 के लोक सभा चुनावो के बाद जनता पार्टी सत्ता मे आयी। भारतीय प्रजातत्र के इतिहास म यह पहली बार हुआ था कि काग्रेस के अलावा कोई दूसरा दल केन्द्र म सत्तारूढ हुआ था। काग्रस शासित अनेक राज्यो मे जनता पार्टी को अभूतपूर्व सफलता मिली आर इन राज्यो म काग्रस का पूर्ण रूप से सफाया हो गया था इन नौ राज्यो मे पजाब भी सम्मलित था जहाँ पर काग्रेस को एक भी स्थान नही मिल पाया था।[3]

केन्द्रीय गृह मत्री श्री चरण सिह ने इन राज्यो के मुख्यमत्रिया को नैतिकता के आधार पर राज्यपाल को सभा भग करने का सुझाव, देने को कहा जिससे इन राज्या मे चुनावो के लिये मार्ग प्रशस्त हो सके लेकिन इन राज्य सरकारो ने उच्चतम न्यायालय मे केन्द्र के विरुद्ध याचिका दायर कर दी। न्यायालय के फैसले के तुरन्त बाद ही इन सभी राज्या के साथ पजाब मे भी राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया क्योकि केन्द्र सरकार ने महसूस किया था कि राज्य सरकार

1 वही 17 जून 1971

2 सरकारिया रिपोर्ट पैरा 4 11 17 पृष्ठ 119 भाग I

3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 2 मई 1977

म निवाचका का विश्वास समाप्त हो गग ह अत विधान सभा भग कर नया मनादेश प्राप्त करना ही एक मात्र विकल्प ह।[1]

इस प्रकार मार्च 1972 मे हुय आम चुनावो के वाद गठित काग्रेस पार्टी की पूर्ण वहुमत वाली मरकार का पतन हो गया।

अप्रल 1977 म लगाये गये राष्ट्रपति शासन की समाप्ति जन 1977 म हुयी जबकि राज्य विधान सभा चुनावा क बाद श्री प्रकाश सिह वादल के नेतृत्व म अकाला जनता सरकार न राज्य म पद भार के नेतृत्व मे अकाली जनता सरकार ने राज्य म पद भार सभाला।

1980 मे पुन 1977 वाली ही स्थिति उत्पन्न हो गयी जबकि सातवी लोक सभा चुनावा के बाद काग्रेस (ई) को भारी बहुमत प्राप्त हुआ आर फलस्वरूप सघ स्तर पर जनता सरकार के स्थान पर काग्रेस की सरकार बनी और जिन आधारो पर 1977 म काग्रेस शासित सरकारा को ना राज्या मे हटाया गया था उसी की पुनरावृत्ति करते हुये 1980 म भी इन राज्य सरकारा को बर्खास्त कर दिया गया।[2]

आर केन्द्र के इस निर्णय के कारण श्री प्रकाश सिह वादल क नेतृत्व वाली अकाली दल सरकार को बर्खास्त कर दिया गया और राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। ऐसा विना राज्यपाल की रिपोर्ट के किया गया था।

भग विधान सभा 1 मई 1980 मे पुन बहाल हुयी जव राज्य विधान सभा चुनावा के पश्चात श्री दरबारा सिह क नेतृत्व वाली काग्रेस (ई) की सरकार ने पद भार सभाला।[3]

**पजाब मे पुन राष्ट्रपति शासन 1983 व 1987 मे लगाना पडा** क्योकि उग्रवादी गतिविधियो के कारण राज्य का प्रशासन बुरी तरह प्रभावित हुआ था। इन दानो ही अवसरा पर लोकप्रिय सरकारो को भग करने का कारण था राज्य मे निरन्तर बढ़ रही उग्रवादी गतिविधिया को समाप्त करना जिसके कारण सामान्य जन जीवन अस्तव्यस्त हो गया था।

---

1 इस मामल का पूरा विवरण आगे के अध्याय-पॉच म दिया गया ह।

2 दि स्टटस मन'—15-3-80

3 दि हिन्दुस्तान टाइम्स' 8-6-80 इस मामले का विस्तृत विवरण अध्याय पॉच म देखे

1983 म जबकि कांग्रेसी मुख्यमंत्री श्री दरबारा सिह ने स्वय त्याग पत्र दे दिया था लेकिन 1987 म मुख्यमंत्री श्री सुरजीत सिह बरनाला के नेतृत्व वाली अकाली सरकार को बर्खास्त किया गया था।

1983 के मामले मे मुख्यमंत्री श्री दरबारा सिह ने त्याग पत्र द दिया था जबकि सत्तारूढ काग्रेसी दल का सदन मे पूर्ण बहुमत था लेकिन उन्होने राज्य म अकाली द्वारा चलाय जा रहे आन्दोलन के व्यापक रूप ग्रहण कर लेने के कारण दिया था।

मुख्यमंत्री ने राज्यपाल श्री एपी शर्मा से राज्य मे अस्थायी अवधि के लिये सघ के हस्तक्षेप का अनुरोध किया था।

राज्यपाल द्वारा भेजी गयी रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात केन्द्र ने तत्काल राज्य म राष्ट्रपति शासन की घोषणा कर दी थी। राज्य मे उग्रवादियो के बढते हौसले को देखते हुये केन्द्र का फसला उचित था।

राज्य मे उग्रवादी गतिविधियो के बढने का कारण था राज्य पुलिस का उग्रवादियो को सरक्षण दिया जाना जिसके कारण उग्रवादी बडे पैमाने पर अपनी हिंसक गतिविधियो का सचालन कर रहे थे।

लेकिन विधान सभा भग ना कर निलम्वित रखी गयी थी ताकि सामान्य स्थिति बहाल होते ही पुन सरकार कायम की जा सके।

केन्द्र के इस कदम का जहाँ एक ओर सभी विपक्षी दलो ने स्वागत किया लेकिन दूसरी ओर अकाली दल ने इसका विरोध किया। अकाली दल के नेता श्री हरचन्द्र सिह लोंगवाल ने इसे पजाब मे आपातकाल की सज्ञा दी क्योकि पजाब व चण्डीगढ़ को अशात क्षेत्र घोषित कर दिया गया था। यह पूर्णत अलोकतांत्रिक निर्णय था।

लेकिन वास्तव मे सविधान को अनुच्छेद 356 का उपबन्ध ऐसी ही परिस्थितियो म निपटने के लिये किया गया हे ताकि राज्य की कानून व व्यवस्था की स्थिति पुन बहाल की जा सके। 1981 के बाद से ही राज्य मे खालिस्तान राज्य की माग को लेकर अकालियो द्वारा लगातार पृथकवादी आदोलन चलाया जा रहा था जिसे भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान द्वारा पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जा रहा था। वास्तव मे राज्य मे इस प्रकार

की स्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थी जिसको रोकने के लिये केन्द्र का हस्तक्षेप अत्यन्त आवश्यक था।

पजाव मे पुन 1987 मे ऐसी ही परिस्थितियो मे राष्ट्रपति शासन लगाया गया था जबकि राज्य के कुछ मत्री उग्रवादी तत्वो से मिल गय थ जिसके कारण हस्तक्षेप क राज्य पुलिस को उग्रवादी तत्वो से कड़ाई से निपटने म कठिनाइ का सामना करना पड़ रहा था। सरकार द्वारा कारगर कार्यवाही नही किये जाने के कारण उग्रवादियो के हासले इतन बढ़ गये थे कि उनके द्वारा राज्य मे सामानान्तर सरकार चलायी जा रहा थी। इनकी आतकवादी गतिविधियाँ इस हद तक बढ़ गयी थी कि यह पता ही नहीं चलता था कि राज्य मे चुनी हुयी सवैधानिक सरकार कार्यरत है।

यद्यपि 1985 को राज्य विधान सभा के लिये कराये गय चुनावो म अकालीदल न बहुमत प्राप्त कर सरकार का गठन किया था लेकिन राज्य मत्रिपरिषद मे अनेक ऐसे मत्री शामिल किये गये थे जिनके खिलाफ गम्भीर अपराधिक आरोप थे। बरनाला सरकार उनके खिलाफ कार्यवाही करने मे सदैव ढील बरतती थी जो उनके पतन का कारण बना था। यद्यपि मुख्यमत्री ने राज्यपाल श्री सिद्धार्थ शकर राय पर पक्षपात का आरोप लगाया था लेकिन राज्य मे जिस प्रकार आये दिन निर्दोष लोगो की हत्याय हो रही थीं, हिन्दुओ का भय के कारण पलायन हो रहा था उसको देखते हुये केन्द्र की इस कार्यवाही को अनुचित नही कहा जा सकता। ऐसी स्तिथि मे अनुच्छेद 356 के प्रयोग को उचित कहा जा सकता है जबकि यदि राज्य सरकार जिसे बहुमत का पूर्ण समर्थन प्राप्त हो यदि आन्तरिक उपद्रव की स्थिति पर कार्यवाही करने के लिये अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन करने से इनकार कर देती जबकि राज्य की सुरक्षा खतरे मे पड गयी हो जसा की पजाब म हो गया था।

# उत्तर प्रदेश–1968

भारतीय राजनीति का स्नायु केन्द्र[1] उत्तर प्रदेश हमेशा से ही राजनीतिक गुटबन्दी का शिकार रहा है।1967 से पूर्व तक प्रदेश में कांग्रेस को छोडकर कोई अन्य दल प्रभावी नहीं रहा। 1967 के चुनावो के बाद से जो भी दल बने, वे असंतुष्ट कांग्रेसियों द्वारा ही निर्मित किये गये थे।

कांग्रेस स्पष्ट रूप से दो दलो मे विभक्त हो गयी थी मंत्रिमण्डलीय गुट व असंतुष्ट कांग्रेसियो का गुट। दोनो ही गुटो का मुख्य लक्ष्य शासन तंत्र तथा दल संगठन पर कब्जा करना था। गुटबन्दी पर आधारित राजनीति के बावजूद कांग्रेस का सत्ता मे बने रहने का मुख्य कारण था, किसी सशक्त विरोधी दल का अभाव।उत्तर प्रदेश में कांग्रेस का जनाधार मुख्यत मुस्लिम रहे है, जिसके कारण 1967 के चुनावो मे 425 स्थानो में से 198 स्थान अर्जित किये थे। लेकिन एक अन्य सशक्त मुस्लिम संगठन के कांग्रेस के विरोध में मत देने के कारण कांग्रेस के मतो मे कमी आयी थी। जिसने ससोपा, स्वतन्त्र दल और असंतुष्ट कांग्रेसी उम्मीदवारो मे अपना समर्थन व्यक्त किया था।

इसके अलावा कांग्रेस की सीटो मे कमी का कारण था, कांग्रेसी नेताओं का अर्न्तकलह। पार्टी के अन्दर मुख्यमंत्री पद की दौड़ मे दो व्यक्ति शामिल थे श्री कमला पति त्रिपाठी और श्री चन्द्र भानू गुप्त। दोनो ने ही विरोधियो से पृथक पृथक समझौते द्वारा यह निश्चित कर रखा था जिससे एक दूसरे की शक्ति को कम किया जा सके। चूँकि कांग्रेस पार्टी को पूर्ण बहुमत नहीं प्राप्त हुआ था अत विरोधी दलो द्वारा सरकार बनाने के लिये गठजोड़ के प्रयास होने लगे थे। 1967 के चुनावो के बाद विभिन्न दलो की स्थिति इस प्रकार थी-

1 दि पॉलिटिक्स ऑफ डिफेन्स–ए स्टडी ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया, पृष्ठ 130, सुभाष सी कश्यप प्रकासित दि इन्सटीट्यूट ऑफ कान्सटीट्यूशन एण्ड पारियामेन्टरी स्टडीज (नयी दिल्ली)

| | | |
|---|---|---|
| *काग्रेस* | - | *198* |
| *जन सघ* | - | *97* |
| *ससोपा* | - | *44* |
| *स्वतन्त्र* | - | *12* |
| *साम्यवादी दल* | - | *14* |
| *रिपब्लिकन* | - | *9* |
| *पी एस पी* | - | *11* |
| *सी पी आई एम* | - | *1* |
| *निर्दलीय* | - | *37* |
| *कुल* | | *425*[1] |

काग्रेस पार्टी जो राज्य मे सबसे बडा दल था, ने प्रत्यक्ष तोर पर सरकार बनाने की कोई पहल नही की थी। लेकिन परदे के पीछे निर्दलीय उम्मीदवारो के समर्थन के प्रयास किये जा रहे थे।[2] दूसरी तरफ जन सघ तथा ससोपा ने भी सरकार बनाने के लिये तीन विकल्पो पर विचार किया-

1- जनसघ सरकार का निर्माण करे तथा सभी गैर काग्रेसी दल उसका समर्थन करे।

2- ससोपा सरकार का निर्माण करे तथा अन्य दल बाहर से उसका समर्थन करे।

3- सभी दलो की एक ऐसी मिली जुली सरकार बने, जिसका नेता कोई ऐसा सर्वसम्मत व्यक्ति हो जो सभी को स्वीकार हो।

लेकिन दोनो दल अतत किसी भी विकल्प पर सहमत नही हो पाये।

इसी बीच पूर्व विधान सभा मे विरोधी पक्ष के नेता श्री कमलापति त्रिपाठी ने भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति तथा निर्वाचन आयुक्त को तार भेजकर नये सदन के तुरत गठन किये जाने के सबध मे हस्तक्षेप की मॉग की। उन्होने आशका व्यक्त की कि यदि नये सदन के गठन मे यदि और अधिक विलम्ब किया गया तो इसके गम्भीर राजनैतिक परिणाम हो सकते थे। उन्होंने

1 दल बदल और राज्यो की राजनीति-सुभाष सी कश्यप पृष्ठ-164 मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ 1970

2 वास्तव मे ऐसे सदस्यो की सख्या 17 थी जो की निर्दलीय सदस्यो के रूप मे अथवा अन्य दलो के टिकटो पर निर्वाचित हुये थे लेकिन वे सभी काग्रेसी थे। सुभाष सी कश्यप पूर्वाधृत पृष्ठ 146

गन्यपाल स भी इस बात की शिकायत की कि काग्रेस राज्य म अपना समर्थन बटाने के लिये निर्दलीय उम्मीदवारो की खरीद फरोख्त कर रहा ह।

इधर घटनाचक्र तेजी से घूम रहा था। काग्रेस दल के नता श्री चरण सिह भी मुख्यमत्री पद की दाड मे शामिल हो गये थे। काग्रेस ने अतत श्री सीबी गुप्ता को काग्रेस विधायक दल का नेता चुना। मुख्यमत्री पद के दोड मे शामिल चाधरी चरण सिह ने उन्ह अपना पूण समर्थन देना स्वीकार किया था। श्री गुप्त ने राज्यपाल के समक्ष 200 विधायको की सूची पश की। 23 अन्य उम्मीदवारो ने भी काग्रेस को अपना समर्थन देने का घोषण की।

दूसरी तरफ सयुक्त विधायक दल के श्री राम प्रसाद विकल ने भी राज्यपाल के सम्मुख 215 विधायको की सूची पेश की।

दोनो ही दल एक दूसरे पर विधायको को डराने धमकाने तथा अन्य हथकण्डो को अपनान का आरोप लगा रहे थे। सविद के नेता श्री विकल राज्यपाल पर विलम्ब करने का आरोप लगा रहे थे, जिससे काग्रेस के विधायको पर अनुचित दबाव डालने का समय मिल सके। ससोपा के ससद सदस्य ने राज्यपाल को चेतावनी दी थी कि यदि निर्वाचको की इच्छा के विरुद्ध काग्रेस को सरकार बनाने के लिए आमत्रित किया गया तो इसके गम्भीर राजनैतिक परिणाम होग। उन्होन चेतावनी दी कि वे राजस्थान के राज्यपाल द्वारा की गयी भूलो को पुन ना दोहराये।[1]

एक सप्ताह तक राज्यपाल ने दोनो ही पक्षो के नेताओ और विधायको द्वारा बात चीत कर वास्तविक बहुमत जानने का प्रयत्न किया, क्योकि कुछ सदस्यो के नाम दोनो की ही सूचियो मे अकित थे। इस प्रकार की पड़ताल के बाद राज्यपाल ने काग्रेस दल को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया। यद्यपि सविद ने राज्यपाल के निर्णय को पक्षपात पूण बताया था लेकिन राज्यपाल का निर्णय उचित था, क्योकि काग्रेस पार्टी 198 सदस्यो के साथ सबसे बडी पार्टी थी और 22 अन्य सदस्यो का उसे स्पष्ट समर्थन प्राप्त था।

---

1 राजस्थान म 1967 म राज्यपाल सम्पूर्णानन्द ने काग्रेस पार्टी के श्री मोहनलाल सुखाड़िया को सबस बड़ दल क सिद्धान्त के आधार पर सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया था जबकि काग्रस पार्टी को 184 सदस्यीय सदन म 89 स्थान ही प्राप्त हुये थ। अन्य दलो की स्थिति इस प्रकार थी-स्वतन्त्र-48, जनसघ-22 सीपीआई-1, निर्दलीय-16 ये सभी दल। इन सभी दलो न मिलकर राज्यपाल के समक्ष सरकार बनाने का दावा पेश किया था लकिन राज्यपाल ने इनकार कर दिया था—दि हिन्दू 10 अप्रैल, 1967

इस प्रकार सविद के 215 विधायक से उसके पॉच सदस्य अधिक थ, काग्रसी सरकार आपसी गुटवन्दी की शिकार हो जाने के फलस्वरूप केवल 18 दिन तक ही मत्ता मे बनी रह सकी।

श्री झारखण्ड राय ने राज्यपाल के अभिभाषण के धन्यवाद प्रस्ताव पर एक सशोधन प्रस्तुत किया जो 123 के मुकाबले 215 मतो से पास किया जो 123 के मुकावले 215 मतो से पास हा गया। उसी समय अचानक हा काग्रेस के नेता श्री चरण सिह न काग्रेस के भीतर ही नय दल जन काग्रेस के निर्माण की घोषणा की इसके तत्काल बाद ही विरोधी दल मे सम्मलित हो गये। सदन म हुयी हार के परिणामस्वरूप श्री गुप्त ने अपना त्याग पत्र राज्यपाल को साप दिया।

सविद ने श्री चरण सिह को अपना नेता चुना आर 3 अप्रल को उन्हाने अपने पद की शपथ ग्रहण की। सत्ता म आते ही सरकार ने अपनी प्राथमिकताओ को गिनाते हुय कहा कि सरकार शोषित लोगो का जीवन स्तर उठाने का प्रयास करगी जिसके लिय दा वाता पर विशष ध्यान दिया जायेगा—

1- खाद्यान वितरण।

2- प्रशासन मे लोगो का विश्वास पैदा करना। लेकिन इन सभी कार्यक्रमा को क्रियान्वित करने से पहले ही सविद मे दरार पड़नी शुरू हो गयी।

जन काग्रेस के 12 सदस्य पुन काग्रेस मे सम्मलित हो गये थे साथ ही 23 अन्य विधायको मे भी पद प्राप्ति के लिये खीचातानी मची हुयी था। सविद के घटक साम्यवादी व जनसघ ने सरकार की कई नीतियो के प्रति अपना विरोध प्रकट किया था, जिसमे प्रमुख थी-किसानो से सीधे अन्न खरीदने की नीति। उत्तर प्रदेश की स्थिति हरियाणा के समान हो गयी थी जहाँ विधायको द्वारा लगातार दल बदल किया जा रहा था। इसी बीच 2 जुलाई 1967 को विधान परिषद के चुनावो मे सविद सरकार के एक मत्री को हार का सामना करना पडा। काग्रेस पार्टी ने पराजय को मत्रिमण्डल क प्रति अविश्वास का सूचक बताते हुये त्याग पत्र देने की माग की जो ठुकरा दी गयी।

इसी बीच 27 जुलाई को लाया गया एक अविश्वास प्रस्ताव 20 मतो से गिर गया। लेकिन अविश्वास प्रस्ताव से यह स्पष्ट लक्षित हो गया था कि सरकार का अधिक दिनों तक बने

रहना असभव था, क्योकि सविद के विभिन्न घटको द्वारा अपनी-अपनी मागा को मनवाने के लिय मुख्यमत्री पर लगातार दबाव डाला जा रहा था। इन सभी दबावो को देखते हुये श्री चरण सिह न 1 फरवरी को अपना त्याग पत्र राज्यपाल को भेज दिया। उन्होंने राज्यपाल के विधान सभा भग करने की सलाह दी जिससे राज्य मे चुनावो के लिये मार्ग प्रशस्त हो सके।

लेकिन राज्यपाल ने श्री चरण सिह को विधान सभा भग करने की सलाह को अस्वीकार कर दिया आर राष्ट्रपति को भेजे गये अपने प्रतिवेदन म राज्यपाल राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने की सस्तुति की लेकिन विधान सभा को केवल निलम्बित रखने की सिफारिश की ,जिससे विभिन्न दलो के विधायको की आपसी समझ के बाद निकट भविष्य म सरकार बनाने का मार्ग प्रशस्त हो सके।

राज्यपाल द्वारा राज्य विधान सभा को भग ना करने का फसला कदापि उचित नही था जसा की मुख्यमत्री चाधरी चरण सिह ने सिफारिश भी की थी, क्याकि राज्य की तत्कालीन परिस्थितिया ऐसी नही थी जहाँ पुन लोकप्रिय सरकार का निर्माण किया जा सक क्याकि पहल काग्रेस व उसके बाद अन्य दलो के गठबन्धन से बनी सरकारे क्षणिक जावित हुयी थी। अत पुन श्री रामचन्द्र विकल को मुख्यमत्री पद के लिये आमत्रित करना उचित नही था।

लेकिन विधान सभा को निलम्बित रखकर उन्होने राज्य म केवल दल बदल को ही प्रोत्साहन दिया था। राज्यपाल ने राष्ट्रपति को भेजे गये अपने प्रतिवेदन द्वारा केन्द्र को यह सूचित किया था कि कुछ समय के लिये विधान सभा निलम्बित कर दी जाये। जिससे राजनीतिक शक्तिया का ध्रुवीकरण हो सके जिसके फलस्वरूप निकट भविष्य म सुदृट सरकार की स्थापना सम्भव हो सके। राज्यपाल का विचार था कि इससे एक अन्य आम चुनाव की अशाति, व्यय आर विकर्षण से बचाव हो सकता था। वास्तव म विधान सभा निलम्बित रखने का फैसला राज्यपाल द्वारा केन्द्र के इशारे पर किया गया था ताकि काग्रेस कुछ समय के अन्तराल के पश्चात सरकार बनाने की स्थिति मे आ जाये।

लेकिन राज्यपाल का फैसला भी काग्रेस को सत्तारूढ कराने म कामयाब नहीं हो सका। 18 मार्च को मतभेदो के बावजूद सविद ने श्री हरिशचन्द्र सिह को अपना नया नेता चुना। 3 अप्रल को श्री सिह ने राज्यपाल के सम्मुख 229 सदस्यो की सूची पेश की जो उनको समर्थन द रह थे। राज्यपाल ने उनसे कहा कि उन्होने समर्थन की जो सूची पश की ह उसम से 18 सदस्या ने व्यक्तिगत तार पर उनसे मिलकर सविद से अपना समर्थन वापस लेने की बात कही

ह श्री सिह ने राज्यपाल से उन सदस्यो का नाम बताने का आग्रह किया लेकिन राज्यपाल ने ऐसा करने म इनकार कर दिया। उन्होने राज्यपाल से कहा कि बहुमत जॉचने का उपर्यक्त स्थल सदन होता ह। अत उन्हे अपना बहुमत सिद्ध करने का मौका दिया जाना चाहिये।

10 अप्रल तक राज्य म सविधानिक सकट तथा राजनीतिक अनिश्चय का वातावरण बना रहा। अतत 10 अप्रल को राज्यपाल ने सस्तुति की कि विधान सभा का विघटन कर दिया जाय जिससे नये निर्वाचन कराये जा सके। उन्होने इस बात पर खेद प्रकट किया था कि उनकी आशानुसार राज्य म राजनीतिक शक्तियो का ध्रुवीकरण नही हो सका। राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट म कहा था कि सविद नेता ने उनके सम्मुख ऐसा कोई साक्ष्य नही प्रस्तुत किया था जिससे वे उसकी इस बात से सतुष्ट हो सके कि उसे विधान सभा मे पूर्ण बहुमत प्राप्त ह। अत राजनीतिक अनिश्चितता बनी हुयी थी।

राष्ट्रपति ने राज्यपाल की सस्तुति तथा केन्द्रीय मत्रिमण्डल की सलाह पर 15 अप्रल को उद्घोषणा जारी की जिससे राज्य विधान सभा का विघटन हो गया तथा राज्य विधान सभा की सभी शक्तियो को राष्ट्रपति ने स्वय अपने हाथो मे ले लिया।

अनेक गैर काग्रेसी नेताओ ने विधान सभा विघटित कर मध्यावधि चुनाव कराये जाने की तीव्र आलोचना की। उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व उप मुख्यमत्री श्री राम प्रकाश (जन सघ) ने इस निर्णय को एक अपवित्र षडयन्त्र की सज्ञा दी जिसका लक्षय चोरी स कागस को सत्तारूढ कराना था।

## राज्यपाल की भूमिका

सविधान निर्माताओ ने राज्यपाल के पद का सृजन करते समय एक ऐसे सावैधानिक प्रमुख की कल्पना की थी जो राज्य के मुखिया का निष्पक्ष तथा ईमानदार छवि वाली भूमिका का निर्वाह कर सके न की केन्द्र की एजेन्ट की भूमिका अदा करे। इस पूरे मामले म राज्यपाल की भूमिका बहुत सदिग्ध रही। यद्यपि यह ठीक था कि कोई भी दल राज्य मे स्थिर सरकार बनाने की स्थिति मे नही था, लेकिन राज्यपाल द्वारा पहले मुख्यमत्री की सलाह को अस्वीकार कर विधान सभा भग ना करने का फसला ही दोषपूर्ण था क्योकि राज्यपाल उन सभी मामलो मे मत्रिपरिषद की सलाह मानने को बाध्य है जो असवैधानिक ना हो, जिसे राज्य विधान सभा मे बहुमत का समर्थन प्राप्त हो, लेकिन राज्यपाल

न अपन इस सवधानिक दायित्व को नही निभाया, वरन् निलम्बन की सिफारिश कर राजनतिक दल वदलुआ को अलोकतात्रिक तरीके अपनाकर सत्ता मे आने की छूट दे दी, जो की सनाम्ट काग्रेस के इशारे पर किया था। जिससे भारतीय राजनतिक इतिहास मे लोकतत्र की छाया का एक आर अध्याय जुड गया। सयुक्त विधायक दल क नता श्री राम प्रसाद विकल ने राज्यपाल की कार्यवाही को काग्रेस द्वारा पिछले दरवाजे से रचा गया अपवित्र राजनतिक षडयन्त्र बताया।

## उत्तर प्रदेश -1970

इस प्रकार 25 फरवरी, 1968 को लगाये गये राष्ट्रपति शासन की समाप्ति फरवरी, 1969 को हुयी जवकि राज्य विधान सभा के चुनावा के बाद काग्रेस दल सबसे बडे दल क रूप म उभर कर आयी यद्यपि किसी दल को पूर्ण वहुमत नहीं प्राप्त हुआ था। राज्य विधान सभा मे विभिन्न दलो की स्थिति इस प्रकार थी-

| *दल का नाम* | *प्राप्त स्थान* |
|---|---|
| *काग्रस* | *211*[1] |
| *जन सघ* | *49* |
| *ससोपा* | *33* |
| *साम्यवादी दल* | *4* |
| *स्वतन्त्र दल* | *5* |
| *प्रसोपा* | *3* |
| *रिपब्लिकन* | *1* |
| *साम्यवादी (मार्क्स)* | *1* |
| *भारतीय क्राति दल* | *90* |
| *निर्दलीय तथा अन्य* | *19* |
| *कुल स्थान* | *425*[2] |

1 ४२३ क प्रभावी सदन मे 'काग्रेस की सार्थक सदस्य सख्या 209 हा थी क्याकि श्री सी बी गुप्ता दो निर्वाचन क्षेत्रो से विजयी हुये थे और एक सदस्य की मृत्यु हो गयी थी। दि पालिटिक्स ऑफ डिफेक्शन-एस सी कश्यप पूर्वोधृत।

25 फरवरी, 1969 को राज्यपाल श्री गोपाल रेड्डी ने सबसे बड दल के सिद्धान्त क आधार पर कांग्रेस दल के नेता श्री सीबी गुप्त को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया।

लेकिन सरकार के पदारूढ होते ही राज्य मे दल बदल की राजनीति का खेल फिर से शुरू हो गया था, जब जनसघ के एक सदस्य ने अपना दल त्याग कर कांग्रेस का समर्थन किया तो विपक्ष ने कांग्रेस पर दल-बदल कराने का आरोप लगाया। श्री चरण सिंह जो कि भारतीय क्रांति दल के नेता थे, राज्य में सरकार बनाने के प्रयास मे पुन नये सिरे से सक्रिय हो गये थे।

दूसरी तरफ कांग्रेस के अदर भी श्री गुप्त और श्री त्रिपाठी के गुटो मे पुरानी रगड़ पुन उभर कर सामने आयी थी। लेकिन इसके बावजूद कांग्रेस सरकार चल रही थी कारण था विपक्षी दल काफी बिखरे हुये थे। जिनकी निकट भविष्य मे एक साथ मिलकर काम करने की आशा काफी कम थी तथा दूसरी यह कि कांग्रेस के दोनो गुट इस वास्तविकता से भली भाति परिचित थे कि यदि उनके आपसी सघर्ष ज्यादा उभरे तो दोनो ही गुटो से सत्ता छिन जायेगी लेकिन अतत एक साल बाद कांग्रेस दो धड़ो मे विभाजित हो गयी थी और अल्पसख्यक मुख्यमंत्री श्री सीबी गुप्ता ने त्याग पत्र दे दिया।

राज्य मे कांग्रेस सरकार के पतन के बाद भारतीय क्रांति दल के श्री चरण सिंह ने कांग्रेस (आई) के सहयोग से 17 फरवरी, 1970 को राज्य मे सरकार का निर्माण किया। लेकिन साथ ही दोनो दलो के बीच मे पुन मतभेद उभर कर सामने आने लगे और गठबन्धन की सरकार का बने रहना मुश्किल हो गया। दोनो दलो के मध्य मुख्य नीतियो को लेकर गहरा मतभेद था। सितम्बर, 1970 को श्री कमलापति त्रिपाठी जो कि कांग्रेस (आई) के अध्यक्ष थे, ने विधायको को आज्ञा प्रदान कर दी। कांग्रेस (आई) का गठबन्धन से अपना समर्थन वापस करने का कारण भारतीय क्रांति दल द्वारा लोकसभा मे प्रिवीपर्स के प्रस्ताव पर विपक्ष मे मत देना था जिसके कारण श्रीमती इदिरा गाधी को इस मुद्दे पर काफी दिक्कतो का सामना करना पडा था।

---

6. दि टाइम्स ऑफ इंडिया 11 फरवरी, 1969 (दिल्ली)

उसके तत्काल बाद ही श्रीमती गाधी ने काग्रेस के प्रदेश अध्यक्ष श्री कमलापति त्रिपाठी को समर्थन वापस लेने का निर्देश दिया था।

प्रतिक्रिया स्वरूप मुख्यमत्री श्री चरण सिह ने काग्रेसी मत्रियो को बर्खास्त करने की सलाह राज्यपाल को दी, जिसको राज्यपाल से स्वीकार नही किया। राज्यपाल द्वारा मुख्यमत्री की सलाह मानने से इनकार कर देने के कारण राज्य म सवधानिक विवाद उत्पन्न हो गया था।

राज्यपाल द्वारा उनकी सलाह मानने स इनकार करने पर मुख्यमत्रीने 27 सितम्बर, 1970 को एक पत्र लिखा जो उत्तर प्रदेश के रूल न 3 के अनुसार था जिसके तहत उन्होने राज्यपाल को सलाह दी थी कि जो विभाग उन काग्रेसी मत्रियो को सौप गय ह उसको तुरन्त वे अपने अधिकार मे ले रहे है। राज्यपाल ने उनकी इस सलाह को स्वीकार कर लिया आर सबधित मत्रियो को सूचित कर दिया। राज्यपाल द्वारा मुख्यमत्री द्वारा दी गयी सलाह को स्वीकार ना करना ससदीय प्रजातन्त्र के सिद्धान्तो क विपरीत कदम था। जिसम मत्रियो को पद पर बने रहना आर हटाया जाना पूर्णत मुख्यमत्री की इच्छा पर निर्भर करता ह क्योकि अन्य मत्री मुख्यमत्री क प्रसाद पर ही पद पर बने रहते है। राज्यपाल द्वारा की गयी कार्यवाही पूर्णत सविधान के विपरीत थी। उस स्थिति म तब जबकि सरकार जनसघ, ससोपा तथा अन्य दलो ने अपना समर्थन देने की बात कही थी।

मुख्यमत्री द्वारा दी गयी सलाह पर राज्यपाल गोपाल रेड्डी न अटारनी जनरल श्री नीरेन ड ने सलाह मागी थी। श्री डे का विचार था कि जबकि मुख्यमत्री का बहुमत समर्थन नही रह गया ह अत उन्हे कोई सवैधानिक अधिकार नही है कि वो मत्रियो को बर्खास्त करे आर राज्यपाल के लिये कोई सवैधानिक बाध्यता नही हे कि वो इस प्रकार की किसी सलाह को स्वीकार कर। राज्यपाल का यह विवेकाधिकार हे कि एक बड़े घटक द्वारा समर्थन वापस लेने की घोषणा के बाद मुख्यमत्री से त्यागपत्र की माग करे ओर ऐसी कार्यवाही ससदीय लोकतन्त्र क सिद्धान्तो के अनुरूप होगी। राज्य मे जिस प्रकार की स्थिति ह उसको देखते हुये राज्यपाल का यह मानना उचित होगा कि राज्य सरकार सविधान के प्रावधानो के अनुसार नही चलाया जा रहा ह।[1]

---

1 एशियन रिकार्डर – 18 फरवरी, 1970 पृष्ठ–9383

इम प्रकार अर्टानी जरनल की सलाह को स्वीका करते हुए राज्यपाल ने श्री चरण सिह से इस्तीफे की माग की जिसे स्वाकार करने से श्री चरण सिह ने इनकार कर दिया जिसके कारण राज्य म राजनतिक उहापोह की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी।

अनत राज्यपाल श्री गोपाल रेड्डी ने राज्य मे राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर दी लेकिन राज्य विधान सभा भग नही की गयी, केवल निलम्बित रखने की सिफारिश की गयी थी। राष्ट्रपति श्री वीवी गिरी जा उस समय सोवियत रूस की यात्रा पर थे, वहीं पर राज्यपाल की रिपोर्ट भेजी गयी थी। रूस मे ही उन्हाने हस्ताक्षर किय। यह पहला अवसर था जबकि राष्ट्रपति शासन सबधी सस्तुति पर देश के बाहर हस्ताक्षर किये गये थे।

## राज्यपाल की रिपोर्ट

राज्यपाल ने राष्ट्रपति को भेजी गयी अपनी रिपोर्ट म प्रदेश म उस दारान घटी घटनाआ का जिक्र किया था, जिससे राज्य मे सवेधानिक सकट पदा हा गया था। उनका विचार था कि राज्य मे कोई भी दल स्थायी सरकार बनान का स्थिति म नहीं था। मुख्यमत्री द्वारा इस्तीफा ना देने से राज्य मे सवैधानिक सकट ओर गहरा हो गया था।

मुख्यमत्री ने यद्यपि राज्यपाल से उन्हे विधान सभा मे विश्वास मत प्राप्त करने का मौका देने का अवसर प्रदान करने की माग की थी, क्योकि श्री चरण सिंह ने अन्य दलो के समर्थन से दूसरी सयुक्त सरकार बनाने का दावा किया था, जिसे राज्यपाल ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया था कि इस बात पर वे मुख्यमत्री के इस्तीफे के बाद ही विचार कर सकते थ। क्यांकि उनका कहना था कि "पुराने मलबे पर नयी इमारत बनाने की अनुमति कदापि नहीं दी जानी चाहिये।"

राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट मे यह भी स्वीकार किया था कि केवल यही पर्याप्त नहीं हाता कि किसा पार्टी या गुट को सदन का क्षणिक बहुमत प्राप्त रहता हे लेकिन सरकार के प्रभावी काय सचालन के लिये यह भी आवश्यक है कि इतना बहुमत होना आवश्यक है जिससे मत वभिन्नता के समय सरकार का अस्तित्व बना रह सके।

वास्तव मे इसी प्रकार की स्थिति 1967 में राजस्थान म उत्पन्न हुयी थी जबकि राज्यपाल डॉ सम्पूर्णानन्द ने बहुमत के सबध मे अपना अनुमान लगाते समय निर्दलीय

विधायकों की गिनती करने से इनकार कर दिया था। क्योंकि राज्यपाल का विचार था कि निर्दलीय विधायक चूँकि किसी दल या विचार धारा से सबध नही रखते अत उनका समर्थन वास्तविक नही माना जा सकता।

राज्य के पाँच प्रमुख विपक्षी दलो ने जिन्होंने सरकार बनाने का दावा किया था चेतावनी दी कि यदि राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू किया गया तो राज्य म स्थिति विस्फोटक होगी। राज्यपाल की सिफारिश को सविधान, जनतत्र तथा जनहित के विरुद्ध बताते हुय इसकी कडी आलोचना की गयी थी। पाँचो विपक्षी दल जिनमे सघटन काग्रेस, जनसघ, ससोपा भारतीय क्रान्ति दल, स्वतत्र पार्टी शामिल थ, ने सयुक्त प्रस्ताव म कहा था कि राज्य म कोई सवधानिक सकट नही था। सरकार आगे भी चल सकती थी। किन्तु राज्यपाल न इन्दिरा काग्रेस को सहायता पहुचाने के उद्देश्य से ही प्रदेश म काल्पनिक सकट पैदा करने का नाटक किया जिससे विधायको को तोडने का पर्याप्त समय मिल सके। ससोपा के नेता श्री मधु लिमये ने माग की थी कि उत्तर प्रदेश के राज्यपाल का राष्ट्रपति सविधान के उनुच्छेद 156 के अन्तर्गत बर्खास्त कर दे।

राज्य के मुख्यमत्री श्री चरण सिह ने राष्ट्रपति श्री वीवी गिरी को तार भेजकर माग की थी कि जब तक वे भारत वापस आकर राज्य की वास्तविक स्थिति की जानकारी स्वय नही प्राप्त कर लेते तब तक राष्ट्रपति शासन सबधी घोषणा पर हस्ताक्षर ना करे।चरण सिह ने राष्ट्रपति के समक्ष इस बात का भी दावा किया था कि उन्हे 425 सदस्यीय सदन म बहुमत का समर्थन प्राप्त था और विधान सभा की बैठक जो 6 अक्टूबर को प्रस्तावित थी उसम वे अपना बहुमत सिद्ध कर देगे।

## राज्यपाल की भूमिका

वास्तव मे मामले को राज्यपाल श्री गोपाल रेड्डी की भूमिका काफी सदिग्ध नजर आती है। राज्यपाल का कदम सवैधानिक और नैतिक दोनो ही दृष्टियो से अनुचित था, जो उनकी पक्षपाती मनोवृत्ति का परिचायक था। राज्यपाल द्वारा उठाये गये कदम की राजनीतिक नेताओ और सविधान विशेषज्ञो द्वारा कडी आलोचना की गयी थी।

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 30 सितम्बर, 1970

श्री एमसी सितलावाड (पूर्व अर्टानी जनरल) ने कहा कि यह बहुत ही अनुचित था कि गज्यपाल मुख्यमत्रा मे त्यागपत्र देने की माग करे जबकि सभा की बठक कुछ ही दिना बाद ह्रान वाली थी। राज्यपाल को सदन मे बहुमत की जॉच होने तक इतजार करना चाहिये था।[1]

एमसी ञागला का विचार था कि राज्य मे मुख्यमत्री को यह अधिकार है कि वो राज्यपाल को मत्रिया की नियुक्ति करने व हटाये जान की सलाह दे, आर राज्यपाल मुख्यमत्री का सलाह को केवल इस आधार पर नही इकार कर सकता ह कि उस सदन म बहुमत का समथन नही प्राप्त है। बहुमत को सिद्ध करने का स्थान सदन है। चरण सिह को 6 अक्टूबर, 1970 को सदन म अपना बहुमत सिद्ध करने का मौका दिया जाना चाहिये था।

सयुक्त विधायक दल ने राष्ट्रपति श्री बीबी गिरी पर ससद द्वारा महाभियोग चलाये जाने की माग की, क्योकि उन्होने राष्ट्रपति शासन सम्बन्धी उद्घाघणा पर हस्ताक्षर सावियत सघ म किया था।

जेबी कृपलानी, अटल विहारी वाजपेयी आरके देव आदि न भी राज्यपाल की भूमिका की आलोचना करते हुये कहा कि बहुमत का निर्णय आगामी 6 अक्टूबर, 1970 का होने वाली सदन की बैठक मे किया जाना चाहिये था। राज्यपाल ने केन्द्रीय सत्तारूढ़ दल के हित मे सभा की बैठक नही होने दी।

लोक सभा मे श्री केसी पत ने सरकार का वचाव प्रस्तुत करते हुये कहा कि जब गठबन्धन की सरकार का प्रमुख भागीदार अपना समर्थन वापस ले ल तब अल्पमत

---

1 The Prime minister possesses the right to advise the Sovereign to dismiss a minister According to law the minister holds office at the pleasure of the crown He can, therefore be dismissed according to law at any movement and this prerogative is exercised solely on the advice of the PM such advice would be required only in the most extreme Cases where the minister insisted on retaining office and would not allow the PM to say that he had resigned Sir Ivor Jenning cabinet Crovernment 30d edn P 207 This view has been supported by pram chopra 'The Governor shows his fist again' The free press journal Bombay edn Oct 2 1970

की मरकार को स्वय त्याग पत्र दे देना चाहिये। उत्तर प्रदेश म श्री चरण सिह को सत्ता म वने रहने का कोई अधिकार नही था जबकि काग्रेस (आर) ने मत्रिमण्डल से अपना समर्थन वापस ले लिया था। वहुत स सविधान विशेषज्ञा ने इस सवध म यह तर्क पेश किया कि ग्रेट व्रिटेन म प्रधानमत्री को मत्रियो को नियुक्त करन व वर्खास्त करने की शक्ति को चुनाती नही दी जा सकती ह।

इस सवध मे जो मुख्य प्रश्न है वह यह है कि क्या राज्यपाल मुख्यमत्री को वर्खास्त कर सकता हे। सवैधानिक प्रावधान यह है कि जब तक मुख्य मत्री को सदन म बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है, राज्यपाल मुख्यमत्री को बर्खास्त करने का कार्यवाही नहीं कर सकता। राज्यपाल मुख्यमत्री को केवल दो स्थितियो मे ही वर्खास्त कर सकता ह-

1 जवकि सदन मे सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पास कर दिया हो आर मुख्यमत्री इस्तीफा देने से इनकार कर दे।

2 जवकि मुख्यमत्री एक लम्बी अवधि तक बिना किसी कारण के सभा की वठक बुलाने से इनकार कर रहा हो।[1]

उत्तर प्रदेश मे उपरोक्त दोनो ही परिस्थितियाँ नही उत्पन्न हुयी थी। मुख्यमत्री श्री चरण सिह ने सदन मे बहुमत के समर्थन का दावा किया था, साथ ही वे सदन की वठक म बहुमत की जाच के लिये भी तेयार थे। वास्तव मे यह सत्य ह कि राज्यपाल श्री गोपाल रेड्डी ने मुख्यमत्री को सदन के समक्ष बहुमत सिद्ध करने के प्रयास से रोककर सवधानिक आचित्य को भग किया था। यह स्वीकृत सिद्धान्त था कि मत्रिमण्डल को बहुमत का समर्थन प्राप्त ह या नही यह जाचने का उचित स्थल सदन ही होता है।

यह ध्यान देने योग्य बात हे कि राज्यपाल श्री गोपाल रेड्डी न 1968 को भिन्न कदम उठाया था जबकि सीबी गुप्ता के नेतृत्व वाली काग्रेसी सरकार राज्य म कार्य कर रहा थी। राज्यपाल ने मत्रिमण्डल को सदन मे बहुमत सिद्ध करन के लिय कभी नहीं बाध्य किया [2]

1 दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिसम्बर 29, 1969

2 दि हिन्दुस्तान टाइम्स अक्टूबर 30 1970

दूमरी तरफ सयुक्त मोर्च के श्री अजय मुखर्जी का राज्यपाल श्री धमवार ने इस आधार पर वर्खास्त कर दिया कि मुख्यमत्री सदन की बठक बुलाना नही चाह रह थे क्योकि उन्ह वहुमत के वारे म मदेह था।

उत्तर प्रदेश के समान ही स्थिति पजाव मे भी उत्पन्न हुया थी जबकि जुलाई, 1970 म जनसघ ने अकाली-जनसघ गठवन्धन की श्री पीएस बादल क नेतृत्व वाली सरकार म अपना समर्थन वापस ले लिया था। जिससे वादल मत्रिमण्डल अल्पमत म आ गया था। लेकिन राज्यपाल श्री डीसी पावटे ने मुख्यमत्री से त्यागपत्र की माग न कर उन्ह सदन म अपना बहुमत सिद्ध करने का अवसर दिया था। 24 जुलाई 1970 को काग्रेस(आर) द्वारा बहुमत परीक्षण के अवसर पर बादल मत्रिमण्डल को समर्थन दकर सरकार गिरने से वचा लिया था।

लेकिन उप्र के राज्यपाल ने अपना मत किया था कि-

1- यदि गठवन्धन का सहयोगी दल अपना समर्थन वापस ले लेता है तो इस पर सदन म इसका निर्णय नही किया जा सकता है।

2- वे चरण सिह के त्याग पत्र के बाद ही सयुक्त सरकार के गठन का प्रस्ताव करेगे। चरण सिह को मुख्यमत्री के रूप मे नही बने रहन देग क्योकि उनका विचार था कि वे ऐसा करके पुराने मलवे पर नयी इमारत खडी करने की अनुमति नही देग।

वास्तव मे ससदीय व्यवस्था मे सरकारे तब तक सत्ता मे बनी रहती है जबतक उन्ह सदन मे वहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है। सरकार प्रधानमत्री या मुख्यमत्री के नाम स ही चलायी जाती ह। सदन मे बहुमत वास्तव मे केवल उसी दल या दलो का नही रहता जो कि सरकार के निर्माण के समय थी।

यह कसाटी जो कि केन्द्रीय सरकार के लिये लागू हाता ह जबकि केन्द्र मे श्रीमती इन्दिरा गाधी के नेतृत्व वाली सरकार के सत्ता मे रहने का कोई हक नही था जबकि काग्रेस म विभाजन हो गया था। इस मामले मे राष्ट्रपति श्री वीवी गिरी ने श्रीमती इन्दिरा गाधी से त्याग पत्र मागने के स्थान पर उन्हे लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने का

अवसर प्रदान किया, क्योकि उन्हे दूसरे दलो और कुछ निर्दलीय सदस्यो के समर्थन मे लोक सभा मे बहुमत प्राप्त हो गया था।

संसदीय व्यवस्था वाली सरकार मे मुख्यमंत्री को पूर्व अधिकार है कि वह अपनी मंत्रिपरिषद मे इच्छानुसार फेर बदल कर सके। प्रो लास्की का मत है कि प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल का केन्द्र बिन्दु होता है। वास्तव मे डॉ रेड्डी स्वय अपनी भूमिका संबध मे असमजस मे थे। एक तरफ तो वे इस बात पर जोर दे रहे थे कि मंत्रिपरिषद की सयुक्त जिम्मेदारी होने के कारण मंत्रिपरिषद एक सामूहिक सगठन है, दूसरी तरफ मुख्यमंत्री की इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया कि वो जिन मंत्रियो को चाहे निकाल नही सकता था। इससे स्पष्ट है कि राज्यपाल अपनी कार्य प्रणाली मे दोहरा मापदण्ड बनाये हुये थे।

उत्तर प्रदेश के मामले मे यह प्रश्न आता है कि क्या अनुच्छेद 356 को लागू किया जाना उचित था ? राज्य मे ऐसी स्थिति उत्पन्न नही हुयी थी कि राज्य मे संवैधानिक तंत्र विफल हो गया था। राज्यपाल ने राष्ट्रपति को केवल इस आधार पर अनुच्छेद 356 को लागू करने की सम्तुति दी थी कि चरण सिह ने त्यागपत्र की माग करने पर त्यागपत्र नही दिया। राज्यपाल ने वैकल्पिक व्यवस्था की तलाश नही की[1] इस प्रकार राज्य मे जबकि विधान सभा का सत्र चल रहा था अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत कार्यवाही करना अनुचित था।

राज्यपाल द्वारा की गयी यह कार्यवाही कि इस सवैधानिक विवाद मे अर्टानी जरनल की राय ली जाये, को भी न्याय सगत नहीं ठहराया जा सकता।

भारतीय संविधान मे ऐसा कोई सदर्भ नही है कि वो अर्टानी जनरल की राय ले और उसको कार्यान्वित करे ना ही संविधान यही प्रावधान करता है कि अर्टानी जनरल को किसी संवैधानिक मामले को देखने का अधिकार है।

उत्तर प्रदेश मे सितम्बर 1970 के सवैधानिक स्थितियो का यदि विषद रूप से जाच की जाए तो यह स्पष्ट होता है कि राज्यपाल ने राज्य की स्थिति को संवैधानिक तरीके मे नही सुलझाया। यह संवैधानिक व्यवहार नही है कि राज्यपाल मुख्यमंत्री से त्याग पत्र की माग करे इस आधार पर कि उसके बड़े समर्थक दल ने उससे अपना समर्थन वापस ले लिया था, और गठबन्धन की सरकार अल्पमत मे आ गया थी। उत्तर प्रदेश का

1 देखे एटार्नी जनरल एण्ड पॉलिटिक्स', सम्पादकीय—दि स्टेट्समैन (नयी दिल्ली) नवम्बर 27 1970

मामला विधान सभा म शातिपूर्वक निपटाया जा सकता था यदि राज्यपाल इस मामले म जल्दाबाजी न करते हुये मामले का निर्णय अपने हाथ म ना लेते आर सदन को ही इस मामले का फसला लेने का हक छोड देते।

वास्तव मे यह सत्य है कि मुख्यमत्री को हटाने का स्थान का स्थान केवल सदन ही ह। राज्यपाल मुख्यमत्री को बर्खास्त करने की कार्यवाही तभी कर सकता ह जबकि मुख्यमत्री क खिलाफ सदन म अविश्वास प्रस्ताव पास हो गया हो या सदन म अपना बहुमत सिद्ध करने क लिये तयार ना हो।

उत्तर प्रदेश मे 13 जून 1973 मे पुन राष्ट्रपति शासन लगाया गया जब कि काग्रेसी मुख्यमत्री श्री कमलापति त्रिपाठी ने राज्य मे कानून और व्यवस्था की स्थिनि बिगड़ने के कारण त्याग पत्र दे दिया था।[1]जो कि राज्य मे प्रातीय सशस्त्र बलो के विद्रोह के कारण पैदा हुयी थी। इसी प्रकार की स्थिति आन्ध्र प्रदेश मे जनवरी 1973 मे उत्पन्न हुयी जबकि काग्रेस के मुख्यमत्री श्री पीवी नर सिहम्हाराव ने त्याग पत्र दे दिया था क्योकि राज्य म गुल्फी आदोलन के कारण कानून व व्यवस्था भग हो गयी थी।[2] इन दोनो ही मामलो मे सरकार का बहुमत का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। वास्तव मे इन दोनो ही अवसरो पर राष्ट्रपति शासन लगाये जाने का वास्तविक कारण था, नेता बदलना जेसा कि पजाब मे 1951 मे किया गया था।[3] लेकिन पजाब मे प्रधानमत्री श्री नहरू ऐसा करने मे असफल रहे थे और उन्हे अतत विधान सभा भग करनी पडी थी।[4] लेकिन श्रीमती गाधी अपने मतव्य को पूरा करने मे सफल रही थी, जबकि उन्होंने 20 दिसम्बर, 1973 को आन्ध्र मे श्री वेगेल राव को मुख्यमत्री पद की शपथ दिलायी गयी थी[5] व उत्तर प्रदेश म 8 नवम्बर 1973 को श्री एचएन बहुगुणा को मुख्यमत्री पद पर आसीन कराया था[6] क्योंकि प्रधानमत्री जो कि पार्टी अध्यक्ष भी थी इन दोनो ही मुख्यमत्रियो से नाराज थी और किसी ना किसी बहाने क आधार पर इनसे मुक्त चाहती थी।[7]

---

1 दि स्टट्समन इयर बुक, 1951 पृष्ठ–180

2 ज आर सिवाच, 'पालिटिक्स ऑफ दिप्रैसीडेन्ट रूल इन इडिया' पृष्ट 278 पूर्वोधृत

3 ज आर सिवाच, भारत की राजनीतिक व्यवस्था पृष्ठ 313 प्र हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़

4 दि स्टट्स मेन इयरबुक 1951 पृष्ठ 180

5 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 11 12 73 (दिल्ली)

6 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 9 11 73 (दिल्ली)

इस प्रकार केन्द्र के दबाव पर श्री कमलापति त्रिपाठी ने अपना त्याग पत्र राज्यपाल श्री अकबर अली खॉ को सौप दिया और राज्य म कुछ समय के लिये राष्ट्रपति शासन की सिफारिश की। राज्यपाल ने मुख्यमत्री से वैकल्पिक व्यवस्था होने तक उनसे पद पर बने रहने का अनुरोध किया।

अपने त्याग पत्र के औचित्य को स्पष्ट करते हुये मुख्यमत्री ने कहा कि उन्होने अपने मन्त्रिमण्डल का इस्तीफा राज्य और देश के व्यापक हितो को देखते हुय दिया ह और उनके इस निर्णय क पीछे किसी तरह का कोई दबाव नही था। उनका विचार था कि केवल राज्य का प्रशासन चलाना ही पर्याप्त नही होता वरन् जिनका प्रतिनिधित्व वे कर रहे ह, उसके व्यापक हितो का ध्यान म रखना आवश्यक होता ह राज्य मे घटी पीएसी की अनुशासन हीनता के कारण उत्पन्न स्थिति के लिये उन्होने खुद को जिम्मेदार ठहराया। श्री त्रिपाठी ने केन्द्र स राज्य मे उत्पन्न स्थितिया से निपटने के लिये सहायता की माग की थी, जिसे केन्द्र द्वारा स्वीकार नही किया गया था। केन्द्र का विचार था कि कानून व व्यवस्था बनाये रखना राज्य का विषय होता है। अत यदि मुख्यमत्री यह महसूस करते है कि वे राज्य की स्थितिया को सामान्य नही बना सकते तो उन्ह तुरत अपना त्याग पत्र दे देना चाहिये जिससे राज्य को राष्ट्रपति शासन के अधीन रखा जा सके।

लेकिन वास्तव मे केन्द्र का यह व्यवहार अनुचित था क्योकि सविधान का अनुच्छेद 355 केन्द्र को राज्यो की रक्षा का दायित्व सौपता है, जबकि यदि राज्य सरकार इस प्रकार केन्द्र स सहायता का अनुरोध करती है, उस स्थिति मे केन्द्र अपनी सेनाये भेज सकता ह जिससे राज्य की स्थिति पर नियत्रण रखा जा सके।लेकिन केन्द्र ने महत्वपूर्ण कर्तव्य का निर्वाह नही किया,[1] वरन् पार्टी की आन्तरिक समस्याओ को सुलझाने के लिये अनुच्छेद 356 जसे कठोर अनुच्छेद का सहारा लिया था जबकि इसकी कोई आवश्यकता नही थी। क्योकि काग्रेस विधायक दल मे

7 पुन उडीसा म 1976 म व उत्तर प्रदेश म 1975 म इसी प्रकार का उदाहरण प्राप्त होता है। जबकि काग्रेस हाईकमान द्वारा पार्टी नेता से असतोष के कारण राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा था।

1 १९९२ म उत्तर प्रदेश मे भी जबकि केन्द्रीय जॉच ब्यूरो ने अपनी रिपोर्ट म 6 दिसम्बर को राज्य म उपद्रव की आशका व्यक्त की थी तब भी केन्द्र न अनुच्छेद 356 के तहत अपने कर्तव्य का निर्वहन नही किया था। देख - एस सहाय, मेनस्ट्रीम आरचटरा यूज ऑफ आर्टिकिल 356 दिसम्बर 1992

इस प्रकार केन्द्र के दबाव पर श्री कमलापति त्रिपाठी ने अपना त्याग पत्र राज्यपाल श्री अकबर अली खॉ को सौप दिया और राज्य मे कुछ समय के लिये राष्ट्रपति शासन की सिफारिश की। राज्यपाल ने मुख्यमत्री से वैकल्पिक व्यवस्था होने तक उनसे पद पर बने रहने का अनुरोध किया।

अपने त्याग पत्र के औचित्य को स्पष्ट करते हुय मुख्यमत्री ने कहा कि उन्होने अपने मत्रिमण्डल का इस्तीफा राज्य और देश के व्यापक हितो को देखते हुये दिया है और उनके इस निर्णय के पीछे किसी तरह का कोई दबाव नही था। उनका विचार था कि केवल राज्य का प्रशासन चलाना ही पर्याप्त नही होता वरन् जिनका प्रतिनिधित्व वे कर रहे है, उसके व्यापक हितो का ध्यान म रखना आवश्यक होता है राज्य मे घटी पी.ए.सी की अनुशासन हीनता के कारण उत्पन्न स्थिति के लिये उन्होने खुद को जिम्मेदार ठहराया। श्री त्रिपाठी ने केन्द्र से राज्य म उत्पन्न स्थितिया से निपटने के लिये सहायता की माग की थी, जिसे केन्द्र द्वारा स्वीकार नही किया गया था। केन्द्र का विचार था कि कानून व व्यवस्था बनाये रखना राज्य का विषय होता है। अत यदि मुख्यमत्री यह महसूस करते है कि वे राज्य की स्थितिया को सामान्य नही बना सकते तो उन्ह तुरत अपना त्याग पत्र दे देना चाहिये जिससे राज्य को राष्ट्रपति शासन के अधीन रखा जा सके।

लेकिन वास्तव मे केन्द्र का यह व्यवहार अनुचित था क्योकि सविधान का अनुच्छेद 355 केन्द्र को राज्यो की रक्षा का दायित्व सौपता है, जबकि यदि राज्य सरकार इस प्रकार केन्द्र स सहायता का अनुरोध करती है, उस स्थिति मे केन्द्र अपनी सेनाय भेज सकता है जिससे राज्य की स्थिति पर नियत्रण रखा जा सके।लेकिन केन्द्र ने महत्वपूर्ण कर्तव्य का निर्वाह नही किया,[1] वरन् पार्टी की आन्तरिक समस्याओ को सुलझाने के लिये अनुच्छेद 356 जसे कठोर अनुच्छेद का सहारा लिया था जबकि इसकी कोई आवश्यकता नही थी। क्योकि काग्रेस विधायक दल मे

7 पुन उडीसा म 1976 म व उत्तर प्रदेश मे 1975 म इसी प्रकार का उदाहरण प्राप्त होता है। जबकि काग्रेस हाईकमान द्वारा पार्टी नेता से असतोष के कारण राष्ट्रपति शासन लागू करना पडा था।

1 १९९२ म उत्तर प्रदेश मे भी जबकि केन्द्रीय जॉच ब्यूरो ने अपनी रिपोर्ट म 6 दिसम्बर को राज्य म उपद्रव की आशका व्यक्त की थी तब भी केन्द्र ने अनुच्छेद 356 के तहत अपने कर्तव्य का निर्वहन नही किया था। देख - एस सहाय, मेनस्ट्रीम, आरटर्ली यूज ऑफ आर्टिकिल 356 दिसम्बर 1992

मुख्यमत्री के खिलाफ कोई असतोष नही था, ना ही राज्य मे इस पकार की अव्यवस्था थी जिसके आधार पर राष्ट्रपति शासन लगाना पडता।

उत्तर प्रदेश मे पीएसी म मई से ही असतोष चल रहा था। इसके एक बडे भाग न वेतन वृद्धि की माग को लेकर सशस्त्र विद्रोह किया था। इसस पूर्व पीएसी ने सिपाहिया का एक सगठन बनाने का भी प्रस्ताव रखा था लेकिन सरकार ने इसकी अनुमति नही दी थी। प्रदेश मउनकी सख्या करीब 40 हजार थी जो प्रदेश क सभी शहरा आर कस्बा म बिखरे हुये थे।

मई मे ही कुछ पीएसी के सिपाहियो ने लखनऊ विश्वविद्यालय मे उत्पन्न हिसा के दारान उपद्रवी छात्रो का साथ दिया था, जिससे स्थिति काफी गभीर हो गयी थी, जबकि उनकी तेनाती स्थिति पर नियत्रण रखने के लिये की गयी थी। स्थिति की गभीरता का देखते हुये सेना बुलानी पडी थी। इस प्रकार उत्तर प्रदेश म सना आर पीएसी क बीच बन्दूका से लडायी लडी जाने लगी थी, जिसको रोकने के लिये काई प्रभावी कदम नही उठाया जा रहा था।

इन सबको को देखते हुये श्रीमती इदिरा गाधी ने श्री त्रिपाठी को त्याग पत्र दने का निर्देश दिया जिसकी माग काग्रेसी असतुष्टो द्वारा भी की जा रही थी। इस प्रकार 12 जून 1973 को श्री त्रिपाठी ने अपना त्याग पत्र राज्यपाल को साप दिया।

13 जून को राज्य विधान सभा को निलम्बित कर दिया गया ओर इस प्रकार राज्य मे सामान्य स्थिति बहाल होते ही 8 नवम्बर 1973 को राष्ट्रपति ने उद्घोषणा द्वारा राज्य विधान के सभा के निलम्बन आदेश वापस ले लिया, जबकि श्रीमती इदिरा गाधी द्वारा मनोनीत, केन्द्रीय सचार मत्री श्री बहुगुणा को राज्य का मुख्यमत्री नियुक्त किया गया।

यद्यपि राज्य मे पीएसी के विद्रोह के कारण जन जीवन असुरक्षित हो गया था लकिन वास्तव मे ऐसी स्थिति नही थी कि राष्ट्रपति शासन लागू किया जाता। इसके दो मुख्य उद्दश्य थ—1 कानून व्यवस्था को पुन बहाल करना 2-अन्तरा पार्टी कलह का निपटारा करना।

मुख्यमत्री के खिलाफ कोई असतोष नही था, ना ही राज्य मे इस प्रकार की अव्यवस्था थी जिसके आधार पर राष्ट्रपति शासन लगाना पडता।

उत्तर प्रदेश मे पीएसी म मई से ही असतोष चल रहा था। इसके एक बडे भाग ने वेतन वृद्धि की माग को लेकर सशस्त्र विद्रोह किया था। इसस पूर्व पीएसी ने सिपाहिया का एक सगठन बनाने का भी प्रस्ताव रखा था लेकिन सरकार ने इसकी अनुमति नही दी थी। प्रदेश मउनकी सख्या करीब 40 हजार थी जो प्रदेश क सभी शहरा और कस्बा म बिखरे हुये थे।

मई मे ही कुछ पीएसी के सिपाहियो ने लखनऊ विश्वविद्यालय मे उत्पन्न हिसा के दौरान उपद्रवी छात्रो का साथ दिया था, जिससे स्थिति काफी गभीर हो गयी थी, जबकि उनकी तेनाती स्थिति पर नियत्रण रखने के लिये की गयी थी। स्थिति की गभीरता को देखते हुये सेना बुलानी पडी थी। इस प्रकार उत्तर प्रदेश म सेना और पीएसी के बीच बन्दूको से लडायी लडी जाने लगी थी, जिसको रोकने के लिये कोई प्रभावी कदम नही उठाया जा रहा था।

इन सबको को देखते हुये श्रीमती इदिरा गाधी ने श्री त्रिपाठी को त्याग पत्र देने का निर्देश दिया जिसकी माग काग्रेसी असतुष्टो द्वारा भी की जा रही थी। इस प्रकार 12 जून 1973 को श्री त्रिपाठी ने अपना त्याग पत्र राज्यपाल को सौप दिया।

13 जून को राज्य विधान सभा को निलम्बित कर दिया गया ओर इस प्रकार राज्य म सामान्य स्थिति बहाल होते ही 8 नवम्बर 1973 को राष्ट्रपति ने उद्घोषणा द्वारा राज्य विधान के सभा के निलम्बन आदेश वापस ले लिया, जबकि श्रीमती इदिरा गाधी द्वारा मनोनीत, केन्द्रीय सचार मत्री श्री बहुगुणा को राज्य का मुख्यमत्री नियुक्त किया गया।

यद्यपि राज्य मे पीएसी के विद्रोह के कारण जन जीवन असुरक्षित हो गया था लेकिन वास्तव मे ऐसी स्थिति नही थी कि राष्ट्रपति शासन लागू किया जाता। इसके दो मुख्य उद्देश्य थ—1 कानून व्यवस्था को पुन बहाल करना 2-अन्तरा पार्टी कलह का निपटारा करना।

श्री कमलापति त्रिपाठी के स्थान पर एच एन बहुगुणा का मनोनीत कर श्रीमती गाधी न काग्रेस को पुन सुदृढ करने मे सफलता प्राप्त कर ली थी, जो वहुत स कारणा से कमजार पड गयी थी। जिससे फरवरी 1974 के चुनावा मे पुन सयुक्त तस्वार पश कर सके।

फरवरी 1974 को राज्य विधान सभा के लिये हुये चुनावा क पश्चात काग्रेस 425 स्थाना म से 215 स्थान प्राप्त कर सत्ता म आयी। श्री एच एन बहुगुणा राज्य के पुन मुख्यमत्री नियुक्त किये गये। इसी प्रकार के मामले की पुनरावृत्ति पुन 1975 मे हुयी जबकि श्री बहुगुणा का पद से हटाने के लिये राज्य को राष्ट्रपति शासन के अधीन रखा गया।

उत्तर प्रदेश को चौथी बार राष्ट्रपति शासन के अधीन नवम्बर 1975 म करना पडा जबकि काग्रेसी मुख्यमत्री ने काग्रेस हाईकमान के निर्देश पर अपने पद से त्याग पत्र दे दिया था।[1] इससे पूर्व पजाब मे जहा सबसे पहले सर्वप्रथम राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था उसका कारण भी यही थी। काग्रस जब काग्रेस ने गुटवन्दी की राजनीति का आशय लेत हुये राज्या क मुख्यमत्री को हटाया था।

8 नवम्बर 1973 को उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री का पद ग्रहण करने वाले श्री एच एन बहुगुणा ने नवम्बर 1975 मे अपने पद से इस्तीफा दे दिया।[2] अपना त्याग पत्र दते हुये बहुगुणा ने कहा कि हाईकमान के आदेशो पर ही उन्होने राज्य के नेतृत्व की कमान सभाला थी और उन्ही क आदेश पर वे अपना पद त्याग रहे है। शेष बातो का फसला जनता के हाथो सुर्पुद कर दिया था।[3]

श्री बहुगुणा को राज्य का मुख्यमत्री पार्टी असतुष्टो के कडे विरोध के बावजूद बनाया गया था। क्याकि काग्रेस पार्टी का केन्द्रीय नेतृत्व विशेष रूप से प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी क विश्वसनीय व्यक्ति थे। लेकिन बाद मे हाईकमान द्वारा ही उनकी छुट्टी कर दी गयी। क्योकि उन्होने अपने आप काम करना शुरू कर दिया और उत्तर प्रदेश मे ठोस सगठनात्मक आधार बना लिया था जिसकी अनुमति श्रीमती इन्दिरा गाधी कभी नही दे सकती थी।[4]

---

1 जे आर सिवाच पालिटिक्स ऑफ दी प्रैसीडेन्ट रूल इन इडिया पृष्ठ— 369

2 राज्या म राष्ट्रपति शासन पृष्ठ 90 पूर्वोधृत

3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 29 11 1975

4 १९७६ का उड़ीसा का उदहारण इसी कथन की पुष्टि करता है।

वाम्तव म यह इदिरा गाधी क्ा नीति का एक महत्वपूर्ण पक्ष था कि उनका विश्वास खो देने वाला मुख्यमत्री को हटना ही पडता था। इस पूरे मामले मे इदिरा गाधी अपने पिता पडित नेहरू की नीति का ही अनुसरण कर रही थी।[1] नेहरू ने तो कामराज योजना के तहत कवल कुछ केन्द्रीय मत्रिमण्डल के मत्रिया को हटाया था। लेकिन इन्दिरा गाधा ने 1969 के बाद मुख्यमत्रिया को अपनी मर्जी से नियुक्त किया, बनाये रखा आर उन्ह इच्छानुसार हटा लिया। वास्तव म उन्ह कार्य प्रणाली का एक अहम हिस्सा था। वास्तव मे उनके शासनकाल म मुख्यमत्री पद दो ही बाता पर तय किया जाता था या तो मुख्यमत्री स्वय उनके द्वारा मनोनीत हो। वह नाम मात्र को नेता बना रहे और अपनी स्वतन्त्र राजनीतिक शक्ति का प्रदर्शन ना कर सके। उन्हाने राज्य स्तर पर एक घटक को दूसरे के खिलाफ लडवाया। अपना हित सिद्ध हो जाने के बाद वह सदव एक मुख्यमत्री के साथ दगा कर किसी आर के पक्ष म हो सक्ती थी क्योकि कतार म हमेशा अनेक होते थे।

लेकिन उत्तर प्रदेश मे श्री बहुगुणा के त्याग पत्र के बाद तत्काल ही कोई नेता नही चुना जा सका। इस अनिश्चय की स्थिति मे उत्तर प्रदेश मे राज्यपाल श्री चेन्ना रेड्डी द्वारा राज्य विधान सभा निलम्बित कर दी गयी। उत्तर प्रदेश मे जहाँ काग्रेस पार्टी को पूर्ण बहुमत प्राप्त था। विधायक दल द्वारा कोई नया नेता न चुने जाने के कारण राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया जबकि राज्य म सवेधानिक तत्र सचारू रूप से चल रहा था।

राष्ट्रपति द्वारा जारी की गयी घोषणा मे कहा गया था कि उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की रिपोर्ट तथा अन्य सूत्रो से प्राप्त सूचना के आधार पर व इस बात से सतुष्ट ह कि राज्य म ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि राज्य की सरकार सविधान की व्यवस्था क अनुरूप नही चल सकती। राज्य मे वेकल्पिक व्यवस्था होने का राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था।

उत्तर प्रदेश म 30 नवम्बर 1975 को लगाये गये राष्ट्रपति शासन का समापन 21 जनवरी 1976 को हुआ जबकि केन्द्रीय नेतृत्व द्वारा मनोनीत श्री नरायण दत्त तिवारी को राज्य का मुख्यमत्री नियुक्त किया गया जो कि बहुगुणा के मत्रिमण्डल मे वित्त मत्री थे।[2]

---

1 पजाब का उदहारण 1951

2 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 21 1 1976

## उडीसा 1961

उड़ीसा मे शुरू से ही राजनीतिक स्थिरता का अभाव रहा है। चूकि इस राज्य मे वहुत सी देशी रियासते थी अत लोगो के ऊपर सामतशाही राजनीति का प्रभाव था। इसके अलावा इस राज्य की आबादी मे जनजातियो का विशेष हिस्सा है, अत ये जातियॉ अपनी विशिष्ट सामाजिक स्थितियो को कायम रखना चाहती थी। इस तरह झारखण्ड पार्टी के लिए एक राजनीतिक आधार प्रस्तुत किया। 1957 के आम चुनावो के बाद विभिन्न दलो की स्थिति इस प्रकार थी।

| | |
|---|---|
| *कुल स्थान* | *140* |
| *काग्रेस* | *56* |
| *गणतन्त्र परिषद* | *51* |
| *प्रजासोशलिस्ट पार्टी* | *11* |
| *कम्युनिस्ट पार्टी* | *1* |
| *निर्दलीय* | *7* |
| *कुल* | *126*[1] |

लेकिन चुनावो के बाद कोई भी दल विधान सभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त करने म सफल नही हुआ[2] लेकिन काग्रेस सदन मे अकेला सबसे बड़ा दल था। सबसे बड़े दल के सिद्धान्त के आधार पर राष्ट्रपति श्री वाई.एन. सुथानकर ने काग्रेस विधायक दल के नेता श्री हरे कृष्ण मेहताब को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया[3] काग्रेसी मत्रिमण्डल राज्य मे पदारूढ़ होने के कुछ ही दिनो बाद तक बिना किसी अवरोध के चलता रहा लेक्नि गणतन्त्र परिषद व काग्रेस पार्टी के सदस्यो की सख्यामे ज्यादा अतर नही था। अत वराबर की स्थिति वनी हुयी थी। एक दल के सदस्यों का दोनो दलो के पक्ष में निष्ठायें वदलने का सिलसिला चलता रहा। दलगत निष्ठाये जल्दी बदल रही थी कि काग्रेस सरकार द्वारा राज्य का प्रशासन चलाना एक प्रकार से मुश्किल काम हो गया था।

---

1 फ्रैक्शनल पॉलिटिक्स इन इण्डिया जे.के. महापात्रा पृष्ठ 136

2 भारत 1961 पृष्ठ–475

3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 14 फरवरी 1961, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्रथम आन्ध्रप्रदेश में 1954 म राज्यपाल श्रीप्रकाश ने किया था।

स्थितियाँ उस समय बहुत कठिन हो गयी जब मुख्यमत्री श्री हरे कृष्ण मेहताब न अपना इस्तीफा राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत किया, लकिन राज्यपाल श्री वाईएन सुथानकर ने उनसे त्याग पत्र वापस ले लेने का अनुरोध किया आर मुख्यमत्री ने अपना इस्तीफा वापस ले लिया[1]

राजनीतिक अस्थिरता से त्रस्त श्री हरे कृष्ण मेहताब ने गठबन्धन की सरकार बनाने का प्रस्ताव रखा। मई 1959 को काग्रेस ओर गणतन्त्र परषद की मिलीजुला सरकार बना जो देश की पहली गठबन्धन की सरकार थी [2]जिसमे राष्ट्रपति पार्टी काग्रेस का गठबन्धन एक क्षेत्रीय दल गणतन्त्र परिषद के साथ हुआ था । इस गठबन्धन की सरकार क मुख्यमत्री भी श्री मेहताब ही बने। गठबन्धन की सरकार अपना कार्य काफी अच्छी तरह से कर रही थी। राज्य का प्रशासनिक तत्र भी सुचारू रूप से चल रहा था। दोनो दलो म अच्छा सहयोग तथा सामजस्य दिखायी दे रहा था। सरकार का कार्य करीब एक साल ना माह ही मुश्किल से चल पाया, जबकि गठबन्धन की सरकार मे मतभेद उभर कर सामने आय। तुरन्त का प्रभावी मुद्दा तो यह था कि यह साझा सरकार कब तक चल पायेगी। काग्रेस बजट सत्र के अत तक ही गठबन्धन के बने रहने देने के विचार रखती थी तथा दूसरी ओर गणतन्त्र परिषद के नेता तथा वित्त मत्री भीम सिह देव यह दबाव बनाये हुये थे कि उन्ह इस बात की गारटी दी जाय कि अगले आम चुनाव के छ माह पुर्व तक सरकार बनी रहे तभी वे विधान सभा मे बजट प्रस्तुत करने के लिये तैयार थे।[3] 22 फरवारी 1961 को श्री मेहताब ने काग्रेस व गणतन्त्र परिषद की साझा सरकार का त्याग पत्र राज्यपाल श्री वाईएन सुथानकर को प्रस्तुत कर दिया।[4]त्याग पत्र का कारण प्रस्तुत करत हुय श्री मेहताब ने कहा कि प्रजातात्रिक व्यवस्था म साझा सरकार को आम चुनाव

---

1 दि टाइम्स आफ इडिया 14 फरवरी 1961, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सवप्रथम आन्ध्र प्रदश म 1954 म राज्यपाल श्रीप्रकाश ने किया था।

2 इसस पूर्व पेप्सू पजाव विपक्षी गठवन्धन सयुक्त दल की सरकार बनी थी जिसमे काग्रस दल साझदार नही था

3 दि टाइम्स आफ इण्डिया, 27 फरवरी 1961

4 वही 22 फरवरी 1961

म पूव त्याग पत्र द दना चाहिये जिससे वि आगे क लिय अपना पाटी क हित म काय करन व रणनीति बनाने के लिये स्वतन्त्र हो। राज्यपाल ने गणतन्त्र परिषद का यह बात ज्ञात करा दी थी कि वे दूसरे मत्रिपरिषद को अवसर दे सकते ह। लेकिन सभी दलो ने इस प्रस्ताव को स्वीकारने से इनकार कर दिया। क्योकि वास्तव मे यदि उड़ीसा म ऐसा करना सम्भव होता तो पूर्व मे ही काग्रेस पार्टी को गणतन्त्र परिषद के साथ व गणतन्त्र परिषद का काग्रेस के साथ गठबन्धन नही होता।

अत 25 फरवरी 1961 को राष्ट्रपति ते राज्यपाल की रिपार्ट मिलने पर राज्य म सविधान की धारा 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन सम्बन्धी उदघाषणा जारी कर दी। राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट म इस बात की सिफारिश की थी कि राज्य म सवधानिक तत्र विफल होने के कारण राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाय।[1]

राष्ट्रपति द्वारा उदघोषणा जारी करने से पूर्व केन्द्रीय मत्रिमण्ल ने अपनी बठक म राज्यपाल की रिपोर्ट पर विचार विमर्श किया। मत्रिमण्डल न राज्य की परिस्थितियों को दिखते हुये राष्ट्रपति से राज्य का शासन अपने हाथ मे लेने की सलाह दी।तत्पश्चात राष्ट्रपति ने तत्सम्वन्धी उद्घोषणा पर हस्ताक्षर कर दिया।

## राष्ट्रपति शासन का कारण

मुख्यमत्री डॉ हरे कृष्ण मेहताब द्वारा अपने 11 सदस्यीय मत्रिमण्डल के त्याग पत्र के बाद राज्य म कोई भी दल सरकार बनाने की स्थति मे नही थी, क्योंकि उड़ीसा के काग्रेसी विधायको ने यह धमकी दी थी कि यदि राज्य मे काग्रेस व गणतत्र मत्रिमण्डल क भग होने के पश्चात काग्रेसी सरकार का प्रयास किया जाता है तो वे विधान सभा की सदस्यता से इस्तीफ दे दग।[2]

वास्तव म मिश्रित मत्रिमण्डल का विखराव 1962 मे होने वाले आम चुनावो की तयारी के कारण शुरू हुआ था, क्योकि मिश्रित मत्रिमण्डल ने राज्य मे 21 माह तक जिस प्रकार सहयाग की नीति अपना कर शासन का सचालन किया था, वह अपने आप मे एक

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 27 फरवरी 1961

2 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 27 फरवरी 1961

उदाहरण था। लकिन आगामी चुनावा के मद्दे नजर दोनो ही दल राज्य म अपना स्वतन्त्र मत्रिमडल बनाय जाने के प्रयास मे थे आर इस दोरान दोना ही दल एक दूसर के ऊपर आरोप प्रत्यारोप कर रहे थे, जिससे मिश्रित सरकार का बने रहना असभव हो गया था। केरल की भॉति उडीसा मे भी जबरदस्त गुटवदी ओर मतभेद पदा हो गये थे जहॉ प्रजा समाजवादी दल आर काग्रस का मिश्रित मत्रिमडल पदारूढ़ थी।

वास्तव मे इस पूसे मामले के पीछे काग्रेस की अन्दर को राजनीति ही थी जिसके कारण मिश्रित मत्रिमण्डल का पतन हुआ। प्रदेश काग्रेस का एक गुट शुरु से हा राज्य मे मिश्रित मत्रिमण्डल का विरोधी था ओर उसे भग करने के लिये सदव ही प्रयत्नशील था। इस गुट के नता श्री विजयानन्द थे। श्री विजयानन्द का ध्येय श्री मेहताब को अपदस्थ करना था, आर अतत उन्हे सफलता भी मिल गयी। वास्तव मे उनका उद्देश्य काग्रेसी मत्रिमण्डल का निर्माण था । अत मिश्रित मत्रिमण्डल को अपदस्थ कराने मे श्री विजयानन्द का बहुत बडा हाथ रहा था, साथ ही ऐसी परिस्थितियॉ पेदा कर दी थी कि श्री मेहताव की अपने मत्रिमण्डल का इस्तीफा देने के लिये मजबूर होना पडा।

8 मार्च 1961 को लाकसभा मे उड़ीसा मे राष्ट्रपति शासन के प्रस्ताव को पास कराने हतु प्रस्तुत किया गया जिसपर दो दिन तक बहस के पश्चात लोक सभा ने पास कर दिया।

तत्कालीन गृहमत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने ओचित्य प्रस्तुत करते हुये कहा कि काग्रेस यह नही चाहती थी कि साझा सरकार चलती रहे [1]उन्होने सह भी कहा कि इसका दूसरा कारण भी था । आम चुनाव तक ही साझा सरकार कार्य कर सकती था क्याकि चुनावो के समय अपनी नीतियो नथा सिद्धान्तो को अपने तरीके से स्पष्ट करती है।

इस पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये श्री अशोक महता ने कहा कि मत्री जी एक खतरनाक सिद्धान्त का प्रतिपादन कर रहे है, जिससे भविष्य मे कोई भी दल काग्रेस क साथ सहयोग के लिये तयार नही होगा। इस प्रकार का खेल हा जायेगा जिसके नियम केन्द्रिय सत्तारूढ़ दल के अनुसार निर्धारित होगे।[2]

---

1 लाक सभा वाद विवाद 8361, वॉलम 2180-2181

2 वहा

उड़ीसा के सासद श्री चिन्तामणि पाणिग्रही ने इस कदम पर अफसोस जाहिर करते हुए कहा कि मुख्यमत्री या वित्त मत्री एक भी विधेयक प्रस्तुत करने को तैयार नही ह । जिससे राज्य के हित म हो जिसको आधार बनाकर सरकार गठित की गयी थी, यह निश्चित रूप से गैर जिम्मेदारी की सीमा ह ।श्री एच.एन मुखर्जी ने यह दलील प्रस्तुत की कि उड़ीसा के सभी सासदो की समिति बना दी जाय जो कि राष्ट्रपति शासन के दौरान राजय के प्रशासन को चलाने म राज्यपाल की मदद करे। उन्होने यह स्पष्ट किया कि जब राज्य मे सविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति राज्य का प्रशासन अपने हाथ मे लेता हो यह उस तरह की कार्यवाही नही हे जो भारत शासन अधिनियम 93 मे था। वरन् हमारे सविधान का प्रावधान अमेरिका के सघीय व्यवस्था के अनुरूप ह जिसके अन्तर्गत किसी विशेष राज्य मे सवैधानिक मशीनरी विफल होती है ऐसी स्थति म केन्द्र या राष्ट्रपति सामने आते ह यह सुनिश्चित करने के लिये कि ऐसी स्थिति मे उत्तरदायी तत्र अच्छी तरह से कार्य करे जो कि लोगो के प्रतिनिधि हो तथा जिम्मेदारी से प्रशासन मे सहयोग प्रदान करे। अत राष्ट्रपति का केवल यही कर्तव्य नही है कि वह अपने सलाहकारो की राय पर ही कार्य करे वरन् उस राज्य के सासदो की सलाह भी उसे अनिवार्य रूप लेना चाहिये।इस सुझाव को स्वीकार करते हुये श्री लाल बहादुर शास्त्री ने कहा कि ससदीय समिति उडीसा के विधायको मे से ही गठित की जायेगी जेसाकि पहले केरल मे किया गया था। उड़ीसा के सासदो तथा अन्य सासदो को मिलाकर यह समिति बनायी जायेगी।[1]

राज्य सभा जिसमे कि 28 मार्च 1961 को इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृत दी शास्त्री जी ने यह सूचना दी की उड़ीसा मे जून 1961 को शुरू मे चुनाव कराया जायेगा।चूकि राज्य के राज्यपाल स्वय ही बहुत अनुभवी प्रशासक थे, जो शीघ्र ही केन्द्र के केबिनेट सचिव के पद से पदमुक्त हुये थे, ने अपने सहयोग के जिस किसी सलाहकार की नियुक्त आवश्यक नही समझा अत उडीसा मे राष्ट्रपति शासन लगाये जाने के पश्चात कोई भी सलाहकार नही नियुक्त हुआ।

## उड़ीसा 1971

उड़ीसा मे पुन राष्ट्रपति शासन श्री आर.एन. सिह देव मत्रिमण्डल का विधान सभा के बहुमत का समर्थन खो देने के पश्चात मुख्यमत्री के त्यागपत्र के बाद लगाया गया

1 फ्रेक्शनल पॉलिटिक्स इन इडिया, पूर्वाधृत, पृ

इससे पूर्व उडीसा में जन कांग्रेस ने 5 जनवरी को 46 माह पुरानी स्वतन्त्र जन काग्रेस गठवन्धन से अपना समर्थन वापस ले लिया था।[1]जन काग्रेस के अध्यक्ष श्री पवित्र मोहन ने राज्यपाल डॉ एस.एस. असारी से मिलकर उन्हे स्वतन्त्र दल सरकार से अपना समर्थन वापम लेने की सूचना दी थी। जन काग्रेस ने राज्यपाल से विधान सभा भग करने का अनुरोध किया था जिससे लोकसभा चुनावो के साथ राज्य विधान सभा के चुनाव भी कराये जा सके।

इससे पूर्व 1967 के चुनावो के बाद स्वतन्त्र जन काग्रेस का मिला जुला मत्रिमडल श्री आर.एन. सिह देव के नेतृत्व मे सत्ता मे आयी थी। लेकिन मुख्यमत्री श्री आर.एन सिंह देव ने सभा मे पूर्व बहूमत का दावा किया था और तिधान सभा मे बहुमत सिद्ध करने के लिये तैयार थे, लेकिन साथ ही उन्होने यह भी स्वीकार किया था कि जन काग्रेस द्वारा समर्थन वापस ले लने के कारण राज्य मत्रिमडल मे अर्न्तकलह व्याप्त हो गया था लेकिन श्री देव ने इस्तीफा देने से इनकार कर दिया था उनका कहना था कि उनकी अल्पमत सरकार तब तक अपने पद पर बनी रहेगी जब तक उन्हे विधान सभा से बाहर नही फेक दिया जाता[2] इस प्रकार मुख्यमत्री द्वारा जो कि जन क्राग्रेस द्वारा समथन वापस लिये जाने के कारण अल्पमत मे आ गये थे के द्वारा इस्तीफा देने से इनकार करने के कारण सवैधानिक विवाद उत्पन्न हो गया था।

उडीसा की विधान सभा की बैठक 15 जनवरी को बहुमत सिद्ध करने व राज्य का आगामी वजट पेश करने हेतु बुलायी गयी थी। स्वतन्त्र पार्टी के 140 सदस्यीय सदन मे अध्यक्ष को लेकर 49 सदस्य थे। लेकिन इस सदन में पूर्ण समर्थन की आशा ना देखते हुए श्री सिंहदेव ने 9 जनवरी को हा अपना इस्तीफा राज्यपाल डॉ एस.एस. असारी को सोप दिया था, साथ ही

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 6 जनवरी 1971

2 फ्रैक्श्नल पॉलिटिक्सय इन इण्डिया, जे के महापात्रा पृष्ठ 165 चुग पब्लिकेशन इलाहाबाद 1985

श्री देव ने राज्यपाल से विधान सभा भग कर राज्य म लोकसभा चुनावो क साथ चुनाव कराने की सिफारिश की थी[1]

लेकिन राज्यपाल ने मुख्यमत्री द्वारा भग करने की सिफारिश नही स्वीकार की गयी[2] क्योकि उनका विचार था कि ऐसी सलाह तभी स्वीकार की जा सकती ह जबकि राज्य मे कोई वेकल्पिक सरकार वनाने की सम्भावना ना हो लेकिन विभिन्न दलो से विचार विमर्श क बाद राज्यपाल डॉ असारी इस निष्कर्ष पर पहुचे कि राज्य म नयी सरकार के गठन तक विधान सभा निलम्बित रखी जाये और उसी दिन उडीसा अनु 356 के तहत राष्ट्रपति शासन के अधीन कर दिया गया, लेकिन राज्यपाल अतत इस निष्कर्ष पर पहुच कि राज्य म पुन नये मत्रिमण्डल का गठन सभव नही ह अत राज्य विधान सभा भग करने का निर्णय ले लिया गया, वास्तव मे यह निर्णय राज्य मे सरकार की वर्खास्तगी के बाद प्रशासनिक शून्यता को दूर करने के लिये लिया गया था। राष्ट्रपति को भेजी अपनी रिर्पोट मे राज्यपाल ने कहा था कि वे इस बात से सतुष्ट है कि राज्य मे कोई विकल्प की सरकार बनने की सभावना नही ह। अत राज्य मे सभा भग कर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाय। राज्य विधान सभा 23 जनवरी को भग कर दी गयी। इस प्रार 11 जनवरी को जारी उद्घोषणा का प्रतिसहार कर दिया गया तथा 23 जनवरी को नयी उद्घोषणा जारी की गयी, जिसके द्वारा राज्य विधान सभा को भग कर दिया गया। उसी दिन राज्य मे मध्यावधि चुनाव की घोषणा भी कर दी गयी जो कि 5 मार्च 1971 को लोक सभा के चुनावो के साथ होने थे।

---

1 आज 10 जनवरी 1971

2 वास्तव म राज्यपाल ने सभा भग ना करने की मुख्यमत्री की सिफारिश इस आधार पर नही मानी थी क्योकि सत्तारूढ़ काग्रेस विधायक दल के हरे कृष्ण महताब न बहुमत का समर्थन का दावा किया था उल्लेखनीय है कि सर्वोच्च न्यायालय का भी विचार है कि ससद की मजूरी के बाद ही सभा भग की जानी चाहिय एआईआर 1993

जनवरी 1971 को जारी किया गया राष्ट्रपति शासन 3 अप्रैल 1971 को चुनावो के बाद समाप्त कर दिया गया जबकि नवगठित उडीसा सयुक्त मोर्चा की विधायी पार्टी के नेता श्री विश्वनाथ दास ने मुख्यमंत्री पद ग्रहण किया[1]

उडीसा 1973

14 मार्च 1971 मे उडीसा विधान सभा के लिये सम्पन्न हुये चुनावो मे पुन कोई भी दल पूर्ण बहुमत प्राप्त करने मे असफल रहा। 140 सदस्यीय सदन म विभिन्न दलो की स्थिति निम्न प्रकार से थी

| | |
|---|---|
| *काग्रेस* | *51* |
| *स्वतन्त्र पार्टी* | *37* |
| *उत्कल काग्रेस* | *31* |
| *प्रजा सोशलिस्ट* | *4* |
| *सी पी आई* | *34* |
| *झारखण्ड* | *4* |
| *सी पी आइ एम* | *2* |
| *काग्रेस (ओ)* | *1* |
| *जन काग्रेस* | *1* |
| *निर्दलीय* | *4*[2] |

उडीसा चुनावो के परिणाम एक बार पुन गठवन्धन की सरकार बनने की सभावना बनाने थे। राज्य चुनावो के परिणमो को देखते हुये उड़ीसा के राज्यपाल डॉ एस एस असारी ने सबसे बडे दल के सिद्धान्त के आधार पर काग्रेस को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया[3]

---

1 एशियन रिकाडर 1-7 जुलाई (1856) 1971

2 दि टाइम्स आफ इण्डिया, 18 मार्च, 1971

3 सबसे बड़े दल के सिद्धान्त के आधार पर सरकार बनाने की परम्परा की शुरूआत 1952 म मद्रास से हुयी। पुन 1967 म राजस्थान मे इसका उदाहरण प्राप्त होता है जबकि तत्कालीन राज्यपाल डॉ सम्पूर्णानन्द ने बहुमत के सबध म अपना अनुमान लगाते समय निर्दलीय विधायको की गिनती करने से इनकार कर दिया था काग्रेस को जब की बहुमत म नही थी सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया था।

लकिन काग्रस पार्टी उत्कल काग्रेस का अपने दल मे पहले विलय करना चाहता थी उसक बाद राज्य सरकार बनाने के लिये उत्सुक थी।

लेकिन उत्कल काग्रेस के नेता श्री बीजू पटनायक ने विलय की सम्भावना से इन्कार कर दिया आर कहा कि उनकी पार्टी राज्य मे काग्रेसी सरकार का समर्थन करेगी यदि राज्य मे श्रीमती नन्दनी सत्पथी के नेतृत्व मे सरकार बने।

प्रादेशिक सत्तरूढ काग्रेस के सयोजक श्री विनायक आचार्य न काग्रस के नेतृत्व वाले किसी सयुक्त मत्रिमण्डल के लिये किसी प्रकार की सोदेबाजी से इनकार किया। यदि राज्य मे सयुक्त सरकार नही बन पाती तो वे विपक्ष मे बेठना पसद करेगे लेकिन उन्ह दल बदल स्वीकार नहीं ह।

काग्रेस विधायक दल के नेता डॉ हरे कृष्ण मेहताव, जिन्हाने 140 सदस्यीय सदन म बहूमत क समर्थत का दावा किया था कहा कि यदि सबसे बड़े दल के नेता क रूप मे सरकार बनाने के उनक अधिकार को चुनौती दी गयी तो उनकी पार्टी राज्य म दुबारा चुनाव कराना पसद करेगी। उत्कल काग्रेस के अध्यक्ष श्री नीलमणि रावत राव ने डॉ मेहताब की राज्य मे स्थायी सरकार बनाने मे सहयोग देने के अनुराध को अस्वीकार कर दिया। उडीसा के राज्यपाल डॉ एसएस असारी ने राज्य मे किसी दल द्वारा सरकार बनाने की स्थिति मे न होने के कारण राज्य मे राष्ट्रपतिशासन की सिफारिश कर दी।

राज्यपाल ने राष्ट्रपति को भेजी गयी अपनी रिपोर्ट मे कहा कि राज्य मे जबकि वर्तमान म राष्ट्रपति शासन लागू हे पुन कुछ समय के लिए राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाय क्योकि इससे उन्हे मत्रिमण्डल के गठन की सभावना का पता लगाने मे महूलियत होगा। इस प्रकार राज्य मे 11 जनवरी से जारी राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा जिसकी अवधि 23 मार्च को समाप्त होनी थी पुन 24 मार्च से राष्ट्रपति शासन लागू करने क लिय नयी उद्घोषणा जारी की गयी

दूसरी तरफ 24 मार्च, 1971 को उत्कल काग्रेस' स्वतन्त्र पार्टी व झारखण्ड के सयुक्त मोर्चे ने श्री विश्वनाथ दास के नेतृत्व मे सरकार बनाने का दावा पेश किया था। जो कि उस समय किसी सदन के सदस्य नहीं थे न ही किसी दल से सम्बद्ध थ।

3 अप्रल 1971 को राज्यपाल ने सयुक्त मोर्चे को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया क्योकि सयुक्त मोर्चे को 140 सदस्यीय सदन मे 72 सदस्यो का समर्थन प्राप्त था जिसमे 3 सदस्य निर्दलीय थे।

लेकिन जून 7, 1972 को उड़ीसा मे सत्तारूढ सयुक्त मोर्च की सरकार गिरने की सम्भावना तव उत्पन्न हो गयी थी जवकि तत्कालिन सत्तारूढ सयुक्त मोर्चे के मत्री श्री गविसिह माझी ने त्याग दे दिया था, जिससे मोर्चे के समर्थको की सख्या घटकर 68 हो गयी थी। जिसमे 6 स्वतन्त्र पार्टी के और 3 उत्कल काग्रेस के थे।[1]श्री माझी ने राज्यपाल से मिलकर उन्हे सूचित किया था कि वे विकल्प की सरकार को समर्थन देने को तैयार ह। काग्रेस पार्टी के नेता श्री आरएन सिह देव और उत्कल काग्रेस के श्री जीजू पटनायक ने विधान सभा की बैठक बुलाने की माग कर रहे थे। उड़ीसा के सदन के विपक्ष के नेता श्री विनायक आचार्य जो कि काग्रेस के थे, ने राज्यपाल श्री जोगिन्दर सिह से सयुक्त मोर्च की सरकार को तुरत बर्खास्त करने की माग की थी जिससे राज्य म लोकप्रिय सरकार बनाने के लिये मार्ग प्रशस्त हो सके। उन्होने राज्यपाल से कहा कि सयुक्त मोर्च की सरकार सदन मे अल्पमत मे है, अत उसने सत्ता मे रहने का सवेधानिक अधिकार खो दिया हे।

मुख्यमत्री श्री विश्वनाथ दास ने स्वय राज्यपाल से शीघ्र ही गठबन्धन की सरकार समाप्त कर काग्रेस द्वारा सरकार बनाने का प्रस्ताव रखा था।

9 जून को काग्रेस के श्री विनायक आचार्य ने सरकार बनाने का दावा पेश किया उन्होने 140 सदस्यीय सदन मे 72 सदस्यो को समर्थन की सूची राज्यपाल को सौपी थी।काग्रेस के तत्कालिन अध्यक्ष डॉ शकर दयाल शर्मा ने कहा कि राज्य मे उत्पन्न मत्रिमण्डलीय विवाद के कारण राष्ट्रपति शासन की आवश्यकता कतई नही है। उनकी पार्टी राज्य म विश्वसनीय सरकार बनाने की स्थिति मे है जो कि प्रगतिशील और सही सोच वाल विधयको द्वारा समर्थित होगा। उनका विचार था राज्यपाल को सामयिक परिस्थितियो को ध्यान म रखते हुये निर्णय करना चाहिये।

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 8 जून 1972

इसी के तत्काल बाद जून 11 1971 को मुख्यमंत्री श्री विश्वनाथ दास ने अपना इस्तीफा राज्यपाल श्री जोगिन्दर सिह को साप दिया। राज्यपाल ने उनसे वैकल्पिक व्यवस्था न होने तक पद पर बने रहने का अनुरोध किया।

कांग्रेस ने जून 13, 1972 को श्रीमती नन्दनी सत्पथी को कांग्रस विधायक दल का नेता चुना जो कि तत्कालिन प्राधान मत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी द्वारा नियुक्त की गयी थी और इस प्रकार 14 जून को श्रीमती सत्पथी ने राज्य का मुख्यमंत्री पद ग्रहण किया । जिन्हे उत्कल काग्रेस स्वतन्त्र दल ओर झारखण्ड पार्टी के 3 सदस्यो का समर्थन प्राप्त था।

उडीसा म हुये इस परिवर्तत पर काग्रेस ओ के श्री सादिक अली ने कहा कि दल बदल विरोधी कानून तुरन्त बनाये जाने की माग की, क्योकि उड़ीसा म जो कुछ भी घटित हुआ ह वह इसी कमी के कारण हो सका है। उन्होने कहा कि इस घटना क बाद देश मे सत्तारूढ़ होने क बाद उसे अपने अस्तित्व बनाये रखने के लिये परेशानिया का सामना करना पड़ता ह। उन्होने आग कहा कि केन्द्रीय सत्तारूढ़ दल ने दल बदलुओ के लिये जिस प्रकार अपनी पार्टी का दरवाजा खुला छोड दिया हे जिससे ता वास्तव मे बहुत बडा उग्रवादी सगठन बन गया ह। उन्होने प्रश्न किया कि क्या इस रास्ते पर चलकर हम भारत म प्रजातन्त्र का सुरक्षित रख पायग।

स्वतन्त्र पार्टी के श्री देव ओर उत्कल के श्री पटनायक ने प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी से प्रश्न किया कि काग्रेस ने जो दल बदलुओ द्वारा समर्थित अल्पसख्यक व अस्थिर सरकार बनायी ह क्या वह उचित कृत्य है। उन्होने कहा यह वहुत महत्वपूर्ण प्रश्न ह ना केवल उडीसा के विषय मे अपितु सारे देश के सम्बन्ध मे भी महत्वपूर्ण ह।

राज्यपाल श्री जत्ती ने विपक्ष क नेता श्री विनायक आचार्य (काग्रसी)को सरकार बनाने की सभावना पर विचार विमर्श के लिये बुलाया। व 13 जून 1973 को प्रधानमत्री इदिरा गाधी द्वारा केन्द्रीय सूचना मत्री श्रीमती नन्दनी सत्यपथी को राज्य विधायक दल के नेता के रूप मे राज्य म भेजा गया व 14 जून को उन्होने राज्य के मुख्यमत्री पद की शपथ ली जिन्होने 94 सदस्यो के समर्थन का दावा किया था।[1]

लेकिन सरकार बनने के बाद सत्तारूढ़ काग्रेस (आई) ने उत्कल काग्रस के 32 सदस्यो म स कुछ सदस्यो को सरकार म लने से इनकार कर दिया। जिन सदस्यो का प्रवेश लेने से

---

1 एशियन रिकार्डर पूर्वाधृत

इनका किया गया था उनमे से श्री बीजू पटनायक भी थे जो उत्कल काग्रस के उध्यक्ष भी थ आर उडीसा के भूतपूर्व मुख्यमत्री भी रह चुके थे।[1]

श्रीमती सत्पथी जिनका कोई राजनेतिक आधार नही था। काग्रेस (आई) विधायक दल क सदस्यो पर नियत्रण करने म असमर्थ हो रही थी, विशेषकर मेहताब को, क्योकि राज्य सरकार न्यायाधीश सरोज प्रसाद जॉच आयोग की रिपोर्ट के आधार पर श्री मेहताव क खिलाफ कार्यवाही करने के लिये दृढसकल्प थी, जिसमे श्री मेहताब पर भ्रष्टाचार क आरोप लगाये गये थे, जबकि वो राज्य के मुख्यमत्री थे।[2]

इस प्रकार काग्रेस विधायक दल से 25 सदस्यो के पृथक होने आर बीजू पटनायक क प्रगति दल म शामिल होने से श्रीमती सत्पथी की सरकार ने अपना इस्तीफा दे दिया व राज्यपाल को विधान सभा भग करने का सुझाव दिया।

अपने त्याग पत्र देने के वाद सत्पथी ने कहा कि राज्य म भ्रष्टाचार का बोल वाला होने आर प्रशासकीय अनाचित्य के कारण उडीसा की राजनीति त्रिवादित हो गयी ह।मुख्यमत्री के अनुसार उन्होने राज्यपाल को विधान सभा भग करने की सलाह इसलिये दी जिससे प्रगतिशील कार्यक्रमो को लागू करने के लिये स्पष्ट जनादेश प्राप्त किया जा सके जो राज्य की समस्याओ के समाधान का मार्ग है।[3]

प्रगतिवादी पार्टी के श्री बीजू पटनायक तथा अन्य पाच प्रमुख सदस्यो ने राज्यपाल से प्रगति दल की वेकल्पिक सरकार बनाने की माग की थी। उनके अनुसार यही एकमेव सवधानिक मार्ग था।

इस प्रकार मार्च 3, 1973 को राज्यपाल श्री बीडी जत्ती न राज्य विधान सभा भग करने के सुझाव को स्वीकार करते हुये राष्ट्रपति शासन की सस्तुति कर दी। राज्यपाल न अपनी रिपोर्ट मे उन राजनीतिक घटनाओ का उल्लेख किया था जिसक परिणाम स्वरूप सत्पथी मत्रिमण्डल को त्याग पत्र देना पड़ा था।[4]

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया', 16 जून, 1973

2 एशियन रिकार्डर वही

3 एशियन रिकार्डर अप्रेल 9-15, 1973 (11325)

4 पूर्वाधृत

राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट मे कहा था कि राज्य की वतमान राजनीतिक स्थिति को देखते हुये प्रगति विधायक दल की सरकार बनाने के दावे को स्वीकार नही किया जा सकता।

## गज्यपाल की रिपोर्ट

उडीसा के राज्यपाल श्री बीडी जत्ती ने अपनी रिपोर्ट प्रेषित करते हुये कहा कि उन्हाने प्रगति पार्टी के श्री बीजू पटनायक को सरकार बनान क लिय आमत्रित नही किया। उन्हाने कहा कि विधान सभा भग करने की सिफारिश करने से पूर्व उन्होने श्री पटनायक द्वारा प्रस्तुत किये गये दावे की विस्तृत पडताल की[1] आर उनके विचार मे यह सरकार बहुत समय तक स्थिर नही रह सकती थी। श्री पटनायक ने 72 सदस्यो के समर्थन की बात कही थी उनमे से दो ने कुछ घण्टे बाद ही समर्थन वापस लेने की बात कही थी। राज्यपाल का विचार था कि 140 सदस्यीय सदन मे केवल 70 सदस्या के समर्थन स श्री पटनायक गज्य मे स्थायी सरकार बनाने म असमर्थ हाते। साथ ही बहुत से अन्य दल जसे सीपीआई(एम) झारखण्ड ओर निर्दलीय सदस्यो जिनके समर्थन दा श्री पटनायक न दावा पश किया था, ने भी लिखित समर्थन नही पेश किया था।[2]

राज्यपाल ने आगे अपनी रिपोर्ट मे कहा था कि राज्य म राजनीतिक अस्थिरता का देखते हुये नये चुनाव कराना आवश्यक था क्योकि राज्य मे दल वदल पिछले दो साला म काफी वट गया था। 16 सदस्य जो वास्तव मे पहले उत्कल काग्रेस के थे उन्होने पहले काग्रेस ग्रहण की थी ओर फिर प्रगति पार्टी से जुड़ गये थे। पाच अन्य जो स्वतन्त्र म पहले काग्रेस मे गये थे फिर प्रगति पार्टी से जुड़ गये थे। पाच अन्य जो स्वतन्त्र के टिकट से चुने गये थे, पहले काग्रेस मे गये थे फिर प्रगति पार्टी मे शामिल हो गये थे आर इस प्रकार की परम्परा को विकसित करना प्रजातन्त्र के लिये हानिकारक है।[3]

---

1 पूर्वोक्त

2 कीजिग कन्टम्परी आर्चिव्स, मई 21-27, 1973

3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 2 मार्च, 1973

राज्यपाल ने राष्ट्रपति को दो रिपोर्ट भेजी एक प्राथमिक जिसम राज्य की स्थितिया का उल्लेख किया गया था, दूसरी/अंतिम जिसमे विधान सभा भग कर राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश की गयी थी।[1] राष्ट्रपति ने 3 मार्च, 1973 को उद्घोषणा पर हस्ताक्षर कर दिये जिससे तुरत राज्य म राष्ट्रपति शासन लागू हो गया। राज्य प्रशासन का अधिकार राज्यपाल श्री बी डी जत्ती के सुर्पुद कर दिया गया।[2]

## विभिन्न दलो की प्रतिक्रियाये

जन सघ के श्री अटल विहारी वाजपेयी ने राज्य विधान सभा भग किये जाने की आलोचना की। उन्होने कहा कि राज्यपाल को विपक्ष को सरकार बनाने के लिए आमत्रित करना चाहिये था। उन्होने केन्द्र पर आरोप लगाया कि राज्य म राष्ट्रपति शासन लगाये जाने का षडयन्त्र किया गया क्योकि काग्रेस दल किसी गेर काग्रेसी शासन के पक्ष म ही नही था।[3] उडीसा के ससोपा मत्री श्री सतोष चन्द्र ने श्री वाजपेयी का समर्थन करते हुये कहा कि विकल्प की सरकार के लिये विपक्ष को आमत्रित करना चाहिये था।[4]

सोशलिस्ट नेता श्री समरेन्द्र कुन्दु ने कहा कि काग्रेस सरकार दल बदल से बनी थी आर उसी से उसका अत हो गया था। मुख्यमत्री को विधान सभा म अपनी पराजय का अहसास हो गया था इसीलिये उन्होने अपना इस्तीफा द दिया। उन्होने आगे कहा कि विपक्ष को अवसर दिये बिना विधान सभा भग करने की मुख्यमत्री की सलाह मानकर राज्यपाल श्री बी डी० जत्ती ने अवैधानिक तथा अलोकतान्त्रिक काम किया है।

निर्दल विधायक श्री राधानाथम् ने कहा कि दल बदलुओं को मिलाकर जब काग्रस सरकार का विस्तार किया गया था तो यह स्पष्ट हो गया था कि यह सरकार टिकाऊ नही होगी ओर काग्रेस को राज्यपाल को विधान सभा भग करने की सलाह तभी देनी चाहिये थी।[5] राज्यपाल मे प्रगति पार्टी ने राज्य मे राष्ट्रपति शासन सबधी उदघोषणा को

---

1 वही

2 वही, 4 मार्च, 1973

3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया', 2 मार्च, 1973

4 वही

निराशाजनक बताया तथा इसे भारत सरकार की खुली अलोकतात्रिक एवं असंसदीय कार्यवाही बताया। श्री पीलू मोदी ने इसे लोकतंत्र का खुला उल्लंघन बताया।[1] राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने का विरोध करते हुये समस्त विपक्ष ने राज्य सभा म बहिर्गमन कर दिया। केवल कम्युनिस्ट पार्टी ने इसमे हिस्सा नही लिया था। विपक्ष ने उडीसा म राष्ट्रपति शासन लागू करने की कार्यवाही का असवैधानिक ओर अवैध बताया था। स्वतन्त्र दल के श्री लोकनाथ मिश्र जो कि उडीसा के ही थे, ने राज्यपाल पर सविधान क साथ जालसाजी का आरोप लगाया। उन्होने कहा कि यह खेद की बात हे कि उडीसा विधान सभा म बहुसख्यक दल की सरकार बनाने का अवसर नहीं दिया गया। सदन मे बहुमत खोने के बाद राज्यपाल श्री जत्ती ने श्रीमती सत्पथी की सिफारिश स्वीकार कर ली। ससार म कहा भी विधान सभा म अल्पसख्यक दल का नेता सदन के भग की सिफारिश नहीं कर सकता जसा कि उडीसा म किया गया।

जनसघ के श्री लालकृष्ण आडवानी ने इसे प्रजातन्त्र का जघन्य हत्या बताया जिसमे राज्यपाल व केन्द्रीय सरकार लिप्त थी जो कि बहुत दुर्भाग्यपूर्ण बात है।[2] प्रगति पार्टी के श्री बीजू पटनायक तथा 74 अन्य लोगो ने राज्य मे विधान सभा भग कर राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने के राष्ट्रपति के अधिकार को चुनोती देते हुये उडीसा उच्च न्यायालय म भारत के खिलाफ याचिका दायर कर दी।जिसमे कहा गया था कि अनुच्छेद 356 व 361 के अन्तगत जो उद्घोषणा की गयी थी वह न्यायसगत नही थी।

न्यायालय ने यद्यपि इस याचिका को विचार हेतु स्वीकार कर लिया लेकिन उद्घोषणा को रद्द करने सबधी आदेश देने से इनकार कर दिया।[3] न्यायालय ने अपने निर्णय म राज्यपाल श्री बी डी जत्ती की आलोचना करते हुये कहा कि जब राज्य के मुख्यमत्री ने अपना त्याग पत्र राज्यपाल को सोप दिया ऐसी स्थिति मे राज्यपाल का कर्तव्य था कि वह विधान सभा म बहुमत प्राप्त दल के नेता को सरकार बनाने के लिये आमत्रित करे। अत

---

? पूर्वाश्चल 4 मार्च, 1973

1 पूर्वाश्चल, 6 मार्च 1973

2 ए.आइ.आर. उडीसा, 1974 'विजयानन्द पटनायक–बनाम भारतसघ' 1974 53

3 दि टाइम्स ऑफ इंडिया

राज्यपाल द्वारा विपक्षी नेता को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित न कर राज्य म राष्ट्रपति शासन लागू करने का निर्णय उचित नही था क्योकि राज्यपाल ने स्वय अपनी रिपोट म यह स्वीकार किया ह कि 140 सदस्या की सभा मे प्रगति पार्टी को 70 सदस्या का समर्थन प्राप्त था। राष्ट्रपति ने भी राज्यपाल की रिपोर्ट को स्वीकार किया था। चूँकि प्रगति पार्टी क नता राज्यपाल से राज्य मे सरकार बनाने के लिये उन्हे अवसर प्रदान करने का अनुरोध किया था। झारखण्ड के (1) सीपीआई क (1) व निर्दलीय के (1) विधायक ने भी प्रगति पार्टी को सहयोग देने का शपथ पत्र प्रस्तुत किया था जिसमे यह स्पष्ट किया गया था कि यदि राज्य म प्रगति पार्टी के नता को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया जाता ह तो व सहयोग देगे। इस प्रकार प्रगति पार्टी ने 76 सदस्या के बहुमत का दावा किया था अत राज्यपाल की रिपोर्ट गलत तथ्यो पर आधारित थी तथा दुर्भावनापूर्ण थी।[1]

यह उद्घोषणा इस आधार पर नही की गयी थी कि प्रगति पार्टी को विधान सभा म बहुमत का समर्थन प्राप्त ह या नही वरन इस आधार पर की गयी थी कि प्रगति पार्टी राज्य मे सरकार बनाती है तो यह सरकार स्थायी नही होगी आर न ही लम्बे समय तक चल सकती थी, अर्थात राज्य म राष्ट्रपति शासन इस आधार पर लागू किया गया कि राज्य म प्रगति पार्टी यदि सरकार बनाती हे तो भविष्य मे ऐसी सम्भावना ह कि वह सरकार ठीक प्रकार से अपने उत्तरदायित्वो का निर्वाह नही कर पायेगी तथा ऐसी स्थिति म राज्य म सविधान के प्रावधानो के अनुरूप शासन चलाना सभव नहीं हे।[2]

वास्तव मे राज्यपाल को यह देखने का कार्य नही होता कि वह यह देखे की बनने वाली सरकार स्थिर होगी या नही। जैसा कि इस सम्बन्ध म सरकारिया आयोग का भी विचार ह कि राज्यपाल को विधान से बाहर अपने स्वय के विवेक पर बहुमत समर्थन के निर्धारण सबधी मामल का जोखिम नही लेना चाहिये। उसके लिये विवेकपूर्ण प्रक्रिया या वही होगी जिसमे सदन म वह विरोधी दला की परीक्षा करने के कारण उत्पन्न करे।[3]

---

1 ए.आई.आर. 1974 पूर्वोधृत P 53

2 एशियन रिकाडर अप्रल 9-15 1973, पृष्ठ 11325

3 क. मथ्यू कुरियन आर पी.एम वर्गीस- केन्द्र राज्य सबध, प्र मेकमिलन इण्डिया लिमिटेड (नया दिल्ली) पृष्ठ 109

वास्तव म राज्यपाल द्वारा पूर्वाग्रह के आधार पर यह मत बना लना कि राज्य विधान सभा म बहुमत प्राप्त दल को केवल इस आधार पर सरकार बनाने का अवसर नहीं प्रदान करना कि वह अस्थिर कार्यकाल वाली सिद्ध होगी अनुच्छेद 356 का मजाक है ऐसा किया जाना निश्चित ही सविधान की सघीय व्यवस्था तथा राज्य की स्वायत्तता का मजाक ह साथ ही यह अधिकार केन्द्रीय सरकार म निहित करना वास्तव म सारी परम्पराओ तथा सघीय व्यवस्था को अमान्य करने वाला ह ।[1]

सविधान सभा मे पडित हृदय नाथ कुजरू ने राज्या पर केन्द्रीय कार्यपालिका के नियत्रण क खिलाफ चेतावनी दी थी जिसके कारण देशम तानाशाही आ सकती थी।[2] उनका विचार था कि इस धारणा से पूरी तरह मुक्त कर लेना चाहिये कि केन्द्रीय कार्यपालिका की इच्छा का पालन करने मे राज्यपाल का इस्तेमाल किसी तरह से किया जा सकता ह। न्यायालय का विचार था कि विचाराधीन मत्रिमण्डल के स्थायित्व की जॉच विधायको से पूर्ववार्ता आर तत्कालीन आचरण की पडताल द्वारा नही अथवा प्रगति पार्टी या साझा सरकार के घटका की विचारधाराओ द्वारा नहीं वरन सदन मे ही प्रत्यक्ष रूप से हाथो को गिनकर की जानी चाहिये।[3] आर यदि प्रगति पार्टी चालू सदन म अपना बहुमत सिद्ध करने मे असफल रहता तो मत्रिमण्डल स्वय गिर जाता आर यदि वकल्पिक सरकार सभव नही होता तो राज्यपाल राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर सकता था।

याचिका म आरोप लगाया गया था कि स्पष्ट रूप से राज्यपाल ने विधान सभा भग करन का फसला या केन्द्र सरकार के अधिकारियो के निर्देशो के तहत अपनाया था अथवा कथित अधिकारियो की कृपा आर सदृश्यता प्राप्त करने के उद्देश्य से।

उच्च न्यायालय का मत था कि राज्यपाल ने उन सुनिश्चित मान्य परम्पराओ की अवहलना की थी जो ग्रेट ब्रिटेन मे प्रचलित थी। जोकि वहा मत्रिमण्डल के गठन म अपनाया

---

1 स व. रि परा 4 11 07 भाग I

2 सा एडी वाल्यूम XVI न 4 1949

एआइ आर पूर्वाधृत

जाता ह। वरन् सत्य को नजर अदाज करत हुये इसके विपरीत काम किया।[1]ग्रट ब्रिटेन म निम्न परम्पराय प्रचलित ह

1 कामन्स सभा मे बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमत्रा तथा उसके सहयोगियो को मत्री बनाया जाता है।

2 निम्न सदन मे यदि किसी मत्रिपरिषद की हार हो जाती ह,ता नयी सरकार बनेगी।

3 सरकार का सदन का विश्वास रखने मे अथवा त्याग पत्र देने पर क्राउन का कत्तव्य बनता ह कि वह विपक्षी दल को सरकार बनाने के लिये बुलाय।[2]

4 विपक्षी नेता को बुलाने से पूर्व राजसत्ता को किसी से भी विचार विमर्श करने का अधिकार नही होता।

5 रानी दलीय राजनीति मे नही पडेगी यह निष्पक्ष रूप से उसके कार्या से परिलक्षित होना चाहिय।

6 क्राउन को साधारण तार पर मत्रिपरिषद की प्रार्थना पर ही विधान सभा भग करने की अनुमति देनी चाहिये।[3]

लेकिन न्यायालय का विचार था कि इन परम्पराओ को न्यायालय द्वारा जबरदस्ती नही मान्य करवाया जा सकता।

## राज्यपाल ने निम्न आधारो पर परम्पराओ को मान्यता नही दी

1 जब श्रीमती सत्पथी ने अपने मत्रिमण्डल का इस्तीफा राज्यपाल को सोप दिया था तब राज्यपाल को विपक्षी दल के नेता को बिना उसकी शक्ति की परीक्षा किये ही सरकार बनान के लिये आमत्रित करना चाहिये था।

---

1 ए.आइ.आर. पूर्वाधृत पृष्ठ 54 उडासा, 1974

2 High constitutional authorities have laid down that the ministry would only command the majority in the legislature and not a Stable majority – constitutional Law by keith, 7th Edt page 4 5

3 It the Government has a majority and so long as that majority holds together The House does not control the government but the Government controls the House 'Sir Ivor Jennisg's 'Cabnet Government 3rd Education Page 18

2 यदि राज्यपाल इस बात की सतुष्टि चाहता था कि प्रगति पार्टी का सदन म बहुमत का समथत प्राप्त ह या नही तो उसे इसकी जाच के लिय सदन की बेठक बुलाना चाहिये थी।

3 विचाराधीन मत्रिमण्डल के स्थायित्व की जाच विधायको के पूर्ववर्ती आर तत्कालिन आचरण की पडताल द्वारा नही की जानी चाहिये थी अथवा प्रगतिपार्टी या साझा सरकार के घटको की विचारधाराओ द्वारा नही, वरन सदन म ही प्रत्यक्ष रूप मे हाथो को गिनकर की जानी चाहिये थी।

4 आर यदि प्रगति पार्टी सदन मे अपना बहुमत सिद्ध करने से असफल होता ह तो मत्रिमण्डल स्वय गिर जाता ओर वैकल्पिक सरकार सभव न होती तो राज्यपाल राज्य म राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर देता

5 राज्यपाल को विपक्षी दल के नेता को सरकार बनाने के लिये आमत्रित ना कर अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू करने का निर्णय स्वय उसके द्वारा लिया जाना चाहिये था ना कि मत्रिमण्डल की सलाह के आधार पर।

लेकिन न्यायालय ने अपने निर्णय मे याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि राज्यपाल द्वारा परम्पराओ का पालन न करने का प्रश्न न्यायालय के विचार का आधार नही बनाया जा सकता। राज्यपाल के विरुद्ध दुरुपयोग का आरोप उसकी अनुपस्थिति मे विचारणीय नही ह। राज्यपाल द्वारा सदन को मार्च 1973 से स्थगित कर देना उसके सवधानिक अधिकारो क अनुसार ही ह। अनुच्छेद 356 मे जो विस्तृत आधार दिया गया है, उससे यही सकेत मिलता ह कि राष्ट्रपति की सतुष्टि न्यायिक क्षेत्र के अधीन नही आती।[1] साराशत यह याचिका न्यायिक क्षत्र के बाहर ह अत विचार योग्य नही ह इस आधार पर न्यायालय ने इसे रद्द कर दिया।

इस प्रकार मार्च 1973 को लगाये गये राष्ट्रपति शासन की समाप्ति मार्च 1974 को हुयी जबकी राज्य विधान सभा चुनावो के बाद काग्रेस (आई) 69 स्थान प्राप्त कर

1 ए आइ आर पृष्ठ 70 पूर्वोधृत

सबसे बड़े दल के रूप उभरी और राज्य मे श्रीमती नन्दनी सतपथी ने कम्युनिस्ट पार्टी के सात सदस्या के सहयोग से राज्य म मत्रिमण्डल का गठन कर लिया।[1]

लेक्नि विधान सभा के उद्घाटन सत्र मे ही हाथापाई होने लगी जब प्रगति दल के मोच जिसम उत्कल काग्रेस, पीएसपी स्वतन्त्र दल सम्मलित थे, के 57 सदस्य थे, ने राज्यपाल क अभिभाषण का विरोध किया क्योकि विपक्षी दल राज्यपाल द्वारा श्रीमती सतपथी की सरकार बनाने के लिये आमत्रित किये जाने का विरोध कर रहे थे। राज्यपाल अपने अभिभाषण का केवल कुछ अश ही पढ पाये और उपद्रवी सभा को छोड़कर चले गये।

इस प्रकार उडीसा मे पुन केवल 10 दिनो के लिये 16 दिसम्बर 1976 को राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था।[2]क्योकि सत्तारूढ़ काग्रेस पार्टी के मतभेदा तथा मत्रिमण्डल के गुटबदी के कारण राज्य मे राजनैतिक अस्थिरता व्याप्त हो गयी थी। जिसका प्रभाव प्रशासन तथा कानून व्यवस्था की स्थिति पर पड़ा था। राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट मे असाधारण स्थिति से निपटने के लिये राज्य मे राष्ट्रपति शासन की सिफारिश की थी। जिसमे कहा गया था कि राज्य का शासन सविधान के अनुसार नही बुलाया जा रहा है। अत विधान सभा को कुछ समय क लिये निलम्बित रख कर राष्ट्रपति शासन लागू किया जाय

---

1 राज्यो मे राष्ट्रपति शासन, लोक सभा सचिवालय–1991, पृष्ठ–63

2 पूर्वाधृत राज्यो म राष्ट्रपति शासन पृष्ठ 64

# अध्याय 5

## न्यायालय और राष्ट्रपति शासन

# न्यायालय और राष्ट्रपति शासन

राज्यो म राष्ट्रपति शासन लगाये जाने सवधी केन्द्र के अधिकार को चुनोती सर्वप्रथम मर्वाच्च न्यायालय म 1977 को दी गयी,[1] जबकि 1977 म पहली बार कन्द्र म सत्तारूढ हुइ जनता पार्टी सरकार द्वारा काग्रेस शासित ना राज्या के मुख्य मत्रिया को सलाह दी गयी कि वे अपन-अपन राज्य के राज्यपालो को राज्य विधान सभा भग करने की सलाह द।[2] लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने इस सबध म दायर की गयी याचिकायो को यह कह कर रद्द कर दिया था कि उक्त मामले का न्यायिक पुनरावलोकन नही किया जा सकता, क्योकि राष्ट्रपति की व्यक्तिगत सतुष्टि को न्यायिक निर्णय का आधार नही बनाया जा सकता।[3] इस सबध म न्यायालय का विचार था कि इस प्रकार के राजनीतिक मामला म न्यायालय का हस्तक्षेप अनुचित ह। इस प्रकार न्यायालय ने अपने निर्णय द्वारा कार्यपालिका से सभावित टकराव से बचने की कोशिश की थी। लकिन माच 1994 का सर्वाच्च न्यायालय ने पूर्व मे दिये गये अपने फसल का उलटते हुये ये निर्णय दिया कि यदि राष्ट्रपति शासन राजनतिक दुर्भावना के आधार पर लगाया जाता हे तो, न्यायालय ना केवल उसे अवैध घोषित कर सकता ह, अपितु भग की गयी विधान सभा को पुनर्जीवित भी कर सकता हे।[4] इन दोनो अवसरो पर न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय का विवेचन करन स पूर्व उन मामलो को जानना आवश्यक है जिसके आधार पर उपरोक्त निर्णय दिये गये।

---

1 स्टट ऑफ राजस्थान बनाम भारत सघ, एआईआर एससी 1977 1361 कॉलम 22

2 दि टाइम्स ऑफ इडिया' (दिल्ली) 24 अप्रल 1977

3 स्टट ऑफ राजस्थान बनाम भारत सघ' 1977, वास्तव मे न्यायालय का यह निर्णय 42व सशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा अनुच्छेद 356 मे खण्ड (5) क अन्तस्थापित किय जान के तथ्य स प्रभावित था। इस सशोधन मे यह व्यवस्था की गयी थी कि राष्ट्रपति का समाधान अतिम आर निश्चायक है और किसी भी आधार पर प्रश्नगत नही किया जा सकता। डा डी वसु भारत का सविधान-एक परिचय' पृष्ठ 324, प्रेटिस हाल ऑफ इडिया प्रा0 लि0 ,ई दिल्ली 1989

4 एस आर. बोम्मई बनाम भारत सघ' एआईआर एससी 2112 कॉलम 365

## 1977 व 1980 का मामला-

वर्ष 1977 भारतीय राजनीति मे बहुत महत्व रखता ह, क्योकि पहली बार केन्द्र म काग्रेस क अलावा कोई अन्य दल सत्तारूढ हुआ था जबकि मार्च 1977 म लोकसभा क लिये हुए चुनावो क पश्चात जनता पार्टी ने केन्द्र म मत्रिमण्डल का गठन किया था। वास्तव मे यह परिवर्तन किसी विचारधारा क आधार पर नही हुआ था, वरन् जनता के उस आक्रोश का प्रतिफल था जो कि 1975 म देश मे लगाये गये आपात् काल के दारान उभरे थ।[1]

वास्तव मे यह परिवर्तन इस बात का सूचक था कि जनता पार्टी उन गल्तिया को नही दोहरायेगी जो कि काग्रेस सरकार करती आ रही थी। लेकिन जसाकि बगाली म एक कहावत ह कि जा भी व्यक्ति लका जाता ह वो रावण बन जाता ह।[2] यह कहावत भारतीय राजनीति पर शत-प्रतिशत लागू होती ह। 1977 म सत्ता म आत ही राज्यो की काग्रेसी सरकारा को इस तर्क क आधार पर बर्खास्त कर दिया गया कि उन्ह मतदाताओ का विश्वास नही प्राप्त ह। जबकि सत्ता से बाहर रहते हुये जनता पार्टी के नताओ द्वारा काग्रेस द्वारा अनुच्छेद 356 के प्रयोग पर कड़ी आपत्ति प्रकट का गयी थी लकिन सत्ता म प्रवश करते ही काग्रेसी नीति का अनुसरण किया जबकि बहुमत प्राप्त राज्य सरकारा का गलत तर्क के आधार पर बर्खास्त कर दिया। इस प्रकार जनता पार्टी ने एक ऐसी गलत परम्परा की शुरूआत की थी, जिसकी पुनरावृत्ति 1980 म की गयी जबकि काग्रेस के पुन सत्ता मे आते ही जनता पार्टी की सरकारा को बर्खास्त किया गया।[3] इस प्रकार जनता पार्टी की सरकारने एक साथ नौ राज्यो की सरकारा को बर्खास्त कर एक एस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि केन्द्रिय सरकार अपने से भिन्न दल की सरकारा को बिना उचित कारण बताये बर्खास्त कर सकती है जिसका सहारा अनेको अवसरो पर लिया

---

1 1975 म 'आन्तरिक अशांति' के आधार पर लगाये गये आपातकाल व उसके काग्रेस पार्टी के विरुद्ध भयकर जनआक्रोश फल गया था, 1977 के चुनावो म जनता पार्टी की विजय काग्रेस के विरुद्ध लोगो के इसी आक्रोश का परिणाम थी।

2 यह कथन पश्चिम बगाल के भूतपूर्व मुख्यमत्री श्री एस.एस राय द्वारा श्री चरण सिह द्वारा दी गयी सलाह पर कहा गया था।

3 'सरकारिया कमीशन रिपार्ट', (भाग I) पृष्ठ-154

गया। दिसम्बर 1992 को भाजपा शासित चार राज्य सरकारो को बर्खास्त करना इसी परम्परा की एक और कडी मात्र थी।

वास्तव मे जिस प्रकार 1977, 1980 व 1992 मे एकमुश्त विपक्षी दलो की सरकारो को गिराया गया था वह पूर्णत गलत था और सर्वोच्च न्यायालय ने भी इसे असवैधानिक बताया है।[1] क्योकि न्यायालय का विचार के केन्द्र सरकार से भिन्न दल की राज्य सरकार को केवल विपक्षी दल के सिद्धान्त के आधार पर बर्खास्त नही किया जा सकता।[2]अत न्यायालय का फैसला उस प्रवृत्ति पर रोक लगाने मे सहायक होगा जो कि केन्द्र सरकारो द्वारा अपनायी जाती रही है। क्योकि जिस प्रकार 1977 व 1980 मे एक साथ नौ-नौ राज्य सरकारो को गिराया गया था, उससे इस बात की आशका उत्पन्न हो गयी थी, कि आने वाले वाले समय मे केन्द्र सरकारे राज्यो की स्वायत्तता मे हस्तक्षेप करने सबधी कार्यवाही का औचित्य उन्ही आधारो पर करेगी, जैसा की पूर्व मे सरकारो द्वारा किया गया था। मार्च 1977 मे सत्ता मे आते ही केन्द्रिय गृहमत्री श्री चरण सिंह ने यह महसूस किया कि काग्रेस शासित नौ राज्यो की सरकारो ने जनता का विश्वास खो दिया है[3]अत उन्हे पुन चुनावो के माध्यम से नया जनादेश प्राप्त करना चाहिये। 18 अप्रेल 1977 को उन्होने सम्बन्धित राज्यो के मुख्य मत्रियो को पत्र लिखकर उन्हे यह सलाह दी कि –

"हाल के लोक सभा चुनावो मे विभिन्न राज्यो के सत्ताधारी पार्टी के उम्मीदवारो की हार के कारण अत्यधिक अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है, जो गभीर चिता का विषय है। जिसके कारण राज्य मे कानून और व्यवस्था को गभीर खतरा पैदा हो गया है।" अत उन्होंने उन्हे यह सलाह दी कि वे अपने राज्य के राज्यपालो को अनुच्छेद 174[4](ख) के अर्न्तगत प्रदत्त शक्तियो का प्रयोग करते हुये विधान सभा भग करने और निर्वाचको से नया अभिदेश माँगने की सिफारिश करनी चाहिये।

---

1 एम०आर० बोम्मई बनाम भारत सघ, ए० आई० आर० 1994, एस० सी० 2054

2 एस आर बाम्बई बनाम यूनियन आफ इण्डिया एआईआर 2054, पूर्वाधृत

3 जिन राज्यो के सम्बन्ध मे यह निर्णय लिया गया था वे राज्य थे- (1) राजस्थान (2) उत्तर प्रदेश (3) बिहार (4) हरियाणा (5) मध्यप्रदेश (6) उडीसा (7) हिमालय प्रदेश (8) पजाब और (9) पश्चिम बगाल

4 राजस्थान राज्य बनाम भारत सघ एआईआर 1977, एससी 1361, पैरा-22

22 अप्रल 1977 को केन्द्रिय कानून मत्री श्री शातिभूषण न अपन रडिया प्रसारण म यह स्पष्ट किया कि चरण सिह द्वारा दी गयी सलाह मात्र दोस्ताना नही ह।[1] वरन य एक निर्देश ह। इस प्रकार उन्होने एक प्रकार से उन राज्य सरकारो को चेतावनी द थी कि यदि उन्होन गृहमत्री की सलाह को नही स्वीकार किया तो राज्यो की विधान सभाओ को भग कर तत्काल राष्ट्रपति शासन का उद्घोषणा की जा सकती है।

गृहमत्री द्वारा जिन राज्यो के लिये मुख्य मत्रियो को उपरोक्त सलाह दी गई थी वहा यद्यपि सत्ता धारी काग्रेस पार्टी का पूर्णतया सफाया हो गया था। 1977 का लोकसभा चुनावो म इन राज्यो म काग्रेस व जनता पार्टी की स्थिति अग्रलिखित थी —

| क्र स | प्रदेश | कुल स्थान | जनता पार्टी | काग्रेस |
|---|---|---|---|---|
| 1 | उत्तर प्रदेश | 85 | 85 | - |
| 2 | हरियाणा | 10 | 9 | - |
| 3 | राजस्थान | 25 | 24 | 1 |
| 4 | हिमाचल प्रदेश | 4 | 4 | - |
| 5 | मध्य प्रदेश | 40 | 37 | 1 |
| 6 | बिहार | 54 | 52 | - |
| 7 | पजाब | 13 | 3 | - |
| 8 | उडीसा | 21 | 15 | 4 |
| 9 | पश्चिम बगाल | 42 | 15+17[2] | 3 |

*भारत*–1977 पृ० 7061, *सूचना एव प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित।*

यद्यपि उपरोक्त नतीजा स यह स्पष्ट होता ह कि इन राज्यो म काग्रस का यद्यपि पूर्णतया सफाया हो गया था। यह पहला मौका था जबकि किसी सत्तारूढ़ दल को जनता न इतनी बुरी तरह से नकार दिया हो। तथापि यह प्रश्न उठता ह कि क्या लोकसभा

1 दि स्टटसमन 20 अप्रेल 1977

2 भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को पश्चिम बगाल मे 17 स्थान प्राप्त हुए थ जोकि जनता पार्टी की ही सहयोगी पार्टी था।

चुनावो के परिणामो को आधार बनाकर राज्य सरकारो को बर्खास्त किया जा सकता ? जबकि उन सरकारो को विधान सभा मे पूर्ण बहुमत प्राप्त थ। राज्य म कानून व व्यवस्था की स्थिति भी सन्तोषजनक थी। वास्तव मे लोकसभा चुनावो के मुद्दे राज्य विधान सभाओ के चुनावो के मुद्दे से पूर्णतया भिन्न होते हे। जहा लोकसभा चुनावो म राष्ट्रीय स्तर की समस्याओ से सबधित ज्वलन्त मुद्दे उछाले जाते है ओर उसी के आधार पर जनता अपना निर्णय देती ह जबकि राज्य विधान सभा के चुनावो मे मुख्यतया क्षेत्रीय समस्याओ की ओर ही ध्यान आकृष्ट कराया जाता हे।करना उन ससदीय परम्परा का उल्लघन होता जो कि ब्रिटन म प्रचलित ह।[1] आधुनिक समय मे ब्रिटेन म एक भी उदाहरण नही प्राप्त होता जबकि क्राउन बिना मत्रिमण्डल की सलाह के साधारण सभा को भग कर दे। साधारण सभा का भग करने के सबध मे निम्न परम्परा पड गयी ह–

1 राजप्रमुख को साधारण सभा को केवल प्रधानमत्री की सलाह पर ही भग करना चाहिए।

2 यदि ऐसी कोई सलाह मत्रीमण्डल द्वारा नही दी गयी हो तो उसे पार्लियामेण्ट का भग नही करना चाहिये।

3 यह प्रधानमत्री के विवेक पर निर्भर करता ह कि वो अपने निधारित पॉच साल के कायकाल के दारान कभी भी साधारण सभा को भग करने सम्बन्धा परामर्श क्राउन को दे।

4 यदि सरकार साधारण सभा मे हार जाती ह तो यह उस पर निर्भर करता हे कि वो या तो विधान सभा भग करने का फेसला करे त्याग पत्र देदे। क्राउन स्वय इस सबध मे य काइ निणय नही ले सकता।[2]

अत क्योकि हमाने सघीय ढॉचे को ही स्वीकार किया ह अत राष्ट्रपति व राज्यपालो का सदन को भग करने का अधिकार केवल विशेष परिस्थितियो म ही दिया गया ह जसाकि ऊपर वर्णित ह। अत किसी अन्य बात को आधार बनाकर उन्ह सदन भग करने का अधिकार नही हे। ऐसा करना सविधान के विपरीत होगा। लेकिन दुर्भाग्य

इण्डिया, 21 अप्रैल 1977

1977 (दिल्ली)

का मत है कि इस अधिकार का प्रयोग उपरोक्त बातो को ध्यान म रखकर नही किया गया है।

गृहमत्री श्री चरणसिह द्वारा दी गयी सलाह को काग्रस कार्यसमिति ने मानने से इनकार कर दिया। उन्होने गृहमत्री के उस तर्क को कि उन राज्यो की सरकारो की लोकसभा चुनावा म हार मतदाताओ के अविश्वास के सूचक है, विचित्र करार दिया। उनका विचार था कि यदि इस तर्क को मान भी लिया जाये तो क्या तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश के लोगो द्वारा जो भारी मत दिया गया है, उससे क्या यह स्पष्ट होता ह कि उन राज्या से चुने गये जनता पार्टी के सासदा को ससद मे नही बैठना चाहिये अथवा केन्द्रिय मत्रिपरिषद मे नही सम्मलित होना चाहिये। इस प्रकार काग्रेस कार्यसमिति ने अपने सभा मुख्यमत्रिया को गृहमत्री की सलाह को अस्वीकार करने का निर्देश जारी किया। समिति का विचार था कि जिन राज्यो के सम्बन्ध मे ऐसी सलाह दी गयी ह वहा राज्य विधान सभा भग करने की आवश्यक परिस्थितियॉ वही नही उपस्थित है। अनुच्छेद 356 म यह नीहित ह कि राज्यो की विधान सभाआ को तभी भग किया जा सकता ह, जबकि राज्य का शासन सविधान के अनुसार चलाया जाना सभव ना हो लेकिन उन राज्या म ऐसी परिस्थितियाँ नही थी जबकि इस प्रकार की कठोर कार्यवाही की जाती। इस प्रकार राज्य विधान सभाआ को भग करने को प्रयत्न पूर्णतया राजनीतिक उद्देश्या स प्रेरित था।[1]

काग्रेस (इ) कार्य समीति के निर्देश पर सबधित राज्यो के मुख्यमत्रियो ने श्री चरण सिह की सलाह को मानने से इनकार कर दिया सभी मुख्यमत्रियो ने गृह मत्री की सलाह को असवैधानिक घोषित कर दिया।

हरियाणा के मुख्यमत्री श्री बनारसी दास गुप्त ने गृहमत्री की सलाह को असवैधानिक तथा गैर कानूनी बताते हुय कहा कि यह लोकतत्र क सिद्धान्ता के अनुकूल नही ह। उनका विचार था कि लोकसभा के चुनावो के परिणामा के आधार पर ऐसी माँग करना औचित्यपूर्ण नही है। उनकी सरकार को विधान सभा मे पूर्व विश्वास प्राप्त है। राज्य म कानून व व्यवस्था पूरी तरह सुव्यवस्थित है। विकास काय यथावत् चल रहे है।

अत एसी स्थिति मे राज्यपाल को विधान सभाआ को भग करन का परामर्श देने का सवाल ही पदा नही होता उन्होंने केन्द्र सरकार को चेतावनी देते हुये कहा कि यदि सरकार गिरान सबधी कोई कार्यवाही की गयी तो उसके विरुद्ध सघर्ष किया जायेगा। श्री गुप्त ने दावा दिया कि काग्रेस ने अतीत मे कभी भी गैर काग्रेसी सरकारा को गिरान के लिये इस प्रकार का कोइ कदम नही उठाया।[1]

पश्चिम बगाल को मुख्यमत्री श्री सिद्धार्थ शकर ने गृहमत्री की सलाह को जनता पार्टी की घोपित नीति के विरुद्ध बताया जिसमे यह स्वीकारा गया था कि राज्यो की काग्रेसी सरकारा को नही गिराया जायेगा।[2]

उनका कहना था कि जनता पार्टी द्वारा किया जाने वाला कृत्य पूर्णतया असवधानिक तथा सघीय ढॉचे के लोकतात्रिक सिद्धान्तो के विरुद्ध था।

इस सबध मे उनका प्रमुख तर्क यह था कि गृहमत्री द्वारा जारी सूची म दक्षिणी राज्या ओर महाराष्ट्र तथा असम को नही रखा जिनका निर्धारित पॉच वर्ष का कार्यकाल समाप्त हो चुका ह। लेकिन उत्तर प्रदेश व उडीसा को जिनका दा या तीन वर्ष का कार्यकाल शेष ह सूची मे शामिल किया गया। राज्यो क चुनावा का आधार काग्रेस के भारी हार वाले राज्यो को चुनना है यह आधार अमान्य तथा तर्कहीन ह। वास्तव मे इसमे एक सवधानिक प्रश्न निहित है कि सघीय व्यवस्था मे केन्द्र सरकार को ऐसा करने का अधिकार ह या नही।

विहार के मुख्य मत्री डा जगन्नाथ मिश्र ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करत हुये कहा कि ऐसी ही परिस्थितियो ने 1971 में लोकसभा के चुनावो मे जबकि काग्रस को विहार म विशाल बहुमत प्राप्त हुआ था लेकिन उस समय की कर्पूरी ठाकुर

---

1 वास्तव म उनका यह कथन सत्य के विपरीत था क्योकि केरल मं 1959 म कम्युनिस्ट सरकार का बर्खास्त कर दिया गया था, जबकि उसे विधान सभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त था।

2 नागरजी दसाइ
अप्रैल 1977

का सरकार को बर्खास्त नही किया गया था।[1] परा कर्तव्य गृहमत्री द्वारा दी गया सलाह पर विचार करत समय दो महत्वपूर्ण मुद्दे की अवहेलना नही की जा सक्ती–

1 1 अगस्त 1977 के मध्य मे राष्ट्रपति का चुनाव होने वाला था और जिन राज्यो म नये चुनाव कराने को कहा जा रहा था, उनका इस चुनाव मे बहुत महत्व था।

लेकिन श्री चरण सिह का कहना था कि जनता द्वारा दिया गया निर्णय केवल केन्द्र सरकार के नही अपितु राज्य सरकारो के भी विरुद्ध था। मुख्यमत्रिया के उस तर्क का कि-19,1 के चुनावो मे काग्रेस के भारी बहुमत क फलस्वरूप बिहार, पजाब आदि राज्या की सरकारो न त्यागपत्र नही दिया था, की आलोचना करते हुये कहा कि उस समय काग्रस ने विरोधी दलो की सरकारो से त्यागपत्र मॉगकर दल-बदल करवाना बेहतर समझा था।

उत्तर प्रदेश के मुख्य मत्री श्री नारायण दत्त तिवारी ने गृहमत्री चाधरी चरण सिह की राज्य विधान सभा भग करन की सिफारिश अस्वीकार कर दी थी और कार्यवाहक राष्ट्रपति श्री जत्ती से अनुरोध किया था कि वे इस मामले पर सर्वाच्च न्यायालय से राय ले।[2]

उन्होने राष्ट्रपति से अनुच्छेद 143 की उपधारा के अर्न्तगत इस मामले को सर्वाच्च न्यायालय से राय मॉगे जाने का अनुरोध किया। साथ ही यह भी कहा कि सर्वोच्च न्यायालय स परामर्श प्राप्त होने तक धारा 356 के तहत कार्यवाही स्थगित रखे। साथ ही राष्ट्रपति को एक सूची भी प्रेषित की जिनके आधार पर वे राष्ट्रपति से निम्नलिखित प्रश्ना पर राय ले।

1 क्या कोई केन्द्रिय मत्री या केन्द्रिय मत्रमण्डल सविधान के अन्तर्गत किसी राज्य के मुख्यमत्री को सलाह देने मे सक्षम है कि वह राज्यपाल स समय से पूर्व विधान सभा भग करने की सिफारिश करे।

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, 21 अप्रल, 1971

2 दि टाइम्स आफ इण्डिया 25 अप्रैल 1977 5 गृहमत्री व मुख्यमत्री क मध्य हुये पत्र व्यवहारक तथ्या व परिस्थितिया को देखते हुये क्या यह उचित होगा कि धारा 356 के अन्तर्गत कोई अधिकारिक सूचना जारी की जाये।

2 क्या पहले से चुनी गयी विधान सभा का उसके कार्यकाल की अवधि पूरी होने से पूर्व केवल इसलिये भंग करना आवश्यक है कि बाद में हुये लोकसभा चुनावों में सत्ताधारी दल के (जो कि राज्यो मे सत्तारूढ है) उम्मीदवार हार गये हो।

3 क्या भारतीय संविधान का यह मूल स्वरूप नही है कि केन्द्र में सत्तारूढ दल से भिन्न दलो को जनता द्वारा विधिवत चुने जाने के बाद विभिन्न राज्यो में शासन करने दिया गया।

4 क्या राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि किसी राज्य सरकार को ऐसी स्थिति मे भी बर्खास्त कर दे जबकि उसे विधान सभा का विश्वास प्राप्त हो तथा जिसमे वह सदन मे सिद्ध कर चुकी हो। राज्य सरकार द्वारा संविधान के किसी प्रावधान का उल्लंघन नहा किया हो साथ ही संविधान के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा दिये गये किन्ही निर्देशो को मानने से इनकार भी नही किया हो।[1]

गृहमंत्री श्री चरण सिह द्वारा दी गयी सलाह को नौ राज्यो के मुख्यमंत्रियो द्वारा जो विरोध किया गया था, उचित था क्योकि--

1 लोकसभा और राज्य विधान सभा के चुनावो का मुद्दा पूर्णत भिन्न होता है। जहाँ लोक सभा के निर्वाचन के लिये जो मुद्दे होते है उनमे अखिल भारतीय विचार और दल की शक्ति पर ध्यान दिया जाता है। जबकि राज्य विधान सभा के चुनावो में मुख्यत स्थानीय हित के मुद्दे होते है।[2] अत लोकसभा चुनावो के परिणामो को देखते हुये इस प्रकार का कठोर कदम उठाना वास्तव मे न्यायसगत नही होगा।

---

1 उत्तर प्रदेश में मुलायम सिह ने गृहमंत्री श्री चह्वाण के इस निर्देश को मानने से इनकार कर दिया था कि वे बंद की घोषणा वापस ले ले। लेकिन राज्य सरकार के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गयी थी जबकि कांग्रेस राज्य सरकार में सहयोगी दल था।

2 जून 1977 में पश्चिम बंगाल राज्य के विधान मण्डल के लिये इसके बाद जो निर्वाचन हुआ उससे यह बात प्रदेशित होती है कि लोक सभा के निर्वाचन के लिये जनता पार्टी को काफी मात्रा में मत मिले किन्तु राज्य विधान सभा के निर्वाचन के लिये उसे मत अल्प मात्रा में मिले और साम्यवादी दल विशाल बहुमत प्राप्त कर सका इसलिये यह प्रस्थापना की कि राज्य विधान सभा की बाबत राज्य के निर्वाचकगणो के मत संघ की संसद के निर्वाचन में प्रतिबिम्बित मत के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिये तर्कशब्द नहीं है। डी डी बसु-भारत का संविधान एक परिचय पृष्ठ 320

2 यह एक सुस्थापित सिद्धान्त ह कि जवतक राज्य मत्रिमण्डल का विधान सभा म वहुमत का समर्थन प्राप्त हो तब तक उसे सत्ता मे बने रहने का अधिकार ह। सविधान म प्रत्यावाहन का प्रावधान नहीं किया गया हे। भारतीय ससदीय प्रणाली म किसी सरकार को मतदाताओ का विश्वास प्राप्त है या नही, सम्वन्धी कोई प्रावधान नही उपबधित है।

3 इस प्रकार का कदम हमारे सविधान की सघीय प्रणाली के विपरीत था।

4 केन्द्रिय सरकार का यह निर्णय पूर्णत राजनीति से प्रेरित था जोकि आगामी राष्ट्रपति चुनावा को दृष्टि मे रखते हुये लिया गया था।

5 इन राज्यो की विधान सभाओ को निलम्बित करने सम्बन्धा राज्यपालो द्वारा कोई रिपाट राष्ट्रपति को प्रेषित नहीं की गयी थी जिससे की यह ज्ञात हो सके कि राज्य मे सवैधानिक तत्र ठप्प पड गया ह। वास्तव मे कन्द्रिय सरकार ने पूर्णत राजनीति से प्रेरित होकर इस प्रकार की कार्यवाही की थी।

काग्रेसी मुख्यमत्रतिया द्वारा गृहमत्रि के परामर्श को सार्वजनिक रूप से इनकार कर दिय जाने के कारण विधिवेत्ताओ द्वारा केन्द्र के हस्तक्षेप करने के सवधानिक अधिकारो की पुष्टि की गयी थी। उनका विचार था कि देश की एकता और अखण्डता की रक्षार्थ सविधान केन्द्र सरकार को राज्यो को आदेश तथा परामर्श देने का अधिकार दिया है। इसका युक्ति सगत अर्थ यह ह कि केन्द्रिय निर्देशो की सवैधानिक अवहेलना करने वाले राज्यो मे हस्तक्षेप करने का केनद्र क पास सवधानिक अधिकार सुरक्षित हे।[1]

लेकिन विधिवेत्ताओ द्वारा केन्द्र के अधिकारो की चाहे किसी भी आधार पुष्टि की पाये लेकिन यह वात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि यह तौर उन सवधानिक अधिकारों का दुरूपयोग था जो केन्द्र द्वारा राज्यो को आकस्मिक समयो के लिये प्रदान की गयी है। लोकसभा चुनावो के नतीजो के आधार पर कार्यवाही करने की कोशिश की जा रही थी उसमे यह कहीं नहीं उल्लखित ह कि राष्ट्रीय स्तर के चुनावो मे यदि किसी दल को जो उस राज्य मे शासक दल ह यदि मतदाताओ का मत नहीं प्राप्त होता है तो यह उसके खिलाफ जनादेश माल

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया 13 अप्रैल 1977 प्रमुख विधिवेत्ता श्री जाटमलानी का विचार था कि पुन जन विश्वास प्राप्त करने के लिये विधान सभाओं को भग किया जाना उचित था। क्योकि जब राजनातिक प्रभुसत्ता और कानूनी प्रभुसत्ता मे सघर्ष हो तो पुन जनता के समक्ष जाना ही उचित होता ह।

लिया जाये। अनुच्छेद 356 का शीर्षक जिसमे यह कहा गया है 'राज्यो मे सवैधानिक तत्र विफल होने की अवस्था मे इस अनुच्छेद का प्रयोग किया जायेगा। लेकिन सबधित नो राज्यो मे इस प्रकार की कानून व्यवस्था की कोई समस्या नही उत्पन्न हुयी थी जहॉ की इस प्रकार की कोई कार्यवाही की जाती। वास्तव मे अनुच्छेद 356 का प्रयोग अतिम उपाय के रूप मे ही लिया जाना चाहिये ना कि केवल राजनीतिक स्वार्थपूर्ति के लिये जेसा की सबधित मामले मे लिया गया था। इस प्रकार की कार्यवाही कर ऐसी परम्परा को जन्म दिया गया जिसके आधार पर आगे चलकर 1980 मे पुन नो राज्यो की विधान सभाओ को भग किया गया। इस प्रकार जनता सरकार भी उन लिप्साओ से नही बच सकी जो गल्तियॉ पिछले वर्षो मे काग्रेस द्वारा की गयी थी। हमारे सविधान मे कही भी, प्रत्यावहन का अधिकार जनता को नही है जेसा कि स्विट्जरलेण्ड मे दिया गया है, जिसके अर्न्तगत उन प्रत्याशियो को जिन्हे जनता पसन्द नही करती हो, को वापस बुलाने का अधिकार दिया गया हे। अपनी कार्यवाही को उचित ठहराने के लिये चाहे कितने भी तर्क इसके पक्ष मे दिये जाये लेकिन एक बात को निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि इस कठोर शक्ति के दुरुपयोग करने से सविधान की प्रतिष्ठा को धक्का पहुचता है जबकि इस अनुच्छेद का उद्देश्य सवेधानिक तत्र ठप्प हो जाने पर सघ द्वारा सुधारात्मक कार्यवाही करना है ताकि राज्य का शासन सविधन के उपबन्धो के अनुसार चलता रहना कि सूचारु रूप से चलती हुयी सरकार का गलत आधारो पर बर्खास्त करना इस सबध मे डा अम्बेडकर के विचारो पर दृष्टि डालना जरूरी है जिसमे उन्होने यह चाहा था कि इन अनुच्छेदो के प्रयोग करने की कभी आवश्यकता ही ना पडे और यदि इनका प्रयोग किया भी जाता है तो राष्ट्रपति जिसे ये शक्तियॉ प्रदान की गयी है वे राज्योक प्रशासन को वास्तविक रूप से निलम्बित करने से पूर्व समुचित सावधानी बरतेगा।[1]

गृहमत्री श्री चरण सिह के सुझावो को सबधित राज्य सरकारो ने मानने से इनकार कर दिया और सघ सरकार की कथित सभावित कार्यवाही के खिलाफ उच्चतम न्यायालय मे अनुच्छेद 131 के अन्तर्गत याचिका दायर कर दी।[2] इन राज्य सरकारो ने उच्चतम न्यायालय से गृहमत्री के पत्र को असवधानिक, गैर कानूनी और अधिकार क्षेत्र से बाहर घोषित करने की प्रार्थना की साथ ही अपनी याचिका मे इस बात का भी निवेदन किया था कि न्यायालय सघ सरकार

1 सा.ए. डी भाग IX पृष्ठ 177 1949

2 स्टट ऑफ राजस्थान बनाम भारत सघ एआई आर 1977 एम.सी 1361 पैरा 22

का अनुच्छेद 356 क अन्तर्गत कार्यवाहीकरने से रोकने के लिये निषेधाज्ञा जारी कर जिससे विधान सभाओ को उनकी नियत अवधि के समाप्त होने से पूर्व भग करने से रोका जा सके।

काग्रेसा राज्य सरकारो द्वारा दायर याचिका को दृष्टि म रखने हुय केन्द्र सरकार ने तान आपत्तियाँ उठायी—

1 अनुच्छेद 131 के अन्तर्गत मुकदमा नही चलाया जा सकता ह।

2 अनुच्छेद 356 को लागू करने के लिये जिन परिस्थितिया का होना आवश्यक ह उसका स्वरूप न्यायालय के विचार योग्य नही है और अनुच्छेद के खण्ड (5) मे भी उन स्थितियो का न्यायाल के विचार के अयोग्य कर दिया गया है।[1]

3 मुक्दमा और रिट याचिका समय से पूर्व ही दाखिल कर दी गयी ह और जिस प्रक्रिया को चुनातीदी गयी है वेसी कार्यवाही भी जा सकती ह और नही भी की जा सकती है।

लेकिन न्यायालय ने प्रारभिक आधार पर ही मुकदमा खारिज कर दिया।[2]मुख्य न्यायाधीश श्री बेग की अध्यक्षता वाली सवेधानिक पीठ ने अपने निणय मे कहा कि वादिया क पास मुक्दमा चलाने का कोई अधिकार नही है। इसका कारण स्पष्ट हुये न्यायालय न कहा कि अनुच्छेद 131 के अन्तर्गत राज्यो के अधिकारो के अपहरण के मामले आ सकन हे मत्रियो और विधायको के अधिकारो के मामले नही। राज्या के अधिकार ओर उसकी सरकार के अधिकार दोनो पृथक-पृथक है। मत्रिमडल को बर्खास्त करने या राज्य विधान सभा भग होने के बाद भी राज्य बना रह सकता ह।

सभी न्यायाधीश सामान्यत इस बात से सहमत थे कि उक्त मामले का न्यायिक पुनरावलोकन नही किया जा सकता है क्योकि यह मामला राजनीतिक है जिसके सबध मे राष्ट्रपति के व्यक्तिगत रूप से सतुष्ट होने को ही अतिम निर्णय माना जा सकता है।[3]क्योकि

---

1 सविधान का 38व सशोधन (1975) द्वारा यह व्यवस्था की गयी था कि अनुच्छेद 356 के अधान उद्घाषण को किसी आधार पर न्यायिक पुनरावलोकन नही किया जा सकता। सरकारिया कमीशन रिपोर्ट भाग-प्रथम, पृष्ठ-162

2 गृह मत्रालय भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट 1977-78 पृष्ठ 9 10

3 टाइम्स ऑफ इण्डिया 8 मई, 1977

अनुच्छेद 356 के खण्ड (5) के न्यायालय के अधिकार वर्जन का दखल हुये भी यह न्यायालय के विचार योग्य नही है।[1]

लेकिन न्यायालय ने अपने निर्णय मे यह स्वीकार किया था कि राष्ट्रपति की सतुष्टि न्यायालय की विषय परिधि म केवल उन्ही स्थितियो मे आती हे जबकि प्रश्न वास्तव म दुर्भावना पूण हा। आर विषय सीमा मे जो सविधान द्वारा निर्धारित की गयी ह से बाहर असगत आधारा पर आधारित ना हो। लेकिन न्यायालय ने उपरोक्त मामले को आपवादिक श्रेणी का नही माना।

न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार द्वारा विधाना सभाआ का भग करने की शक्ति का प्रयोग सविधान सम्मत हैं। न्यायालय इसमे तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक इस उपबन्ध को विशिष्ट परिस्थितिया म इस प्रकार नहीं लागू किया गया हो कि वह अनुचित तथा विकृत का हो। न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि यह निर्णय लेना नि सन्देह कार्यकारी सत्ता पर निर्भर करता ह कि क्या राज्य विधान सभा तथा राज्य सरकार को जनता ने पूर्णत नकार दिया ह। फलस्वरूप राज्य म सकट पूण स्थिति उत्पन्न हो गयी है। सभी न्यायाधीश इस बात पर एकमत थ कि राष्ट्रपति मत्रिमण्डल की सलाह से बधा हुआ है। और केन्द्र सरकार जो बिना राज्यपाल की रिपोर्ट क अन्य कारणो से यह समाधान हो जाता है कि राज्य सरकारा का सविधान के अनुसार चलाना सभव नही हे, तो वह राष्ट्रपति को राज्य सरकारो को बखास्त करन की सलाह दे सकता ह। लेकिन अपने बाद मे एक अन्य मामले मे दिये गये निणय म सर्वोच्च न्यायालय न अपन फसले उलटते हुये कहा कि अनुच्छेद 356 को लागू करन के लिये राज्यपाल द्वारा प्रेषित लिखित रिपोर्ट आवश्यक है।[2]

न्यायालय के राजस्थान मामले मे दिये गय फैसले से यही प्रतीत होता है कि न्यायालय ने किसी राजनीतिक विवाद से हस्तक्षेप करने से अपने को बचा लिया। यह बात न्यायालय की इस टिप्पणी से सही साबित हो सकती है जिसमें कहा गया कि "इस बात कि कल्पना करना अत्यधिक खतरनाक खतरनाक होगा कि अनुच्छेद 356 के खण्ड (1) के अन्तर्गत

---

1 पूर्वाधृत सविधान सशोधन 42 भारत की सवैधानिक विधि "डी डी बसु पृष्ठ=446

2 बाम्बई बनाम भारत सरकार ए० आई० आर०एस०सी 2113 1994 पैरा 365——"The report's of the Governer is a pre condition"

कार्यवाही करन के सम्बन्ध म मत्रिपरिषद के समक्ष केवल यही एक आधार होगा और यह भी कि नये कारण भी हो सकता है।"[1]

लेकिन न्यायालय द्वारा मतदाताओ द्वारा लोकसभा के चुनावो म राज्य मे सरकार से सबधित दल को अस्वीकार कर दिये जाने के आधार पर विधान सभाओ के भग करने की कार्यवाही को उचित ठहराया था उससे 1980 मे न्यायालय के कथित निणय का सहारा लेते हुये पुन बडी सख्या म विधान सभाये भग की गयी। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार के स्वार्थ को सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ने ढाल का काम किया।

इस सबध मे सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय आ जाने के तुरत बाद केन्द्रिय मत्रिमण्डल की बठक 29 अप्रल को प्रधानमत्री निवास पर बुलायी गयी। जिसम यह निर्णय लिया गया कि राष्ट्रपति को सबधित राज्यो मे विधान सभा भग करने सबधी सलाह दी जाये[2] जब श्री जत्ती जो कि उस समय कार्य-वाहक राष्ट्रपति थे, ने इस सस्तुति पर वियार करने के लिय कुछ समय की माँग की। उन्होने इस पर विस्तृत विवरण चाहा जिसमे इस प्रकार की कोई कार्यवाही पूर्व म की गया थी विशेष का उन मामलो की जहाँ राज्यपाल ने राज्य मे कानून व व्यवस्था के भग होने सबधी कोई रिपोर्ट राष्ट्रपति को नही भेजी थी।[3]

30 अप्रल को केन्द्रीय मत्रिमण्डल ने पुन राष्ट्रपति द्वारा उठाय गये निणय पर विचार करने के लिय बठक बुलायी। श्री चरण सिह आर श्री शातिभूषण ने राष्ट्रपति से मिलकर उनको यह सूचित किया कि उनके पास उद्घोषणा पर हस्ताक्षर करने के सिवाय आर कोई चारा नही ह। इस पर पुन राष्ट्रपति ने उन्हे सूचित किया कि वे इस विषय पर विचार करने के लिये कुछ आर समय चाहते है। उसी शाम को प्रधानमत्री श्री मोरारजी देसाई ने मुख्य सचिव के माध्यम एक पत्र राष्ट्रपति को भेजा जिसमे राष्ट्रपति को भारतीय सविधान के अन्तर्गत उनकी सवेधानिक स्थिति आर कर्तव्यो की याद दिलायी गयी थी। तत्पश्चात् श्री जत्ती ने नो राज्यो की विधान सभाओ को भग करने सबधी उद्घोषणा पर हस्ताक्षर कर दिया आर इसी क साथ 24 घण्टे से व्याप्त शका, तनाव और अफवाहो का अत हो गया।[4] इस प्रकार एक बड़े सकट की समाप्ति हो

1 स्टट आफ राजस्थान बनाम भारत सघ एआई आर एस सी 1973 1361 पैरा 147

2 स्टट गवर्नस इन इडिया हैण्ड्स एण्ड इश्यूस पृष्ठ 288 'एन एस गहलौत'

3 वही

4 पूर्वोधृत

गयी जो कुछ समय के लिय राजनीतिक वातावरण व्याप्त हो गया था राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षर कर दन के पश्चात् राज्य मे नये चुनावो के लिये रास्ता साफ हो गया।

जनता सरकार द्वारा की गयी कथित कार्यवाही की जहा एक आर गर काग्रेसी दला क नेताआ ने स्वागत किया वही दूसरी ओर काग्रेस ने इसकी कड़ी आलोचना की। काग्रेस पार्टी ने इस केन्द्र का तानाशाही पूर्ण कार्यवाही करार देते हुए सघीय सिद्धान्ता के विरुद्ध करार दिया।

इसी प्रकार की स्थिति पुन 1980 मे उपस्थित हुयी जबकि लोकसभा के लिये कराय गये मध्यावधि चुनावा के पश्चात् सत्तारूढ जनता पार्टी बुरी तरह पराजित हुयी। जिसे तर्क के आधार पर जनता पार्टी ने 1977 मे काग्रेस शासित ना राज्या की सरकारो को बर्खास्त किया था उसी तर्क के आधार पर काग्रेस पार्टी ने भी ना राज्या[1] की सरकारा को बर्खास्त कर दिया था। और सबसे महत्वपूर्ण यह थी कि 1980 मे केन्द्र द्वारा की गयी इस कार्यवाही का कोई विरोध नही किया गया था। पूर्व प्रधानमत्री श्री देसाई का मत था कि विधान सभा भग करने के फैसले को अलोकतात्रिक नही कहा जा सकता। यद्यपि पूर्व गृहमत्री श्री चरण सिह ने केन्द्र की कार्यवाही को लोकतत्र तथा सघीय ढॉचे पर खुला आघात बताया था। उनका कहना था कि "उन राज्यो म जिनकी सरकारो को जनता पार्टी ने अप्रल 1977 मे भग किया था काग्रेस को मुश्किल से 30 प्रतिशत से भी कम मत मिले थे जबकि जिन राज्यो की सरकारो को भग किया गया उसमे विपक्षी दलो को इससे दुगुने मत मिले थे।" लेकिन फिर भी किसी भी दल ने काग्रेस की कार्यवाही पर कड़ा विरोध नही प्रकट किया था। इसका कारण यह था कि1977 मे जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन जनता सरकार द्वारा किया था काग्रेस केवल उसी को दोहरा रही थी। जनता पार्टी द्वारा का गयी कार्यवाही को न्यायालय न भी अपने निर्णय द्वारा पुष्ट कर दिया था। न्यायाधीशा का विचार था कि जहॉ सत्तारूढ दल को लोक सभा के चुनावो म एक भी स्थान नही प्राप्त होता ह वहॉ यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि राज्य की सरकार सविधान क अनुसार नही चलायी जा सकती क्योकि सविधान मे लोगो की सहमति पर आधारित

1 य राज्य थे 1 पजाब 2 राजस्थान 3 उड़ीसा 4 मध्य प्रदेश 5 उत्तर प्रदेश 6 महाराष्ट्र 7 बिहार 8 तमिलनाडु तथा 9 गुजरात। जहॉ 17 फरवरी 1980 को राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था।

लाकतात्रिक सरकार की कल्पना की गयी ह लेकिन न्यायधीशा न यह भा कहा था कि लाकसभा के निर्वाचन मे सत्तारूढ दल के हार जाने से यह निष्कर्ष नही निकलता ह कि उस राज्य की सरकार सविधान के उपबधो के अनुसार नही चलायी जा सकती।

यह आशय निकलता है कि जहॉ हार पूरी नही हुयी है वहॉ न्यायालय सभवत इस आधार पर हस्तक्षेप कर सकता ह कि शक्ति का उपयोग दुर्भावनापूर्ण किया गया था। लेकिन न्यायधीशा का विचार था कि इस हार का क्या परिणाम क्या होगा यह देखन का कार्य कार्यपालिका क अधिकार क्षत्र म आता ह न्यायालया क नही। इस प्रकार 1980 म कार्यवाहा करन के लिये राजस्थान का निर्णय सहायक सिद्ध हुआ था। लेकिन वास्तव मे ऐसा सोचना गलत था। क्याकि उल्लेखनीय ह कि राजस्थान का निर्णय 42 वे सशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा अनुच्छेद 356 म, खण्ड (5) के जो जाने के तथ्य से प्रभावित था इस सशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी थी कि राष्ट्रपति की सतुष्टि अतिम ओर निणायक है और उसे किसी भी आधार पर निर्णय का विषय नही बनाया जा सकता। लेकिन 44वे सशोधन अधिनियम 1978 द्वारा खण्ड (5) को समाप्त कर दिया गया था। अत यदि मामले को न्यायालय के विचार के लिये लाया जाता तो निश्चय ही न्यायालय राष्ट्रपति की सतुष्टि के मामले का न्यायिक पुरावलोकन कर सकता था। लेकिन वह दुर्भाग्यपूर्ण था कि राजनीतिक दलो द्वारा सिद्धान्त केन्द्र द्वारा विरोधी दला को राज्य सरकारो के विरुद्ध की गयी कार्यवाही जो स्वीकार कर लिया गया था लेकिन राजनीतिक दलो द्वारा केन्द्र के फसले के विरुद्ध अपील ना करने के पीछे एक अन्य महत्वपूर्ण कारण भी था। 1977 मे जबकि काग्रेस पार्टी की सरकारो को बर्खास्त किया गया था तो उन सरकारो के बहुमत के बारे मे काई सदेह नही था। लेकिन 1980 ऐसी निरापद स्थिति नही थी। 1980 मे उन राज्यो मे दल-बदल की प्रक्रिया तेजी से शुरू हो गयी थी, मध्यप्रदेश व राजस्थान को छोड़कर शेष सात राज्यो मे उनके अस्तित्व को वसे ही खतरा बना हुआ था। इन राज्यो मे बड़े पैमाने पर दल बदल हो रहे थे जिसका कारण था जो भी विधायक सदन के लिये चुने गये थे वे शीघ्र ही अपने लाभ आर पद स वचित नही होना चाहते थे। लेकिन जिन राज्यो मे काग्रेस बड पैमाने पर दल बदल करवा कर अपनी शर्तो पर सरकार बनाने मे कामयाब हुयी थी, उन राज्या मे सरकारे भग नही की गयी थी हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान व कर्नाटक मे किया गया था। लेकिन इसके विपरित जहॉ ऐसी करने मे किसी कारण से असफल रही थी, वहॉ का सरकारा को बर्खास्त कर दिया गया था। अत इससे यह बात स्पष्ट थी कि यह कार्यवाही केवल बदला लेने के दिया

गया था। अत इससे यह बात स्पष्ट थी कि यह कार्यवाही केवल बदला लेने के उद्देश्य से की गयी थी ना कि किसी सिद्धान्त के तहत।

यद्यपि न्यायालय ने अपने निर्णय मे अपरोक्ष रूप से इस मत का समर्थन किया था कि लोकसभा चुनावो मे पूर्णत हार का तात्पर्य राज्य सरकार मे मतदाताओ द्वारा अविश्वास का सूचक है। लेकिन इस बात का समर्थन नही किया जा सकता। क्योकि भारतीय सविधान मे यह स्वीकृत सिद्धान्त है कि मतदाता केन्द्र मे एक दल का समर्थन करे और राज्य मे दूसरे जैसाकि तमिलनाडु मे 1980 मे किया गया जबकि लोकसभा चुनावो मे हुयी भारी हार के कारण इस आधार पर विधान सभा को भग कर दिया था कि राज्य मे सत्तारूढ़ दल जनता का प्रतिनिधित्व नही करता इस प्रकार वहाँ सत्तारूढ अन्नाद्रमुक सरकार को अपदस्त कर दिया गया था। लेकिन वहाँ के मतदाताओ ने पुन मई 1980 मे कराये गये विधान सभा के चुनावो मे श्री एम.जी रामचन्द्रन के नेतृत्व वाली अन्नाद्रमुक सरकार मे पुन विश्वास व्यक्त किया था। अत इससे स्पष्ट है कि राज्य मे बहुमत प्राप्त दल को यदि लोकसभा के चुनावो मे मत ना प्राप्त करे तो उससे यह निष्कर्ष निकालना उचित नही होगा कि सरकार ने मतदाताओ का समर्थन खो दिया है क्योकि केन्द्र और राज्यो के चुनावो के मुद्दे एक से नही होते है। वास्तव मे राज्य विधान सभा को इस प्रकार भग किया जाना परोक्षत राष्ट्रपति द्वारा बिना किसी प्रावधान के सदस्यो को वापस बुलाने की प्रक्रिया हुयी जो की सविधान द्वारा मतदाताओ को नही प्रदान किया गया है।

यद्यपि यह ठीक है कि सत्ताधारी दल के किसी भी सदस्य का ना चुना जाना सरकार और जनता के मध्य सबध क्षीण होने का लक्षण है, क्योकि प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में कोई भी सरकार तब तक कुशलता पूर्वक कार्य नही कर सकती जब तक कि जनता की उसमे आस्था ना हो। जनता की आस्था ही प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का आधार है। लेकिन इस मत की राजनीतिक रूप मे पुष्टि नही की जा सकती। संविधान के अन्तगत राज्य मन्त्रिमण्डल विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होता है, जिसका गठन जनता के द्वारा चुने हुये सदस्यो से होता है। अत जनता द्वारा सदस्यो को चुने जाने के बाद यह अधिकार विधान सभा मे हस्तान्तरित हो जाता है कि वो सरकार मे विश्वास व्यक्त करे अथवा अविश्वास। क्योंकि एक बार प्रतिनिधियो का चुनाव करने के बाद मतदाताओ को इस बात का अधिकार नही रह जाता कि यदि जनप्रतिनिधि उसके द्वारा किये गये वायदो के अनुसार शासन नही चला रहा हो तो उन्हे वापस बुला ले। अत इस आधार पर सरकारो का भग किया जाना अनुचित है कि लोकसभा के चुनावो मे सत्तारूढ़ दल के विरुद्ध

जा मत दिया गया है वो जनता के अविश्वास का सूचक ह अत ऐसा सरकारो का पद पर बने रहने का कोई अधिकार नही है। 1977 व 1980 के मामले मे यह स्पष्ट हो जाती ह कि यदि ससद मे भिन्न दल वहुमत प्राप्त करता है तो वो राज्या मे अन्य दला क मत्रिमण्डलो को शासन म दूर रखने की चेष्टा करता ह। सघीय सविधान मे केन्द्र आर राज्या मे परस्पर विरोधी दलो क आने की सभावना बनी रहती है[1] और यदि एक दल को ससद म बहुमत प्राप्त हो जाता ह तो उसे उन परिणामा को आधार बना कर कार्यवाही करने से वचना चाहिये।

## अयोध्या घटना के वाद

अयोध्या मे ६ दिसम्बर, १९९२ को विवाद ग्रस्त ढॉचा गिराये जाने के बाद जिस प्रकार से चार राज्य सरकारो का सरकारो को गिराया गया वह वहुत ही विवादाग्रस्त था। क्याकि ६ दिसम्वर की घटना के सदर्भ मे गृहमत्री श्री शकर राव चह्वाण ने उत्तर प्रदश सरकार[2] को लिखे गये पत्रो मे इस बारे मे गभीर पूर्वानुमान प्रकट किया था कि उस दिन क्या कुछ घटित हो सकता है। उन्होने इस बात की भी चेतावनी दी थी कि केन्द्र अपने का कार्यवाही करने का अधिकार है, खासतौर पर उसे अपनी पहल पर सुरक्षा बलों को भेजने का अधिकार हे, और उन्होने एकाधबार यह घोषणा भी की थी कि केन्द्र ने इस सबध म आपातकालीन योजनाये तैयार कर रखी है। लेकिन इस सदर्भ म की केन्द्र को पहले से ही पता था कि बड़ी सख्या मे एकत्र कार सेवको द्वारा कुछ भी कार्यवाही की जा सकती थी, यह प्रश्न उठता हे कि इसके बावजूद केन्द्र द्वारा त्वरित कार्यवाही क्यों नही का गयी[3] जसा कि इस सदर्भ मे सरकारिया आयोग की भी सिफारिश है कि जब "वाह्य आक्रमण या आन्तरिक गड्वडी" से किसी राज्य का काम-काज ठप्प हो जाय और उसके परिणाम स्वरूप राज्य के सवेधानिक तत्र के भग होने की सभावना उत्पन्न हो जाय तो स्थिति का नियत्रिन करने के लिये अपने सविधान प्रदत्त उत्तरदायित्वा को पूरा करने के

1 माई प्रसीडन्सियल ईयर्स, श्री आर. वकटरमन, पृष्ठ 463, रूपा पब्लिकशस (दिल्ली)

2 पायनियर, 18 जनवरी, 1993 (लखनऊ)

3 श्री एम सहाय, मनस्ट्रीम वाल्यूम ३१ न० ७, २६ दि० १९९२

लिये अनुच्छेद 35९ के अधीन केन्द्र द्वारा अपने पास उपलब्ध सभी वैकल्पिक उपायो का प्रयाग किया जाना चाहिए।[1]

लेकिन पूर्व की सुचनाओ के वावजूद केन्द्र द्वारा एतिहायती कदम क्यो नही उठाये गये इसको स्पष्ट करते हुये प्रधानमत्री श्री नरसिह राव न अपन बयान मे कहा कि केन्द्र सविधान से बधा हुआ था और सविधान केन्द्र को केवल इस आशका के आधार पर कार्यवाही करने की अनुमति नही देता है कि वह (राज्य सरकार) अपना कर्तव्य पालन नही करेगी। लेकिन बाद मे उत्तर प्रदेश को छोड़कर अन्य तीन भाजपा शासित राज्यो म राष्ट्रपति शासन लागू करने की कार्यवाही उनके इसी बयान को उलट देती हे वहाँ के तथ्य यह सिद्ध करते ह कि उन राज्यो मे कानून और व्यवस्था की स्थिति इतनी खराब नही थी कि वहाँ अनुच्छेद 356 के तहत उद्घोषणा करनी पड़े।

## 6 दिसम्वर की घटना

अयोध्या की 6 दिसम्बर, 1992 को उत्तेजित कारसेवको की भारी भीड ने 430 वर्ष पुरानी विवादित मस्जिद को ध्वस्त कर दिया और कुछ ही घण्टोंके भीतर केन्द्र ने भारतीय जनता पार्टी द्वारा शासित उत्तर प्रदेश सरकार को बर्खास्त कर दिया इसके साथ ही राज्य विधान सभा भग कर तत्काल राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा जारी कर दी गयी।[2]

मस्जिद के ढाँचे के गिरने के तुरत बाद ही कल्याण सिह ने अपना इस्तीफा राज्यपाल को साप दिया क्योकि सर्वाच्च न्यायालय और केन्द्र को बार-बार दिये गये आश्वासनो के बाद भी वे ढाँचे को ध्वस्त होने से नही बचा सके थे।[3] हालाँकि 27 नवम्बर को सर्वाच्च न्यायालय म उत्तर प्रदेश सरकार ने यह आश्वासन दिया था कि 6 दिसम्वर को केवल प्रतिकात्मक कारसेवा ही होगी। अदालती आदेशा का उल्लंघन करने की अनुमति नही दी जायेगी। अदालत को दिये गये इस आश्वासन के वावजूद 6 दिसम्बर की शाम 4 50 बजे ढाँचा ध्वस्त किया जा चुका था और 6 45 पर कल्याण सिह ने अपना त्याग पत्र दे दिया।

---

1 सरकारिया कमीशन रिपार्ट, केन्द्र राज्य सबध आयोग, भाग-प्रथम, पृष्ठ-166

2 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिसम्बर, 1992

3 वही

इस सवंध म ध्यान देने योग्य वात है वो ये ह कि नगकि गुप्तिया एजसिया न अपनी रिपोर्ट म इस वात की जानकारी दे दी थी कि आर.एस.एम टॉच को गिराने का इरादा रखना ह आर कल्याण सिंह को बखास्त किया जाना चाहिये। सुप्रीम कोट ने भी केन्द्र को इस वात की छूट दे दी था कि सरकार स्थिति की समीक्षा कर ऐसी कायवाही करने को स्वतन्त्र ह जो उचित आर संविधान के दायरे मे हो लेकिन इतना होने पर भी सविधन लोकतत्र आर राज्य की सुरक्षा का दायित्व जो केद्र को सविधान द्वारा सापा गया ह नहीं पूरा किया गया।

जसा की पूर्व मे भी कहा गया हैं। राज्य मे सवेधानिक तत्र विफल होने की सभावना उत्पन्न होने पर भी राज्य सरकार भग कर दी जानी चाहिये जसा कि इस मामले मे था जबकि दिसम्बर 5 तक हजारो की सख्या मे कार सेवक अयोध्या म एकत्रित हा गय थे आर उनके नताओ द्वारा लगातार जनता को उत्तेजित करने वाले बयान दिये जा रहे थे। भाजपा के अध्यक्ष श्री आडवानी ने एक बडी भीड को सम्वोधित करते हुये कहा था कि कार सवा ईटो आर फावड़ो म की जायेगी। इसी प्रकार भाजपा के अन्य नेताओ द्वारा भी उकसाने वाले वयान दिये जाते रह।[1]

इस सबध मे यही प्रश्न उठता है कि कही तो अनुच्छेद 356 लागू करने मे अत्यधिक अति की जाती हे जबकि कभी-कभी अत्यावश्यक मामलो मे भी अनदखी की जाती हैं। ऐसी ही स्थिति उत्तर प्रदेश मे पुन उत्पन्न हुयी जबकि 13 सितम्बर, 1994 का सत्तारूढ़ गठबन्धन सपा-वासपा ने प्रदेश व्यापी बद का आहवान किया। ऐसा उन्होने आरक्षण विरोधियो के आदोलन के चलते किया। इतिहास मे यह पहला अवसर था जबकि किसी सत्तारूढ सरकार ने इतने बड़े पमाने पर वद का अयोजन किया था। जैसी की आशा थी बद के दारान प्रशासनिक तत्र का इस्तमाल किया गया आर फलस्वरूप इलाहाबाद उच्च न्यायालय परिसर म दोनो गुटो मे सघर्ष का स्थिति उत्पन्न हो गयी। मुख्य न्यायाधीश के मे भी मारपीट हुयी जिसको रोकने मे पुलिस बुरा तरह विफल रही। मुख्य न्यायाधीश ने तत्काल रक्षा मत्रालय को फान कर सेना बुला ली जिसने त्वरित कार्यवाही करते हुये वडी दुर्घटना को टाल दिया[2]। लेकिन केन्द्र ने सभावित खतरे को देखत हुये भी एतिहायती कदम नही उठाये जबकि ऐसा किया जाना सविधान के अनुसार ना होना। क्योकि अनुच्छेद 346 के अधीन भारत और उसके भाग की सुरक्षा सघ की जिम्मेदारी

1 इडिया टूडे, ३१ दिसम्बर १९९२, पृ० ४३

2 दि टाइम्स आफ इडिया, १५ सितम्बर १९९४(लखनऊ)

ह । क्योकि प्रत्यक राज्य भारत का एक हिस्सा ह। इसलिये उपबध म यन बात अर्न्तनिहित ह जोकि अनुच्छेद 355 म प्रतिपादित की गयी है। प्रत्येक राज्य का आतरिक गडबडी से रक्षा केन्द्र का कर्तव्य होगा।[1]

इस मामले मे केन्द्र पर इस बात का आरोप लगाया जा सकता है कि सविधान द्वारा सुपुर्द कर्तव्यो का उचित प्रकार से पालन नही किया आर बाद मे जबकि एकत्रित भीड 356 की उदघोषणा करना कदापि उचित नही था। इस कार्यवाही के लिये व्यक्तिगत रूप से किसी का दोषी ठहराना कदापि उचित नही था। इस घटना की आज के उत्तर प्रदेश की घटना से तुलना कर ह कि केन्द्र ने पक्षपात पूर्ण व राजनीतिक विद्वेष भरी कार्यवाही का थी।

मस्जिद गिराये जाने के बाद जेसी की आशका व्यक्त की गया सर्वत्र थी। धार्मिक घृणा का वातावरण छा गया। हजारो की सख्या मे समूचे देश म हत्याय हुयी मानवीय सवदेनाओ क सुन्न पडने से मूल्यो मे गिराकर आ गयी।[2]

भाजपा शासित अन्य राज्यो की सरकारा की बर्खास्तगी की मॉग जार पकडन लगी। यह मॉग उस समय ओर तीव्र हो गयी जबकि अयोध्या कॉड के बाद जिन पॉच साम्प्रदायिक सगठनो पर रोक लगायी गयी थी उनमे से तीन किसी ना किसी प्रकार से भाजपा से सबध रखत थे वे थे-राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ, विश्व हिन्दू परिषद आर बजरग दल। थे सभी हिन्दू सगटन थे।[3]

दो मुस्लिम सगठनो पर भी पाबदी लगायी गयी थी, जिसका मकसद था सविधान क धर्मनिरपेक्ष स्वरूप की रक्षा करना और चूँकि भाजपा शासित राजस्थान, मध्य प्रदेश और हिमाचल प्रदेश की सरकार के सदस्य चूँकि इन प्रतिबधित सगठनो के कार्यकर्ता रह चुके थे अत यह आशका व्याप्त की गयी थी, कि वे इन सगठनो पर लगे प्रतिबन्धो का पालन नही करेंगे[4]। इसी दलील के आधार पर इन तीन राज्या की सरकारो को बर्खास्त कर दिया गया। यह कार्यवाही

---

1 गृहमत्रालय क एक वरिष्ठ अधिकारी का कहना था कि सविधान लागू होने के बाद इस अनुच्छेद का इस्तमाल कभी नही हुआ—वास्तव म यह केवल सरकार को बचाने का प्रयास मात्र था—इडिया टूडे, पूर्वोधृत

2 दैनिक जागरण,९ दिसम्बर १९९२

3 दि टाइम्स आफ इडिया दिसम्बर १८१९९२

4 वही एस०सहाय

प्रधानमत्री द्वारा उपरोक्त आधार पर बर्खास्तगी ना करने के आश्वासन के बाद की गयी थी। वास्तव मे भाजपा शासित सरकारो की बर्खास्तगी ना केवल अनुचित थी वरन् एक बहुत बड़ी राजनीतिक भूल थी ये मामला भी 1977 व 1980 के मामले की पुनरावृति मात्र ही था। इस अनुच्छेद के दुरुपयोग के श्री गणेश का सेहरा कांग्रेस पार्टी के सिर पर नही बाँधा जा सकता। इसकी शुरुआत तो विपक्ष ने ही की थी।

1992 मे पुन धर्मनिरपेक्षता के स्वरूप के नष्ट होने का सहारा लेते हुये भाजपा सरकारो को पदच्युत कर दिया गया। इस प्रकार 1977 मे जिस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का सहारा लेकर गलत परम्परा की शुरूआत की गयी थी वही गलती कांग्रेस द्वारा समय-समय पर दोहराई गयी अर्थात विपक्ष ने यदि एक बार देश के सघीय स्वरूप पर प्रहार का प्रयत्न किया तो कांग्रेस ने बार-बार ऐसा किया है।

सविधान सभा मे बहस के दौरान ही डॉ0 कामथ ने चिन्ता व्यक्त की थी कि इस धारा से राज्यो के अधिकार खत्म हो जायगे[1]। उनकी चिन्ता वास्तव मे आज के समय मे पूरी तरह सही थी। जिस प्रकार गलत आधारो पर इस अनुच्छेद का प्रयोग ऐसी सरकारो के विरुद्ध किया जा रहा है जो हमारे सघात्मक व्यवस्था के प्रतिकूल है। राज्यो मे शाति व व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व राज्यो का विषय होना चाहिये जिन आधारो पर इन तीनो राज्यो मे राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था उसमे प्रमुख थी सबधित मुख्यमत्री और मत्रिमण्डल के सदस्य चूँकि आर.एस.यस से सम्बन्ध रखते थे अत उनके द्वारा केन्द्र द्वारा दिये गये निर्देश का उचित रूप से पालन नही किया जायेगा जो की प्रतिबधित सगठनो के विरुद्ध लगाये गये थे जबकि यह बात पूर्णत गलत थी। यह सही था कि राज्य सरकार के सबध प्रतिबधित सगठन से थे और कार सेवको को अयोध्या जाने के लिये प्रोत्साहित भी किया गया था। लेकिन आकड़े यही दर्शाते है कि हिन्दू सगठनो पर प्रतिबन्ध लगाये जाने के बाद से इन राज्यो ने देश के अन्य राज्यो की तरह अतीत मे सगठन के सदस्य रहे लोगो की गिरफ्तारी आदि शुरू कर दी थी।[2]

और दूसरा आरोप जो की राज्य मे हिसा आदि के विषय मे लगाया जा रहा था तो सबसे अधिक हिसा गुजरात, महाराष्ट्र और असम मे हुयी थी। साम्प्रदायिक दृष्टि से

---

1 सविधान सभा वाद विवाद, वाल्यूम ९ पृष्ठ 134 1994

2 सुन्दर लाल पटवा बनाम भारत सघ ए०आई०आर०,म०प्र०1993 217 [illegible]

सवन्नशील राज्य गुजरात मे 246 व्यक्ति मारे गये थे। राज्य म पुलिस की भूमिका भी सन्दिग्ध रही थी साथ ही प्रशासन भी कारगर कार्यवाही करने म असफल रहा था।

महाराष्ट्र मे भी प्रारभिक झडपो ने साप्रदायिक हिसा का रूप ले लिया था। अचानक भडकी हिसा को रोकने म करीब तीन सौ लोग पुलिस कार्यवाही का शिकार हुय थ। राज्य मे यह स्थिति करीब घटना के हफ्ते भर बाद तक बनी रही।[1]

इसी प्रकार असम म इस बात का असर इतना गहरा था माना घटना आस पास ही घटा हा। बग्लादेशी अप्रवासियो के दगा मे शामिल हो जाने से स्थिति काफी खराब हो गयी थी। राज्य म सकडो लोगो की जाने गयी थी।

इसी प्रकार देश के अन्य राज्यो मे जहाँ गेर भाजपा सरकार सत्तारूढ़ थी घटना क्रम क दारान हिसा की वारदातो मे तेजी से वृद्धि हुयी।

इस राज्यो के मुकावले मे भाजपा शासित राज्यो मे स्थिति काफी नियत्रण मे थी जो का आशा क विपरीत था।

उत्तर प्रदेश मे 20 व्यक्तियो के मारे जाने का समाचार था लेकिन स्थिति नियत्रण म थी। कानपुर, वाराणासी आदि शहरा की छोड़कर अन्य स्थानो पर वातावरण शात बना हुआ था। इसी प्रकार राजस्थान मे भी हिंसा की वारदात काफी हुयी थी। पुलिस और प्रशासन की सर्तकता की वजह से हालात पर काबू पा लिया गया था। हिंसा का वारदाता मे 48 लोगा के मार जाने की बात सरकारी तौर पर कही गयी थी।[2]

लेकिन मध्य प्रदेश के कुछ शहरो मे विशेषकर राजधानी भोपाल म पुलिस व प्रशासन की निष्क्रियता से स्थिति नियत्रण से बाहर हो गयी थी। हालात पर काबू पाने के लिये मुख्यमत्री श्री पटवा ने त्वरित कार्यावाही नही की। लेकिन फिर भी इन सभी प्रदेशा म हालात देश के अन्य भागा की तरह थे[3]।

हिमाचल प्रदेश भाजपा शासित ऐसा राज्य था जहाँ इस वारदात के बाद भी शाति बना रही। इस सबध मे केन्द्रीय योजना मत्री श्री सुखराम का 13 दिसम्बर को शिमला मे दिया गया बयान ध्यान देने योग्य ह कि हिमाचल मे कानून और व्यवस्था की स्थिति सतोषजनक है।

---

1 इडिया टूड पूर्वाधृत पृष्ठ ८३

2 वही

3 सुन्दर लाल पटवा बनाम भारत सघ पूर्वाधृत

हिमाचल मरकार को तब तक वर्खास्त नही किया जायेगा, जब तक वह अपने सविधानक दायित्वा का पालन करती रहेगी। मध्य प्रदेश के मामले मे राज्यपाल श्री कुवर महमूद अली खॉ द्वारा राष्ट्रपति को तीन रिपोर्ट प्रेषित की गयी थी अपनी पहली रिपोर्ट जोकि 8 दिसम्बर को भेजी गयी थी।[1] जो की अयोध्या काड के बाद राजधानी भोपाल मे दगे भडकने के दूसरे दिन राष्ट्रपति को भेज दिया गया था। जिसमे राष्ट्रपति शासन की अनुशसा की गयी थी। इस रिपोर्ट म उन्होन विभिन्न शहरा म कर्फ्यू ओर मोतो का हवाला दिया था। राज्यपाल इस नतीजे पर पहुँचे थे कि राज्य सरकार द्वारा कानून व व्यवस्था की स्थिति मे सुधार के किये पयाप्त कदम नहीं उठाया जा रहा था।

अपने पहली रिपोर्ट मे राज्यपाल ने राष्ट्रपति का ध्यान इस तथ्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट कराया था जिसम मुख्यमत्री श्री पटवा द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार की बर्खास्तगी की आलोचना की गयी गई। इन सभी तथ्यो को देखने हुये, उन्होने राष्ट्रपति से तुरत कार्यवाही करने की मॉग की थी[2]

राज्यपाल द्वारा दूसरी रिपोर्ट जो की 18 दिसम्बर को प्रेषित की गयी, म पूरे राज्य म व्यापक स्तर पर फैली हिसा का उल्लेख किया गया था। जिससे नागारिको की जीवन और सम्पति की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया था।[3]

राष्ट्रपाते को दिसम्बर 13 को प्रेषित अपने अतिम पत्र मे राज्यपाल ने स्थिति की भयावहता का उल्लेख किया था। इस पत्र के साथ ही दो पत्र ओर सलग्न किया था उसमें से एक था भेल के कार्यकारी निदेशक सुर्दशन कुमार हाडा का, दूसरा पत्र मध्य प्रदश मानवाधिकार आयोग के चेयनमन सलीउल्लाह खॉ का था हाड़ा ने अपने पत्र मे 22 वर्षो के इतिहास मे पहली बार भी पयत्र के बद होने और प्रतिदिन डेढ़ करोड़ रुपये की क्षति का भी उल्लख किया था।[4] राज्यपाल न अपने पत्र मे हिन्दू सगठना पर प्रतिबध लगाये जाने की श्री पटवा द्वारा गलत कह जान की ओर ध्यान आकृष्ट कराया था। राज्यपाल ने प्रतिवधात्मक कानूना का पालन किये जाने की क्षमता के बारे मे भी सदेह व्यक्त किया था। राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट मे अत म यही

1 सुन्दर लाल पटवा बनाम भारत सघ, पूर्वोधृत

2 वही परा ३८ पृष्ठ २३८

3 वही पेरा ३९ पृष्ठ २३५

4 वही पृष्ठ २१८ पैरा २३

कहा था कि उनके पास इस बात के कई कारण ह कि मध्य प्रदेश म अनुच्छद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा मे आर अधिक विलम्ब नही किया जाना चाहिय। इस रिपोर्ट के आधार पर अन्य दोनो राज्यो के साथ मध्य प्रदेश मे भी राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट मे यह इगित किया था कि मुख्यमत्री ने स्वय स्वीकार किया ह कि वे आर.एस.एस के सदस्य है। आर एक विधायक न सार्वजनिक तार पर स्वीकार किया था कि उसने विवदित स्थल के गिराये जाने मे भाग लिया था। राज्यपाल का विचार था कि राज्य की जनता यह सोचती ह कि मुख्यमत्री जो स्वय प्रतिबधित सगठन से जुडे ह अत वो केन्द्रीय सरकारो के निदेशी का पालन नही करेगे। राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट म इस ओर ध्यान दिलाया था कि राज्य का प्रशासन सविधान के अनुसार नही चलाया जा सकता। अत उनके पास राष्ट्रपति शासन के लागू करने की सिफारिश करने के अलावा कोई दूसरा विकल्प शष नही ह।[1]

इसी प्रकार राजस्थान के राज्यपाल डॉ चेन्ना रेड्डी ने अपना रिपोर्ट म इस बात का उल्लेख किया था कि मुख्यमत्री भी भरा सिह शेरवावत सरकार के एक मत्री ने अयोध्या मे कार सवा मे भाग लिया था। राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट मे इस बात उल्लेख किया था कि साम्प्रदायिक सगठनो पर कारगर रोक नही लगायी गयी थी। उन्होने राज्य मे कानून व व्यवस्था की खराब स्थिति पर भी अपनी ध्यान आकृष्ट कराया था तथा राज्य मे अल्पसख्य म के हितो को नुक्सान पहुँचा रहा ह। रिपोर्ट मे वर्तमान हालात म प्रशासन द्वारा प्रभावशाली ढग से निपटने म असमर्थ बनाया था। अतएव राज्यपाल का विचार था कि वर्तमान विधान सभा भग कर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाना चाहिये।[2]

यह निष्कर्ष निकालने के लिये राज्यपाले ने तीन कारण दिय थे कि राज्य का शासन सविधान के अनुसार नही चलाया जा सकता क्योकि पहला मुख्यमत्री सहित भाजपा नेताओ ने कार सेवको को समारोह पूर्वक विदायी दी, दूसरा - कुछ विधयाको ने तो स्वय स्वीकार किया था कि उन्होने मस्जिद गिराने मे हिस्सा लिया था। तीसरा -कारण रिपोर्ट म यह आशका भी व्यक्त की गयी थी कि प्रतिबधित सगठन का एक सदस्य रह चुकने के कारण मुख्यमत्री आर.एस.एस. पर पाबदी ईमानदारी मे लागू नही करेगे।

---

1 दि टाइम्स आफ इडिया 16 दिसम्बर 1992

2 वही

वास्तव मे ये तीनो ही कारण गलत थे जसा कि मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय म अपने निर्णय म कहा कि राज्यपाल की रिपोर्ट मत्रि पूर्णत गलत तथ्यो पर आधारित थी जबकि राज्य की स्थिति इसके विपरीत थी।

पहला कारण जो कार सेवको के प्रोत्साहन का आरोप लगाया गया था तो यदि इसम सच्चाई तो यह सब 6 दिसम्बर के पूर्व ही हुआ था तो यह कायवाही वध थी क्योंकि सुप्रीम कोर्ट ने ही इसकी अनुमति दी थी।

आर यदि प्रदेश के किसी विधायक ने कथित कार्यवाही म हिस्सा लिया था तो इसस यह कहा होता है कि पूरा मत्रिमण्डल इस प्रकार की कार्यवाही म शामिल था। वास्तव म किसी एक विधायक और मत्रा के कृत्य के आधार पर पूरे मत्रि मण्डल को दोषी ठहराना कहाँ तक उचित हो सकता ह ?

तीसरा कारण का भी तर्क की कसाटी पर खरा नही उतरा जिसम यह कहा गया था कि आर.एस.एस आदि सगठनो के सदस्य होने के कारण मुख्यमत्री केन्द्र सरकार द्वारा लगायी गयी पाबदी लागू नही करेगे। यह गलत तथ्यो पर आधारित थी क्याकि इसके विपरीत था। क्याकि इन सभी राज्यो मे प्रतिबधित सगठनो की गतिविधिया पर रोक लगा दिया गया था साथ ही सभी मे सदस्यो की गिरफ्तारी भी की जा रही थी।

## मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का निर्णय

मध्य प्रदेश मे केन्द्र के इस फैसले के विरुद्ध मध्य प्रदेश के मुख्यमत्री श्री सुन्दर लाल पटवा ने उच्च न्यायालय मे एक याचिका दयार की जिसमें केन्द्र की कथित कार्यवाही को चुनाती दी गयी थी। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की जबलपुर पीठ ने अपने ऐतिहासिक फैसले म राष्ट्रपति शासन के आदेश को निरस्त कर दिया था लेकिन न्यायालय ने अपने फैसले के क्रियान्वयन पर दो सप्ताह की रोक लगा दी थी ताकि केन्द्र सरकार सर्वोच्च न्यायालय मे अपील कर सके।[1]

यह उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश एस.के.झा न्यानमूर्ति अग्रवाल तथा न्यायमूर्ति डी एम धर्माधिकारी का एक विशेष पीठ द्वारा 2/3 के बहुमत द्वारा दिये गये आने निर्णय द्वारा सविधान के अनुच्छेद 356 के तहत करने पटवा सरकार को भग कर राष्ट्रपति शासन लागू करने

1 सुन्दर लाल पटवा बनाम भारत सघ, पूर्वोधृत पृ० 217

का अवध ठहराते हुये तत्सम्बन्धी जारी अधिसूचना को भी रद्द कर दिया था। इस सबध म न्यायधीशा द्वारा न्यायसम्मत तर्क प्रस्तुत किये गये थे।[1]

न्यायधीशो के विचार मे राष्ट्रपति की अधिसूचना वस्तुपरक तथ्या पर आधारित नही थी। इसके लिये जो कारण बताये गये थे वो सविधान के अनुच्छेद 356 के असाधारण प्रावधानो का लागू करने के लिये अपर्याप्त थे। अत सम्बन्धित अधिसूचना और उसके साथ विधान सभा भग करने की कार्यवाही स्वत ही निरस्त हो जाती है।[2]

न्यायाधीशो के विचार मे अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा विशेष अधिकारो का प्रयोग करने की स्थिति उस समय प्रदेश मे नही थी और ना ही विधान सभा भग करने का कोई औचित्य ही था क्योकि अयोध्या की घटनाओ के बाद भोपाल तथा दो अन्य शहरो म बिगडी कानून व व्यवस्था की स्थिति पर मध्यप्रदेश के राज्यपाल द्वारा केन्द्र को भेजी गयी अपनी रिपोर्ट मे ऐसी बात नही कही गयी थी कि जो राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू करने का पर्याप्त कारण बनता। राज्यपाल की रिपोर्ट या किसी अन्य स्रोत से इस बात की पुष्टि नही होती थी कि राज्य मे सविधान के अनुरूप शासन नही चलाया जा सकता था और राज्य मे सवैधानिक व्यवस्था विफल हो गयी थी। न्यायालय का विचार था कि अनुच्छेद 356 के अर्न्तगत राष्ट्रपति का सतुष्टि के आधार पर जो घोषणा जारी की जाती है वास्तव मे राष्ट्रपति शासन लगाये जाने सवधी जो निर्णय लिया जाता है वह वास्तव मे मत्रिमण्डल द्वारा लिया जाता है। अत राष्ट्रपति की सतुष्टि को न्यायालय के विचार का विषय बनाया जा सकता है।[3] और जिन आधारों पर राष्ट्रपति ने राज्य विधान सभा के भगकर राष्ट्रपति शसन लगाये जाने सबधी उद्घोषणा जारी की थी वैसी परिस्थितिया वहा नही थी।

न्यायधीशो को विचार था कि विवादित ढॉचे के गिराये जाने के बाद से ना केवल मध्य प्रदश म अपितु गुजरात, महाराष्ट्र आदि अन्य राज्यो भी हिंसक वारदाते हुयी थी लेकिन केवल भाजपा शासित राज्य सरकारो के विरुद्ध ही कार्यवाही की गयी।[4]

1 पूर्वोंधृत पृ 218

2 वही पृ० 218

3 सुन्दर लाल पटवा बनाम भारत सघ' (एमवी एआईआर अक्टूबर 1993, एम.पी 217 पैरा 30 वाल्यूम 80

4 सुनदर लाल पटवा बनाम भारत सघ वही

केन्द्र सरकार द्वारा हिन्दू सगठन राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ पर लगाये गये प्रतिबन्ध के अनुसार उसके विरुद्ध कार्यवाही करने से भी राज्य सरकार ने इनकार नही किया था जिसके आधार पर अनु 356 के तहत यह स्वीकार किया जाता कि राज्य सरकार केन्द्र के निर्देशो का पालन नही कर रही है ना ही राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट म ऐसा कोई उल्लेख किया था।[1]

एक अन्य महत्वपूर्ण बात जो को निर्णय कही गयी थी कि अवध आदेश ससद के द्वारा अनुशोषित किये जाने के पश्चात वैध नही हो जाता, क्योकि अनुमादन के पूर्व दो माह तक एसा अवध आदेश पुर्वतन मे रहता ह। दो माह पश्चात भी ससद अनुमादन करत समय राष्ट्रपति की सतुष्टि की जाच नही करती है। ससद केवल अपने अनुमोदन द्वारा उदघोषणा की अवधि को बढा दता ह।[2] इस प्रकार न्यायालय ने ससद की सर्वोच्चता को भी चुनौती देने का प्रयास किया जा की दुभाग्यपूर्ण हे। सवोच्च न्यायालय ने भी हाल ही म दिय गये अपन निर्णय द्वारा यह निधारित किया ह कि यदि विधान सभा भग करने की कार्यवाही अवध पायी गयी तो न्यायालय भग विधान सभा को पुनर्जीवित भी कर सकता है। यह निर्णय उस समय भी दिया जा सकता था, जबकि उसे ससद द्वारा मजूर कर दिया गया हो। न्यायालय ने अपने बहुमत से दिये गये निर्णय द्वारा तीन राज्यो—

नागालैण्ड (1988) कर्नाटक (1989 और मेघालय (1991) म जहा राष्ट्रपति शासन सबधी उदघोषणा तथा राज्य सरकारो की पदच्युति को असवैधानिक घोपित किया।

जिन्हे ससद द्वारा अनुमोदित किया जा चुका था यद्यपि न्यायालय न कहा कि चूँकि इन तीन राज्यो के चुनाव कराये जा चुके है और नयी सरकारो का गठन हो चुका है अत पुरानी विधान सभाओ को पुनरूजीवित करना सभव नही है।

यह पहला अवसर था जबकि किसी न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति शासन की कार्यवाही का अवध घोपित किया गया था जब कि 1977 के अपने महत्वपूर्ण[3] फसले मे न्यायालय ने राष्ट्रपति की सतुष्टि को न्यायालय के विचार का विषय बनाने से इनकार कर दिया था लेकिन न्यायालय का विचार था कि सबधित घोषणा पर इस आधार पर विचार किया जा सकता था कि उदघोषण केलिये पर्याप्त आधार मौजूद थे या नही। अर्थात जबलपुर पीठ ने भी सर्वोच्च न्यायालय

1 पूर्वाधृत पैरा 32 90

2 वही परा 29 एमपी 217

3 बोम्बई बनाम भारत सघ' एआईआर 1994 अक्टूबर एससी 2113 पैरा 365

क फसले के विपरीत निणय नहीं दिया ह ना ही ऐसा कर सवेधानिक भावना का ही उल्लघन किया था।

लेकिन जबलपुर हाईकोर्ट द्वारा दिये गये फैसले को उलटत हुये उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय मे दिसम्बर 1992 को भाजपा की तीन राज्य सरकारो की बर्खास्तगी को वैध ठहराया। उल्लेखनीय है कि केवल तीन राज्यो राजस्थान, मध्य प्रदेश आर हिमाचल प्रदेश सरकारो की वर्खास्तगी को चुनौती दी गयी थी उत्तर प्रदेश सरकार की वर्खास्तगी को भाजपा ने विरुद्धस्त उचित स्वीकार किया था क्योकि मुख्यमत्री ने स्वय ही त्याग पत्र दे दिया था।

सर्वोच्च न्यायालय के नौ न्यायमूर्ति श्री एस.आर. पाडियन की अध्यक्षता मे ना सदस्यीय सवधानिक पीठ ने अपने फेसले द्वारा स्वय न्यायालय द्वारा 1977 म दिये गये फसले को उलट दिया जिसमे कहा गया था कि अनुच्छेद 356 के तथा उससे सम्बद्ध व्यवस्था की समीक्षा नही की जा सक्ती जबाके उच्च न्यायालय ने इसके विपरीत कहा कि सही घोषणा हे या गलत यह देखना न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। साथ ही या गलत यह देखना न्यायालय के अधिकार क्षेत्र अन्तर्गत आता हे। साथ ही न्यायालय इस अनुच्छेद क अन्तर्गत दिये गये राष्ट्रपति के अधिकारा की भी समीक्षा कर सकता है।

न्यायालय ने अपने फेसले द्वारा राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा के साथ ही राज्य विधान सभा को भग करने के राष्ट्रपति के अधिकार को भी सीमित कर दिया है। फैसले के बाद राष्ट्रपति किसी राज्य विधान सभा को भग करने की कार्यवाही भी कर सकता हे जबकि उस राज्य सरकार को बर्खास्त करने और राष्ट्रपति शासन लागू करने की उसकी अधिसूचना की तुष्टि ससद से ना हो जाये. ओर यदि किसी मामले मे ससद इस नतीजे पर पहुँचता है कि आदेश अवध था तो वह यथा स्थिति बहाल कर सकती है।

भाजपा सरकारो की वर्खास्तगी के कदम को उचित ठहरते हुये न्यायालय ने कहा कि धर्म निरपेक्षता भारतीय संविधान का आधार भूत तत्व है। और यदि कोई राज्य सरकार धर्म निरपेक्षता को चोट पहुँचाने वाला कोई कदम उठाता है तो इससे ऐसे हालात पैदा हो सकते है जिससे कानून व व्यवस्था के अनुसार शासन चलाना सम्भव ना हो ऐसी परिस्थितियो मे राज्य सरकरों की बर्खास्तगी उचित है।

एक अन्य महत्वपूर्ण बात जो को निर्णय कही गयी थी कि अवैध आदेश ससद के द्वारा अनुशोपित किये जाने के पश्चात वैध नहीं हो जाता,[1] क्याकि अनुमोदन के पूर्व

---

1 पूर्वोधृत परा, 29 पृष्ठ–217

दो माह तक ऐसा अवैध आदेश प्रवर्तन म रहता है। दो माह पश्चात भी ससद अनुमोदन करने समय राष्ट्रपति की सतुष्टि की जाच नहीं करती है। ससद केवल अपने अनुमोदन द्वारा उद्घोषणा की अवधि को बढा देता है। [1]इस प्रकार न्यायालय ने ससद की सर्वाच्चता को भी चुनाती देने का प्रयास किया गया जो का दुर्भाग्यपूर्ण है। सवाच्च न्यायालय ने भी हाल ही म दिये गये अपने निर्णय द्वारा यह निर्धारित किया है कि यदि विधान सभा भग करन की कार्यवाही अवैध पायी गयी तो न्यायालय भग विधान सभा का पुनर्जीवित भी कर सकता ह। यह निर्णय उस समय भी दिया जा सकता था, जबकि उसे ससद द्वारा मजूर कर दिया गया हो। न्यायालय ने अपने बहुमत से दिये गये निर्णय द्वारा तीन राज्यो—नागालण्ड (1988) कर्नाटक (1989 और मेघालय (1991) म जहाँ राष्ट्रपति शासन सबधी उद्घोषणा तथा राज्य सरकारो की पदच्युति को असवधानिक घोषित किया।जिन्हे ससद द्वारा अनुमोदित किया जा चुका था यद्यपि न्यायालय ने कहा कि चूँकि इन तीन राज्यो के चुनाव कराये जा चुके है आर नयी सरकारो का गठन हो चुका ह अत पुरानी विधान सभाओ को पुनरूजीवित करना सभव नही है।

यह पहला अवसर था जबकि किसी न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति शासन की कार्यवाही को अवध घोषित किया गया था जब कि 1977 के अपने महत्वपूर्ण[2] फैसले में न्यायालय ने राष्ट्रपति की सतुष्टि को न्यायालय के विचार का विषय बनाने से इनकार कर दिया था लेकिन न्यायालय का विचार था कि सबधित घोषणा पर इस आधार पर विचार किया जा सकता था कि उद्घोषण के लिये पर्याप्त आधार माजूद थे या नहीं। अर्थात जबलपुर पीठ न भी सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के विपरीत निर्णय नही दिया है ना ही ऐसा कर सवधानिक भावना का ही उल्लघन किया था।

**अनुच्छेद 356 पर उपर्युक्त मामलो के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न उच्च न्यायालयों में भी अनेक वाद उपस्थित हुये है।** केके अबू बनाम भारत सरकार के मामले में **अनुच्छेद 356** का कार्यवाही को केरल उच्च न्यायालय मे चुनौती दी गयी। केरल मे मार्च 1965 के **चुनावों म**

---

1 पत्रोधृत पर 29 एमपी 217

2 बाम्मई बनाम भारत सघ' एआईआर 1994 अक्टूबर एससी 2113 पैरा 365

किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नही मिला था। राज्यपाल के प्रतिवेदन के आधार पर केरल म अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत कार्यवाही की गयी थी। उच्च न्यायालय ने इस सबध मे निर्णय दिया कि बिना विधान सभा की बेठक बुलाये हुये भी विधान सभा को भग किया जा सकता हे आर इस कार्यवाही को वदनियति की कार्यवाही नही मानी जा सकती[1]

**राव वीरेन्द्र सिह बनाम भारत सरकार** के मामले म भी यह निर्णय दिया गया था कि राज्यपाल द्वारा प्रस्तुन किये गये प्रतिवेदन को किसी अदालत म चुनाती नहीं दी जा सकती ओर राष्ट्रपति के कार्यो की समीक्षा न्यायालय नही कर सकती। न्यायपालिका को राष्ट्रपति की 'सतुष्टि' या समाधान पर विचार करने का कोई अधिकार नही है।[2]

**ज्योति बसु बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया** के मामले मे कलकत्ता उच्च न्यायालय न यह निर्णय दिया कि राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 356 की घोषणा करने म मन्त्रिपरिषद के परामर्श क अनुसार कार्य किया अथवा नहीं, इसके जॉच का अधिकार न्यायालय का नही हे।[3]

इस सबध मे **विजयानन्द पटनायक तथा अन्य बनाम भारत सघ**, का मामला भी महत्वपूर्ण है। जिसमे यद्यपि न्यायालय ने अनुच्छेद 356 मे हस्तक्षेप करने से यह कहते हुय इनकार किया था कि यह न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर है।[4]

लेकिन जबलपुर हाईकोर्ट द्वारा दिये गये फैसले को उलटते हुये उच्चतम न्यायालय न अपने निर्णय मे दिसम्बर 1992 को भाजपा की तीन राज्य सरकार की बर्खास्तगी को वध ठहराया। उल्लेखनीय है कि केवल तीन राज्यो राजस्थान, मध्य प्रदेश और हिमाचल प्रदेश सरकारो की बर्खास्तगी को चुनोती दी गयी थी, उत्तर प्रदेश सरकार की बर्खास्तगी को भाजपा ने उचित स्वीकार किया था, क्योकि मुख्यमत्री ने स्वय ही त्याग पत्र दे दिया था।[5]

---

1 क.क अत्रू बनाम भारत सघ, एआई आर, 1965 केरल, पृष्ठ–229

2 राव वीरन्द्र सिह बनाम भारत सघ-एआईआर 1968, पजाब पृष्ठ–441

3 ज्याति बसु बनाम भारत सघ, एआई आर कलकत्ता, पृष्ठ 122

4 विजयानन्द पटनायक बनाम भारत सघ ए. आईआर, उड़ीसा, 1993

5 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिसम्बर 7, 1992 (लखनऊ)

सर्वाच्च न्यायालय के नौ न्यायमूर्ति श्री एस आर पाडियन की अध्यक्षता मे नो सदस्यीय सवधानिक पीठ न अपने फसले द्वारा स्वय न्यायालय द्वारा 1977 मे दिये गये फसले को उलट दिया, जिसमे कहा गया था कि अनुच्छेद 356 के तथा उससे सम्बद्ध व्यवस्था की समीक्षा नही की जा सकती, जबकि उच्च न्यायालय ने इसके विपरीत कहा कि सही घोषणा ह या गलत यह देखना न्यायालय के अधिकार क्षेत्र क अन्तर्गत आता है। साथ ही न्यायालय इस अनुच्छेद के अन्तर्गत दिये गये राष्ट्रपति के अधिकारो की भी समीक्षा कर सकता है।[1]

न्यायालय ने अपने फेसले द्वारा राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा के साथ ही राज्य विधान सभा का भग करने के राष्ट्रपति के अधिकार को भी सीमित कर दिया है। फसले क बाद राष्ट्रपति किसी राज्य विधान सभा को भग करने की कायवाही भी कर सकता ह जबकि उस राज्य सरकार को बर्खास्त करने और राष्ट्रपति शासन लागू करने की उसकी अधिसूचना की तुष्टि ससद से ना हो जाये, और यदि किसी मामले मे ससद इस नतीजे पर पहुँचता ह कि आदेश अवैध था तो वह यथास्थिति बहाल कर सकती ह।[2]

भाजपा सरकारो की बर्खास्तगी के कदम को उचित ठहरते हुये न्यायालय ने कहा कि धर्मनिरपेक्षता भारतीय सविधान का आधार भूत तत्व है और यदि कोई राज्य सरकार धर्म निरपेक्षता को चोट पहुँचाने वाला कोई कदम उठाता हे तो इससे एसे हालात पदा हो सकते है जिससे कानून व व्यवस्था के अनुसार शासन चलाना सम्भव ना हो ऐसी परिस्थितियो मे राज्य सरकारो की बर्खास्तगी उचित है।[3]

न्यायालय के विचार मे यदि किसी सत्तारूढ़ दल ने धर्म को राजनीति मे इस्तेमाल किया ह तो वह अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत यह निष्कर्ष निकालने को स्वतन्त्र है कि उस राज्य म राष्ट्रपति शासन लगाना आवश्यक है।

अपने पूर्व मे दिये गये फेसले को बदलते हुए न्यायालय न एक अन्य महत्वपूर्ण फसला यह दिया कि अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति की सतुष्टि का आधार न्यायिक परिधि

1 एस आर बाम्बइ बनाम भारत सघ, एआईआरएससी 1994, 2112 पेरा 365

2 वही 365

3 वही, 365 पृष्ठ 2113

म आता ह, जबकि पूर्व मे इससे इनकार किया था। अनुच्छेद 74(2) क प्रावधाना के बावजूद अदालत को दस्तावेज मँगा सकती है, जिनके आधार पर राष्ट्रपति ने आदेश जारी किया हो। न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि वो ऐसे दस्तावज मँगाने को भी स्वतन्त्र ह जिनके आधार पर केन्द्रिय मत्रिमण्डल ने राष्ट्रपति से सबधित आदेश जारी करने की सिफारिश की थी। सर्वोच्च न्यायालय का विचार है कि अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति का अधिकार सशर्त ह असीम नही।

अदालत ने अपने फेसले मे यह भी स्पष्ट किया कि राष्ट्रपति को अपने अधिकारो का उपयोग स्वतन्त्र तथा निषपक्ष रूप से लोकतत्र के हित म करना हाता किसी राजनीतिक दल का भारी बहुमत से केन्द्र मे सत्तारूढ़ होने से किसी विपक्षी दल को दल को राज्य सरकार को बर्खास्त करने का कोई वेध कारण नही बनता।

सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त फेसले से निश्चित ही आये दिन केन्द्र द्वारा अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग पर रोक लगेगी क्योकि न्यायालय के 1977 के फसले के बाद यह सिद्धान्त सा बन गया था कि राष्ट्रपति की सतुष्टि न्यायालय के विषय क्षेत्र से बाहर ह, से पूर्व उन मामलो का जानना आवश्यक ह जहाँ की राज्य सरकारो की बर्खास्तगी की कार्यवाही को न्यायालय ने अवध घोषित कर दिया था। लेकिन चूँकि न्यायालय का निर्णय याचिका दायर किये जाने के काफी समय बाद आया था अत न्यायालय के उक्त फैसले का क्रियान्वयन सभव नहीं था। क्योकि सबधित तीनो राज्यो मे नही चुनाव कराये जा चुके थे जिसके परिणाम स्वरूप नयी विधान सभाये गठित की जा चुकी थी। अत न्यायालय ने अपने निर्णय मे यह स्पष्ट किया था कि पूर्व की सरकारो की सरकारो का पुर्नजीवन सभव नहीं है क्योंकि राज्यों में लोकप्रिय सरकारें सत्तारूढ़ हो चुकी ह।[1]

## कर्नाटक का मामला

कर्नाटक मे 21 अप्रल 1989 को राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा की गयी थी जबकि राज्यपाल श्री पी वेंकेटसुबेया ने केन्द्र सरकार को रिपोर्ट प्रेषित कर 8 माह पुरानी बोम्बई सरकार के अल्पमत मे आने की सूचना दी थी, साथ ही उन्होंने अपनी रिपोर्ट मे

1 एस आर. बाम्बई बनाम भारत सघ ए.आई. आर. 1994 एस.सी. 2095

यह भी कहा था कि राज्य मे किसी अन्य दल की सरकार बनने की कोई सम्भावना नही है।[1]

राज्यपाल द्वारा भेजी गयी रिपोर्ट पर मंत्रिमण्डल द्वारा विचार करने के बाद राज्य विधान सभा भंग कर राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा कर दी गयी थी, जबकि सत्यता यह थी कि उद्घोषणा जारी करते समय सत्तारूढ जनता पार्टी बहुमत प्राप्त दल था और मुख्य मंत्री श्री बोम्वई ने राज्यपाल से विधान सभा मे अपना बहुमत सिद्ध करने का अवसर दिये जाने का अनुरोध किया था। लेकिन इसके बावजूद राज्य मे राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा कर दी गयी थी।[2]

इससे पूर्व 30 अगस्त 1988 को श्री एस आर बोम्वई ने पूर्व मुख्यमंत्री श्री हेगड़े के त्यागपत्र के बाद पद ग्रहण किया था। श्री हेगडे को अपना इस्तीफा टेलीफोन टेप करने के आरोप के कारण देना पडा था।

लेकिन श्री बोम्वई द्वारा अपना पद ग्रहण करने के कुछ दिनो बाद पार्टी मे असन्तोष उभरने लगा था जबकि सितम्बर 1988, मे जनता विधायक दल के 139 सदस्यो मे 27 तो जनता पार्टी बने रहे लेकिन शेष 112 सदस्यो ने (जिसमे स्पीकर भी शामिल थे) पृथक दल जनता दल का गठन किया।[3]

इसके तुरत बाद ही जनता दल के एक विधायक श्री के आर मोलकारी ने राज्यपाल को पत्र भेजकर सरकार से समर्थन वापस लेने की सूचना दी। दूसरे दिन उन्होने राज्यपाल को 19 पत्र सौपे, जिनमे से 17 जनता दल विधायको के व एक-एक भाजपा व निर्दलीय विधायको के थे। अपने हस्ताक्षर युक्त पत्रो मे उन विधायको ने राज्य मंत्रिमण्डल मे अपना समर्थन वापस लेने का उल्लेख किया था।

राज्यपाल श्री के सुवैय्या ने पत्रो पर किये गये विधायको के हस्ताक्षर की पुष्टि विधान मण्डल सचिव से करवायी थी। सचिव द्वारा उसकी सत्यता की पुष्टि किये जाने के बाद राज्यपाल ने केन्द्र को इस संबध मे अपनी रिपोर्ट भेजी थी, जिसमे यह कहा

---

1 एस आर बोम्बई बनाम भारत संघ ए आई आर 1994 एस सी 2095

2 पायनियर 13 मई, 1994, (लखनऊ)

3 राज्य मे विभिन्न दलो की स्थिति निम्न प्रकार से थी—जनता दल 112 कांग्रेस और 65, जनता दल 27 निर्दलीय 8 कम्युनिस्ट पार्टी, 4, भाजपा 3 कम्युनिस्ट पार्टी (एम) 2

गया था कि मुख्यमत्री श्री हेगडे के त्यागपत्र के बाद आर नयी पाटा जनतादल का गठन हान के बाद से दल मे असतोष व्याप्त हो गया ह। आर यह 19 सदस्या के पत्रा स आर भी अधिक पुष्ट हो जाता है। इन 19 विधायको द्वारा अपना सर्मथन वापस लेने की घोषणा के बाद बाम्बई सरकार उल्पमत मे आ गयी है। अत उसे सत्ता म बने रहने को कोई सवधानिक अधिकार नही है आर चूँकि राज्य मे कोई अन्य दल सरकार बनाने की स्थिति म नही ह अत तो अनुछेद 356 के तहत राज्य म राष्ट्रपति शासन लगाये जाने का उदघोषणा करते ह। राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट भेजने से पूर्व राज्य व मुख्यमत्री से सच्चाई जानने का कोई प्रयत्न नही किया। इस सबध मे यह ध्यान देने योग्य बात ह कि राज्य के मुख्यमत्री ने 20 अप्रेल को राज्यपाल से मिलकर उन्ह यह सूचित किया था कि वो सदन की बेठक बुलाये जिससे सरकार अपना बहुमत सिद्ध कर सके। लेकिन राज्यपाल ने सदन ने वहुमत की जॉच की कोई आवश्यकता नही समझी। जसा की इस सबध म सरकारिया आयोग का विचार है कि-

राज्यपाल को किसी मत्रिपरिषद को तब तक बर्खास्त नहा करना चाहिये, जब तक सदन वे उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्तावना पास कर दिया हो, क्योकि किसी मत्रिपरिषद को वहुमत का समर्थन प्राप्त है या नही इसकी जॉच का उपर्युक्त स्थल सदन ही होता ह।[1] लेकिन उपरोक्त मामले मे राज्यपाल ने इन सभी बातो की ओर कोईध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार की कार्यवाही राज्यपाल जगमोहन ने जम्मू कश्मीर म तथा राम लाल ने आन्ध्र प्रदेश मे की थी, जबकि वहा के मुख्यमत्रियो को अपना बहुमत सिद्ध करने का अवसर दिये बिना ही उन्हे बर्खास्त कर दिया गया था जबकि वे ऐसा करने को तैयार थ। यदि कोई मुख्यमत्री बहुमत सिद्ध करने की इच्छा रखता हा आर उसे ऐसा करने म केवल इस आधार पर वचित होना पड़े कि उसने बहुमत का समर्थन खो दिया है, एक अनुचित बात थी। श्री बोम्बई की बर्खास्तगी उस सवैधानिक कमजोरी को पूर्ण रूप से स्पष्ट करती ह कि सवैधानिक प्रावधानो का इस्तेमाल राजनीति के घृणित खेल के लिये किया जा सकता हे, जसा की इस मामले मे किया गया।

---

1 स() क्र) रिपार्ट- भाग-1 पृष्ठ 166

श्री वोम्वई आर कुछ अन्य सदस्या ने उद्घोषणा की वय्यना का कर्नाटक हाइकार्ट म चुनाती दी लेकिन न्यायालय ने याचिका को रद्द कर दिया। कोर्ट का विचार था कि राज्यपाल की रिपोर्ट गलत तथ्यो पर आधारित थी, क्याकि राज्यपाल ने अपनी रिपार्ट मुख्यमत्री द्वारा अपना बहुमत सिद्ध करने की दावा करने के पर्व ही प्रेषित कर दी गयी थी। न्यायालय ने यह भी विचार व्यक्त किया, कि विधान सभा म बहुमत परीक्षण करवाने का निर्णय राज्यपाल के विवेक पर निर्भर करता ह। लेकिन उच्च न्यायालय का उपराक्त विचार पूर्णत गलत था।[1] क्योकि जिन 19 विधायका ने अपन पत्र भेजे थे उनस राज्यपाल स्वय मिले थे जिससे उनके विचारा को वास्तव मे जाना जा सके। दूसरा 19 सदस्या म से जिन सात सदस्यो ने लिखित रूप से मुख्यमत्री म अपना विश्वास व्यक्त किया था उसकी सत्यता को जॉचने का कोई प्रयत्न नही किया गया था वरन् राज्यपाल के अनुसार उन विधायका ने ऐसा मुख्यमत्री के दवाब मे किया था न कि अपनी इच्छानुसार।

तीसरा राज्यपाल को इस वात की सूचना कहा से मिली थी कि विधायका को पक्ष म करने के लिये खरीद फरोख्त चल रही है और यदि यह सही था ता ऐसी परिस्थिति मे यह ज्यादा उचित होता ह कि वास्तविकता की जॉच विधान सभा मे करा ली जाय।

सर्वाच्च न्यायालय ने अपने निर्णय मे राज्यपाल की रिपार्ट को गलत तथ्यों पर आधारित बताया। न्यायालय का विचार था कि राष्ट्रपति द्वारा जारी की गयी उद्घोषणा मे राज्य सरकार की बर्खास्तगी का कोई कारण नही बताया गया था। उद्घोषणा मे केवल इतना कहा गया था कि राष्ट्रपति राज्यपाल की रिपोर्ट से सतुष्ट हे कि राज्य मे सविधानिक प्रावधाना के अनुसार शासन चलाया जाना सभव नही हे।[2]

वास्तव म राज्यपाल की भूमिका उस समय आर भी आपत्तिजनक हो जाती है जबकि सविधान ने उसे वहुत ऊचे स्थान पर प्रतिष्ठित किया ह, जहा पर उससे निष्पक्षता की उम्मींद की जाती हे। लेकिन इसके स्थान पर राज्यपाल ने राज्य विधान सभा भग कर मत्रिपरिषद की बर्खास्तगी मे काफी शीघ्रता दिखायी, जिसकी कोई आवश्यकता नही थी।

---

1 एस.आर. बोम्वई बनाम भारत,1994,पूर्वोधृत 2098

2 ए0 आई0 आर0 1994, पूर्वाधृत,2098

न्यायालय म 11 अक्टूबर 1991 को जारी की गयी उद्घोषणा का न्यायालय म चुनौती दी गयी थी जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने अवध घोषित कर दिया। कर्नाटक के समान ही मेघालय मे चुनावो के पश्चात नयी सरकार गठित हो चुका थी अत फसले का कायान्वयन सम्भव नही हो सका।[1] नागालण्ड मे भी सत्तारूढ़ काग्रेस पार्टी के 13 सदस्या द्वारा अपना समर्थन वापस ले लेने के कारण अल्पसख्यक दल हो गया था। अत राज्यपाल श्रा कवी कृष्णा राव ने राजनीतिक अनिश्चितताओ को देखते हुये राज्य विधान सभा भग कर दी थी तथा राज्य मे राष्ट्यपति शासन लागू कर दिया गया था जबकि विपक्षी दला न श्री वामुजो के नेतृत्व मे सरकार का बनाने के बाद किया था जिसम असतुष्ट सदस्य भी सम्मलित थे लेकिन राज्यपाल ने दावो को अस्वीकृत कर दिया था।[2]

**अत उच्चतम न्यायालय के राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिये जो विशिष्ट मापदण्ड स्थापित किया था वो निम्न प्रकार से हे-**

1 अनुच्छेद 356 राष्ट्रपतियो केवल उस स्थिति मे कार्यवाहा करने का अधिकार दता ह जबकि वो इस बात से सतुष्ट हो कि राज्य की सरकार सविधान के प्रावधानो के अनुरूप नही चलायी जा रही है। वास्तव मे राष्ट्रपति को प्रदत्त इस सवेधानिक शक्ति का प्रयोग मत्रिमण्डल के प्रधान 'प्रधानमत्री' द्वारा किया जाता है। अत सतुष्टि को अनुच्छेद 74 (2) के प्रनिवन्ध के बावजूद न्यायिक विचार का विषय बनाया जा सकता हे।[3]

(2) अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति की शक्ति सीमित है ना कि असीमित। राष्ट्रपति का अपनी उद्घोषणा मे उन तथ्यो को स्पष्ट करना आवश्यक होता हे, जिसको आधार बनाकर राज्य मे उद्घोषणा की गयी हो। इसमे राज्यपाल को रिपोर्ट भी सम्मलित है, क्योकि राष्ट्रपति की सतुष्टि इन्ही तथ्यो को आधार बनाकर हुयी होगी। इस सवध म सरकारिया आयोग ने भी यही विचार व्यक्त किया हे।[4]

---

1 बाम्बई बनाम भारत सघ, 2100 ए0 आई0 आर0 1994 पूर्वोधत

2 वही 2101

3 वही परा 365 पृष्ठ 2112

4 स0 आ0 रिपार्ट भाग I पूर्वाधृत,166

(3) राष्ट्रपति राज्य मे तत्सबधी उद्घोषणा करने के पश्चात् राज्य विधान सभा को केवल निलम्बित रख सकता है, भग नही कर सकता, जब तक कि उसे ससद की अनुमति नही प्राप्त हो जाती। लेकिन यहा यह भी स्पष्ट किया गया है कि यदि परिस्थितियाँ अनुकूल नही हो तो बिना ससद के अनुमोदन के ही विधान सभा भग की जा सकती है।[1]

(4) (क) अनुच्छेद 356 का खण्ड (3) राष्ट्रपति को अपनी शक्तियो का दुरूपयोग करने से रोकता है क्योकि **ससदीय व्यवस्था मे 'ससद' की सप्रभुता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है।** अत दो माह पश्चात उद्घोषणा को स्वीकृति के लिये जब ससद के समक्ष रखा जाता है, उस समय हो सकता है कि ससद उस पर अपनी सहमति की मोहर लगाये। अत यदि सभा को केवल निलम्बित रखा गया है तो ससद के प्रस्ताव से उसे पुन जीवित भी किया जा सकता है यदि ससद उद्घोषणा को अवैध पाती है।

(ख) और यदि ऐसा नही होता है तो ससद द्वारा प्रस्ताव को मजूरी प्रदान करने के पश्चात् भी विधान सभा को भग किया जा सकता है। विद्वान न्यायाधीशो का विचार है कि समय पूर्व निर्वाचन कराना प्रजातात्रिक व्यवस्था पर बोझा डालता है। अत इससे पूर्व विधान सभा को भग किया जाना उचित नही होगा।[2]

(5) यद्यपि अनुच्छेद 74 (2) न्यायालय को इस बात की आज्ञा नही देता कि वो राष्ट्रपति को मत्रियो द्वारा दी गयी सलाह की जॉच करे, तथापि न्यायालय केन्द्रीय सरकार को इस बात के लिये बाध्य कर सकता है कि वो उन तथ्यो को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करे, जिसके आधार पर राष्ट्रपति ने अपनी 'सतुष्टि' का निर्धारण किया था, क्योकि तथ्य 'सलाह' का भाग नही हो सकते।[3]

(6) यदि न्यायालय अनुच्छेद 356 के आधीन की गयी घोषणा को अवैध पाता है तो उसका न्यायिक पुनरावलोकन कर सकता है। लेकिन न्यायालय केवल उन तथ्यों को

---

1 वही ए() आई() आर

2 एस() आर() बोम्बई बनाम भारत सघ पृष्ठ 2113 पूर्वोधृत

3 वही पृष्ठ 2113

अपने निर्णय का आधार बना सकता ह जिसके आधार पर घोषणा की गयी थी। तथ्यो की सत्यता की जॉच न्यायालय द्वारा नही की जा सकती।

(7) धर्मनिरपेक्षता भारतीय सविधान का आधारमूल ढॉचा है। राजनीति मे धर्म का कोई स्थान नही है। धर्म और राजनीति को आपस मे मिलाया जाना उचित नही है। किसी भी दल को धर्म को राजनीति करने की अनुमति नही दी जा सकती, ओर कोई भी राज्य सरकार धर्मनिरपेक्षता की मूल भावना के विरुद्र कार्य करती है तो उसे बरखास्त करना उचित होगा।[1]

(8) **केवल विरोधी दल की सरकार की भावना के आधार पर राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू करना उचित नही है।** सविधान ने केन्द्र ओर राज्यो को अपने-अपने क्षेत्र मे स्वतन्त्र रखा है। अत केन्द्र को राज्यो पर प्रभुत्व का अधिकार नही दिया जा सकता ह।[2]

## न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णयो का तुलनात्मक विश्लेषण

राज्यो मे राष्ट्रपति शासन की घोषणा किया जाना वास्तव मे एक राजनैतिक घटना होती है, क्योकि इसकी उद्घोषणा मुख्यत राजनीतिक उददेश्यो के लिए ही होती है। सविधान यह स्पष्ट रुप से इगित करता है कि राष्ट्रपति व्दारा, राजनीतिक सलाहकारो के परामर्श पर ही की जाती है, और जिसका अनुरोध राजनीतिज्ञों व्दारा दोनो सदनो में किया जाता हे। अत यहॉ यह प्रश्न उठता है कि क्या न्यायालयों व्दारा ऐसे राजनीतिक प्रश्नों पर विचार किया जा सकता है जो कार्यपालिका और विधायिका के अधिकार क्षेत्र में आते है, क्योकि हमारे सविधान मे ससदीय प्रणाली को स्वीकार किया है जिसके अर्न्तगत ससद को ही यह अधिकार दिया गया है कि वो मत्रिमण्डल पर अपना नियत्रण रखे। स्पष्ट रुप से यह अधिकार न्यायालयो को नहा प्रदान किया गया है।और इसी कारण से न्यायालय भी ऐसे राजनीतिक प्रश्नो पर निर्णय करने में हमेशा सकोच करता है, जबकि 1977 में

---

1 लकिन अक्टूबर 1995 को उत्तर प्रदेश विधान सभा को राष्ट्रपति शासन क तुरंत पश्चात ही भग कर दिया गया। ससद की अनुमति का इतजार किया गया।

2 एस.आर. बोम्बई बनाम भारत सघ' ए.आई.आर.एस.सी 2113, 1994,पूर्वोघृत

दिय गये अपने महत्वपूर्ण निर्णय मे दाखिल याचिका को यह कहत हुय रद कर दिया गया था, कि ऐसे राजनीतिक प्रश्नो की जॉच नही कर सकता,[1] क्याकि विधान सभा आर मत्रिमण्डल को बनाये रखने का अधिकार कानूनी अधिकार ना होकर राजनीतिक अधिकार हाता ह। अत इसमे न्यायालय हस्तक्षेप नही कर सकता।

यद्यपि यह ठीक है कि मत्रिपरिषद सामूहिक रुप से ससद विशेष रुप से निचल सदन के प्रति उत्तरदायी हाती है, लेकिन व्यवहार मे यह देखने मे आता है कि प्रधानमत्री जो कि सदन के बहुमत दल का नेता होता है उसके अधिकार बहुत अधिक बट जाते ह आर ससद को उस पर अपना नियत्रण रखने म कठिनाई होती ह। ससद का राज्यो के अधिकारो की रक्षा का महत्वपूर्ण दायित्व सापा गया ह। लेकिन जसा की दखन म आता है कि ससद असमर्थ रहती ह।[2] ऐसी स्थितिया म निपटने के लिय न्यायालयो को समय-समय पर सामने आना पड़ता है, अत न्यायालयो क लिय यह आवश्यक हा जाता ह कि वो कार्यपालिका के कार्यो के औचित्य ओर अनाचित्य का निर्धारण करे तथा यह भी सुनिश्चित करे कि कोई भी राजनीतिक नेता स्वय कानून ना बनने पाये। ऐसे मामलो पर निर्णय देते समय न्यायालय मत्रिमण्डल को अपने निर्णयो पर पुर्नविचार के लिये कह सकता हे अथवा अवैध आदेशो को रद्द भी कर सकता हे । इसका तात्पर्य यह नही ह कि न्यायालय अपने निर्णयो व्दारा कार्यपालिका के अधिकारो मे हस्तक्षेप करने का प्रयत्न

---

1 स्टट ऑफ राजस्थान बनाम भारत सघ ए0 आई0 आर0 1977, एस0 सी0 1361

2 Greene M R in corltona V minitster of observed works (1943) A I R 560 at 563 contitutionally the decision of such an official is ofcourse the decision of the minister is responsible It is he who must answer before parliament for anything that his officials have done under his authority the whole system of departmental ongonisation and administration is based on the view that ministers being responsible to parliament, will See that important duties are committed to experienced officials. If they do not that, Parliament is the place where complaints must be made against them– Presidents Rule in the States, Rajeev Dhavan] N M Tripathi Pvt Ltd Bombay page 126

करता ह, वरन न्यायालय केवल उन्ही मुद्दो पर अपना निर्णय देता ह जिसम सवधानिक सीमाआ के अतिक्रमण का प्रश्न निहित होता है।

अमेरिका मे भी सर्वाच्च न्यायालय ने राजनीतिक मामला मे हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया था, लेकिन बाद म उसने ऐसे प्रश्नो को केवल राजनीतिक प्रश्न मानकर न विचार नही आरम्भ किया वरन् उसे यह स्पष्ट आभास हुआ कि यह उसके सवधानिकि उत्तरदायित्वो क निर्वहन के लिये आवश्यक है कि वो ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दो पर अपना निर्णय द।[1] लेकिन 1977 मे स्थिति एकदम भिन्न थी। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मामला तब लाया गया था जब कि राज्यो की विधान सभाऐ वास्तव मे भग नहीं की गयी थी वरन केवल भग करने की सलाह (धमकी) दी गयी थी । अत न्यायालय अनुच्छेद 356 के आचित्य अथ्वा अनाचित्य पर कोई निर्णय दे ही नही सका था लेकिन इस पूरे मामले की सुनवायी के पश्चात न्यायाधीशो द्वारा जो महत्वपूर्ण विचार रखे गये थे आग के न्यायाधीशो के लिये दृष्टान्त बन गये। न्यायाधीशो ने इस बात को स्वीकार किया था कि इच्छाओ के विरुद्ध कार्यवाही करना बहुत ही गभीर मामला है। अनुभव से यही सिद्ध होता है कि अनुच्छेद 356 के तहत कार्यवाही तभी की जाय जबकि बहुत विवादास्पद स्थिति उत्पन्न हो जाय लेकिन इसके साथ ही साथ यह भी स्वीकार किया था कि यदि राज्य ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी जिसमे राज्य की जन्ता ने सरकार को पूर्णत नकार दिया हो। तब ऐसी स्थिति मे राज्य की राजनीतिक प्रभुसत्ता बहाल करने के लिये नया जनादेश प्राप्त करने के लिये मौका देना चाहिये। यह मामला बिना किसी शक के कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र म आता ह।

न्यायमूर्ति भगवती तथा गुप्ता का विचार था कि लोकसभा चुनावो मे किसी राज्य की सत्तारुढ दल का चुनावो मे हार जाने से यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि राज्य का सरकार सविधान के प्रावधानो के अनुसार नही चलायी जा रही है। वास्तव म राज्य विधान सभा को इस प्रकार भग करना परोक्षत राष्ट्रपति द्वारा बिना किसी प्रावधान के सदस्या को वापस बुलाने की क्रिया हुयी, जोकि सविधान मे मतदाताओं को भी प्रदान

1 बक्कर बनाम कार (1962) 369 अमेरिका 186- देखे- राजीव धवन पूर्वोधृत पृष्ठ 127

नहीं की गयी ह। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से यह स्पष्ट हो जाता ह कि केन्द्र सरकार अपनी दलीय आर राजनीतिक स्वार्थ पूर्ति के लिये अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग करती आ रही ह । यही कारण ह कि पिछले कुछ वर्षा से केन्द्र राज्य सबध अत्यधिक तनाव पूर्ण रहे ह। दरअसल केन्द्र सरकार अपने राजनीतिक हिता के प्रति इतनी अधिक सताध रही ह जिससे वह इस अनुच्छेद के मूल उद्देश्य को नजरअदाज करती रही ह।

केन्द्र सरकार की इसी प्रकार की प्रवृत्तियो पर रोक लगाने का काम न्यायालय द्वारा किया जाता रहा है। न्यायालय ने अपने फैसले के द्वारा कायपालिका के अधिकारा का सीमित करने की कोशिश की है। लेकिन न्यायालय द्वारा दिये गय फसल म विरोधाभास दिखायी देता ह। न्यायाधीशो ने अपने निर्णय म यह कहा कि सविधान के अनुच्छेद 74(2) के अर्न्तगत राष्ट्रपति को दी गयी सलाह की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।[1] जिसके तहत यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुच्छेद 356 के अर्न्तगत राज्यो म राष्ट्रपति शासन लागू करने के केन्द्र के अधिकारो की सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समीक्षा का जा सकती है। जिससे केवल राजनीतिक स्वार्थपूर्ति के लिये इस धारा के प्रयाग करन पर रोक लगेगी। केन्द्र सरकार भविष्य मे इसका मनमाना प्रयोग करने मे सावधानी बरतेगी क्योकि उसको इस बात की आशका हमेशा बनी रहेगी कि राज्य सरकारे अपने राजनीतिक लाभ के लिये न्यायालय का सहारा ले सकती ह। लेकिन दूसरी ओर धर्मनिरपेक्षता पर अपना अस्पष्ट फसला देकर केन्द्र सरकार के हाथो मे इसके दुरुपयोग का अधिकार प्रदान कर दिया।[2]

सर्वोच्च न्यायालय ने धर्म निरपेक्षता और जोड़गाठ की निरपेक्षता के आधार पर राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने के बारे मे समान रुप से निर्णय दिया है। लेकिन न्यायालय के इस निर्णय के तहत कुछ ऐसे प्रश्न अनुत्तरित रह गये है। राजनीति म धर्म का कोई स्थान नहीं ह।[3] कोई भी राजनीतिक दल एक साथ धार्मिक दल आर राजनीतिक दल नहीं

---

1 एस० आर० बोम्बई बनाम भारत सघ, पूर्वाधृत, पृष्ठ 2112 पैरा 365

2 लकिन सर्वोच्च न्यायालय ने 1995 म दिये गये निर्णय म हिन्दुत्व को धर्म मानकर जीवन दर्शन माना ह। अर्थात न्यायालय ने अपने 1994 मे बोम्बई म दिय गये निर्णय को उलट दिया।

3 महात्मा गाधी ने धर्म व राजनीति को एक दूसरे का पूरक माना था।

हो सकता ह। दोनो को समान रुप से नही चलाया जा सकता। ता क्या इसका आशय यह निकाला जाना चाहिये कि भविष्य म केन्द्र सरकार किसी भी भाजपा की चुनी हुयी सरकार को बर्खास्त कर सकती हे। अकाली दल तो निश्चय ही साम्प्रदायिक दल ह तथा इसके नेता इस बात पर जोर देते हे कि बिना धर्म के राजनीति नही हो सकती है। इसी प्रकार केरल काग्रेस और मुस्लिम लीग भी विशेष सम्प्रदाय से जुडे हुए हे, आर जिनका गठबन्धन वर्तमान मे काग्रेस (इ) के साथ भी है, जो केन्द्र मे शासित दल है। तो यह प्रश्न उठता ह कि क्या इन पार्टियो के गठजोड से बनी सरकार को भग किया जा सकता ह। इसी पकार म उत्तर प्रदेश मे सत्तासीन सपा आर बसपा का गठबन्धन भी अल्पसख्यको के वोटो के आधार पर ही सत्तासान हुआ था ओर आय दिन उसके नेताओ के भड़काऊ बयान से राज्य म जातीय और साम्प्रदायिक हिसा का प्रसार हुआ था ह । इसी प्रकार काग्रेस ने भी अपना ध्यान हमेशा मुसलमानो के मतो पर ध्यान किया ह, आर जब भी कोइ निर्णय लिया जाता है, अल्पखख्यको के हितो का विशेष ध्यान रखा जाता हे, इस सबध म यह प्रश्न उठता स्वभाविक ह कि यदि भविष्य मे कोई गर काग्रेसी सरकार आती ह, तो क्या इसी आधार पर सर्वाच्चि न्यायालय के निर्णय का सहारा लेते हुये राज्य सरकारो को बर्खास्त कर सकती हे और यदि हॉ तो क्या ये कदम उचित होगा।

वास्तव मे धर्म निरपेक्षता को केवल न्यायालय के निर्णय के द्वारा ही सुरक्षित नही रखा जा सकता वरन् इसके लिए नागरिको के ह्रदय मे बदलाव जरुरी है कि वे इस आधारभूत तथ्य को समझे।

न्यायाधीशो ने यह भी स्वीकार किया कि यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय जबकि केन्द्र म सत्तधारी दल का कोई भी सदस्य राज्यो मे ना चुना जाय तो निश्चित रुप म यह सरकार तथा जनता के मध्य सबध क्षीण होने का लक्षण ह। यह सही है कि कोइ भी सरकार प्रजातात्रिक व्यवस्था मे तब तक कुशलता से कार्य नही कर सकती जब तक की जनता की इच्छा ना हो। जनता की इच्छा प्रजातन्त्र की व्यवस्था का आधार है आर यदि जनता की आस्था वर्तमान सरकार मे नही रह गयी ह, तो इस बात में कोई सुवाद नही रह जाता कि जनता सत्ताधारी दल के विरुद्ध है। वास्तव में यह नही कहा

जा सकता कि सत्तधारी दल का लोकसभा चुनावो म हार जाना जनता इच्छाओ को उजागर हा नहा करता, उचित नहीं ह। यह एक ऐसा आधार ह जिसम राष्ट्रपति का यह सुनिश्चित करना ह कि वह अपनी सतुष्टि के आधार पर कार्यवाही करे या नही।[1] अनुच्छद 174(2)(B) राज्यपाल को यह अधिकार देता हे कि वह विधान सभा को भग कर दे, ऐसी स्थिति मे जबकि राज्य की मत्रिपरिषद विधान सभा भग करने की राय ना दे लेकिन राय देने का यह अधिकार स्वत केन्द्र सरकार द्वारा ग्रहण कर लिया जायेगा।

इसके बाद मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय न सर्वाच्च न्यायालय के वाद को उलटते हुय यह मत रखा कि राज्य मे केन्द्रीय शासन का हस्तक्षेप केवल राज्य की रक्षार्थ ही किया जाना चाहिये जबकि राज्य मे कानून और व्यवस्था सबधी गभीर समस्या उत्पन्न हो गयी हो आर उसे राज्य सरकार द्वारा दुरुस्त किया जाना असम्भव हो जाये उसी स्थिति म कार्यवाही की जानी चाहिए। न्यायाधीशो ने सर्वोच्च न्यायालय क पूर्व के फसले को उलटने हुय बहुमत से यह निर्णय दिया कि राष्ट्रपति की अधिसूचना वस्तुपरक तथ्यो पर आधारित नही थी। इसके लिये जो कारण बताये गये थे वो सविधान के अनुच्छेद 356 के असाधारण प्रावधानो को लागू करने के लिये अपर्याप्त थे । अत यह अधिसूचना आर इसके साथ ही विधान सभा भग करने की कार्यवाही स्वत ही धराशायी हो जाती हे।

न्यायाधीशो ने बहुमत मे कहा कि उनके विचार से भारतीय सविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा विशेष अधिकारो का उपयोग करने की स्थिति उस समय प्रदेश म नही थी ओर ना ही विधान सभा भग करने का कोई आचित्य नही था।

अत न्यायालय ने राष्ट्रपति द्वारा बर्खास्त की कार्यवाही को अवेध ठहराते हुये कन्द्रिय सरकार को पुन बहाल करने का आदेश दिया था। 1977 के मामले में यह साधारण धारणा थी कि सर्वाच्च न्यायालय यह नही चाहता था कि वो विवादास्पद राजनीतिक मुद्दो पर अपना निर्णय दे। न्यायाधीशो के विचारो से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनप्रश्ना पर जिनमे केन्द्र व राज्यो के मध्य विवाद हो न्यायालय क कार्य क्षेत्र में नहीं

1 यह बात सर्वोच्च न्यायालय ने 1977 म राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ के मामले पर अपना निर्णय दत समय कहा था।

आना आर 1977 का मामला भी दो राजनातिक दलो (जनता आर कांग्रेस) के मध्य विवाद का ही था। वास्तव म यह मामला केन्द्र व राज्य के मध्य विवाद का मामला नही था, जसा कि यहा के तीन न्यायधीशो ने स्वीकार भी किया था। लेकिन मुख्य न्यायाधीश ने यह कहते हुये अस्पष्टता उत्पन्न कर दी कि अनुच्छेद 331 का क्षेत्र बहुत विस्तृत हे। इस प्रकार उन्होने एक प्रकार से तकनीकी आधार पर ही यह मामला निरस्त कर दिया। भगवती, चन्द्रचूट आर गुप्ता ने इसस असहमति व्यक्त करते हुये कहा कि राज्य की सरकार के माध्यम से ही राज्य व्यवस्थित होता हे, अत राज्य की सरकार द्वारा जो कुछ भी किया जाता ह, वो राज्य की ही कार्यवाही मानी जाती है। लेकिन 1992 क मामले म सर्वोच्च न्यायालय ने स्वीकार किया कि केन्द्र ओर राज्यो के मध्य उत्पन्न इस प्रकार के राजनीतिक प्रश्नो पर न्यायालय अपना निर्णय दे सकते हैं, जहा की पर सविधान की मूलभूत ढाँचे की बात सम्मलित हो। इससे पहले केशवानन्द भारती के मामले म दिये गये अपने फसल म सर्वाच्च न्यायालय ने कहा था कि कोई भी सरकार सविधान के मूलभूत ढाँचे म सशोधन नही कर सकती, जबकि इस मामले म कानूनी प्रश्न निहित था। लेकिन उपरोक्त मामले म सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्व की तरह राजनीतिक मामलो पर निर्णय देने म सकोच नहीं किया।

लेकिन सविधान सभा ने अनुच्छेद 356 का प्रावधान करते समय जो भावना व्यक्त की थी उसका आधार बहुत विस्तृत है। इसीलिये भिन्न-भिन्न समया पर न्यायालयो न इनका सहारा लेकर देश की सघीय व्यवस्था को छिन्न भिन्न करने का प्रयास किया है।

अत य प्रश्न ना केवल राजनीतिक प्रश्न ही होने ह वरन् देश की जनता पर इन निर्णया का सीधा प्रभाव पड़ता हे। अत न्यायालय द्वारा यह कहकर कि वे न्यायालय कानूनी दायरे से आगे नही जा सकता—केवल बचाव मात्र प्रतीत होता है, क्योंकि न्यायालयो ने दानो ही अवसरा पर[1] अपने निर्णय व न्यायिक व्याख्या द्वारा विवाद की स्थिति उत्पन्न की ह।

---

1 1977 का राजस्थान बनाम भारत सघ का मामला व 1994 का बाम्बई बनाम भारत संघ का मामला

2 न्यायालय के पास पहले से ही सामाजिक राजनितिक तथा आर्थिक विवादो का अम्बार लगा है और यदि इस प्रकार के मामले न्यायालय के समक्ष उठाये गये तो उन्हे निर्णित करने मे एक लम्बा समय लगेगा और न्यायालय के निर्णय का कोई महत्व भी नही रह जायेगा। जसाकी 1994 के फसले म न्यायालय न मघालय नागालण्ड व कर्नाटक म राष्ट्रपति शासन की कार्यवाही को अवेध घोषित कर दा लकिन यहाँ यह प्रश्न उठता ह कि न्यायालय द्वारा एक लम्बे समय के बाद जबकि वहा पर राज्य सरकार का पुन बहाल नहा किया जा सकता तो ऐसे मे न्यायालय क निणय का क्या महत्व रह जाता ह।

3 इस तरह न्यायालय हर राजनीतिक विवाद को समाधान करने का स्थल बन जायेगा और राजनीतिज्ञो द्वारा प्रत्येक राजनीतिक विवादो को हल करने क लिय न्यायालय की शरण ली जाने लगेगी। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव न्यायधीशा क चुनावा पर पडगा क्योकि वतमान ससदीय व्यवस्था मे कार्यपालिका अपने कार्यो के लिये केवल व्यवस्थापिका क प्रति जवाबदह हाती ह। अत प्रश्न यह उठता है कि क्या ससद यह चाहगा का उसक अधिकार म न्यायालय हस्तक्षेप करे। अत न्यायधीशो के चुनाव मे भी राजनीति का प्रवेश हा जायगा।

वर्तमान मे फैसले द्वारा न्यायालय ने ससदीय सर्वाच्च पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया जबकि उसन कर्नाटक, मेघालय ओर नागालेण्ड सरकारो का बर्खास्तगी को अवध घोषित कर दिया, जबकि ससद ने उदघाषणा सम्बधी प्रस्ताव पर अपनी मजूरी दे दी थी। इस प्रकार देश म एक नय विवाद के खडे होने की सभावना है, जिससे भविष्य मे ससद व न्यायपालिका के मध्य टकराव से इनकार नही किया जा सकता। क्योकि भविष्य म यह प्रश्न निर्धारित होगा कि दाना मे स कोन प्रमुख है। हमारे सविधान मे भी ससदीय सर्वाच्चता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया ह।[1]

लेकिन इस सबध मे न्यायाधीश चन्द्रचूड का विचार था कि उन लोगो का जिनके लिये सविधान बना है यह नही आभास होने लगे कि न्यायालय इस पर निर्णय

---

1 1994 मे सर्वाच्च न्यायालय ने भी ससदीय प्रभुता के नियम का स्वीकार किया है- एस0 आर0 बोम्बई बनाम भारत सध, ए0 आई0 एस0 सी0 1994, 2059,पैरा 223

दन से अपने को बचाती ह। उनका विचार था कि न्यायालय का सविधान द्वारा सापा गयी एक विशिष्ट भूमिका का निर्वहन करना हे।

न्यायाधीश बेग का विचार था कि वास्तव मे यह देखना न्यायालय का काम ह कि कही उन्ह घोषणा केवल उस लाभ लिये ना की गयी हो जो न सविधान म व्यक्त हो नहीं की गयी थी। उनका विचार था कि ऐसी स्थिति म न्यायालय अनुच्छेद 356 क आचित्य पर निर्णय दे सकता हे कि किसी राज्य मे सविधान क आशय के अनुसार कार्यवाही की गयी हे या केवल किसी दल विशेष के विरुद्ध। ऐसा किया जाना सविधान क अनुसार अनुचित ह व दुर्भावनापूर्ण ह।

न्यायाधीशो द्वारा व्यक्त किये गये विचारो से आगे के न्यायाधीशो ने मार्गदर्शक सिद्धान्तो की तरह अनुशरण किया। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय न अमन फसल म मध्य प्रदेश सरकार की बर्खास्तगी को अवध घोषित कर दिया आर कहा कि अनुच्छेद 356 क अन्तगत की गयी उद्घोषणा की वधता की जॉच का अधिकार न्यायालय का ह।

न्यायालय न अपने निर्णय म कहा कि अनुच्छेद 356 केन्द्र सरकार को प्राप्त एसा अधिकार ह जिसका प्रयोग अत्यधिक सावधानी पूर्वक ही किया जाना चाहिय। कार्यवाही करने से पूर्व केन्द्र का प्रथम कर्तव्य यह होगा कि राज्यपाल की रिपार्ट की गहराई से जॉच करे चाहिये आर राज्यपाल की रिर्पाट से भिन्न अन्य स्रोतो म भी सूचनाये एकत्र करना चाहिये आर राज्यपाल राष्ट्रपति उद्घोषणा जारी करने का मात्र माध्यम भर होना चाहिय, क्योकि राष्ट्रपति सविधान द्वारा मत्रिपरिषद की सलाह पर काम करने को बाध्य होता है। और राष्ट्रपति को कानून के अधीन न्यायालय मे एक पक्ष नही बनाया जा सकता। केन्द्र सरकार इस सुविधा का लाभ या इस बात स कि वो अन्य सूचना जिसके आधार पर आपात स्थिति लागू की गयी हे, को सार्वजनिक ना करे, इसका लाभ नही पा सकता। क्योकि सर्वोच्च न्यायालय ने अपने हालके फसले द्वारा यह अनिवार्य कर दिया ह कि अनुच्छेद 74 (2) के प्रावधानो के बावजूद अदालत न दस्तावेज मगा सकती है जिसके आधार पर राष्ट्रपति द्वारा आदेश जारी किया गया हो साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि न्यायालय ऐसे दस्तावेज भी मगाने को स्वतन्त्र है जिसके आधार पर केन्द्रीय सरकार न

इतना होते हुये भी यहाँ यह महत्वपूर्ण ह कि बहुत म राजनातिक प्रश्ना का निपटारा न्यायालयो द्वारा हो निर्णित होता है। लेकिन इन राजनीतिक मुद्दा पर न्यायालय को कब दखल करना चाहिये, यह न्यायालय द्वारा कभी बहस का विषय नही बनाया गया। सुब्बाराव द्वारा की गयी अतिरिक्त न्यायायिक टिप्पणी म यह स्पष्ट किया गया था कि मुख्यत ऐसी समस्याये, जिसमे वो राजनीतिक प्रश्न जिससे सवधानिक मामले आते है, न्यायालय के परिक्षेत्र मे सवेधानिक मामले के रुप मे आते ह। राजनीतिक प्रश्न का सिद्धान्त दो शासना के मध्य विवाद से उत्पन्न होता है। सविधान केन्द्र की व्यवस्थापिका, कार्यपालिका आर न्यायपालिका को राज्य को व्यवस्थापिका कार्यपालिका व न्यायपालिका से अधिकार क्षेत्र स पूर्णत अलग रखता हे, और ऐसी स्थिति मे यदि केन्द्रिय कार्यपालिका राज्य की व्यवस्था म अनुचित दखल देता हे, तो न्यायालय इसे स्वीकार नही कर सकता, आर न्यायालय क द्वारा उपस्थिति ऐसे प्रश्नो पर निर्णय देना सवैधानिक व राजनीतिक दृष्टि से अनुचित नही होगा। किसी भी सरकार की सफलता के लिये यह आवश्यक ह कि वा जनता के प्रति जवाबदेह हो नाकि तानाशाह के प्रति।

लेकिन फिर भी न्यायालय ने यह स्वीकार किया कि इस प्रकार के प्रश्नो का निपटारा राज्य सरकारो द्वारा न्यायालय द्वारा नही कराना चाहिये। इन्ह आपसी समझ द्वारा राजनीतिक स्तर पर ही सुलझा लेना चाहिये। न्यायालय का यह दृष्टिकोण उचित भी ह। इसके प्रमुख कारण ह जिनके कारण न्यायालयो को इनसे बचना चाहिये–

1- पहला कारण यह ह कि यदि सरकार इस प्रकार का प्रत्येक मामला न्यायालय म पेश करने की प्रवृत्ति अपना ले, तो न्यायालय के समक्ष इतने अधिक विवाद उठ खड़े होगे की उन सभी का निपटारा करना न्यायालय द्वारा सभव नही होगा। ऐसी स्थिति म ये विवाद केवल न्यायिक आदेशो के लिये ही प्रस्तुत नही किये जायेगें वरन् न्यायालय का हस्तक्षेप राजनितिक विपक्षिया को दबाने या उखाड़ने के लिये किया जायेगा जैसा की 1977 के मामले के सबध म सत्य भी ह।[1]

---

1 न्यायालय के निर्णय के बाद ही नो राज्यां की विधान सभाओं का भग किया गया था। 1980 म भी नो राज्या की विधान सभाआ को भग करने का प्रमुख आधार न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय ही था।

राष्ट्रपति का सम्बन्ट मामल म आदेश जारी करन की सलाह दी ? इस प्रकार न्यायालय के इस फसल से निश्चय हा कार्यपालिका के उस गोपनीय कृत्य पर रोक लगगी। गोपनीयता का बहाना कर उन तथ्यो को सार्वजनिक करने से रोक दिया जाता था।

अत यह स्पष्ट ह कि न्यायालय ने अपन निर्णयो द्वारा समय -समय पर राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने की आचित्यता पर विचार करने का दावा किया ह जबकि सविधान निमाताओ का पयोजन इन प्रावधानो को न्यायिक समीक्षा से दूर रखना था जसा कि अनुच्छद 74(2) मे वर्णित ह। 1977 के फेसले मे न्यायाधीशो ने इन सीमाओ का स्वाकारत हुये इस पर अपना निर्णय देने से इनकार कर दिया था क्योकि उसका विचार था कि ऐसे राजनीतिक मामलो म निर्णय देकर न्यायालय विवाद का विषय बन जायगा लेकिन 1994 म सर्वोच्च न्यायालय ने बोम्बई बनाम भारत सघ के मामल पर अपना जो फसला कर जहाँ एक ओर अपने को राजनीतिक विवादो मे फसा लिया ह वहा दूसरा ओर न्यायालय ने अपना सीमाओ का ध्यान ना रखते हुये अपने क्षेत्राधिकार का प्रसार कर लिया। यह स्पष्ट ह कि सविधान निर्माता न्यायालय को इस विवाद स बचाना चाहते थे, परन्तु ऐसा हो नहीं सका। सभवत यह न्यायिक सक्रियता वाद का उदाहरण ह।

अत म यह कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 356 जो कि एक राजनीति प्रावधान ह का दुरुप्रयोग न्यायालय के निर्णयो द्वारा नहीं रोका जा सकता अपितु राजनीतिक दलो की इच्छा शक्ति ही इसके दुरुपयोग को रोकने का कारगर उपाय ह।

# अध्याय 6

## राष्ट्रपति शासन और राज्यपाल की भूमिका

# राष्ट्रपति शासन और राज्यपाल की भूमिका

## राज्यपाल की सवेधानिक स्थिति

अनुच्छेद 356 के लागू किये जाने के दौरान राज्यपाल एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करता ह। राज्यपाल की रिपोर्ट किसी राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने का प्रमुख आधार हाती ह। यद्यपि सविधान राष्ट्रपति को अनुच्छेद 356 के अधीन कार्यवाही करने के लिये राज्यपाल की रिपोर्ट अनिवार्य नही करता, लेकिन यदाकदा कुछ अपवादा को छोड़कर अधिकतर अवसरो पर राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर ही कार्यवाही की गयी है।

राज्यपाल द्वारा राज्य सरकार की बर्खास्तगी के लिये केन्द्र को रिपार्ट भेजना, विधान सभाओ को भग करना तथा मुख्यमत्रियो की नियुक्ति आदि ऐसे अधिकार ह जिसके प्रयोग मे पक्षपातपूर्ण भूमिका का निर्वहन करने के कारण राज्यपाल का पद आलोचनाआ का शिकार रहा ह। चूँकि राष्ट्रपति शासन के दारान राज्य की प्रशासनिक गतिविधियो का सचालन कन्द्र, राज्यपालो क माध्यम से ही करता है अत राज्यपालो की इस अत्यन्त महत्वपूण भूमिका को देखते हुये राज्यपाल की सवैधानिक आर राजनीतिक अधिकारो का विश्लेषण आवश्यक ह। विपक्षी दला द्वारा इस सवध म राज्यपालो की भूमिका पर सदह व्यक्त किया गया ह। उस पर केन्द्र के अभिकर्ता की भूमिका अदा करने का आरोप लगाया गया है।

वास्तव मे इस अध्याय मे इस बात का विश्लेषण आवश्यक प्रतीत होता ह कि क्या वास्तव म राज्यपालो ने सविधान द्वारा सोपी गयी अपनी सवैधानिक प्रमुख की भूमिका से हटकर काम किया ह अथवा एक दल के राजनीतिक नेता की तरह।[1] स्पष्ट ह कि राष्ट्रपति शासन की पूरी कार्यवाही के दारान राज्यपाल महत्वपूर्ण कड़ी होता है अत अनुच्छेद 356 के गहन अध्ययन के लिए राज्यपाल की इस सवध मे निभायी गयी भूमिका की जाँच आवश्यक ह।

भारतीय सविधान मे चूकि ब्रिटिश प्रणाली के समान ही ससदीय व्यवस्था को स्वीकार किया गया ह जिसम यह आम धारणा ह कि यदि राज्य के सवैधानिक अध्यक्ष की व्यवस्था कर

---

1 यदि राष्ट्रपति का किसी राज्य के राज्यपाल बने प्रतिवेदन मिलन पर या अन्यथा यह समाधान हो जाता ह कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिसम उस राज्य का शासन सविधान के उपबधो के अनुसार नही चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उदघोषणा कर सकता है-सविधान का अनु 356 (1) भारत का सविधान (विधि व न्याय मत्रालय, नयी दिल्ली)

दा जाये तो समदीय प्रणाली सुचारु रूप से चल सकती ह। चूकि भारतीय सविधान न सघ आर राज्य दोना स्तरो पर सरकार की इसी प्रणाली को स्वीकार किया ह, अत इन दोना ही स्तरा पर सवधानिक प्रधान की व्यवस्था की गयी ह अर्थात् केन्द्र म राष्ट्रपति और राज्या म राज्यपाल अधिकार आर शक्तियो के मामल मे भी दोना की स्थिति समान ह।

भारतीय सविधान मे राज्यपाल को सविधान के सजग प्रहरी और सघ व राज्या के मध्य महत्वपूर्ण सम्पर्क बिन्दु की भूमिका प्रदान की गयी है। सविधान निर्माताओ ने राज्यपाल क पद का सृजन करते हुये ऐसे सविधानिक प्रमुख की कल्पना की थी जो मत्रिमडल के लिये एक दूरदर्शी परामर्शदाता तथा सलाहकार हो[1] तथा राज्य के मुखिया क रूप म निष्पक्ष आर ईमानदार छवि वाली भूमिका का निर्वाह कर सके। अत राज्यपाल के पद पर ऐस व्यक्ति की कल्पना की गयी थी जो दलीय राजनीति मे लिप्त ना हो।[2] सविधान लागू होने के कुछ वर्षो के उपरान्त ही इस महत्वपूर्ण तथ्य को विस्मृत कर दिया गया आर राज्यपाल का पद पूर्णत राजनीतिक हो गया जिसका केन्द्र म सत्तारूढ दल द्वारा दुरुपयोग किया जाने लगा यहाँ तक कि उस केन्द्र म राज्य का एजण्ट मान लिया जायेगा। राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती ह तथा अपने पद ग्रहण की तारीख से पाच वर्ष तक अपने पद पर बना रहता है। लेकिन राज्यपालो को अपने कायकालकी सुरक्षा नही प्रदान की गयी ह।इस प्रकार राज्यपाल केद्र के प्रभावी एजण्ट की भूमिका का निर्वाह करता है।[3] राज्य के सवेधानिक मुखिया की भूमिका मे राज्यपाल राज्य का आपचारिक प्रधान होता ह। राज्य की सभी कार्यकारी शक्तिया राज्यपाल के नाम पर राज्य मत्रिमडल द्वारा प्रयुक्त की जाती ह जिनकी नियुक्ति राज्यपाल द्वारा ही की जाती ह।[4]

सविधान का अनुच्छेद 163[5] राज्यपाल के लिये यह अनिवार्य करता है कि वह अपने सभी कार्यपालक और विधायी कार्यो को मत्रिपरिषद की सहायता से करेगा। लेकिन कुछ परिस्थितियो

---

1 श्री आर वेकटरमन माइ प्रसीडेसियल ईयर्स पृष्ठ 128 पूर्वावत

2 सी ए डी भाग VIII पृष्ठ-455 456

3 'कमाइन्ट रूल इन इण्डिया'—राजीव धवन पृष्ठ 118 पूर्वोक्त

4 लेकिन श्री जान्स का मानना है कि राज्यपाल की स्थिति राष्ट्रपति के समान नही है यह बात दोना की चुनाव पद्धति से स्पष्ट ह। राज्यपाल की नियुक्ति व पदच्युति राष्ट्रपति (केन्द्र) की इच्छा पर निर्भर होता ह—भारतीय शासन एव राजनीति—मारिस जान्स—सुरजीत पब्लिकेशन्स (दिल्ली) पृष्ठ 75

5 अनुच्छेद 163 (3) पूर्वोधृत-

म राज्यपाल अपने विवेक के अनुसार भी कार्यवाही कर सकता है संविधान का अनु. 154 राज्य की समस्त कार्यकारी शक्तियो को राज्यपाल म निहित करता है।

यह निर्णय करना कि राज्यपाल किसी मामले म अपने विवेक के अनुसार कार्यवाही करे अथवा नही यह निर्धारित करना स्वय राज्यपाल के ही निर्णय का विषय है और उसके द्वारा लिया गया निर्णय अंतिम होगा। राज्यपाल द्वारा किये गये किसी भी कार्य की वैधता पर इस आधार पर कोई आपत्ति नही उठायी जा सकती कि अमुक कार्य उसे अपने विवेकानुसार करना चाहिये था अथवा नही। कोई भी न्यायालय इस प्रश्न पर विचार नही कर सकता कि क्या मत्रियो ने राज्यपाल को कोई मत्रणा दी थी और यदि दी थी तो क्या दी थी। [1]

संविधान म राज्यपाल के लिय विवेकीय शक्ति के प्रयोग के लिय कोई मानक नही निर्धारित किया गया है। लेकिन इस सबध म सरकारिया आयोग का विचार है कि जब तक मत्रिपरिषद को विधान सभा का विश्वास मत प्राप्त हो राज्यपाल के लिये सभी मामलो म उसकी सलाह मानना बाध्यकारी होगा, जबतक कि ऐसी सलाह अस्पष्ट तथा असवैधानिक ना हो। केवल उन मामलो मे जहा ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करने से किसी सवैधानिक उपबध का उल्लघन होता हो या जहा मत्रिपरिषद ने विधान सभा का विश्वास खो दिया हो। राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग अंतिम हथियार के रूप म ही करना चाहिये।[2]

यह स्वीकृत सिद्धान्त है कि उत्तरदायी ससदीय प्रजातन्त्र म राज्य के सवैधानिक अध्यक्ष के अधिकारो को वास्तविक कार्यपालिका की तुलना म नहीं बढाया जा सकता। राज्यपाल के विवेकाधिकार का प्रयोग क्षेत्र सीमित है, उसका कार्य निरकुश या कल्पनाशील नही होना चाहिये यह बहुत तर्कपूर्ण तथा सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिये।

फिर भी कुछ ऐसी परिस्थितिया हो सकती है जो कि राज्यपाल के लिये मत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करना व्यवहार्य नहीं होता जैसे-

---

1 अनुच्छेद 163 (1) भारतीय सवैधानिक विधि श्री एम पी जैन इलाहाबाद लॉ एजेन्सी इलाहाबाद—141

2 सरकारिया कमीशन रिपोर्ट भाग 1 पृ 125 (1988)

1- चुनावो के तुरत बाद यदि किसी भी दल का स्पष्ट बहुमत ना मिल एसे म मत्रिमण्डल का निर्माण विभिन्न दलो अथवा गुटो द्वारा किये गए दावा की जाच के आधार पर करना।[1]

2- विधान सभा का सत्र बुलाने सत्रावसान करने अथवा सभा विघटित करने के सबध मे [2]

3- राज्या म आन्तरिक उपद्रव अथवा विधान सभा मे राज्य सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास हो जाने के बाद भी त्याग पत्र ना देने के प्रश्न पर। जिसके कारण राज्य म सवधानिक गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो गयी हो तब राज्यपाल राष्ट्रपति का तत्सबधी रिपोट प्रेषित करता ह।[3]

4- राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिये सुरक्षित रखने के विषय मे। [4]

अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत जब राज्यपाल राज्य के सवधानिक तत्र की विफलता की रिपोर्ट केन्द्र को भेजता हे तो उस समय यह स्वाभाविक ही ह कि इस विषय पर मत्रिमण्डल से परामर्श नही कर सकता, क्योकि सवधानिक तत्र के विफल होन का कारण मत्रिया का आचरण भी हो सकता ह । ऐसी स्थिति मे अपने विवेकानुसार कार्यवाही राज्यपाल के लिये उचित होगी। इसके अतिरिक्त सविधान मे कुछ ऐसे भी उपबध हे जिनमे स्पष्ट रूप से राज्यपाल के द्वारा कार्यवाही करने की व्यवस्था है-

(1) कुछ अन्य विषयो म, जैसे राष्ट्रपति के विचार के लिए विधेयक का आरक्षित कियाजाना (अनुच्छेद 200)। यह आवश्यक नही ह कि राज्यपाल मत्रिपरिषद स सदेव सहमत हो। विशेष रूप से तब जबकि राज्यपाल ऐसे दल का ह जिसका मत्रिमण्डल नही ह। ऐसी दशा मे विशेष परिस्थितिया मे राज्यपाल के लिये यह उचित होगा कि वह मत्रिमण्डल की सलाह के बिना कार्य करे- यदि वह समझता हे कि उक्त विधेयक सघ

---

1 सविधान का अनुच्छेद 164

2 सविधान का अनुच्छेद 174

3 अनुच्छेद 356 राज्यपालो की समिति की रिपोर्ट20 नवम्बर 1970 स्वात-प्रसीडन्ट रुल इन इण्डिया राजीव धवन, पृष्ठ–191

4 अनुच्छेद 200 व 201

का शक्तियां पर प्रभाव डालेगा या संविधान क उपबधा का उल्लघन करेगा फिर चाह मत्रिमण्डल की राय भिन्न ही क्यो ना हो।[1]

(2) अरुणाचल प्रदेश, असम, मेघालय, मिजारम, नागालण्ड सिक्किम आर त्रिपुरा क राज्यपाला का अपने विवेकाधिकार से कुछ विशिष्ट कार्या को करन की जिम्मेदारी सोपी गया ह।[2]

(3) अरुणाचल प्रदश आर नागालण्ड के राज्यपाला पर राज्या के कानून व व्यवस्था क सबध म विशेष उत्तरदायित्व सोपा गया हे। अपने उत्तरदायित्वा के निर्वहन म उन्ह अपने मत्रिपरिषद से परामर्श करन के बाद, अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करना होता ह। एसे विशेष उत्तरदायित्वो के निर्वहन मे राज्यपाल को समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा दिये गये निदशो के अनुसार काम करना होगा और उसके अधीन रहते हुय वह स्वविवेकानुसार कार्य करेगा।[3]

सविधान का अनुच्छेद 355 केन्द्र सरकार का यह कर्तव्य निर्धारित करता ह कि वह प्रत्यक राज्य को वाध्य आक्रमणो से तथा आन्तरिक दुर्व्यवस्था से बचाय[4] तथा यह भी सुनिश्चित कर कि प्रत्येक राज्य का शासन सविधान के प्राविधानो के अनुसार चलाया जा रहा ह या नही। अनुच्छद 356 केन्द्र के इस दायित्व को पूरा करने के लिए यह अधिकार प्रदान करता ह जिसके तहत राष्ट्रपति को यह अधिकार होता हे कि वह राज्य की विधायी व प्रशासनिक शक्तियो को स्वय ग्रहण कर ले जबकि राज्य मे सवधानिक तत्र भग हो गया हो। लकिन राष्ट्रपति को ऐसी सूचना जिसके माध्यम से प्राप्त होगी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये राज्यपाल क पद की सरचना

---

1 आरक्षण और वीटो का समस्त कृत्य विववाधीन है आर न्यायालया द्वारा इसका निर्णय नही किया जा सकता। इवस्ट पामास्युटिकल बनाम बिहार राज्य, ए0 आई0 आर0 1953 एस0 सी0 1019 परा 981

2 अनुच्छद 371 छठा अनुसूची का पग 9

3 भारत का सविधान-एक परिचय' डी डी बसु' धृताधृत

4 Law and order is a State Subject Yet the centre has an over all responsbility to Provide necessary and appropriate help to the states There fore a greater mutality is clearly needed' Fromer President Sri R Venkataraman My Presidential Years' P 87

गा गयी ह जा राष्ट्रपति का राज्य की वास्तविक स्थितियो का सही रिपोर्ट प्रापत करता ह। लकिन यदि राज्यपाल राज्य मे मुख्यमत्री मे मिलकर राज्य की स्थिति का सूचना राष्ट्रपति को ना द ना एसी स्थिति से बचाव के लिये केन्द्र को यह अधिकार भी प्रदान किया गया हे कि वो बिना राज्यपाल की रिपोर्ट के भी कार्यवाही कर सकता हे।[1]

## राज्यपाल द्वारा केन्द्र को प्रतिवेदन भेजना

राज्यपाल द्वारा केन्द्र को अपनी रिपोर्ट प्रेपित करने के सबध म सर्वाधिक विवाद ह, क्योकि राज्यपाल द्वारा राज्य मत्रि परिषद से सलाह नही ली जाती। सविधान क लागू होने क पन्द्रह वर्षो तक राज्यपाल की भूमिका के सबध मे काई विवाद नही था। क्योकि स्वतन्त्रता के बाद क इन वर्षो मे अधिकाश राज्यो म एक ही दल सत्तारूट था आर सघ राज्य सबधी कार्य प्रणाली म जा भी समस्याये उत्पन्न होती था उन्हे आमतोर पर पार्टी स्तर पर ही सुलझा लिया जाता था आर राज्यपाल द्वारा अपने विवेकाधिकारो के प्रयोग का अवसर कम हा रहता था। इन वर्षो के दारान राज्यपाल की सस्था को पर्याप्त महत्व नही मिल पायाथा इस अवधि के दारान क्वल केरल म 1959 का मामला ह जवकि राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था उस समय राज्यपाल की भूमिका का कडी आलाचना की गयी थी।

करल मे जहा 1957 के चुनावो के बाद पहली बार किसी राज्य म गर काग्रेसी दल की सरकार सत्तारूढ हुई थी, राज्यपाल श्री कृष्णाराव ने केन्द्र के अभिकर्ता की भूमिका अदा करते हुये वहुमत प्राप्त सरकार को बर्खास्त कर दिया था। केन्द्र को भेजे गये अपने प्रतिवेदन म राज्यपाल न राज्य सरकार पर कुव्यवस्था व भ्रष्टाचार का आरोप लगाया था। रिपोर्ट मे यह भी कहा गया था कि केरल की सरकार से जनता का विश्वास उठ गया था।

केरल के मामलो मे राज्यपाल की भूमिका निश्चित रूप म पक्षपात पूर्ण रही थी क्याकि सविधान म यह कही भी नही कहा गया ह कि राज्यपाल वहुमत प्राप्त मत्रिपरिपद को क्वल इस आधार पर बर्खास्त कर दे क्याकि राज्य की जनता का बहुमत सरकार के पक्ष म नही रह गया ह वह इसलिये भी ऐसा नही कर सकता क्योकि जव तक विधान सभा का सदन म वहुमत रहता ह राज्यपाल के प्रति मुख्यमत्री नही उत्तरदायी होता ह। वास्तव मे सविधान

---

1 सर्वोच्च न्यायालय न हाल हा म दिय गये अपने निर्णय म बिना राज्यपाल का रिपोर्ट के कार्यवाही करने म बचने की सलाह दा हे- एस.आर. बोम्बई बनाम भारत सघ, ए.आई.आर. पृष्ठ— पूर्वाद्धृत

राज्यपाल को यह देखने का दायित्व कदाचित नहीं सौंपता। वास्तव में इस प्रकार के कार्य संविधान के विपरीत है क्योंकि यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि राज्यपाल जब अपना पद ग्रहण करता है तब वह यह शपथ लेता है कि वह संविधान की रक्षा करेगा। उस स्थिति में राज्यपाल का यह कर्तव्य बनता है कि वह राज्य में संवैधानिक कानूनों का पालन होना सुनिश्चित करे, जिससे राज्य में जनजीवन सुरक्षित हो सकेगा जबकि पक्षपातपूर्ण राजनीतिक भूमिका को अदा करने द्वारा राज्य के संवैधानिक तंत्र में बाधा उपस्थित करे। इस संबंध में राज्यपालों को इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि राज्य सरकारों से उनका संबंध न केवल एक संवैधानिक मुखिया के तौर पर होता है अपितु ऐसी परामर्शी भूमिका का भी निर्वाह करे जिससे मंत्रिपरिषद में उत्पन्न हुये विवादों को सुलझाया जा सके।[1]

## अनुच्छेद 356 व राज्यपालों की भूमिका

राज्यपालों की भूमिका में परिवर्तन मुख्यतः 1967 के बाद से आया जबकि आम चुनावों के बाद से अधिकांश राज्यों में सत्तारूढ़ पार्टी से भिन्न दल सत्तारूढ़ हुआ। बाद के दशकों में यह देखने में आया कि राजनीतिक पार्टियों के विखण्डन के पश्चात कई नयी क्षेत्रीय पार्टियों का प्रादुर्भाव हुआ जिसके परिणाम स्वरूप कई राज्यों में दीर्घकालीन अस्थिरता उत्पन्न हो गयी। फलतः राज्यपालों से यह अपेक्षा की गयी कि वे अपने विवेकाधीन अधिकारों का प्रयोग करें लेकिन अपेक्षित भूमिका का निर्वहन ना करने के कारण उसका सीधा प्रभाव केन्द्र राज्य संबंधों पर पड़ा और तत्पश्चात राज्यपाल की भूमिका जन विवाद का विषय बनी। इधर कुछ वर्षों के दौरान राज्यपाल का पद अनेकों दबावों और तनावों का शिकार हुआ है जिसकी संविधान की रचना करते समय कल्पना भी नहीं की गयी थी। जैसा कि डा अम्बेदकर ने उसे 'अलंकारिक कार्यकर्ता' की संज्ञा दी थी। 'उच्चतम न्यायालय ने भी राज्यपाल के पद के बारे में इस प्रकार के विचार व्यक्त किये गये है।[2]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है पहले तीन आम चुनावों के दौरान राज्यपाल और मंत्रिपरिषद ने संसदीय व्यवस्था में लगभग पूर्ण और सुचारु ढंग से काम किया। राज्यपाल के पद की प्रकृति इतनी औपचारिक हो गयी थी कहीं-कहीं उन्हे केन्द्र की मोहर मात्र बनाया जाता था। लेकिन चौथे आम चुनावों के बाद देश के राजनैतिक वातावरण में नवगम्भीर बदलाव आया।

1 व्हाइ प्रेसीडेन्टल ईयर्स- श्री आर. वेंकटरमन, पृष्ठ 87 पूर्वाधृत

2 हरगोविन्द पन्त बनाम रघुकुल तिलक ए0 आई0 आर0 1979 एस0 सी0 709

केन्द्र म तो काग्रेस अपना बहुमत बरकरार रखने मे सफल हो गयी परन्तु अनेक राज्यो मे काग्रेसी सरकारो का सफाया हो गया और गेर काग्रेसी गठबन्धन की सरकार, पश्चिम बगाल, उडीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, करल, पजाब, मध्यप्रदेश आर हरियाणा मे सत्तारूढ हुयी।

1967 के बाद कई राज्यो मे राज्यपालो के क्रियाकलापो पर सवालिया प्रश्नचिन्ह खडा हो गया क्योकि वे राजनीति मे लिप्त हो गये थे।[1]

राजस्थान मे राज्यपाल के कृत्य को शका की नजरो स देखा गया क्योकि 1967 के चुनावो के तुरत बाद ही विधान सभा को निलम्बित कर दिया गया था क्योकि राज्यपाल श्री सम्पूर्णानन्द विपक्ष के सरकार बनाने के दावे को नही स्वीकार किया था।[2]

1967 के चुनावो के पश्चात राज्य मे काग्रेस पार्टी- सबसे बडे दल के रूप मे उभर कर सामने आयी था लेकिन उसे पूर्ण बहुमत नही प्राप्त हुआ था।[3]

राज्यपाल ने अपने इस कदम का बचाव करते हुए कहा कि राजनतिक दल चुनावो म अपने दल की नीतियो के आधार पर चुनाव लडते ह ना कि व्यक्तिगत आधार पर। मतदाता निर्दलीय उम्मीदवारो की नीतियो के बारे मे कुछ भी नही जानता।[4]

वास्तव मे राज्यपाल ने 1952 मे मद्रास के मामले की ही पुनरावृत्ति की थी जबकि राज्यपाल ने राजगोपालाचारी के नेतृत्व वाली काग्रेस पार्टी को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया था जबकि उसे विधान सभा मे बहुमत का समर्थन नही प्राप्त था, जबकि विपक्षी नेता श्री टी प्रकाश ने बहुमत के समर्थन के आधार पर सरकार बनाने का दावा पेश किया था।

श्री सुखाडिया को सरकार बनाने का आमत्रण देते समय राज्यपाल का विचार था कि उनके समक्ष दो विकल्प थे।

1- विधान सभा को भग कर पुन नये चुनाव के आदेश दिये जाय।

---

1 द रोल आफ गवर्नर इन इण्डिया पालटिक्स सिन्स 1967 शिवरजन चटर्जी'-इण्डियन जनरल ऑफ पालिटिकल साइन्स अक्टूबर दिसम्बर, 1971 न-4 वाल्यूम पृष्ठ XXXII 522

2 वही

3 चुनावो क बाद विभिन्न दलो की स्थिति इस प्रकार थी—कुल स्थान—184 काग्रेस—89 स्वतत्र—48 जनसघ—22 ससोपा—8 साम्यवादी दल-1, निर्दलीय—16।

4 दि हिन्दुस्तान टाइम्स—5 मार्च, 1967 (दिल्ली)

2- राष्ट्रपति शासन लागू कर प्रजातांत्रिक संस्थाओं का अस्थायी तौर पर निलम्बित रखा जाय।[1]

लेकिन राज्यपाल का विचार था कि इन दोनों ही विकल्पों पर गहराई से विचार करने के बाद उन्हें यही उचित प्रतीत हुआ कि राज्य में लोकतंत्रात्मक संस्थाओं को अपनी सार्थकता और क्षमता सिद्ध करने का एक अवसर प्रदान करना चाहिए।

लेकिन राज्यपाल के कथित निर्णय की विपक्षी दलों द्वारा कड़ी आलोचना की गयी—

1- राज्यपाल ने कांग्रेस हाईकमान के इशारे पर कार्यवाही की।[2]

2- राज्यपाल के लिये यह अत्यन्त अनुचित था कि उन्होंने निर्दलीय सदस्यों की नितान्त अपेक्षा की तथा उनके मतो की गणना करने से इनकार कर दिया।

3- यदि सबसे बडे एक राजनीतिक दल को ही सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करना था तो राज्यपाल यह कार्य पूर्व में ही कर सकते थे। उनके लिए यह बिल्कुल आवश्यक नहीं था कि वे इतने लम्बे समय तक प्रतीक्षा करते तथा कांग्रेस और विरोधी दलों के समर्थकों की संख्या की अलग-अलग जांच करते।[3]

4- राज्यपाल संयुक्त मोर्चे के अस्तित्व की अपेक्षा नहीं कर सकते थे क्योंकि संयुक्त मोर्चा भी अन्य किसी भी दल की भांति पूरी तरह से एक विधान मण्डलीय दल था, उसका एक सुनिश्चित कार्यक्रम था, निर्वाचित नेता थे, राज्यपाल को इन सभी बातों की विधिवत सूचना दे दी गयी थी।

5- यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि जिस दिन कांग्रेस के नेता को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया गया था, उस दिन विधान सभा में कांग्रेस को बहुमत नहीं प्राप्त था। विरोधी दलों ने अपने संयुक्त व्यक्तव्य मे कहा कि राज्यपाल ने अल्पमत को बहुमत में बदलकर लोकतंत्र तथा विधि के शासन के उपर प्राणान्तक आघात ही नही किया वरन् संविधान की शब्दावली तथा भावना दोनो का भी उल्लंघन किया है। राज्यपाल का यह निर्णय राजनीतिक पक्षपात का स्पष्ट

---

1 दल बदल और राज्यों की राजनीति—सुभाष सी कश्यप—पृष्ठ 94 मीनाक्षी प्रकाशन, पृष्ठ 260—(मेरठ)।

2 स्टेट गवर्नर्स इन इण्डिया—टेण्ड्स एण्ड इश्यूस- एन.एस. गहलोत, पृष्ट 260—गितांजली पब्लिशिंग हाउस—नयी दिल्ली।

3 वही

उदाहरण था। इससे यही प्रकट होता है कि राज्यपाल ने केन्द्र में सत्तारूढ़ (कांग्रेस) की ही इच्छाओं का ही ध्यान रखा, लोकतंत्र जनता के निर्णय तथा संविधान का नहीं।

लेकिन राज्य की राजधानी में हिंसक उपद्रवों और विरोध को देखते हुये श्री सुखाड़िया ने अंतत सरकार का गठन करने से इनकार कर दिया। तत्पश्चात राज्य में राष्ट्रपति शासन घोषित कर दिया गया लेकिन राज्य विधान सभा भंग नहीं की गयी। स्वतंत्र पार्टी के नेतृत्व में विरोधी नेता ने राज्यपाल श्री नेवर्नीयनी पर संदेह किया और शिकायत की कि वह केन्द्र सरकार के निदेशों पर कार्य कर रहा है, जो यह स्पष्ट रूप से चाहती है कि कांग्रेस पार्टी राज्य में सत्तारूढ़ हो। सर्वोदयी नेता श्री जयप्रकाश नारायण का विचार था कि विरोधी दलों के संगठनों को सरकार बनाने का अवसर न देने का कोई न्यायोचित कारण नहीं दिखायी देता। श्री मीनू मसानी ने इसे 'कुत्सित' और श्रीपाद अमृत डांगे ने उसे असंवैधानिक तथा "सिद्धान्तहीन। कहा विभिन्न समाचार पत्रों ने इस निर्णय को एक निर्लज्ज निर्णय, क्षुद्र षडयन्त्र" 'संकुचित मतावृत्ति ' भयंकर भूल आदि की संज्ञाओं से संबोधित किया।

बाद में कांग्रेस कुछ विधायकों को अपने पक्ष में करने में सफल हो गया। अंतत राज्यपाल ने विधान सभा के उन सदस्यों से जिनकी निष्ठा विवादास्पद था मिलने के बाद देखा कि कांग्रेस पार्टी का बहुमत था और उन्होंने उसके नेता श्री सुखाडिया को सरकार बनाने के लिये पुन आमंत्रित किया।

ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि राज्यपाल ने अपना संवैधानिक प्रधान की भूमिका के स्थान पर केन्द्र के इशारे पर काम किया।

अनेक मामलों में राज्यपालों ने अपने पद और गरिमा का दुरुपयोग किया है और निश्चित तौर ऐसा केन्द्र के इशारे पर किया गया। वास्तव में इस बात से कतई इनकार नहीं किया जा सकता कि इस प्रकार की कार्यवाही केन्द्र में सत्तारूढ दल के हित में की गया। इस प्रकार की कार्यवाही संविधान निर्माताओं के शाब्दिक व भावनात्मक दोनों ही बातों का उल्लंघन है तो कि नहीं किया जाना चाहिये।

वास्तव में राज्यपाल को मुख्यमंत्री की नियुक्ति के समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये -

1 सरकार के गठन के लिये बहुमत प्राप्त दल के नेता का या ऐसी पार्टियों के नेता को जिन्होंने मिलकर चुनाव लड़ा हो, सरकार के गठन के लिये राज्यपाल द्वारा आमंत्रित

किया जाना चाहिये। बहुमत प्राप्त दल या सयुक्त दल कौन से है इसका निर्णय चुनाव परिणामो के आधार पर किया जाना चाहिये।

_ विधान सभा म किस दल की सरकार का बहुमत है या बहुमत नही रहा है इस प्रश्न का निपटारा सदन म होना चाहिये राज्यपाल के स्वय के मूल्याकन द्वारा नही

3- यदि किसी दल की सरकार का बहुमत समाप्त हो गया हो तो राज्यपाल के लिये जरूरी है कि वह दूसरे नबर पर ज्यादा सदस्यो का समर्थन प्राप्त दल या सयुक्त मोर्चे की नेता को सरकार के गठन के लिये आमत्रित करे और इस प्रकार बुनाये गये नेता के लिये जरूरी होगा कि वह तुरत मत्रिमण्डल के निमाण स पूर्व सदन से विश्वास प्राप्त करे।

कर्नाटक श्वेत पत्र मे भी कहा गया है कि राज्यपाल के लिये भी ऐसी परम्परा पडना आवश्यक है कि पद त्याग के पश्चात राज्यपाल सक्रिय पक्षपाती राजनीति म नही लौटगी।[1] मुख्यमत्रियो की नियुक्ति के सबध म किसी राज्य के मुख्यमत्री का चयन करते समय राज्यपाल द्वारा निम्नलिखित सिद्धान्तो का अनुपालन करना चाहिये।

1 उस दल या दलो के समूह को सरकार बनाने के लिय आमत्रित करना चाहिये जिसे विधान सभा मे सबसे अधिक समर्थन प्राप्त हो।

2 राज्यपाल का कार्य यह देखना है कि कोई सरकार बने ऐसी सरकार बनाने का प्रयास नही करना चाहिये जो कि उसके द्वारा बनायी गयी नीतियो को ही क्रियान्वित करे।

यदि विधान सभा मे किसी भी पार्टी को पूर्ण बहुमत नही प्राप्त है तो राज्यपाल द्वारा अन्य सभी दलो के ग्रुपो को सचना देकर निम्न आधार पर मख्यमत्री का चयन करना चाहिये।-

1 चुनाव से पूर्व बने गठबधन के नेता को।

2 उनमे सबसे बडी पार्टी जो अन्य पार्टियो के समर्थन जिसमे निर्दलीय शामिल है के साथ सरकार बनाने का दावा करती हो।

3 पार्टियो का एक निर्वाचनोत्तर गठबधन जिसमे सरकार गठन के लिय आपस म गठबधन किये हुये दल सहित और जिन्ह निर्दलीयो का समर्थन सरकार मे बाहर रहते हुये प्राप्त अथवा विभिन्न दलो के गठबधन को सबसे बड़े दल द्वारा बाहर से समर्थन दिया जा रहा हो।

---

1 कर्नाटक श्वेत पत्र 1983 भाग–I म0 क्र0 रिपोर्ट, पृष्ठ–234

राज्यपाल को उपरोक्त प्रक्रिया अपनाते हुये ऐसे नेता का चयन करना चाहिये जिसे कि राज्यपाल के विवेकानुसार बहुमत प्राप्त करने की पूर्ण सम्भावना हो राज्यपाल द्वारा लिये गये आत्मपरक निणय की बहुत अहम् भूमिका है।

किसी मुख्यमंत्री को जब तक कि वह विधान सभा मे पूर्ण बहुमत वाले दल का नेता ना हो, द्वारा शपथ ग्रहण करने के तीन दिन के अदर विश्वास मत प्राप्त किया जाना चाहिये इस प्रकार के नियम का पवित्रता के साथ कडाई से पालन किया जाना चाहिये।

यदि विधान अनेक सदस्य राज्यपाल से मिलते है और विधान सभा मे पदधारी मुख्यमंत्री को बहुमत के समर्थन का दावा करते है, तो राज्यपाल को विधान सभा के बाहर इस मुद्दे पर स्वय कोइ निणय लेने का जोखिम नही उठाना चाहिये। उसके लिय बुद्धिमतापूर्ण तरीका यह होगा कि वह विरोधी दावो का विधान सभा मे परीक्षण करवाये। ऐसी प्रक्रिया न केवल न्यायोचित होगी वरन् इससे न्यायोचितता सुनिश्चित हो जायेगी। इसके परिणामस्वरूप राज्यपाल द्वारा निर्णय लेने मे होने वाली किसी गलती से उत्पन्न परेशानी से भी बचा जा सकेगा।

1973 मे उडीसा मे 13 असतुष्ट काग्रेसी विधायक अपने मूल दल काग्रेस (ओ) और स्वतन्त्र दल मे सम्मलित हो गये। श्रीमती नन्दनी सतपथी जो कि उस समय मुख्यमंत्री थी, विधान सभा म अपनी भावी हार को देखते हुये त्याग पत्र दे दिया था जबकि विधान सभा का सत्र चल रहा था। विपक्षी दल प्रगति पार्टी ने श्री बीजू पटनायक के नेतृत्व म 72 सदस्यो के समर्थन का दावा पेश किया जिसको विधान सभा के स्पीकर ने प्रमाणित किया था तथा इसकी सूचना राज्यपाल श्री जत्ती को सभा के सचिव ने दी थी। प्रगति पार्टी को सदन मे बहुमत प्राप्त है, यह बात एक अन्य तरीके से भी प्रमाणित होती थी कि प्रगति पार्टी के उम्मीदवार श्री देवानन्द 1 मार्च, 1973 को राज्य सभा के लिये काग्रेस उम्मीदवार के विरुद्ध 60 के विरुद्ध 77 मतो से विजयी घोषित हुये थे।

लेकिन इन सभी तथ्यो को नजरदाज करते हुय श्री बी० डी० जत्ती ने प्रगतिपार्टी का सरकार बनाने का अवसर नहीं प्रदान किया। इसके स्थान पर श्रीमती सतपथी की सिफारिश स्वीकार करते हुये अनुच्छेद 356 के तहत राज्य म राष्ट्रपति शासन की सस्तुति कर दी जिसके आधार पर 5 मार्च, 1973 को राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू हो गया।

श्री पटनायक और उनके साथियो ने उडीसा उच्च न्यायालय मे याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने याचिका को खारिज कर दिया लेकिन राज्यपाल के कृत्य की आलोचना की।

यह मामला बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसे न्यायालय में पेश किया गया था और जिसमें राज्यपाल को ससदीय परम्पराओं को ना मानने को दोषी ठहराया गया था। राज्यपाल द्वारा 72 सदस्यों के दावे का परीक्षण किया था। जबकि 25 सदस्य सत्ता पक्ष से अलग हो गये थे। राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट मे यह भी लिखा था कि 72 सदसयो में से 2 सदस्य कुछ ही घण्टो बाद दल से अलग हो गये थे। तत्पश्चात राज्यपाल सभी सम्भावनाओ पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वर्तमान बहुमत का दावा करने वाले दल भी बहुत लम्बे समय तक स्थिर सरकार नही दे सकते। इस आधार पर राज्यपाल ने विपक्षी दल के नेता को सरकार बनाने के लिये आमत्रित नही किया। लेकिन विपक्षी दल को सरकार बनाने के लिये बुलाये जाने की कार्यवाही इस आधार पर नही हुयी कि उसे बहुमत का समर्थन नही प्राप्त है, वरन् उनको यह भी अदेशा था कि सरकार बहुत दिनो तक बहुमत नही कायम रख सकेगी। ग्रेट ब्रिटेन मे जो ससदीय परम्परा कायम है, राज्यपाल का निर्णय उसके विपरीत था उसका पालन राज्यपाल द्वारा नहीं किया गया।[1] सत्पथी ने जिन्होने सदन में बहुमत का समर्थन खो देने के पश्चात त्याग पत्र दे दिया था। अतः विपक्षी दल का कर्तव्य था कि वो यह स्पष्ट करे कि वह सरकार बना सकने में समर्थ है या नही क्योकि विपक्षी दल के नेता ने सरकार बनाने का दावा पेश किया था, और यदि राज्यपाल को विपक्ष के बहुमत के समर्थन के बारे मे सदेह था तो उन्हे उसकी जाच सदन में प्रत्यक्ष रूप से करानी चाहिये थी, जोकि उस समय सत्र मे थी। इसी प्रकार का मामला नवम्बर 1967 में पश्चिम बगाल मे हुआ था जब कि राज्यपाल ने श्री अजय मुखर्जी मत्रिमण्डल को बर्खास्त कर दिया था। यह राज्यपाल के अधिकार क्षेत्र से बाहर की बात है कि वह यह देखे कि सरकार स्थायी होगी या नही। यदि बाद में विपक्षी सरकार गिर जाती है तो राज्यपाल का राष्ट्रपति शासन लागू करने का फैसला उचित होता क्योकि तब कोई दूसरा दल सरकार बनाने की स्थिति में नही होता जो कि अपना बहुमत सिद्ध कर सके।

डा जे आर सिवाच ने इस बात की ओर सकेत किया है कि जब कभी काग्रेस दल का या काग्रेस दल का जिस सरकार को बाहर से समर्थन प्राप्त हो या जिसमे काग्रेस सहभागी दल हो, की सरकार गिरी हो या गिरने वाली हो, सभा को निलम्बित करने के स्थान पर अनुच्छेद 174(2)(बी) के अन्तर्गत सभा भग कर दी गयी जैसा कि त्रिवाकुर कोचीन में 1954 में, केरल में 1970 में पश्चिम बगाल और बिहार में 1971 मे और अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत आन्ध्र प्रदेश

---

1 विजयानन्द पटनायक बनाम भारत सघ ए.आई.आर. 1974 उड़ीसा–52

म 1954 म, पाण्डचेरी म 1968 म, पश्चिम बगाल मे आर पुन 1961 म गणिपुर म उडीसा म 1973 म हुआ। इसके तुरत बाद ही हरियाण, उत्तर प्रदश आर मध्य प्रदश मे 1967 म ओर बिहार म 1969 म हुआ।[1]

पश्चिम बगाल का मामला बहुत ही रोचक ह जब अजय मुखर्जी का मत्रिमण्डल गिरने वाला था आर इस सरकार मे काग्रेस पार्टी एक प्रमुख सहयोगी दल था। विधान सभा का चुनाव के चार माह बाद ही भग कर दिया गया। इन सभी मामला म विपक्षी दल सरकार बनाने को तयार थी। वास्तव मे त्रावनकोर कोचीन मे 1954 म पाण्डचेरी म 1968 मे, आर मणिपुर म 1969 मे जबकि सरकार की सदन मे प्रत्यक्ष हार हुयी था विपक्षी दल को यह अधिकार था कि उसे सरकार बनाने का अवसर प्रदान किया जाये।

अन्य मामलो मे जबकि काग्रेस मत्रिमण्डल या उसके द्वारा समर्थित मत्रिमण्डल अपनी सभावित हार का खतरा महसूस करते हुये त्याग पत्र दे देता है जैसा कि पश्चिम बगाल म हुआ जहाकि चुनाव कुछ दिन पूर्व ही कराये गये थे, और सबसे बडे दल का सरकार बनाने का अवसर नहा प्रदान किया गया था, विपक्षी दल द्वारा प्रस्तुत दावे को नजरदाज किया जाना गलत था

इस सबध म यह भी ध्यान देने योग्य बात ह कि जब कभी भी अनुच्छेद 174(2)(बी) अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत गेर काग्रेसी सरकारो द्वारा सभा भग करने की सिफारिश की गया उसको अस्वीकार कर दिया गया जबकि राज्यपाल को उसके बहुमत के बार मे सन्देह था आर साथ ही काग्रेस दल सरकार बनाने का इच्छुक था। उदाहरण क लिये राव वीरेन्द्र सिह हरियाणा मे, गुरुनाम सिह पजाब म 1967 चरण सिह उत्तर प्रदश म 1968 भोला पासवान शास्त्री बिहार म 1968 म, राजा नरेश चन्द्र सिह मध्य प्रदेश म 1962 मे आर हितेन्द्र देसाइ गुजरात मे आर कर्पूरी ठाकुर ने बिहार म 1971 को अनुच्छेद 174 (2) व 356 के अन्तर्गत विधान सभा भग करने की सस्तुति का थी जिसे राज्यपाल न अस्वीकृत कर दिया।

विधान सभाओ को भग करने के समान ही राज्यपाल द्वारा मख्यमत्रियो की नियुक्ति म भी एक पक्षीय निणय केन्द्र म सत्तारूढ दल के हित के अनुरूप लिया था जबकि विपक्ष को

1 ज आर सिवाच', 'दि पॉलिटिक्स ऑफ दि प्रेसिडेन्ट रूल इन इण्डिया' प्र()–भारतीय उच्च अध्ययन सस्थान शिमला (1979)।

सरकार बनाने का अवसर नही प्रदान किया गया, जबकि उसे प्रदान किया जाना चाहिए था। ऐसा चार नियमो की अवहेलना करके किया गया। सभी मामलो से यही निष्कर्ष निकलता है कि जैसा केन्द्र के हित मे उचित था वैसा ही राज्यपालो द्वारा निर्णित किया गया।

1970 के उत्तर प्रदेश मे राज्यपाल श्री बी गोपाल रेड्डी ने राष्ट्रपति को लिखा कि राज्य म राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाय क्योकि राज्य म स्थायी सरकार बनाना सभव नही है क्योकि विभिन्न दलो की स्थिति स्पष्ट नही है लेकिन अपनी बात के विपरीत 15 दिन बाद ही श्री टी एन सिह जो कि कांग्रेस दल के नेता थे, को सरकार बनाने के लिए आमत्रित किया।

नवम्बर 1967 को हरियाण मे राष्ट्रपति शासन की सिफारिश की गयी जबकि राव वीरेन्द्र सिह को सरकार को पूर्ण बहुमत प्राप्त था। राज्यपाल द्वारा जो आधार बताये गये उसमे कहा गया कि असतुष्टो द्वारा चलायी जा रही मुहिम के कारण राजनीतिक अस्थिरता बनी हुयी है।

1968 म राज्यपाल श्री चक्रवर्ती ने असतुष्टो की आवाज को पूरी तरह म अनसुना कर दिया जबकि 15 कांग्रेसी विधायको द्वारा दल से विलग हो जाने के कारण दल की क्षमता 81 सदस्यीय सदन मे घटकर 32 हो गयी थी। राव वीरेन्द्र सिह जो कि 40 विधायको के गुट का नेतृत्व कर रहे थे, ने अपनी सरकार बनाने का दावा पेश किया था

1965 मे केरल मे 133 सदस्यीय सदन मे 40 स्थान प्राप्त कर सीपीएम सबसे बडा दल था। उसके नेता श्री ईएमएस ने राज्यपाल से मिलकर 33 अन्य सदस्यो के समर्थन के आधार पर सरकार बनाने का दावा पेश किया। लेकिन बिना उनके दावे का परीक्षण किये राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया, जोकि प्रजातन्त्र के मूल सिद्धान्तो के विपरीत था। यह बात बिना शक के कही जा सकती है। इन सभी मामलो मे अनुच्छेद 365 का दुरुपयोग किया गया साथ ही राज्यपाल जैसे प्रतिष्ठित सवैधानिक पद का भी मजाक उडाया गया क्योकि इस आन्तरिक राजनीति म राज्यपालो ने एक पक्षीय भूमिका अदा की। वास्तव म राज्यपालो द्वारा जिस प्रकार से राजनीति का सचालन किया गया वो उनकी पद की मर्यादा के प्रतिकूल था क्योकि विभिन्न अवसरो पर कांग्रेस दल को सरकार बनाने म जिस प्रकार की सहायता पहुचाया गयी और इसके लिए अनुच्छेद 356 का सहारा लिया गया वो सविधान के इस आकस्मिक प्रावधान का खुला अतिक्रमण है, जोकि सविधान निर्माताओ की भी मशा के विरुद्ध है।

केवल गेर काग्रेसी सरकारो पर ही प्रहार नही हुआ अपितु काग्रेस पार्टी ने अपनी ही सरकार के विरुद्ध भी इस धारा का प्रयोग किया जवकि राज्य मे किसी मुख्यमत्री का बदलना था जो कि हाईकमान को सतुष्ट नही कर पा रहा हो। ऐसे ही दो मामलो की व्याख्या की जा सकती ह।

1975 मे उत्तर प्रदेश म मुख्यमत्री श्री बहुगुणा ने हाइकमान के निर्देश पर अपना त्यागपत्र दे दिया तथा नेता पद का कलह ना सुलझ पाने क कारण राज्यपाल ने राष्ट्रपति शासन की सस्तुति कर दी जबकि सभा को निलम्बित रखा गया था। 29 नवम्बर 1975 को लगाया गया राष्ट्रपति शासन 12 जनवरी 1976 को हटा लिया गया जबकि श्री एनडी तिवारी मुख्यमत्री बनाये गये। केन्द्रीय गृहमत्री ने इस कार्यवाही को उचित ठहराया क्योकि उनका विचार था कि आन्तरिक गडबडियो को ठीक करने के लिये जिसमे दल के नता पद का चुनाव भी था, के लिये यह कार्यवाही की गयी थी।

उडीसा म 16 दिसम्बर 1976 को मुख्यमत्री श्रीमती नन्दनी सत्पथी ने त्यागपत्र द दिया। राष्ट्रपति शासन केवल 13 दिनो पश्चात् ही उठा लिया गया जवकि श्री विनायक आचार्य को अनेन्ट स्थान पर नियुक्त किया गया ।

यह भी शका व्यक्त की गयी थी कि तमिलनाडु मे दुमुक सरकार को इसलिये हटा दिया गया था, क्योकि उन्होने आपात काल का विरोध किया था।

जनवरी 29, 1976 को राज्यपाल श्री के. के ने राष्ट्रपति को प्रेषित अपनी रिपोर्ट मे राज्य सरकार पर दुष्प्रशासन, भ्रष्टाचार ओर शक्तियो के दुरुपयोग का आरोप लगाया था। इसके दो दिना बाद ही राष्ट्रपति ने उद्घोषणा जारी की जिसके द्वारा सरकार बर्खास्त कर सभा भग कर दी गयी।

3 फरवरी, 1976 को भारत सरकार ने न्यायमूर्ति श्री आरएस सरकारिया के नेतृत्व म एक जॉच आयोग की नियुक्ति की जिसे मुख्यमत्री श्री करुणानिधि के लगाये गये आरोप का जॉच का काम सापा गया।

सितम्बर, 1979 को मद्रास म श्रीमती इन्दिरा गॉधी न स्पष्ट किया कि उनके कार्यकर्ताओ के मन मे दुविधा बनी हुयी थी क्योकि द्रमुक का काग्रेस के साथ गठबन्धन था। जनवरी 1976 को उसका कार्यकाल भी समाप्त हो रहा था आर उन्हे उसकी अवधि

प्रदान का कोई अधिकार नही था, साथ ही सीपी आई आर अन्नाद्रमुक उन्हे सरकारिया कमीशन की नियुक्ति के लिये उन पर दबाव डाल रहे थे।

उपरोक्त तथ्य निश्चित रूप स इस ओर इगित करते ह कि राज्यपाल की रिपोर्ट पूर्णत राजनीति मे प्रेरित थी।

हरियाणा विधान सभा के मई 1982 म हुये चुनावा म राज्यपाल श्री जीडी तापस ने श्री देवी लाल से 10 बजे दिन तक राजभवन मे अपन समथको को उपस्थित करने का निदेश दिया। 90 सदस्यीय सदन मे काग्रेस को 26 स्थान प्राप्त थे। लोकदल का 31 आर भाजपा को 6, काग्रेस एस को 3, निर्दलीय सदस्य 12 थे। भाजपा आर काग्रेस जो लोकदल का अपना समर्थन देने को तैयार थे और जिनम चार निर्दलीय सदस्य भी शामिल थे। जबकि श्री भजनलाल ने कुछ निर्दलीय उम्मीदवारा के समथन क आधार पर कुल 42 सदस्य थे। लेकिन राज्यपाल श्री जीडी तापसे ने श्री भजनलाल को जोकि काग्रस पार्टी क नेता थे, को मुख्यमत्री पद की शपथ दिलायी। राज्यपाल की इस कार्यवाहा की बहुत आलोचना हुयी।[1]

असम म पिछले तीन सालो म इसके बावजूद कि विपक्ष का सरकार बनाने के लिये पर्याप्त समर्थन प्राप्त था आर उसके द्वारा सरकार बनने के लिये चलाने जाने वाल अभियान को झुठलाया जा रहा था, इसके बावजूद कागस (इ) जोकि बहुमत का दावा कर रही थी, वास्तव म गलत सावित हो चुका था। राज्यपाल ने इस पूरे मामले मे भेदभाद पूण भमिका अदा की थी। असम म केन्द्रीय गृहमत्री श्री जल सिह ने लोकसभा म यह दावा किया कि काग्रेस (इ) को विधान सभा मे पूर्ण बहुमत प्राप्त है ओर वो सरकार निर्मित करेगी।जबकि जून 1978 को हुये चुनावा म काग्रस (इ) को केवल 8 स्थान प्राप्त हुये थे। जनवरी 1980 तक दलबदलुआ के कारण काग्रस (इ) अपना नेता चुनने म असमर्थ रही। तथा यह दुविधापूर्ण स्थिति दिसम्बर 1980 तक चलती रही जबकि विधायक दल ने श्रीमती गाँधी को नेता चुनने का अधिकार प्रदान किया।[2]

इसके तीन दिना बाद ही 6 दिसम्बर को राज्यपाल श्री एल पी सिह ने श्रीमती अनवरा तमूर को मुख्यमत्री पद की शपथ दिलायी। काग्रेस (इ) ने 118 सदस्यीस सदन म

1 'हिन्दू' 24 मई 1982 तथा 24 मई का ही स्टेट्समैन देखे।

2 टाइम्स ऑफ इण्डिया, 4 दिसम्बर, 1980।

52 सदस्यों के समर्थन का दावा किया था। कुल सदस्य संख्या 126 थी जबकि 8 स्थान रिक्त थे। कांग्रेस (इ) के 45 सदस्य थे, कुछ निर्दलीय सदस्यों के समर्थन का भी दावा किया गया था। विपक्षी दलों से सरकार के बहुमत को चुनोती दी लेकिन उनकी आपत्तियों को अस्वीकार कर दिया गया।

तमूर का किसी प्रकार सत्तारूढ हुआ मत्रिमण्डल अस्थायी सिद्ध हुआ। उन्होने 28 जून 1981 को त्यागपत्र दे दिया, जबकि उसके सहयोगी दल पीटीसीए ने सभा की बैठक के एक दिन पूर्व ही अपना समर्थन वापस लेने की घोषणा कर दी। लेकिन विपक्ष को सरकार बनाने का अवसर नही दिया गया और जून 30, 1981 को राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। राष्ट्रपति शासन की समाप्ति 13 जनवरी 1982 को हुयी जब श्री केशव चन्द्र गोगई जो कि कांग्रेस (इ) दल के सदस्य थे, को राज्यपाल श्री प्रकाश महरोत्रा द्वारा मुख्यमन्त्री पद की शपथ दिलायी गयी। इससे पूर्व श्रीमती तमूर के त्यागपत्र देने के बाद विपक्षी दल ने श्री शरत् चन्द्र सिन्हा के नेतृत्व मे 63 सदस्यों के समर्थन का दावा किया था, लेकिन राज्यपाल ने उसे अस्वीकार कर दिया था और साथ ही यह वायदा भी किया था कि श्री गोगई को तुरत ही विधान सभा मे बहुमत सिद्ध करने को कहा जायगा।

मार्च 17 1982 को बजट सत्र के प्रारम्भ होने पर विपक्षी दल और लोकतान्त्रिक मोर्चे ने तुरत ही अविश्वास प्रस्ताव रखा जिसे स्वीकार कर लिया गया। लोकतान्त्रिक मोर्चे ने दस दलों के सहयोग सम्मिलन से 65 सदस्यो के समर्थन का दावा किया था। लेकिन अगले दिन जब प्रस्ताव पर विचार होना था। श्री गोगई ने बिना सभा का सामना किये ही त्यागपत्र दे दिया। राज्यपाल श्री प्रकाश महरोत्रा ने एक बार पुन विपक्षी गठबन्धन के नेता श्री सिन्हा को सरकार बनाने के लिये आमत्रित नही किया। इसके पूर्व तीन अवसरों पर भी उन्होंने यही रुख अपनाया था। मार्च 19 1982 को राज्य विधान सभा भंगकर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। गोगाई मत्रिमण्डल केवल 65 दिनो तक ही चल सका।[1]

वैधानिक तौर पर राज्य का मुख्यमत्री राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त ही अपने पद पर बना रहता है। राज्यपाल की इस स्वेच्छा पर केवल एक ही नियत्रण है कि मुख्यमत्री

1 हिन्दू जनवरी 11, 1982

मा अपने सम्पूर्ण कार्यकाल के दौरान विधान सभा म बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। दूसरे शब्दों म राज्यपाल की कृपा विधान सभा म मन्त्रिपरिषद के विश्वास के अधीन है। कोई मुख्यमंत्री जिसे राज्यपाल का 'प्रसाद' नहीं प्राप्त होता है, परन्तु फिर भी राज्यपाल उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नही करवा सकता ह जैसाकि पश्चिम बगाल म अजय मुखर्जी के साथ हुआ क्योकि विधान सभा मुखर्जी के साथ थी।

दूसरी ओर तो मुख्यमंत्री जिसे राज्यपाल की सरक्षण प्राप्त हो लेकिन विधान सभा मे बहुमत का समर्थन ना प्राप्त हो तो राज्यपाल उसे किसी भी स्थिति मे पद पर नहीं बनाये रख सकता ह।

अत कानूनी दृष्टि से चाहे जो हो लेकिन ससदीय व्यवस्था के अनुसार मुख्यमंत्री तभी तक अपने पद पर बना रहता ह जब तक कि उसे विधान सभा म बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। केवल विधान सभा का बहुमत समाप्त होने पर ही वो सत्ता से हटाया जाता ह अन्यथा नहीं। यहा यह प्रश्न उठता है कि यह किस प्रकार ज्ञात किया जाये कि मुख्यमंत्री का विधान सभा मे बहुमत का समर्थन प्राप्त है। इस सबध मे निम्न स्थितियॉ हो सकती -

1 यह राज्यपाल के विवेक के लिये छोड दिया जाये कि मुख्यमंत्री को बहुमत का समर्थन प्राप्त ह या नहीं।

2 किसी मत्रिमण्डल को बहुमत का समर्थन प्राप्त है या नहीं, इस बात का निर्धारण केवल विधान सभा मे ही किया जाना चाहिये। बहुमत के निर्धारण के प्रश्न की जॉच किसी अन्य स्थल पर नही की जानी चाहिए।

3 इस प्रश्न के निर्धारण का प्रश्न जनता के ऊपर छोड देना चाहिये। यदि राज्य का मुख्यमंत्री ऐसा कोई राय राज्यपाल को दे दे तो ऐसी सलाह मानना राज्यपाल के लिये अनिवार्य होता ह।

4 मत्रिमण्डल के पराजित होने अथवा उसके बहुमत के बारे म सशय होने पर सविधान राज्यपाल का मत्रिपरिषद को बर्खास्त करने का अधिकार प्रदान करता है। इस दौरान विधान सभा को या तो भग कर देगा या केवल कुछ अवधि के लिये निलम्बित ही रखता है

व राज्य को अनुच्छेद 356के तहत राष्ट्रपति शासन के अधीन रखने सम्बंधी प्रतिवदन केन्द्र को भजता ह।[1]

इस प्रकार सविधान राज्यपाल को निर्णय लेने का अधिकार सौपता ह जोकि राज्यपाल को स्वतन्त्र रूप से केन्द्र सरकार के नियत्रण मे अधिकार प्रदान कर देता हे।

उपरोक्त चारो व्यवस्थाओ मे से अधिकतर अवसरो पर पहली आर चौथी व्यवस्था का हा इस्तेमाल एसे राजनीतिक निर्णयो के हल के लिये किया गया ह जो कि लोकतत्रीय सिद्धान्ता क विपरीत हे। निष्कर्षत भारतीय सविधान के उपरोक्त प्रावधाना स राज्यपाल को मुख्यमत्री की नियुक्ति आर बर्खास्तगी करने की व्यापक शक्तियॉ प्राप्त हो जाती ह। हॉलाकि सविधान निर्माताओ का यह मतव्य कदापि नही था साथ ही यह कायवाही ससदीय व्यवस्था के स्वीकृत मानको के भी प्रतिकूल है।

1967 के चुनावो के बाद से कई राज्यो मे ऐसी स्थितियॉ उत्पन्न हुयी, जबकि मुख्यमत्रियो क सबध म राज्यपालो ने स्वय निर्णय लिये। उदाहरण के लिये श्री धर्मवीर द्वारा अजय मुखर्जी को हटाया जाना तथा राव वीरेन्द्र सिह को (हरियाणा म) हटाया जाना ऐसे ही उदाहरण ह। राव वीरेन्द्र सिह के मामले मे सत्ता मे बने रहने के लिये इस प्रकार की राजनीतिक धॉधली की गयी कि यदि राज्यपाल अपनी सतुष्टि को लागू करके सरकार को ना हटा देते तो राज्यपाल का होना ही बेमानी हो जाता क्योकि राज्य मे जिस प्रकार राजनीतिक भ्रष्टाचार व्याप्त हा गया था उस स्थिति मे राव वीरेन्द सिह का पद पर बने रहना राज्य की सुरक्षा के लिये खतरनाक था।[2] वास्तव मे राजनीतिक भ्रष्टाचार के खिलाफ उठाया गया यह बहुत ही उचित कदम था, क्योकि राज्य विधान सभा जो स्वय मुख्यमत्री का बधक बन गया था अर्थात ऐसी स्थित मे था जबकि वो राज्य की स्थितियो का सही मूल्याकन करने की स्थिति मे नही था। राज्य म सवधानिक धोखाधडी जो कि राज्य के भ्रष्ट राजनीतिज्ञो द्वारा चलायी जा रही थी, जोकी

1 डा एच0 एम0 जन', चजिग पटन ऑफ सेन्टर स्टेट रिलेशन्स इन इण्डिया, एडिटड–बिद्युत चक्रवती, सेजमण्ट बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृष्ठ–39

2 तत्कालीन केन्द्रीय गृहमत्री श्री यशवन्त राव चव्हाण ने दलबदलुओ को 'आया राम, गया राम', की सज्ञा दी राज्य मे विधायको की कीमते क्रमश 20,000 ओर 40,000 रुपये लगायी जा रही थी, दलबदल ओर राज्यो की राजनीति', 'सुभाष सी0 कश्यप' पृष्ठ–129 प्रकाशित–मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ। साथ ही राज्यपाल की रिपोर्ट के लिये देखे–'दि ट्रिब्यून, नवम्बर 22 1967 पृष्ठ–1

सत्ता म बन रहने के लिय घृणित राजनतिक खेल खेल रहे थ, एसी स्थिति म राज्यपाल क सिवाय दूसरा कार होना ना राज्य की जनता को ऐसी स्थिति स छुटकारा दिलाता। वास्तव म राजा सविधान का सरक्षक होता ह। इस सिद्धान्त को यद्यपि ब्रिटेन मे तो अस्वीकृत कर दिया गया लकिन हरियाणा की घटनाये जिससे राव वीरेन्द्र सिह की सरकार गिरी थी, यह साबित करता ह कि वास्तव मे राजा सविधान का सरक्षक होता है। यद्यपि हरियाणा व पश्चिम बगाल क उदाहरण मे यह स्पष्ट है कि राज्यपाल का निर्णय गभीर आलोचना का विषय नही है लेकिन कुछ एसी भी परिस्थितियाँ होती हे जबकि राज्यपालो ने केन्द्र के इशारे पर बहुमत प्राप्त मत्रिमण्डलो की बर्खास्तगी की ह अथवा राज्य म मत्रिमण्डल के पतन के बाद वैकल्पिक सरकार के गठन का कोई प्रयास नही किया जबकि उसने बहुमत के समर्थन का दावा पेश किया था।

ऐसा ही मामला कश्मीर का ह जब कि 12 सदस्यो वाली सत्तारूढ नेशनल काग्रेस दल के श्री जीएम शाह के नेतृत्व मे अपने दल से अलग होकर एक निर्दलीय सदस्य के साथ राज्यपाल को यह सूचित किया कि वे फारुख अब्दुल्ला के नेतृत्व वाली सरकार को अपना समर्थन नही दे रहे है। 26 सदस्यो वाली काग्रेस पार्टी ने श्री शाह को समर्थन देने की सूचना राज्यपाल को दी। इस सूचना के बाद राज्यपाल न मुख्यमत्री को त्यागपत्र देने को कहा क्योकि वे इस बात से सतुष्ट थ कि उन्होन विधान सभा म अपना बहुमत खो दिया ह और अब उन्हे सत्ता मे बने रहने का कोई अधिकार नही ह।

राज्यपाल की कथित सलाह के प्रत्युत्तर मे मुख्यमत्री न विधान सभा की बेठक बुलाने की माग की जिससे विधान सभा की वैठक मे सरकार के बहुमत का निर्णय हो सके।

डॉ अब्दुल्ला ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया कि यदि वे विधान सभा की बेठक म अपना बहुमत सिद्ध करने मे असफल होते है। ऐसी स्थिति मे वैकल्पिक व्यवस्था की जा सकती ह । उन्होन राज्यपाल स इस बात का अनुरोध किया कि यदि वे ऐसा नही करते तो उन्हे विधान सभा भग कर जनता के सम्मुख जाने का अवसर दिया जाना चाहिये।

राज्यपाल ने उनकी इस राय पर कोई ध्यान नही दिया साथ ही मुख्यमत्री को विधायको क समर्थन खोने की सूचना दी इसके साथ ही मुख्यमत्री को बर्खास्त कर दिया गया।[1]

---

1 न० आर० 'मिश्रा' द ऑफिस आफ द गवर्नर, ए क्रिटिकल अनालिसिस, नई दिल्ली, स्टरलिग पब्लिशर्स 19[illegible] पृष्ठ–301

इसम कोई शक नही था कि राज्यपाल का सतुष्टि जीएम शाह के नतृत्व वाल गठबन्धन (46) को 76 सदस्यीय विधान सभा मे पूर्ण बहुमत प्राप्त था, लेकिन सवैधानिक व्यवस्था के अर्न्तगत तथा नियमा के अनुसार मुख्यमत्री को विधान सभा के अदर बहुमत सिद्ध करने की सिफारिश मानना उचित होता। इस सवध म सरकारिया आयोग का भी विचार ह कि राज्यपाल को विधान सभा से बाहर अपने स्वय के कधा पर वहुमत समर्थन क निधारण सवधा मामले का जोखिम नही लेना चाहिये। उसक लिये विवेकपूर्ण प्रक्रिया तो यह होगी जिसम वह सदन मे विरोधी दावा का परीक्षण करवाय।

राज्यपाल द्वारा लिये गये उपर्युक्त निर्णय की तीन आधारा पर आलोचना की जा सकती ह—

1 राज्यपाल की यह कार्यवाही कि दो सत्ता से एक को हटाकर दूसर को नियुक्त कर दे तथा राज्यपाल सरकार बनाने अथवा ना बनान का निणय अपने हाथ म ले ल, सविधान की आत्मा के विरुद्ध था।

2- जीएम शाह को मुख्यमत्री बनाकर विधान सभा म बहुमत सिद्ध करने के लिय एक माह का समय दिया जाना स्पष्ट रूप से एकतरफा तथा भेदभावपूण कायवाही थी, जबकि इससे पहले, मुख्यमत्री श्री फारुख की विधान सभा म तुरन्त बहुमत सिद्ध करने की न्यायोचित माग को नही स्वीकारा गया था, निश्चय ही सविधानातिरेक कार्यवाही थी।

3- राज्यपाल ने राजनीतिज्ञो को अपने राजनीतिक लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिय खरीदफरोख्त की राजनीति मे सलग्न किया, जिससे दलबदल को बढावा मिला।

श्री अब्दुल्ला की विधानसभा भग कर नया चुनाव कराने की बात राज्यपाल द्वारा ना माना जाना निश्चित रूप से न्यायोचित नही था, क्योकि श्री अब्दुल्ला राज्य म लोगो द्वारा बहुमत व्यक्त करने के कारण ही सत्ता मे थे, जबकि वे सफलतापूर्वक अपन दल का बहुमत आम चुनावो मे सिद्ध कर चुके थे। ऐसी स्थिति म सिवाय जनता के किसी को यह अधिकार नही मिल सकता कि बहुमत प्राप्त नेता को सत्ता से पृथक किया जाय। यदि विधान सभा मे नशनल काफ्रेस के सदस्य के रूप मे चने गये विधायक बाद म अपन मूल दल मे अपने को अलग कर ले तो ऐसा लोगो क विश्वास के साथ

विश्वासघात होगा। ऐसी स्थिति मे मुख्यमत्री का यह अधिकार है कि वह यह माग करे कि वह सत्ता म रहे या नही तथा जनता के समक्ष जाये।[1]

यहा वह प्रश्न विचारणीय प्रश्न है कि एसे लोग जिन्हे जनता ने किसी दल विशेष के कारण चुना है आर तत्पश्चात् उस दल को उनके द्वारा त्याग दिया जाता है क्या उनको नैतिक या राजनीतिक रूप से यह अधिकार है कि वे मुख्यमत्री के भाग्य का फैसला करे जबकि उन्होने दोनो से धोखा किया है। यदि मुख्यमत्री अपने कुछ साथियो द्वारा धोखा दिये जाने के कारण विधान सभा भग करने की सलाह देता है अत यह राय निश्चित ही अस्वीकार नही की जानी चाहिए। यहा यह ध्यान देने योग्य बात है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर जबकि मुख्यमत्री सदन मे बहुमत प्राप्त दल का नेता ना चुना जाता वरन् विभिन्न दलो के गटबन्धन से नेता चुना जाता तो यह एक विचारणीय प्रश्न होता। लेकिन उपरोक्त मामले म चूँकि अब्दुल्ला विधान सभा म बहुमत प्राप्त दल के नेता थे अत यह उचित होगा कि उन्हे पुन बहुमत प्राप्त करने के लिये जनता के समक्ष जाने का मौका दिया जाता। सक्षेप म राज्यपाल का यह निर्णय कि मुख्यमत्री द्वारा सुझायी गयी व्यवस्थाओ को अनुचित माना जाये उचित नही था। इससे स्पष्ट है कि उन्होने सवैधानिक चरित्र की अनदेखी की क्योकि जम्मू कश्मीर राज्यपाल की कथित कार्यवाही जो की केन्द्र के इशारे पर की गयी थी उसे केवल केन्द्र का एजेण्ट ही नही बनाता वरन् उसकी स्थिति केन्द्र के सेवक की भाति दिखायी दी जिसने केन्द्र के इशारे पर राजनैतिक पक्षपात का अस्त्र अपनाया।

आन्ध्र प्रदेश म अगस्त 1984 मे, राज्यपाल की पुन विवादास्पद भूमिका उभर कर सामने आयी, जबकि राज्यपाल ने श्री एनटी रामाराव सरकार को बर्खास्त कर उसके स्थान पर एन भास्कर राव के नेतृत्व वाले मत्रिमण्डल का गठन कर दिया गया जबकि तेलगुदेशम मे एक छोटे से विवाद के कारण दरार उत्पन्न हो गयी थी, जबकि पार्टी के नेता श्री एन भास्कर राव तथा तीन अन्य के इस्तीफे मे स्पष्ट हुआ था। लेकिन इसके बाद भी मुख्यमत्री श्री रामाराव के बहुमत खोने का कोई सकेत ही था। जब राज्यपाल द्वारा उन्हे बर्खास्त करने सबधी पत्र प्रेषित

1 ज() आर() सिवाच, भारत की राजनीतिक व्यवस्था, प्रकाशित हरियाणा साहित्य अकादमी, चाण्डीगढ पृष्ठ–275

किया गया था, तब भी उन्होने 295 सदस्यीय सदन मे 168 सदस्या के समर्थन का दावा पेश किया था।

यहा यह महत्वपूर्ण प्रश्न है कि राज्यपाल इस निष्कर्ष पर किस प्रकार पहुँचे कि रामाराव ने बहुमत का समर्थन प्राप्त खो दिया है, जबकि राज्यपाल के पास ऐसी कोई सूचना नही थी, सिवा इसके कि असतुष्ट दल के नेता ने उनके समक्ष बहुमत के समर्थन का दावा किया था। भास्कर राव ने 91 सदस्यो के समर्थन का दावा किया था, जबकि काग्रेस के 58 सदस्यो ने बाहर से समर्थन का आश्वासन दिया था।

राज्यपाल ने असतुष्टो के कथित दावे के जाचने के लिए कोई कदम नही उठाया था, जसाकि पूर्व राज्यपाल श्री एलपी सिह का विचार था कि जम्मू व कश्मीर मे राज्यपाल के कार्यवाही करने के लिये कुछ आधार तो बनता था जबकि इस बात की पुष्टि हो गयी थी कि विधान सभा मे श्री शाह को सदस्यो का समर्थन प्राप्त था लेकिन आन्ध्र प्रदेश के मामले मे राज्यपाल ने बिना रामाराव को अपना बहुमत सिद्ध करने का मोका दिये बिना ही जघन्य निर्णय ले लिया था। समस्त विपक्ष ने राज्यपाल की कार्यवाही की आलोचना की।

श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने राज्यपाल के कृत्य को लोकतन्त्र की हत्या की सज्ञा दी, तो श्री एचएन बहुगुणा का विचार था कि राज्यपाल ने अपने पद का सत्तादल के लिये अनुचित प्रयोग किया हे।[1]

सम्पूर्ण विपक्ष ने 27 अगस्त को एक प्रस्ताव रखा जो राज्यपाल को निलम्बित करने के लिये था। जिसमे बिना बहुमत का जाच किये राज्यपाल द्वारा बर्खास्तगी की कार्यवाही की आलोचना की गयी थी। साथ ही राज्यपाल को तुरन्त हटाये जाने की भी माग की गयी थी। विपक्षी दलो ने एक प्रस्ताव भी पास किया, जिसमे रामाराव को हटाये जाने की कार्यवाही की निर्लज्ज, गर कानूनी कार्यवाही बताया। राज्यपाल की कार्या की निम्न आधारो पर विचार करने से उसके ओचित्य व अनोचित्य पर प्रकाश पडता हे—

1- 15 अगस्त को श्री एनटी रामाराव की अध्यक्षता म मत्रिपरिषद की एक आपात बठक बुलायी गयी जिसमे राज्यपाल से यह सस्तुति की गयी थी कि वे 18 अगस्त का विधान सभा की बठक बुलाये जिससे राज्य विधान सभा मे अपना बहुमत सिद्ध कर

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया अगस्त 27 1984 (दिल्ली)।

मक राज्यपाल ने 103 तेलगूदेशम विधायको तथा कुछ गर कांग्रेसी विधायकों को जो की 18 घण्टे तक अपना विश्वास जाहिर करने के लिये राज्यपाल का इन्तजार कर रहे थे जिन्हान श्री रामाराव म विश्वास व्यक्त किया था, उन्होने राज्यपाल का इस बात से सचेत किया था कि जिन 91 विधायको को सूचा भास्कर राव द्वारा राज्यपाल के सम्मुख प्रस्तुत का गयी था, उनम से वहुत से विधायको के हस्ताक्षर जाली थे। एसी स्थिति मे राज्यपाल किस प्रकार इस नतीजे पर पहुँचे कि श्री भास्कर राव को विधायको का समर्थन प्राप्त था तथा यह भी सदेहास्पद था कि इस प्रकार का निर्णय करन स पूर्ण विधान सभा की बेठक क्या नही वुलायी गयी? वास्तव मे राज्यपाल की यह वहुत दृष्टतापूण कार्यवाही थी, जबकि मुख्यमत्री सदन म बहुमत सिद्ध करने की इच्छा रखता हो और उसे ऐसा करने से केवल इस आधार पर वचित होना पडे कि उसने बहुमत का समर्थन खो दिया है, एक अनुचित बात थी।

यह बात सही नही है कि ऐसा निर्णय करते समय राज्यपाल रामलाल वास्तविक विकल्प से अनभिज्ञ थे अथवा उन स्थितियो से जो वहा उपस्थित थी उसम न दूसरी कार्यवाही कर ही नही सकते थे।

इस सबध म 20 अगस्त को तत्कालीन गृहमत्री श्री पी वी नरसिंह राव लोक सभा म राज्यपाल की कथित कार्यवाही क वारे मे जो बयान दिया था वो सत्य के काफी नजदीक था। क्याकि उन्होने इस मुद्दे पर बहस के दोरान कहा कि राज्यपाल को सविधान से स्वविवेक का अधिकार मिला हुआ है। अर्थात् उसका दुरुपयोग और उल्लघन किया जा सकता है। तत्कालीन प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ने इस पर जोर दिया था कि रामाराव को बर्खास्त कर भास्कर राव को मुख्यमत्री बनाया जाना पूर्णत राज्यपाल का अपना निर्णय था। उन्होन विपक्षी दलो क इस आरोप का खण्डन किया था कि इस कार्यवाही म उनके दल या सरकार का कोई हाथ था।

इसम कोई शक नही हे कि राज्यपाल रामलाल ने भारतीय सविधान के अन्तर्गत राज्यपालो को एक नया अधिकार प्रदान किया, जिसके अन्तर्गत मुख्यमत्री को नियुक्त करना या हटाया जाना सम्मलित है। इस प्रकार के विवाद पहले भी उठाये गये थे, जबकि

राज्यपालो ने इस प्रकार की कार्यवाही का थी। लेकिन आन्ध्र प्रदेश का मामला पूर्णत भिन्न था क्योकि जहा तक सत्ताधारी मुख्यमंत्री का प्रश्न था, इसमे कोई शक नही था कि उन्हे विधान सभा मे बहुमत का समर्थन प्राप्त था। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि राजनैतिक व्यवस्था म एसी स्थिति को स्वीकार करना बहुत मुश्किल है। अतत राज्यपाल श्री रामलाल को अपने कृत्य की घोर आलोचना के कारण त्याग पत्र देना पडा था। इस प्रकार की कार्यवाही के दोहराव से बचने क लिए यह आवश्यक है कि मत्रिमण्डल के बहुमत का निर्णय सदन म ही किया जाये ना कि राज्यपाल के विवेक क आधार पर जसा कि विभिन्न समीतियो ने भी समय-समय पर सिफारिश की है कि कोई मुख्यमत्री तभी हटाया जाये जबकि विधान सभा म उसके विरुद्ध मत प्राप्त हो जाये। साथ ही कोई अन्य व्यक्ति तब तक मुख्यमत्री ना बनाया जाये जब तककि विधान सभा मे बहुमत का समर्थन ना प्राप्त कर ले। यहा यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मुख्यमत्री की नियुक्ति इस आधार पर होनी चाहिये कि उसे विधान सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त है ना कि राज्यपाल का काल्पनिक सोच के आधार पर। श्री रामलाल का श्री रामराव से असतुष्ट होना सवैधानिक कमजोरी को पूर्णरूप से स्पष्ट करता है तथा स्पष्ट रूप से यह उजागर करता है कि सवैधानिक व्यवस्था ओर परम्पराय राजनतिक व्यवस्था के घृणित खेल के आगे कुछ भी नहा कर सकती है। जब किसी समाज म राजनेतिक व्यवस्था बहुत नीचे स्तर तक आ गयी हो, ऐसी स्थिति म सवधानिक प्राविधाना का सहारा लेकर स्वार्थी तत्व स्थान पा लेते है।

यहा यह बात निश्चित तोर पर कही जा सक्ती है कि यद्यपि कुछ मामलों मे राज्यपालो के निर्णय की आलोचना की गयी है, वो विवाद के मात्र एक पहलू को ही उजागर करना है। क्योकि वास्तव म राज्य म राज्यपाल का पद सघीय व्यवस्था म बहुत महत्वपूर्ण होता है। सविधान सभा म भी यद्यपि इस प्रकार के उसके पद के दुरुपयोग किये जाने की आशका व्यक्त की गयी थी, तथापि अधिकतर सदस्या ने राज्यपाल के पद को केन्द्र राज्य सबधो के मध्य एक 'कडी'' के रूप म देखा था।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का विचार है कि 'अखिल भारतीय एकता के हित म, तथा केन्द्राभिमुख प्रवृत्तियो को प्रोत्साहित करने के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि प्रातो के ऊपर भारत सरकार की सत्ता अक्षुण बनाये रखा जाये।

राज्यपालों द्वारा विभिन्न राज्यों में समय-समय पर लिये गये निर्णय से भी यह स्पष्ट होता है कि अनेक राज्यों में बहुदलीय मंत्रिमण्डलों की स्थापना के साथ राजनीतिक मानकों और व्यवहारों में विकृति, अंतःदलीय प्रतिद्वन्द्विता, राजनीतिक दलबदल और राजनीतिक दलों का विखण्डन उन विवादों की जड़ है, जो राज्यपाल की भूमिका के सवाल से जुड़ गये हैं। वास्तव में भारत जैसे देश में जहाँ प्रधानमंत्री सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है और चूँकि राज्यपाल भी यद्यपि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है तथापि वो प्रधानमंत्री के प्रति ही अनुग्रहीत होता है अतः राज्यपाल मात्र केन्द्र के निर्देशों का पालन भर करता है। अतः राज्यपाल की स्थिति की वास्तविक समीक्षा केन्द्र का शक्तियों को ध्यान में रखकर ही की जा सकती है और चूंकि सभी राजनीतिक दलों ने इस पद का प्रयोग अपने हित के लिये किया है अतः राजनीतिक इच्छा शक्ति के अभाव में राज्यपाल केन्द्र की इच्छाओं की पूर्ति करने का साधन मात्र प्रतीत होता है।

## राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल की भूमिका

अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत हस्तक्षेप के बाद राज्यपाल की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। यद्यपि वह राष्ट्रपति के निर्देश के अनुसार कार्य करने को बाध्य है, फिर भी सम्पूर्ण प्रशासनिक तंत्र में उसका महत्वपूर्ण स्थान हो जाता है। राज्यपाल धर्मवीर ने यह विचार व्यक्त किया था कि अनुच्छेद 356 में हस्तक्षेप के बाद राज्यपाल केन्द्रीय मंत्रालयों के अधीन कार्य नहीं करता है। दिन प्रति-दिन के प्रशासन में राज्यपाल को अपने विवेक से कार्य करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। यदि सभी महत्वपूर्ण प्रशासनिक कार्यों के लिये केन्द्रीय निर्देश या सहमति प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया जाये तो इससे प्रशासन में अत्यधिक विलम्ब होगा और इससे राज्यपाल की स्थिति संवैधानिक रूप से हास्यास्पद भी हो सकती है। धर्मवीर का यह वक्तव्य उपर्युक्त विश्लेषण की पुष्टि करता है कि राज्यपाल की स्थिति परिवर्तित परिवेश में महत्वपूर्ण हो जाती है।[1]

राज्यपाल यदि कांग्रेस दल से जुड़ा था, तब समस्या विशेष गंभीर नहीं रहती थी। लेकिन जब राज्यपाल ऐसा व्यक्ति होता है जो राजनीतिक व्यक्ति था और अपने सक्रिय राजनीतिक जीवन में कांग्रेस दल का नहीं था और केन्द्र में सत्तारूढ़ कांग्रेस ने अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत हस्तक्षेप किया, उस समय प्रशासन के संचालन के लिये उसे विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता महसूस

1 श्री राम महेश्वरी, पूर्वाधृत, पृष्ठ 118

हाता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी सभवत ऐसे व्यक्तियो को परामर्श दाता नियुक्त किया जाता है जिन पर केन्द्र सरकार को भरोसा रहता है।

## राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल की सहायतार्थ सलाहकारो की नियुक्ति

भारतवर्ष म प्रशासनिक गतिविधियो के सचालन मे एक केन्द्रिय तत्व सत्ता प्राप्त करना रहा ह आर यह सत्ता चुनावो के माध्यम से ही प्राप्त हो सकता ह। इसलिय राज्य के प्रशासन का राज्य मे भावी चुनाव के दृष्टिकोण से अपने अनुरूप बनाने का भी प्रयास अनुच्छेद 356 म हस्तक्षेप के बाद बराबर किया गया है। इस प्रयास म परामर्शदाता महत्वपूर्ण योगदान कर सकते ह। प्रशासन क वरिष्ठ अधिकारियो के स्थानान्तरण के माध्यम स प्रशासनिक तत्र को केन्द्रीय सत्तारूढ दल के अनुरूप बनाने की चेष्टा की जा सकती ह। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया मे परामर्शदाता महत्वपूर्ण कार्य कर सकते ह। इसलिये भी परामर्शदाता का नियुक्ति महत्वपूर्ण है।

परामर्शदाता की नियुक्ति गृहमत्रालय द्वारा की जाती है क्योकि गृहमत्रालय के अन्तर्गत हो ऐसे राज्या क समस्त कार्यो का सचालन किया जाता है, जिनमे अनुच्छेद 356 क अन्तर्गत हस्तक्षेप किया गया ह। यह नियुक्ति अनिवार्यत राष्ट्रपति के लिये की जाती ह। वास्तव मे इन नियुक्तियो के पीछे प्रधानमत्री की सहमति होती है। प्रधानमत्री इन परामर्शदाताआ को अनौपचारिक निदेश भी देते रह ह।[1] परामर्शदाता जिन राज्यो म नियुक्त किये जाते ह उन राज्यो क प्रशासन का प्राय पूर्व अनुभव भी रहता है।[2] ऐसे व्यक्ति प्राय परामर्शदाता नही नियुक्त किय जाते कि उस राज्य के प्रशासनिक स्थिति का उन्हे अनुभव ना हो जहाँ पर उनका नियुक्ति की जा रही ह। किस राज्य मे कितने परामर्शदाता नियुक्त होगे इसके लिये कोई निश्चित सिद्धान्त नही है फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि राज्य विशेष की भोगोलिक स्थिति क्षेत्रफल तथा जनसख्या आर प्रशासनिक समस्याये आदि कुछ ऐसे तत्व है जो परामर्शदाताआ की सख्या को निर्धारित कर सकता ह। इतना अवश्य कह सकते है कि किसी भी राज्य म आज तक अधिक स अधिक पाँच परामर्श दाता ही नियुक्त किये गये है।[3]

राज्यपाल और परामर्शदाताओ के पारस्परिक सबध बहुत सहज नही रहे ह। यह सबध प्राय व्यक्तिगत सबधो से प्रभावित हुआ है। प्राय इस प्रकार के सबध मधुर

1 महेश्वरी पूर्वाधृत इसके अतिरिक्त देखिये—नवभारत टाइम्स (लखनऊ) 11 मई 1993

2 महेश्वरी पूर्वाधृत

3 एस आर महेश्वरी पूर्वाधृत पृष्ठ 125 126

नहा रह न। तत्कालीन गृहमंत्री वाईबी चह्वाण ने इस संबंध में उत्तर प्रदेश, बिहार आदि राज्यों के जिसमें अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत हस्तक्षेप किया गया था, राज्यपालों को परिपत्र भेजा था जिसमें परामर्शदाताओं की स्थिति स्पष्ट की गयी थी, और यह बताया गया कि उनकी स्थिति लगभग मंत्रियों के समान ही होगी।[1]

राज्यपाल और परामर्शदाताओं के बीच मधुर संबंध ना होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि प्रायः राज्यपाल ऐसे व्यक्ति होते हैं जो पूर्व में सक्रिय राजनेता रह चुके होते हैं। ऐसे राज्यपालों का मंत्रिमण्डल से सहयोगात्मक संबंध इसलिये भी हो जाता है कि मंत्रिमण्डल भी सक्रिय राजनेताओं द्वारा गठित किया जाता है। राज्यपाल और मंत्रिमण्डल दोनों एक ही वर्ग के होते हैं और इस तरह उनमें पारस्परिक सम्मान की धारणा विकसित हो जाती है। परामर्शदाता भूतपूर्व प्रशासनिक अधिकारी होता है, जिसके प्रति भारतीय राजनीतिक नेता सहज सम्मान की भावना विकसित नहीं कर पाता और इस तरह उनके संबंध मधुर नहीं हो पाते। प्रशासनिक अधिकारी के मन में कहीं यह ग्रंथि होती होगी कि उसे प्रशासन का अधिक अच्छा और गहरा अनुभव है और वह केन्द्र के निदेश पर कार्यकर रहा है। राज्यपाल ने उसकी नियुक्ति नहीं की है। दूसरी ओर राज्यपाल का यह दृष्टिकोण हो सकता है कि उसे राजनीतिक और सामाजिक अनुभव अधिक है। इसलिये उसके निर्णय या उसकी धारणा अधिक है। इस प्रकार की भी चर्चायें प्रकाश में आयी हैं कि परामर्शदाता से प्रशासनिक मतभेद के कारण भी राज्यपाल ने त्यागपत्र दे दिया है।[2] ऐसा मतभेद स्वभाविक है यदि राज्यपाल किसी ऐसे राजनीतिक दल से संबंधित रहा है जो केन्द्र में सत्तारूढ नहीं है तो ऐसी स्थिति में राज्यपाल और परामर्शदाताओं के उद्देश्य में अन्तर स्वभाविक है। केन्द्र सरकार परामर्शदाताओं के माध्यम से राज्य विशेष में अपने राजनीतिक उद्देश्य को प्राप्त करने की चेष्टा कर सकती है। उद्देश्य का यह अन्तर भी मतभेद का कारण है।

---

1 बिहार रूल्स ऑफ बिजनस (968)

2 मध्य प्रदेश के राज्यपाल कुँवर महमूद अली खान तथा हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल वीरेन्द्र वर्मा से परामर्शदाता से मतभेद के बारे में समाचार प्रकाशित हुये हैं। कुँवर महमूद अली खान के संबंध में यह खबर प्रकाशित हुयी थी कि उन्होंने मतभेद होने के कारण त्यागपत्र की धमकी दी थी तथा बीबीसी (लंदन) रेडियो रिपोर्ट दिनांक 26-12-92 7.40 बजे सायं तथा स्वतंत्र भारत दिनांक 25-1-93

राज्यपाल यदि वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी रहा ह तो एसी स्थिति म परामर्शदाता का महत्व कम हो जाता ह। दोना एक ही श्रेणी, प्रशासनिक श्रेणी के रहते ह। परिणामस्वरूप परामर्शदाता आर राज्यपाल मे वरिष्ठ आर कनिष्ठ की धारणा विकसित न सकना ह। इस स्थिति म परामर्शदाता अपनी ओर से नीति निर्धारण का प्रारम्भ नही करता वरन् वह आज्ञापालन म ज्यादा रुचि रख सकता ह। ऐसी स्थिति मे परामर्शदाता का महत्व गोड हा जाता ह।

परामशदाताओ को विभिन्न विभागो का दायित्व राज्यपाल ही सापता ह। लेकिन एसा केन्द्र के अनापचारिक निर्देश पर ही होता हे, उनके दायित्वो मे परिवर्तन भी केन्द्र से परामर्श क उपरात ही प्राय होता हे। मध्यप्रदेश मे राज्यपाल कुँवर महमूद अली खा ओर उनके परामर्शदाता ब्रह्मप्रकाश क बारे म समाचार पत्रो मे जो विवरण प्रकाशित हुये थे उनसे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता ह कि केन्द्रीय शासन राज्यपाल के पद की प्रतिष्ठा को कम ता नहीं करना चाहती ह, लकिन वह राज्यपाल के कार्यो से भी सतुष्ट नही थी।[1] इस घटना म यह निष्कर्ष निकालना स्वभाविक ह कि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत हस्तक्षेप के उपरात राज्यपाल अपने विवेक से निर्णय नही ल सकता इस सबध म एक अन्य तथ्य भी उल्लेखनीय है, सविधान के अन्तर्गत भाग-2 राज्य म प्रारम्भ से ही अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत जब हस्तक्षेप किया गया तब उस हस्तक्षेप के साथ राष्ट्रपति का जो आदेश निर्गत किया गया उस आदेश मे यह स्पष्ट कर दिया गया था कि राज प्रमख को परामर्शदाताओ के परामर्श के अनुसार ही कार्य करना पडेगा।[2] इसका कारण केवल एक ह, राज्यप्रमुख भूतपूर्व देशी नरेश थे जो सबधित देशी रियासता के सगठन म सबसे बडी रियासत क राजा या नवाब इत्यादि थे।[3] उनकी नियुक्ति केन्द्र न अपन विवेक से नहीं किया था, वरन वे स्वत उस पद के अधिकारी मान लिये गये थे आर इस तरह से वे ऐसे व्यक्ति थे जिन पर केन्द्र राजनीतिक दृष्टिकोण से भरोसा कर सकता था आर जब ऐसे राज्यो म अनुच्छेद 356 क अन्तर्गत हस्तक्षेप किया गया तो इसका एक आशय यह भी लगाया जा सकता ह कि इन राज्या म लाकतात्रिक प्रक्रिया कमजोर थी। ऐसी स्थित मे शासन का दायित्व सामन्तवादी तत्व (भूतपूर्व देशी नरेश) के हाथ मे नही छोडा जा सकता था ओर इस लिय केन्द्र ने यह स्पष्ट

1 वही। आर दख स्टटसमेन (दिल्ली) 28 4-93

2 एम आर महश्वरी पृष्ठ 123, पूर्वाधृत

3 पप्सू व त्रावन कोर कोचीन के राजप्रमुख वहा के भूतपूर्व नरेश हा थे अत केन्द्र सरकार नहीं चाहता था कि व राष्ट्रपति शासन के दौरान पुन कारगर शासक बन जाये अत इन दोनो राज्या म राष्ट्रपति शासन के तुरत बाद ही सलाहकारो की नियुक्ति कर दी गयी।

व्यवस्था की थी कि राजप्रमुखा को अनुच्छेद 356 के अन्तगत हस्तक्षेप के बाद राज्य पर परामर्शदाताओं के अनसार ही कार्य करना होगा।

राज्यपालों के संबध मे स्थिति भिन्न होती है। उनकी नियुक्ति केन्द्र स्वय करता है अर्थात राज्यपाल ऐसे व्यक्ति है जो तत्कालिन केन्द्रीय सरकार के राजनैतिक विश्वास पात्र है। इसलिये जब ऐसे राज्यो म इस अनुच्छद के अन्तर्गत हस्तक्षेप किया गया तो स्पष्ट निर्देश नहीं किया गया कि राज्यपाल परामर्शदाताओ के परामर्श के अनुसार ही काम करेगा।[1] दूसरे शब्दो म राज्यपालो की कार्यपद्धति को सलाहकारो की व्यवस्था से अलग हटकर नही देखा जा सकता।

राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल जो भूमिका अदा करता है वह निश्चित तौर पर प्रशासन के लम्बे अनुभव तथा उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है

1 पंजाब म 1951 म उड़ीसा म 1961 म राष्ट्रपति शासन के दौरान किसी राज्यपाल की नियुक्ति नहीं की गयी था। निश्चित तौर पर यदि राज्यपाल गैर व्यवसायिक हो तो सलाहकारो का पद आधिपत्यपूर्ण बन जाता है। श्री एच सी शरान जो कि आन्ध्र प्रदेश म श्री खान्दुभाई देसाई व सलाहकार थे, तथा गुजरात म 1974 मे भी थे, बहुत ही अनुभव प्राप्त व्यक्ति थे। आन्ध्र प्रदेश म मशीन प्रत्यक्षत कम महत्वपूर्ण थे। गुजरात म राज्यपाल के अधिक चुस्त होने के कारण शायद हो कभी सलाहकार की आवश्यकता प्रतीत होती थी।

# अध्याय 7

## राष्ट्रपति शासन :
## राजनीतिक दलों का दृष्टिकोण

# राष्ट्रपति शासन : राजनीतिक दलों का दृष्टिकोण

प्रस्तुत अध्याय मे हम विभिन्न राजनैतिक दला द्वारा समय-समय पर व्यक्त किये गये विचारो का विवेचन करगे जो कि उन्होने राज्यो मे समय-समय इस शक्ति के प्रयोग किये जाने के समय पर व्यक्त किये है। पिछले अध्याय में जैसा राज्यपालो की भूमिका विचार किया गया ह, जो कि इस पूरी कार्यवाही किये जाने के दौरान महत्वपूर्ण व्यक्ति होता हे, उसकी भूमिका के बारे व्यक्त की गयी आशकाओ का भी वर्णन किया गया हे, जो की राजनैतिक दलो ने अपने विचाग म द्वारा व्यक्त किया है।

जिन राजनतिक दलो के विचार हमने लिया हे दो श्रेणिया म विभजन किया है-

1 अखिल भारतीय दल जिसमे प्रमुख दल हैं।

(A) भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस (आई)

(B) जनता दल (पूर्व की जनता पार्टी)

(C) कम्युनिस्ट पार्टी (ममस्त वामपथी दल)

(D) भारतीय जनता पार्टी

2 दूसरा श्रेणी मे कुछ क्षेत्रीय दलो के विचार है–

(A) द्रविड मुनेत्र कषगम (डी.एम.के. तमिलनाडु)

(B) शिरोमणि अकाली दल

(C) फारवर्ड ब्लाक (पश्चिम बगाल की पार्टी)

(D) तेलगुदेशम् (आन्ध्र प्रदेश का क्षेत्रीय दल)

स्वतन्त्रता के बाद अधिकतम वर्षो मे केन्द्र व राज्यो मे काग्रेस ही सत्तारूढ़ रही अत जब भी राज्यो मे उसके भिन्न दल सत्तारूढ हुया तो उसके हमेशा सरकार के अस्तित्व की आशङ्का बनी रही।

प्राय सभी गर काग्रसी दलो ने समय- समय पर इस बात का माँग की है कि अनुच्छेद 356 के प्रावधाना का कम से कम प्रयाग किया जाये यहा तक की कुछ दलो न विशेष कर वामपथी दला ने तो इसे सविधान से हटाये जाने को माँग की है। इसका प्रमुख कारण, यह

रहा है कि इस अनुच्छेद का प्रयोग अधिकतम् (विपक्षी) गैर काग्रसी दलो के विरुद्ध ही किया गया है। विशेषकर साम्यवादियो के विरुद्ध प्रमुखता से किया गया है इस सवर्ग मे 1959 का केरल का उदाहरण देखा जा सकता है जहाँ पर पहली बार विश्व मे किसी साम्यवादी दल का लोकतात्रिक पद्धति मे सत्ता पर कब्जा हुआ था। लेकिन काग्रेस ने साम्यवादियो द्वारा घोषित व चलायी जा रही नीतियो के विरुद्ध एक प्रकार से आन्दोलन सा छेड दिया था जिसने सरकार के विरुद्ध एक व्यापक जनान्दोलन का रूप ले लिया था। परिणामस्वरूप केरल की साम्यवादी सरकार का पतन हो गया था। यही स्थिति अन्य विपक्षी दलो की सरकारो की भी रही है। अत सभी विपक्षी दलो विशेषकर कम्युनिष्टो ने अनुच्छेद 356 की राज्यो मे प्रयोग किये जाने का सदेव विरोध किया है।

लेकिन विरोध के स्वर उस समय बदल गये थे, जब दिसम्बर 1992 को भारतीय जनता पार्टी को चार राज्य सरकारो वी एक साथ बर्खास्त किया गया था। उस समय सभी प्रमुख विपक्षी दलो ने केन्द्र सरकार की कथित कार्यवाहीका स्वागत किया था। न कवल इस पर प्रसन्नता ही जाहिर की थी अपितु बर्खास्तगी की माँग भी सबसे अधिक साम्यवादियो द्वारा ही की गयी थी।[1] यह उनके राजनीतिक द्वेष और अनैतिकता के ही परिचायक है।

इस सन्दर्भ मे भी स्मरणीय है कि 1977 मे जब जनता सरकार केन्द्र मेपहली बार किसी गैर काग्रेसी दल के रूप मे सत्तारूढ़ हुयी थी तब उसने ना काग्रेस शासित राज्य सरकारो को जिन्हे विधान सभा मे पूर्ण बहुमत प्राप्त था को अपदस्थ करने के लिये अनुच्छेद 356 का ही प्रयोग किया था। ज्ञातव्य है कि जनता पार्टी मे जनसघ, लोकदल तेलगुदेशम, काग्रेस एस सभी विपक्षी दल शामिल थे, साथ ही सरकार को सभी वामपथी दलो का भी बाहर से समर्थन प्राप्त था। जनता पार्टी की सरकार द्वारा लोकसभा चुनावो मे बहुमत ना पाने के आधार पर राज्य सरकारो को अपदस्थ किया था और सबके पीछे प्रमुख भूमिका तत्कालिन गृहमत्री चाधरी चरण सिह द्वारा निभायी गयी थी। अक्टूबर 1970 मे जबकि वो उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री थे की सरकार को काग्रेस द्वारा भग कर दिया था। उस समय उन्होने केन्द्र सरकार की कथित दुर्भावना पूर्ण कार्यवाही की तीव्र आलोचना

---

1 कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव हरिकिशन सिहसुरजीत ने इस फैसले पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये कहा कि केन्द्र द्वारा साम्प्रदायिक ताकतो से निपटने के लिये उठाया गया एक ठोस कदम है– नवभारत टाइम्स 16 दिसम्बर, 1992 पृष्ठ (6) (दिल्ली)

का गा इसी प्रकार दिसम्बर 1992 म मध्य प्रदेश, हिमालय प्रदेश आर राजस्थान की सरकारों को भग करने की कार्यवाही की समाजवादी जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर ने आलोचना की थी। लेकिन जब वे स्वय सरकार म थे तो इस प्रश्न पर उनका क्या विचार था ? चन्द्रशेखर ने 30 जनवरी 1989 के राज्यपाल का राय के विरुद्ध एम करुणानिधि की सरकार को कानून व व्यवस्था के बिगडते हालात का वहाना बनाकर भग कर दिया था। यह भी अब छिपा नहा है कि 1992 मे भाजपा अपनी सरकारो को गिराये जाने का विरोध कर रही थी जबकि आज उत्तर प्रदेश के मुलायम सिह यादव के नेतृत्व वाली सपा-बसपा गठबन्धन की बर्खास्तगी की माँग कर रही है।[1]

उसी प्रकार 1991 मे जम्मू कश्मीर को विधान सभा को भी तत्कालिन प्रधानमत्री वीपी सिह ने भाजपा के दवाव मे चलते भग कर दिया था जबकि वहा के प्रभारी भी जार्ज फर्नाडीज इस प्रकार को कार्यवाही के विरुद्ध थे।

इन सब तथ्यो से यही पमाणित होता है कि सत्तारूढ होने पर सभी राजनीतिक दलो ने अनुच्छेद 356 का प्रयोग किया है परन्तु विरोध पक्ष मे होन पर उनके दृष्टिकोण म परिवर्तन हो जाता है।

इस सम्बन्ध म समय-समय पर जो विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा इस अनुच्छेद के सम्बन्ध म विचार रखे गये ह वो इस अध्याय मे दिय गये ह साथ ही इसमे विरोधी दलो द्वारा आयाजित गोष्ठियो सम्मलनो आदि का भी विवरण दिया गया है।

## भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस (आई)

सबसे पहले हम काग्रेस (आई) के विचारो को लेगे क्योकि काग्रेस पार्टी सबसे अधिक लम्बी अवधि तक केन्द्र व राज्यो मे सत्ता मे रही है और इस धारा का प्रयोग भी सबसे अधिक उसी के द्वारा किया गया ह। इस सबध मे काग्रेस का विचार है कि—

यद्यपि राज्यपाल अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन लागू करने हेतु प्रतिवेदन राष्ट्रपति को भेज सकता है लेकिन ऐसी कार्यवाही करने की रिपोर्ट राज्यपाल द्वारा तभी

1 शोध प्रबन्ध पूरा किये जाते समय उत्तर प्रदेश म क्रमश दो सरकारा—मुलायम सिह यादव के नेतृत्व वाली सपा-बासपा गठबन्धन व सुश्री मायावती के नेतृत्व वाला बासपा सरकार (भाजपा समर्थित) का पतन हो चुका है व वर्तमान मे राज्य म राष्ट्रपति शासन लागू है।

भर्जा चाहिये जबकि उसके पास राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश करने के अलावा आर कोई विकल्प शेष नही रह जाये। अर्थात् अनुच्छेद 356 (1) के अधीन यह कार्यवाही अन्तिम उपाय के रूप मे की जानी चाहिये। इस प्रकार राज्यपाल को व्यवहार कुशलता, परिपक्वता आर अनुभव राष्ट्रपति का शासन लागू करने की आकस्मिकता से बचने के लिये बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है क्योकि जनता केप्रतिनिधियो द्वारा चलाये जा रहे प्रजातन्त्र को हमेशा अन्य उपायो से बेहतर समझा जाता है।[1]

दल का विचार है कि वस्तुत यह अनुच्छेद भारत सरकार अधिनियम 1935 की धारा 93 के स्थान पर ही है।[2] इस अनुच्छेद मे राष्ट्रपति द्वारा उद्घोषणा जारी किये जाने का उपबन्ध है, जिसके द्वारा वह राज्य सरकार के सभी कार्यो अथवा किसी कार्य को और राज्यपाल अथवा सरकार के किसी ऐसे निकाय, को जो राज्य विधान मडल से भिन्न हो, म निहित अथवा उसके द्वारा प्रयोग की जाने वाली किसी भी शक्तियो को अपने हाथ म लेगा आर उससे सम्बन्धित कुछ निश्चित कार्य करगा।[3] किन्तु उद्घोषणा जारी करने का प्राधिकार अपने हाथ मे लेने से पहले राष्ट्रपति को इस बात की सन्तुष्टि करनी होगी कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि राज्य की सरकार सविधान के उपबधो के अनुसार नही चलायी जा सकती। राष्ट्रपति की यह सतुष्टि राज्यपाल से रिपोर्ट प्राप्त होने या अन्य प्रकार से भी हो सकती है। इस उपबन्ध से हमारे सविधान मे एक नयी व्यवस्था जुड़ गयी है जो इस दावे से असगत है कि हमारे देश मे सही अर्थो मे सघीय राज्य व्यवस्था है।[4]

दल का विचार है कि यद्यपि इन उपबन्धो को 90 से अधिक बार प्रयोग किया जा चुका है लेकिन यदि अनुच्छेद 356 के अधीन शक्ति के प्रयोग के प्रत्येक मामले की उसके गुण दोषो के आधार पर जाच करे तो निश्चित रूप से यह स्वीकार करना पडता है कि अधिकतर मामला म इस शक्ति का प्रयोग अपेक्षाकृत बड़े लोक और राष्ट्रिय हित म ही किया गया था। जसी कि विपक्षी दलो द्वारा आलोचना की जाती है, कि इस शक्ति का प्रयोग मनमाने ढग से किया जाता है यह शिकायत ठीक नही है, क्योकि सविधान मे यह प्रावधान है कि राज्य विधान

1 स र. रिपोर्ट भाग 2, पृष्ठ 588, 1988 केन्द्र राज्य सबध आयोग,पृष्ठ 588 1988

2 वही – पृष्ठ 587

3 वही – 588

4 पूर्वोधृत स क. रिपोर्ट

माड्ल का एक वर्ष से अधिक समय तक निलम्बित नही रखा जा सकता। यद्यपि ऐसे दृष्टान्त भी मिलते है जो इन आरोपो की ठीक पुष्टि करते है।[1]

इसका एक स्पष्ट उदाहरण जनता पार्टी को सरकार द्वारा 1977 मे की गया कार्यवाही है। उस समय नौ राज्यो मे इस आधार पर अनुच्छेद 356 लागू किया कि उन राज्यो के निर्वाचन वर्ग ने ससदीय निर्वाचन मे जनता पार्टी के पक्ष मे मतदान किया था।[2] राज्यो मे उस समय शासन कर रही काग्रेस सरकार के विरुद्ध जनता ने जनादेश दिया है। सबधित राज्यो की सरकारो ने सघ सरकार के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय मे मुकदमा दायर किया। उच्चतम न्यायालय ने मामले की जॉच की और निर्णय दिया कि उस समय विद्यमान स्थिति पर अनुच्छेद 356 लागू किये जाने का निर्णय उचित था और मुकदमा खारिज कर दिया। इस प्रकार उच्चतम न्यायालय ने भी उपर्युक्त आधार पर नौ राज्यो मे राष्ट्रपति का शासन लागू करने की जनता सरकार की कार्यवाही का समर्थन कर दिया।[3]

1980 मे जब काग्रेस सरकार सत्ता मे आयी तो यही प्रक्रिया दोहराइ गयी। निस्सदेह उस समय इस कार्यवाही के विरुद्ध न्यायालय मे चुनौती नही दी गयी।[4]इस प्रकार ये सभी मामले

1 वही—पृष्ठ—591

2 वही—पृष्ठ—589

3 सव. रिपोट, वही —, पृष्ठ — 590 राजस्थान राज्य बनाम भारत सघ ए आई आर 1361 ए सी 1971

4 1980 मे सबधित राज्य सरकारो द्वारा केन्द्र के प्रमुख कारण था-1977 मे सर्वाच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय जब कि न्यायालय ने राजनीतिक मामलो मे हस्तक्षेप करने मे अपनी अनिच्छा प्रकट की थी। लेकिन वास्तव मे ऐसा माना जाना गलत था क्योकि राजस्थान का निर्णय 42 वे सशोधन अधिनियम 1976 द्वारा अनुच्छेद 356 मे खण्ड (5) के अत स्थापित किये जाने के तथ्य से प्रमाणित था। इस सशोधन मे यह कहा गया था कि राष्ट्रपति का समाधान अतिम व विनिश्चायक है और किसी अधिनियम 1978 द्वारा खण्ड (5) का लोप कर दिया गया था जिससे न्यायिक पुनर्विलोकन पर इस उपबध के रहने पर उच्चतम न्यायालयअपनी राय का पुनरीक्षण कर सकता था यहा यह ध्यान देने योग्य बात है कि काग्रेस पार्टी ने भी अनुच्छेद 356 का राजनीतिक उददेश्यो की पूर्ति हेतु हुए प्रयोग की बात अस्पष्ट रूप से स्वीकार की है लेकिन केन्द्र को इसके लिये स्पष्ट तौर पर दोषी ठहरा कर राज्यपालो को दोषारोपित किया है जबकि वास्तविक तथ्यो की जॉच से यही स्पष्ट होता है कि राज्यपालो ने हमेशा ही केन्द्र के इशारे पर ही निर्णय लिया है।

एक ही श्रेणी म आ गये अर्थात ससद के निर्वाचन का परिणाम जिसम निवाचक वर्ग ने एक विशेष पार्टी के प्रति अपना विश्वास प्रकट किया।[1] इसके अलावा अब तक के राष्ट्रपति शासन लागू करन के कारणो को देखे तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते ह कि कोई भी पार्टी दल बदल के कारण अथवा किसी अन्य कारण से सरकार बनाने की स्थिति म नही थी। तथापि मुख्य कारण दल बदल का परीक्षण से पता चलता कि राष्ट्रपति ने किसी विशेष पार्टी के हित को बढाने के लिय जानबूझ कर हस्तक्षेप नही किया। विरोधी पार्टी की यह शिकायत कि केन्द्र सत्तारूढ दल के हितो को बढ़ाने के लिये इस उपबध का दुरूपयोग कर रहा ह, राजनीतिक से प्ररित ह वास्तविक तथ्यो पर नही। ऐसा हो सकता है कि एक-दो मामलो मे राज्यपाल ने गलत निर्णय लिया हो आर ऐसी स्थिति ना दोहराये जाने का उपाय राज्यपाल की सतकता ह और यह उसकी दूरदर्शिता राजनीतिक आर अनुभव पर निर्भर करेगा।[2] राज्यपाल द्वारा अधिक से अधिक सावधानी बरते जाने पर भी इस बात की अचूक गारण्टी नही दी जा सकती कि वे कभी निर्णय लेने म गलती ही नही करगे।

इस प्रकार काग्रेस पार्टी ने अनुच्छेद 356 के बने रहने की आवश्यकता पर बल दिया।[3] पार्टी का विचार है कि इस मुद्दे पर सविधान सभा म लम्बी बहस हुयी ओर अत म सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया कि (सवधानिक उपबधा म) निर्धारित परिस्थितिया मे राज्य का प्रशासन अपने हाथ मे लेने की शक्ति केन्द्र के पास अवश्य होनी चाहिये। इसका कारण यह है कि राज्य मे अस्थिरता स्थिति उत्पन्न होने पर सबसे पहले वहा कानून आर व्यवस्था समाप्त हो जायेगी और राष्ट्रपति का शासन लागू किये जाने से इस प्रकार की जटिलताओ और विपत्तियो से बचा जा सकेगा। केन्द्र दल- बदल, अस्थिर मत्रालयो ओर व्यापक रूप मे अर्थव्यवस्था का पतन होने पर केन्द्र मूक दर्शक नही बना रह सकता। अत यदि ऐसी कोई परिस्थित विद्यमान ह तो यह ना केवल आवश्यक ह, बल्कि केन्द्र का यह कर्तव्य भी है कि वह सवेधानिक प्रक्रिया के अनुसार राज्य का प्रशासन अपने हाथ म ले ले, वहा स्थिति को पुन सामान्य बनाये तथा लोकतात्रिक

1 पूर्वाधृत,–पृष्ठ–593

2 वही–पृष्ठ–594

3 सरकार रिपोर्ट–भाग II, पृष्ठ–594

मरकार यहा स पहले भी यही क्रिया अपनयी जाती रही ह और इस सिद्धान्त और प्रक्रिया म विचलित होने का कोई कारण नही है। दल बदल विरोधा कानून से इस स्थिति म बहुत अधिक सुधार आया ह।[1]

अनुच्छेद 356 के खण्ड 4 ओर 5 के मम्बन्ध मे यह सुझाव दिया कि सविधान क 44व मशोधन को प्राख्यापित करने से पहले विद्यमान स्थिति कुछ राज्यो के अनुभव को ध्यान म रखते हुऐ पुन लाई जानी चाहिए जिसके परिणाम स्वरूप सावधान मे सशोधन करना पडा। भारतीय राज व्यवस्था म ऐसी स्थिति को सभावना का समाप्त नहीं किया जा सकता आर एसे प्रयोजनो के लिये हर बार सविधान मे सशोधन करना एक अनावश्यक सुविधा होगी, यदि खण्ड 4 मे परिवर्तन किया जाता हे तो कम स कम खण्ड 5 को उसी रूप मे रखा जाना चाहिए जेसा कि वह 44वे सशोधन से पहले था।[2]

## जनता दल

इस सम्बन्ध मे जनता दल का विचार ह कि अनुच्छेद 356 को सविधान म हटा दना चाहिय और यदि ऐसा करना मम्भव ना हो तो उसमे इस प्रकार स सशाधन किया जाना चाहिय कि जिससे इसका दुरूप्रयोग सम्भव ना हो सके और इसका प्रयोग केवल अत्याधिक आवश्यक परिस्थितियो म ही किया जाना चाहिए।[3]

पार्टी का विचार हे कि यदि ऐसा नही किया गया ता दश का सघात्मक व्यवस्था के भग होने की सभावना हे। उनका विचार है कि सविधान लागू हुये चार दशक से अधिक व्यतीत हा चुके है। इन वर्षो मे उसकी कमिया और कमजोरिया सामने आयी ह जो की लोकतात्रिक सधवाद और विकेन्द्रिकरण सहित हमारे सविधान के कुछ आधारभूत

1 सरकार रिपोर्ट पूर्वाधृत सविधान क 52व सशोधन अधिनियम, 1985 का धारा 6 द्वारा 1985 स 10वी अनसूचा जाड़ी गयी जिसम दलबदलकोरोकने हेतु कुछ नियम निश्चित किये गये ह और उसका उल्लघन करने पर सदस्या को उनकी सदस्यता से वचित होना पडता है—भारत का सविधान भारत सरकार' विधि व न्याय मत्रालय 1990

2 38 वा 42वा व 44व सशोधन का विस्तृत वर्णन अध्याय एक म किया गया है। सरकार रिपोर्ट पृष्ठ–595

3 सरकार रिपोर्ट पूर्वोधृत पृष्ठ–617

मूल्यो आर सकल्पनाओं को खण्डित व क्षीण कर सकती है। सुदृढ केन्द्र का प्रसाद केवल सुदृढ राज्यो की ठोस आधारशिला पर ही खड़ा किया जा सकता है।[1]

**इस सम्बन्ध मे पार्टी ने जो प्रमुख विचार प्रकट किये वो निम्न प्रकार से हे–**

अनुच्छेद 355 के अधीन सघ सरकार राज्यो मे वहा की परिस्थितियो को देखते हुए केन्द्रिय रिजर्व पुलिस आर अन्य अर्द्ध सेनिक बल तेयार कर सकती है। बहुत आपत्तिजनक प्रावधान है। इसमे इस प्रकार से सशोधन किया जाना चाहिये जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि यदि राज्य की परिस्थितियो को देखते हुय सम्वन्धित राज्य मे इस पकार की कोई कार्यवाही करने की आवश्यकता भी पडती हैं तो अर्द्धसैनिक बल की तेनाती से पूर्व राज्य सरकार की सहमति ले ली जायेगी।[2]

जनता दल ने भी राज्यपाल को केन्द्रिय अभिकत्रा की भूमिका पर बड़ी आपत्ति प्रक्ट की ह और इसे रोकने के लिये तत्काल उपाय किये जाने की मॉग की। राज्यपाल की नियुक्ति सम्वन्धी सुनिश्चित मापदण्ड निर्धारित किये जाने चाहिये।[3]

इसी पार्टी की सरकार जो कर्नाटक मे सत्तारूढ़ थी, के मुख्यमत्री श्री रामकृष्ण हेगड़े ने राज्यपाल के पद के सम्बन्ध मे 22 सितम्बर, 1993 को एक श्वेतपत्र जारी किया। जिसमे केन्द्र राज्य सम्बन्धो पर चर्चा की गयी विशेष कर केन्द्र द्वारा राज्यो की स्वयत्तता पर प्रहार किये जाने के सम्बन्ध में विशेष जोर दिया और उसमे राज्यपालो द्वारा पक्षपातपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने के सम्बन्ध मे ध्यान आर्कषित किया।

श्री हेगडे ने श्वेतपत्र पर अपनी टिप्पणी करते हुये कहा कि राज्यपाल पर राज्यो की स्वायत्तता तथा केन्द्र राज्य सम्बन्धी की मजबूती निर्भर करती ह।[4]

इस सम्बन्ध मे उच्चतम न्यायालय की टिप्पणी उचित हे कि राज्यपाल भारत सरकार के आदेशो के अधीन नही है ओर न ही उस तरीके के बारे मे जबाब देह ही है जिस तरीके

1 (सव. रिपोट) पूवाधृत पृष्ठ–618

2 पूवाधृत–पृष्ठ–619

3 वही

4 सव. रिपार्ट–231 (कर्नाटका श्वेत पत्र)

म वह अपना कार्य कर रहा है। राज्यपाल का पद एक स्वतन्त्र संविधानिक पद है जो भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन नहीं है ।[1]

लेकिन न्यायालय के इस निर्णय का एक से अधिक बार उल्लंघन किया गया है। मुख्यमंत्री की नियुक्ति और राज्य विधान सभा को भंग करने से सम्बन्धित राज्यपाल की शक्ति का जनता की अभिव्यक्त इच्छा को दबाने के लिये प्रयोग किया गया है। राज्यपाल के पद की गरिमा की उपेक्षा करके उसे संघ के गौरन्वित सेवक के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। ताकि केन्द्रिय सत्तारूढ दल के हितो में अभिवृद्धि हो सके। इसके परिणामस्वरूप न केवल संघीय सिद्धान्तो में विकृति आ जाती है वरन लोकतन्त्र को भी नकारा जाता है। यह मुद्दा केवल एक राज्य बनाम संघ का नहीं है वरन राजनैतिक कदाचार बनाम संविधानिक विधि का है।[2]संविधान सभा में भी कुछ सदस्यो ने यह शंका जाहिर की थी कि कहीं राज्यपाल के माध्यम से प्रान्तीय स्वायत्तता पर प्रहार न होने लगे लेकिन सदस्यो की इस शंका का समाधान करते हुये यह कहा था कि संविधान के अनुरूप सामान्य रूप से कार्य करते रहने के लिये भारत सरकार राज्य मंत्रिमण्डल से परामर्श की परम्परा अवश्य निभायेगी लेकिन डॉ अम्बेडकर की इस बात के अपवाद भी मिलते हैं।[3]

1967 तक प्राय इसका पालन किया गया लेकिन बाद के वर्षो में इसकी अवहेलना हुयी और जिसके कारण यह विवाद का विषय बना। विपक्षी दलो ने इस पर आपत्ति उठायी। लेकिन अम्बेडकर की इस बात का बाद के शासको ने अपनी नीति में शामिल नहीं किया। श्वेत पत्र में राज्यपाल के विवेकाधिकार की विशेष तौर पर अनुच्छेद 356 के तहत उस जो राज्य के सांविधानिक अध्यक्ष की हैसियत से प्रदान की गयी है, का विशेष उल्लेख किया गया है।[4]

अनुच्छेद 356 के अधीन राज्यपाल बिना मंत्रिपरिषद की सलाह के भी कार्यवाही कर सकता है। यह उन परिस्थितियो में हो सकता है जबकि राज्य का संवैधानिक तंत्र मंत्रीपरिषद के कार्य संचालन के कारण असफल हो जाता है। राज्यपाल को संविधान द्वारा

---

1 रामाविन्द्र नन्दन बनाम गोविन्द पंत एआईआर 1979 एससी (कर्नाटक श्वेत पत्र भाग-I)709

2 कर्नाटक श्वेत पत्र भाग- 1 स.ज. रिपोर्ट पृष्ठ 239, भाग-II

3 वही– पृष्ठ–235

4 कर्नाटक श्वेत पत्र–सती साहनी, पृष्ठ–280 पूर्वोधृत 'सैन्टर स्टेट रिलशन्स' विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा लि

यह अधिकार प्रदान करने का मुख्य कारण यह है कि राज्यपाल राष्ट्रपति को राज्य की वास्तविक स्थिति के बारे में सूचित कर सके। क्योंकि इसके अतिरिक्त अन्य विषयो मे उसे राज्य मत्रिपरिषद की सलाह के आधार पर ही कार्य करना पडता है। इस सन्दर्भ मे यह भी माँग रखी गयी है कि अनुच्छेद 163 मे यह स्पष्ट किया जाना चाहिये कि राज्यपाल के विवेकाधिकार के अधीन लिया गया निर्णय अन्तिम होगा और उसकी मान्यता के सम्बन्ध मे कोई प्रश्न नही उठाया जायेगा।[1]

जनता दल ने राज्यपाल पद के गिरती प्रतिष्ठा पर चिन्ता व्यक्त की। वास्तव मे यह बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि राज्यपाल सघ का एक गौरान्वित सेवक बन गया है। मुख्यमत्री की नियुक्ति और राज्य विधान सभा भग करने जैसे महत्वपूर्ण मुद्दो पर जिनका राज्य को लोकतात्रिक सरकार पर प्रभाव पडता है, राज्यपालो ने स्पष्ट रूप से केन्द्र मे सत्तारूढ दल के हितो के बढावा देने वाले ही निर्णय दिये है। अनुच्छेद 356 का लगातार दुरूप्रयोग किया जा रहा है और राज्य की स्वायत्तता तथा लोकतन्त्र के सिद्धान्तो की हसी उडायी जा रही है।[2]

यह बात सर्वविदित है कि अनुच्छेद 356 का दुरूप्रयोग किया गया। इस बात को स्वीकार करते समय दुखद सच्चाई जो की निर्विवाद रूप से माननी होगी कि राज्यपाल के पद का भी दुरूपयोग किया गया है। क्योकि इस पूरी प्रक्रिया मे राज्यपाल भी शामिल होता है।[3]

राज्यपाल के विपक्षी दलो का न केवल उसके पद से वचित करने का ही कार्य किया है वरन काग्रेस पार्टी के आन्तरिक मतभेदो को सुलझाने का भी कार्य किया है। ऐसा देखा गया है कि विशिष्ट अवसर प्रदान करने के मामलो मे राष्ट्रपति शासन लागू किया गया है अर्थात राज्य मे काग्रेस पार्टी का बहुमत बना रहने पर भी उसके नेतृत्व के सकट को दूर करने के लिये राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। केवल पार्टी के उद्देश्यो को पूरा करने के लिये सविधान के

1 पूर्वाधृत—सता साहनी पृष्ठ 285

2 सरकार रिपोर्ट—वही—पृष्ठ—619

3 पूर्वाधृत सता साहनी पृष्ठ—286

आपात स्थिति-समय में अनुच्छेद का स्पष्ट रूप से दुरुपयोग किया गया है।[1] ये मामले सर्वविदित है तथा विद्वानों की अनेक कृतियों में उन्हें विशिष्ट श्रेणी का बताया गया है –

*पंजाब-* *1951 और 1966 मे*

*उत्तर प्रदेश-* *1973 और 1979 मे*

*आन्ध्र प्रदेश-* *1973 मे*

*गुजरात-* *1974 मे*

*उडीसा-* *1975 मे*[2]

उत्तर प्रदेश में एन०एन० बहुगुणा ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पद से कांग्रेस हाईकमान के निदेश पर 29 नवम्बर 1975 को त्याग पत्र दे दिया। राज्यपाल की सिफारिश पर 30 नवम्बर को राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया तथा 12 फरवरी 1976 को हटा लिया गया जब भी एन०डी० तिवारी मुख्यमंत्री बने केन्द्रिय गृहमंत्री ने कांग्रेस पार्टी द्वारा की गयी कार्यवाही को मात्र छोटी छोटी समस्याओं का समाधान करने केलिये जिसमे नेताओं का चुनाव भी शामिल है उचित माना।[3]

श्रीमती नंदनी सत्यपथी ने 16 दिसम्बर 1976 को उडीसा के मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। राष्ट्रपति शासन लगाये जाने के 13 दिनो के तुरन्त बाद ही उसे हटा दिया गया और उनके स्थान पर श्री विनायक आचार्य को नियुक्त किया गया।[4]

तमिलनाडु की द्रविड़ मुनेत्र कडगम सरकार को जनवरी 1976 में केवल इतनी सी बात पर समाप्त कर दिया गया कि वह आपात स्थिति लागू करने का विरोध कर रहा था। 234 सदस्यों की विधान सभा मे इसके 184 सदस्य थे तथा जिसकी अवधि मार्च 1976 में समाप्त होने वाली थी।29 जनवरी 1976 को राज्यपाल श्री के०के० शाह ने राष्ट्रपति को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमे उन्होने राज्य सरकार पर यह आरोप लगाया कि पार्टी

---

1 मन्त्र सारना–पूर्वाधृत

2 बनाटवाला श्वेत पत्र वही–पृष्ठ–286 इन सभी अवसरो पर कांग्रेस पार्टी ने अपनी ही बहुमत प्राप्त सरकारो को बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लागू किया था। इन सभी मामलो में एक समानता देखने में आती है कि कांग्रेस हाईकमान निवर्तमान मुख्यमंत्रियो से असंतुष्ट था। जिसको पद से हटाने के लिये अनुच्छेद 356 का प्रयोग किया गया।

3 वही

4 वही–पृष्ठ–287

के उद्देश्या को पूरा करने के लिये प्रशासनिक भ्रष्टाचार तथा शक्तियो के दुरूपयोग के अनेक आरोप ह अत केन्द्र से राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश की। दो दिन के बाद राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 356 के अधीन एक उद्घोषणा जारी की। राज्य सरकार का तत्काल बर्खास्त कर दिया गया साथ ही विधान सभा को भग कर दिया गया।[1]

3 फरवरी 1976 को भारत सरकार ने एक जॉच आयोग का गठन किया जिसमे मुख्य मत्री श्री एम करुणानिधि तथा उनके अन्य साथियो के ऊपर लगाये गये आरोपो की जॉच करने के लिये उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति आर.एस सरकारिया को नियुक्त किया गया।[2]

सितम्बर 1976 को श्रीमती इन्द्रिरा गाधी ने कहा कि उनके द्वारा जनवरी 1976 डी.एम.के. की सरकार को इसलिये हटाया गया था कि उसको पॉच वर्ष की अवधि पूरी हो चुकी थी। आर उन्हे अवधि बढाने का कोई अधिकार नही था। लेकिन इस सम्बन्ध म कितना भी स्पष्टीकरण दिया जाये यह निश्चित है कि राज्यपाल की रिपोर्ट राजनीतिक दबाव के कारण ही दी गयी थी।[3]

मई 1982 मे हरियाणा विधानसभा चुनावो के बाद राज्यपाल श्री जी.डी तापसे ने श्री देवीलाल से आपचारिक रूप से कह कि वह सोमवार 24 मई प्रात 10 बजे राजभवन मे अपने समर्थको को लाये। सदन मे 90 सदस्यो मे से काग्रेस आई को 36 लोक दल को 31 भारतीय जनता पार्टी को 6 काग्रेस जे को 3, जनता पार्टी को, 1, निर्दलीय को 12 सीटे प्राप्त हुयी थी। भारतीय जनता पार्टी ओर काग्रेस जे न लोकदल का समर्थन किया आर इस प्रकार उनकी पार्टी म चार निर्दलीय भी थे। श्री भजनलाल इन निर्दलीयो के साथ होने का दावा कर थे।

---

1 पूर्वाधृत

2 दि टाइम्स आफ इण्डिया 1979 (दिल्ली)

3 स.व. रिपार्ट वही–पृष्ठ–239

रविवार 23 मई को भी देवीलाल तथा उनके समर्थको का प्रतीक्षा किये बिना ही राज्यपाल जी डी तापस ने मुख्यमत्री श्री भजनलाल को काग्रेस आई के नेता के रूप म शपथ ग्रहण कराई राज्यपाल के इस कार्य की सर्वत्र व्यापक आलोचना हुयो।[1]

असम म 1983 के पूर्व क तीन वर्षा मे विपक्ष को जानबूझ कर बार-बार सरकार बनाने क अधिकार से वचित रखा जा रहा था हालाकि उस विधान सभा म बहुमत का समथन प्राप्त था आर यह सिद्ध हो चुका था कि काग्रेस आई का बहुमत प्राप्त करने का दावा हर बार झूठा था। सभी राज्यपालो ने इस सम्बन्ध मे कार्यवाही करने मे पक्षपात किया।

असम के राष्ट्रपति शासन को समाप्त होने की अवधि 12 दिसम्बर 1980 थी लगभग एक माह पूर्व 17 दिसम्बर 1980 को केन्द्रिय गृहमत्री श्री जल सिह ने लोकसभा मे यह दावा किया कि काग्रेस आई का सभा म बहुमत प्राप्त ह आर वह सरकार बनायगी लेकिन बहुमत हाने की बात ता दूर रहा काग्रेस (आई) विधान मण्डल पार्टी अपना नेता चुनने की स्थिति म भी नहा थी। यह स्थिति पार्टी मे बहुत अधिक मतभेद होने के कारण था। 3 दिसम्बर 1980 को पार्टी न काग्रेस (आई) की अध्यक्ष श्री मती इन्दिरा गाधी को विधायक दल का ना चुनने का प्राधिकार दिया आर उनके द्वारा चुने गये नेता के प्रति अपना पूरा समथन व्यक्त किया[2] 6 दिसम्बर के 3 दिन बाद राज्यपाल श्री एमपी सिह ने श्रीमती अनवरा तैमूर के मुख्यमत्री पद को शपथ दिलाई। काग्रेस आई ने 118 सदस्या मे से 52 सदस्या क समर्थन का दावा किया। जबकि वास्तव म काग्रस आई के 45 सदस्य थे। बाद मे कुछ निर्दलीय सदस्या के समर्थन प्राप्त होने का दावा भी किया गया। विरोधी पक्ष ने भी इस पर आपत्ति उठायी परन्तु उसको नामजूर कर दिया गया।[3]

श्रीमती तमूर की सरकार बहुत दिनो तक नही चली। उन्होन 28 जून 1981 को इस्तीफा द दिया जब 29 जून को विधान सभा की बेठक से केवल एक दिन पूर्व ही पीटीसीए न अपना समर्थन वापस ले लिया था किन्तु विपक्ष को सरकार बनाने का अवसर नही दिया गया। इसक बजाय 30 जून 1991 को राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया आर इसे 30 दिसम्बर 1981

1 स्टटस मन नई 24 1982 (दिल्ली)

2 दि टाइम्स आफ इण्डिया दिसम्बर 4, 1980 (दिल्ली)

3 पूर्वाधृत पृष्ठ 239

तक बढा दिया गया। राष्ट्रपति शासन को 13 दिसम्बर को हटाया गया जब श्री केशव चन्द्र गोगई जो कि कांग्रेस आई पार्टी के सदस्य थे, उन्हे राज्यपाल श्री प्रकाश महरोत्रा द्वारा मुख्यमत्री पद का शपथ दिलायी गयी। उन्हे श्रीमती तेमूर के पार्टी के नेता पद म त्यागपत्र दिये जाने के ?? दिन बाद 11 जनवरी को पार्टी का नेता चुना गया था। एक बार पुन विपक्ष के बहुमत के दाव को अस्वीकार कर दिया गया। विपक्ष के नेता श्री शरत चन्द्र सिन्हा ने यह दावा किया कि उन्ह 65 सदस्यो का समर्थन प्राप्त है। लेकिन राज्यपाल ने यह वचन दिया कि श्री गोगई के बहुमत प्राप्त होने को जॉच शीघ्र हो विधान सभा मे करवायी जायेगी। श्री गोगई से दो माह मे अपनी स्थिति स्पष्ट करने को कहा गया लेकिन ऐसा करने मे वो असफल रहे।[1]

17 मार्च 1982 का सभा का बजट अधिवेशन आरम्भ हुआ। वामपथी दल आर लोकतात्रिक दल के गठबन्धन ने तुरन्त एक अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया ना स्वीकार कर लिया गया। इस गठबन्धन ने 65 सदस्यो के सर्मथन का दावा किया जो कि सदन के 118 सदस्या म से तथा दस पार्टियों से लिये गये थे। 18 मार्च को जिस दिन विधान मण्डल की बेठक हाने वाली थी उससे कुछ समय पूर्व हो श्री गागई ने मुख्यमत्री पद से इस्तीफा द दिया आर सभा मे उपस्थित नही हुये। पुन राज्यपाल श्री महरोत्रा ने वामपथी और लोकतात्रिक गठबन्धन के नेता श्री शरत चन्द्र सिन्हा को सरकार बनाने के लिये आमत्रित नही किया जबकि उन्हे ऐसा करना चाहिये था विशेषरूप मे तब जब कि कांग्रेस दल को पिछले तीन बार बुलाया गया था। विपक्षी गठबधन को सरकार बनाने के लिये आमत्रित करने के स्थान पर राज्यपाल न राज्य म राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर दी साथ ही विधान सभा को भी भग कर दिया गया। श्री गोगई की सरकार कवल 65 दिनो तक ही चली।[2]

इन चारो अवसरो पर विपक्ष को सरकार बनाने का अवसर नही दिया गया था आर न ही उसे विधान मण्डल मे बहुमत का समर्थन प्राप्त होने की जाच का अवसर ही दिया गया था।[3] अत जब यह बात बहुत दिनो तक छुपाई नही जा सकती थी कांग्रस आई अपनी सरकार चलाने म असफल रही तो राज्य का शासन वामपथी आर लोकतात्रिक गठबधन द्वारा शासित किये जाने की अनुमति ना देकर उसे सीधे केन्द्रिय प्रशासन के अधीन कर दिया गया।

---

1 पूर्वोधृत– पृष्ठ-239

2 सरकारिया रिपोर्ट–पृष्ट– 239

3 पूर्वोधृत पृ–239

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि अधिकाश मामलो मे राज्यपालो ने अपने पद का दुरुपयोग केन्द्र मे सत्तारुढ दल के हितो की रक्षा के लिये ही किया है। सभी महत्वपूर्ण मामलो मे सविधान मे निहित भावनाओ का उल्लघन किया गया है विशेष रूप से राष्ट्रपति शासन लागू करने और मुख्यमत्री की नियुक्ति और राज्य विधान सभा भग करने के मामले मे उल्लघन किया गया है।[1]

डा अम्बेडकर ने सविधान सभा मे स्पष्टरूप से कहा था कि राज्य के सविधानिक प्रधान की हैसियत से राज्यपाल की स्थिति वैसी ही है जैसी राष्ट्रपति की। (3) सविधान मे उल्लेखित इस स्पष्ट स्थिति को राज्यपाल की स्वतन्त्रता समाप्त करने और उसकी निष्पक्षता की शपथ को मिथ्या करके उलट दिया गया है। राज्यपालो को इस बात की अनुमति नही है कि मुख्यमत्री की नियुक्ति तथा विधान मण्डल भग करने के लिये वह ससदीय प्रणाली की पूर्व स्थापित परिपाटी का पालन करे और वे ऐसा नही करते है अपितु वे भारत सरकार के नेताओ के निदेशो से बाध्य होते है। यह अपने आप मे कटु सत्य है कि ऐसे निर्देश सत्तारूढ दल के हितो को बढावा देने के लिये ही दिये जाते है।

इस प्रक्रिया मे सघ के सिद्धान्तो तथा लोकतन्त्र के मापदण्डो का गम्भीर रूप से हनन हुआ है। राज्य की स्वायत्ता भग हुयी है। देश कीजनता को ससदीय प्रणाली को पुरानी परिपाटी के अनुसार निर्वाचित प्रतिनिधियो द्वारा शासित किये जाने के अधिकार से वचित रखा गया है जैसा कि सविधान निर्माताओ ने स्पष्ट रूप से कहा था।

पार्टी का विचार है कि राष्ट्रपति शासन के सम्बन्ध मे अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग को रोकने के लिये सविधान के 44 वे सशोधन के अनुसार जो उपबध किये गये थे उन्हे रहने देना चाहिये।[2]

राज्यपाल के विवेकाधिकार समाप्त कर देना चाहिये और मत्रिमण्डल बनाने के लिये विधान सभा मे बहुमत प्राप्त दल या दलो के गठबन्धन को सरकार बनाने के लिये बुलाना

---

1 पूर्वोधृत, प–240

2 44 वे सशोधन अधिनियम 1987 द्वारा खण्ड (3) के अधीन की गया उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला सकल्प प्राप्त होने की तिथि से एक वर्ष कर दिया गया था। 42 वे सशोधन अधिनियम 1976 द्वारा छ माह मूल शब्दों के स्थान पर एक वर्ष दिया गया था।

राज्यपाल के लिये अनिवाय होना चाहिये। यदि किसा भी नेता को सभा म बहुमत प्राप्त नही ह तो मत्रिमण्डल बनाने के लिये सबसे बडे दल के नेता को कहा जाना चहिये।[1]

इस सम्बन्ध म स्पष्ट सवधानिक उपबध और मार्गनिर्दशन बनाये जाने चाहिये। सबसे अधिक विवाद मुख्यमत्री की नियुक्ति आर मत्रिमण्डलो को भग करने के विषय मे होता है अत इस सम्बन्ध म राज्यपाल को विवेकाधिकार नही प्राप्त होना चाहिये। पार्टी का विचार हे की विधान सभाआ को स्थगित करने की प्रथा पूर्णत समाप्त कर देना चाहिए।[2]

## कम्युनिस्ट पार्टी

अन्य सभा विपक्षी दलो के समान कम्युनिस्टो ने भी अनुच्छेद 356 को सघीय सिद्धान्तो को नष्ट करने वाला उपबध बताया है और इसमे सशोधन की माँग की हे।[3] इसके अन्तर्गत की जाने वाली कार्यवाही राज्यो की स्वायत्ता को बहुत कम कर देती हे। उनका विचार ह कि बदलो हुयी राजनीतिक स्थितियो मे कई गैर काग्रेसी सरकारो के राज्या म सत्ता मे आने से अपने अधिकारो के सम्बन्ध मे नयी चेतना की वृद्धि हुयी हे साथ ही वर्तमान असतुलन मे अलगाववादी आर पृथक्तावादी तत्वो को बढावा मिला है। अत केन्द्र राज्य सम्बन्धो की पुन सरचना अत्यावश्यक हो गयी हे।[4]

कुछ उसी प्रकार की चिन्ता पश्चिम बगाल को कम्युनिस्टी सरकार द्वारा केन्द्र राज्य सम्बन्धा पर पेश किये गये प्रपत्र मे भी की गयी है[5] और इसके उपर्युक्त समाधान की भी माँग की गयी है।

भारत की एकता ओर अखण्डता को उसकी भाषाई, सास्कृतिक और अन्य विविधताओं के ढाँचे के अन्तर्गत सुरक्षित रखने के लिये केन्द्र राज्य सम्बन्धो का प्रश्न आज के आशान्त राज्या का देखते हुए अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है और केन्द्र राज्य सवधा म आये तनावो को

---

1 पूर्वाधृत, — पृष्ठ 240

2 सरकार रिपोर्ट वही — पृष्ठ 627

3 श्रीनगर घोषणा पत्र पृष्ठ 295

4 सरकार रिपोर्ट पूर्वाधृत पृष्ठ 569

5 पश्चिम बगाल सरकार का दस्तावेज 1972, केन्द्र राज्य सबध आयाग, राम अवतार शर्मा व सुषमा यादव, पृष्ठ 111 प्रकाशित, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

हुए उन के अलावा विभिन्न अवसरों पर विपक्षी दलों ने अपने सम्मेलनों के जरिये प्रयास किया है।[1]

इसी प्रश्न पर विचार करने के लिये अक्टूबर 1983 मे जम्मू कश्मीर के मुख्यमत्री डा फारूख अब्दुल्ला ने विपक्षी दलो का एक विशेष सम्मेलन आयोजित किया था जिसमे 17 दलो के 59 नेताओ और स्वतन्त्र विचारको ने भाग लिया था।[2]

सभी की सहमति से डा अब्दुल्ला ने एक सवैधानिक समिति का गठन किया था जिसके अध्यक्ष कम्युनिस्ट पार्टी के श्री अशोक मित्रा थे। इस समिति द्वारा जारी घोषणा ही श्रीनगर उद्घोषणा के नाम से जानी जाती है।[3]

घोषणा मे बढती हुयी केन्द्रियकरण की प्रवृत्ति पर अपनी चिन्ता व्यक्तकी गयी थी। नेताओ का विचार था कि राष्ट्र ऐसे दौर से गुजर रहा है, जिससे प्रजातात्रिक मूल्यो को खतरा उत्पन्न हो गया है। सत्ता का अधिकाधिक केन्द्रियकरण करते हुये देश तानाशाही की ओर अग्रसर हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न राज्यो मे असतोष के स्तर उभर कर सामने आ रहे है। भारत की सम्प्रभुतना तथा अखण्डता को इस महान देश के विभिन्न भाषाओ, मूल्यो तथा सभ्यताओ के मध्य सन्तुलन कायम करना आवश्यक है। देश को आजादी की लडाई के माध्यम से जो एकता का स्वर्णिम सूत्र उत्पन्न हुआ था उसे आगे आने वाले समय मे और सुदृढ़ करना होगा और इसके लिये आवश्यक है केन्द्र राज्य सम्बन्धो का पुर्ननिरीक्षण किया जाये।[4]

इस सन्दर्भ मे सविधान मे सशोधन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है क्योकि वतमान मे सघीय व्यवस्था मे केन्द्र राज्यो पर हावी हो गया है। इसका एक अन्य प्रमुख कारण यह रहा है कि देश मे लम्बे समय तक एक ही दल का प्रभुत्व रहा है जिसके कारण भी राज्यो की स्वायत्ता पर आँच आयी है। इस लम्बी अवधि के दौरान इसका अपवाद केवल कुछ ही राज्य रहे जहाँ केन्द्र से भिन्न दल सत्तारूढ हुआ है।[5]

1 सरकार रिपार्ट वर्ग – पृष्ठ 564
2 पूर्वाधृत सती साहनी पृष्ठ 295
3 वही
4 सरकार रिपोर्ट पृ 557
5 सरकार रिपोर्ट पृ 557

पिछले तीन दशकों से यह माँग ओर पकडती जा रही ह कि राज्या का अधिक शक्ति दी जाये ताकि राज्यो को स्वायत्ता वास्तविक व प्रभावशाली बन सके वही राज्यो के सीमित अधिकारा को भी छीनने और वहा राज्यो को सरकार के मुताबिक कार्य पद्धति पर आघात करने की लगातार कोशिश की जाती रही ह।[1]

इन सभी कारणो से राज्य तथा केन्द्र के मध्य आपसी सबधा म तनाव पदा हा गया ह अत राज्या की स्वतन्त्रता को मजबूत करना अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य हा गया हे साथ ही केन्द्र तथा राज्या के कार्यों को सतुलित करना भी आवश्यक हे। इसको प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक ह कि राज्या के पक्ष मे केन्द्र को जो इकतरफा अधिकार प्राप्त ह, उसे कमकर दिया जाये जिसके अर्न्तगत राज्यो को चुनी हुयी सरकार को बर्खास्त कर दिया जाता आर राज्य विधान सभाआ का भग कर दिया जाता है, एक पक्षीय है।[2]

पार्टी का विचार है कि वास्तव मे केन्द्र ओर राज्यो के मध्य सम्बन्ध साम्यिक आधार पर स्थापित होने चाहिये। यह सम्बन्ध प्रभुत्व दर्शाने का ना होकर सर्वोत्तम राष्ट्रीय हित प्राप्त करने क लिये भागीदारी का हो। ऐसा सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने म सघ की जिम्मेदारी स्पष्ट है आर यह राज्या की अपेक्षा कही अधिक बृहत्तर है। लेकिन इधर कुछ वर्षो के दौरान केन्द्र म सत्तारूढ दल के प्रभारी ने उत्तरदायित्व पूर्ण और पक्षपात रहित दृष्टि कोण नही अपनाया ह। वे राज्यो की तुलना मे लोकतन्त्रीय व्यवहार का उचित स्तर नही विकसित कर पाते हे। जिसके परिणामस्वरूप केन्द्र राज्य सम्बन्ध बिगड़ते गये जिससे राज्य निकाय म विखण्डनकारी की प्रवृत्ति को बढावा मिला।[3] दुर्भाग्य की बात यह है कि इस प्रकार का दृष्टिकोण आकस्मिकरूप से उत्पन्न नही हुआ वरन् यह तो एक नीति सी बन गयी हे कि जो दल केन्द्र मे सत्तारूढ़ है, वो राज्य स्तर पर अपने से भिन्न दल की सरकार स्वीकार नही कर पाता।[4]

उदाहरण के लिये 1952 मे मद्रास मे आम चुनावो के वाद विधान सभा मे काग्रेस को बहुमत नही प्राप्त हुआ था जबकि केन्द्र मे काग्रेस सत्तारूढ़ दल था। यूनाइटेड फ्रंट जिसकी अध्यक्षता श्रीप्रकाश कर रहे थे, को विधान सभा मे पूर्ण बहुमत प्राप्त था। किन्तु तत्कालिन

1 पूर्वाधृत, – पृष्ठ 567

2 वही – पृष्ठ 570

3 सकरि पूर्वाधृत – पृष्ठ 570

4 वही

प्रधानमंत्री पंडित नेहरू और गृहमंत्री के निर्देशानुसार राज्यपाल ने श्री प्रकाश को सरकार गठित करने का अधिकार नही प्रदान किया वरन् कांग्रेस दल के श्री राज गोपालाचारी को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया। इस प्रकार प्रजातांत्रिक मूल्यों की अवहेलना करते हुये, मतदाताओं की इच्छाओं के विरुद्ध मंत्रिमण्डल का गठन किया गया।[1] और इसी की पुनरावृत्ति जम्मू कश्मीर में डा फारूख अब्दुल्ला की सरकार के साथ हुयी।

पार्टी का विचार है कि अनुच्छेद 356 में संशोधन किया जाना चाहिये। राष्ट्रपति से राज्य विधान सभा के विघटन और निलम्बन तथा राज्य मंत्रिमडल को बर्खास्तगी के व्यापक अधिकारों को समाप्त किया जाये। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय जबकि विधान सभा में मंत्रिमडल का बहुमत समाप्तहो जाये व कोई अन्य दल या गुट बहुमत का विश्वास प्राप्त करने की स्थिति मे नही हो तो ऐसी स्थिति मे नयी विधान सभा गठित करने के लिये चार माह के भीतर चुनाव कराये जाये। साथ ही वर्तमान सरकार काम चलाऊ सरकार के रूप मे कार्य करती रहे।[2]

किन्तु यदि संसद यह निर्णय लेती है कि हिंसा के कारण जिससे सामान्य जनजीवन गडबड़ा जाता है तथा जिसके कारण सम्बन्धित राज्य में चुनाव नही करवाया जा सकता, उस दौरान एक निश्चित समय के लिये राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है।[3]

इधर कुछ वर्षो से केन्द्रिय रिर्जव पुलिस सीमा सुरक्षा बल और औद्योगिक सुरक्षा बल के माध्यम से राज्यो के मामले मे केन्द्र का हस्तक्षेप अत्यधिक बढ गया है। यह हस्तक्षेप कानून और व्यवहार के क्षेत्र में भी बढा है जो औपचारिक रूप से राज्य का विषय होता है। आपातकाल के दौरान असंदिग्ध रूप से यह स्पष्ट करने की कोशिश की गयी है कि यदि राज्य मंत्रिमडल और विधायिका केन्द्र के निर्देशो का पालन ना करे तो सही या गलत किसी भी तरह राज्य सरकार की बर्खास्तगी का भय व्याप्त रहता है। इस संबध मे दल का विचार है कि अनुच्छेद 365 अनावश्यक है अत इस प्रावधान को समाप्त कर देना चाहिये।[4]

---

1 पूर्वाधृत - पृष्ठ 556

2 पूर्वाधृत — पृष्ठ 570

3 वही

4 वही — पृष्ठ 557

पश्चिम बगाल सरकार के दस्तावेज के माध्यम से भी अनुच्छद 356 357, व 365 को हटाये जान की सिफारिश का गयी हे जिसके द्वारा राष्ट्रपति को राज्य सरकार को भग करने का अधिकार प्राप्त हो जाता ह इसके स्थान यह व्यवस्था को जाी चाहिये कि गज्य म यदि साविधानिक सकट उत्पन्न हो जाय तो राज्यो मे चुनाव करवाकर नयी मरकार स्थापित की जाये नाकि राष्ट्रपति का शासन, जैसी व्यवस्था केन्द्र वे लिये हे।[1]

लेकिन श्रीनगर घोषणा पत्र मे अनुच्छेदो मे इसमे केवल मशोधन की बात कही गयी हे आर यदि राज्य मे चुनाव करवाना सम्भव नही हो तो ऐसी स्थिति मे अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत अर्न्तराष्ट्रीय परिषद से राय लेनी चाहिये ओर इसके बाद इसे ससद मे प्रस्तुत कर जिससे ससद विचार कर सके कि छ माह के लिय ही गष्ट्रपति शासन लागू किया जाये या आगे को अवधि के लिये बढ़ाया जाय। [2]

अनुच्छेद 365 मे भी उचित सशोधन का सुझाव दिया जिससे इसके अनुचित प्रयोग को रोका जा सके।[3]

नेताओ द्वाग राज्यपाल की कतिपय राजनीतिक भूमिकाओ का कडी आलोचना की ह इनका विचार है कि अधिकतर मामलो मे राज्यपाल केन्द्रिय सत्तारूढ दल को लाभ पहुँचाने हेनु अपनी शाक्तिया का दुरूपयोग करते रहे है।[4] वास्तव म केन्द्र मे शासन करने वाले सत्तारूढ़ पार्टी द्वारा राज्यपाल के पद का इस्तेमाल राज्य के लोगो को उनकी इच्छा के अनुसार सरकार चुनने से रोकने ओर उन पर अवाछित सरकार थोपने आदि के लिये किया जाता ह। अब राज्यपाल को "निष्पक्ष" कहना हास्यास्पद हो गया है। अत पार्टी का विचार ह कि राज्यपाल को पद को समाप्त कर दिया जाना चाहिये ओर यदि किसी कारणवश ऐसा करना समभव ना हो तो यह पद ऐसे व्यक्ति द्वारा भरा जाये जिससे राज्य विधान सभा का विश्वास प्राप्त हो जाय। साथ ही यह व्यवस्था की जानी चाहिये कि यदि निर्वाचित विधान सभा म परिवर्तन हो तो उसे राज्यपाल नही बने रहने दिया जायेगा विशेष

---

1 पूर्वाधृत

2 श्रीनगर घोषणापत्र सतीसाहनी पूर्वाधृत पृष्ठ 295

3 श्रीनगर घोषणा प्रपत्र पृष्ठ वही – पृष्ठ 295

4 वही – पृष्ठ 294

रूप राष्ट्रपति शासन लागू करने के सम्बन्ध मे राज्यपाल की रिपार्ट क आधार पर ही कायवाही अनिवाय कर देनी चाहिये कि रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पूव राज्यपाल मत्रिपरिषद को नोटिस भेजेगा।[1] नोटिस मे इसे विशेष रूप से अन्य कारणो का उल्लेख करना होगा कि वह राज्य की स्थिति क सम्बन्ध मे राष्ट्रपति की रिपोर्ट क्यो भज रहा है अर्थात् उसे मत्रिपरिषद को यह देखने का अवसर देना चाहिये कि अब सरकार सविधान क उपबन्धा के अनुसार आर अधिक चलायी नही जा सक्ती। तत्पश्चात किन्ही आदशा को पारित करन म पूर्व राष्ट्रपति को भा मत्रिपरिषद को समान अवसर देना होगा, यह आवश्यक नही ह कि मत्रिपरिषद के विरुद्ध विधान सभा म पारित किये गये अविश्वास प्रस्ताव के सम्बन्ध म भी यही प्रक्रिया अपनायी जाये। राज्यपालो के लिये यह नियम बना देना चाहिये कि व विधान सभा म बहुमत प्राप्त मत्रिपरिषद को बर्खास्तना नाकरे सके।[2]

## भारतीय जनता पार्टी (राष्ट्रीय दल)

भारतीय जनता पार्टी हाल के वर्षो मे काग्रेस के एकमात्र विकल्प के रूप म उभर कर समाने आई है। वर्तमान मे देश का प्रमुख विपक्षी दल भी है। अत इन प्रावधानो के सम्बन्ध म भाजपा के दृष्टिकोण को जनना अत्यन्त आवश्यक ह

भाजपा अध्यक्ष श्री लाल कृष्ण आडवानी का विचार हे कि सविधान के प्रावधानो का सत्ताधारी दलो द्वारा इस प्रकार दुरूपयोग किया जाना दु खद है। काग्रेस न दलीय हितो के लिये अनु 356 का दुरूपयोग किया है, यह निन्दनीय कार्य है।[3] इस दुरूपयोग को रोकने के लिये यह आवश्यक होगा कि लोकसभा के इस अनुच्छेद पर विचार हो जिसमे इस दुरूपयोग का रोकने के लिय उसम उचित सशोधन किया जा सके, भाजपा अन्य विपक्षी दलो की इस मॉग पर अनुच्छेद 356 को हटा दिया जाना चाहिये सहमत नही ह।[4]

---

1 सरकार रिपार्ट वही – पृष्ठ 567

2 पूर्वोधृत – पृष्ठ 567

3 जनसत्ता अप्रल 5, (नागालैण्ड मे राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने पर प्रतिक्रिया)

4 टाइम्स ऑफ इण्डिया, अप्रैल 3 1993 (लखनऊ)( मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये फसल पर प्रतिक्रिया

देश की सघीय व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुये आडवानी ने कहा कि भारत जसे विशाल देश को क्षत्रीय सरकारा के द्वारा ही व्यवस्थित किया जा सकता हे।[1] अत राजनतिक यूनिटो के रूप मे राज्यो का आस्तित्व अपरिहार्य है साथ ही वाछनीय भी ह, क्योकि देश के भिन्न भिन्न भागो को अपनी-अपनी विशिष्ट समस्याये हे आर स्थान-स्थान के अनुसार उनका समाधान भी भिन्न-भिन्न ही होगा। अत राजनीतिक अधिकारो का विकन्द्रियकरण लोकतन्त्र को मजबूत बनाने और देश के शासन को सुव्यवस्थित करने के लिये आवश्यक ह।

पार्टी का विचार है कि सविधान मे केन्द्र और राज्य सरकारो के बीच अधिकारो आर कार्या के सवितरण के लिये आवश्यक व्यवस्था की गयी है। किन्तु इन उपबन्धो को अमल मे लाने से केन्द्र राज्य सम्बन्धो मे काफी तनाव आ गया ह। वास्तव मे देश की एकता तथा अखण्डता को मददेनजर रखते हुये इन को दूर करने क लिये प्रभावी कदम उठाने होगे,[2] यद्यपि केन्द्र को निरकुश सत्ता बनने से रोका जाना चाहिये तथापि राज्यसत्ता के समानान्तर या परस्पर विरोधी, केन्द्र न बनाने पाये। दल कमजोर केन्द्र का समर्थक नही ह। राज्या की स्वायत्ता आवश्यक ह, लेकिन केन्द्र की कीमत पर नहीं। भाजपा ने इस सम्बन्ध म यह मॉग की है कि सही सन्तुलन बनाये रखने के लिये केन्द्र राज्य सम्बन्धो को पुन समीक्षा की जाये।[3]

केन्द्र ओर राज्यो मे व्याप्त तनाव शुभ लक्षण नही है इसे अवश्य समाप्त किया जाना चाहिये सविधान के उपबन्धो को विधि और मूल भावना दोना तरह अमल मे लाया जाना चाहिये। लेकिन दुर्भाग्य का विषय है कि ऐसा अभी तक नही किया गया हे।[4]

दल का मानना ह कि भारतीय सविधान समय की चुनौतिया का मुकाबला करने के लिये पर्याप्त रूप से लचीला ह।[5] सघ राज्य सबन्धो से जो विभिन्न आर समस्याय

1 राष्ट्रीय कार्यकारिणी भा ज पा द्वारा प्रस्तुत 21-23 अक्टूबर 1983 लखनऊ

2 स क रिपाट वही – पृष्ठ 553

3 वही – पृष्ठ 553

4 वही – पृष्ठ 554

5 वही – पृष्ठ 555

और जटिलताये पैदा हुयी है वे अभी तक विद्यमान है क्योंकि उनको इन सम्बन्धो को संविधान की सही विचारधारा और उद्देश्यो के अनुरूप व्यवस्थित नही किया गया है। इसके लिये संविधान मे परिवर्तन की माँग रखी है।[1]

लेकिन भाजपा कुछ मूलभूत प्रावधानो को हटाने या परिवर्तन का पक्षधर नही है[2] क्योकि उसका विचार है कि संविधान निर्माताओ ने भारत को एक प्रतिष्ठित संघ के रूप मे नही अधिष्ठित किया है। अर्न्तवस्तु मे यह अत्यावश्यक रूप मे एकता पर आधारित है। यह दृष्टिकोण युक्तियुक्त है और वे भी इसमे परिवर्तन के पक्ष मे नही है जिससे यह व्यवस्था ही खोखली हो जाये।

विशेष रूप से अनुच्छेद 355 जो कि राज्यो को सुरक्षित रखने के लिये संघ का कर्तव्य सुपुर्द करती है, मे परिवर्तन की पक्षधर नही है। लेकिन अनुच्छेद 356 व 365 का पुन समीक्षा पर बल दिया जिससे इसके दुरूपयोग को रोका जा सके।[3]

अनुच्छेद 356 के तहत राज्यो मे राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा जारी करने मे राज्यपाल की भूमिका काफी विवादास्पद रही है। राज्यपाल को प्रदत्त अधिकार का केन्द्रिय सत्तारूपढ दल द्वारा अत्यधिक दुरूपयोग किया गया है। यदि राज्यपाल केन्द्रिय सरकार के इशारे पर काम करने से इन्कार कर देता है तो उसे अपना पद गवाना पडता है[4] इस सम्बन्ध मे नागालैण्ड का मामला उल्लेखनीय है जहाँ राज्यपाल श्री एस.एम. थामस ने मुख्यमंत्री श्री वामुजे का इस्तीफा स्वीकार कर विधान सभा भग कर दी और श्री वामुजो को कार्यवाहक सरकार के रूप मे कार्य करने का निर्देश दिया लेकिन केन्द्र सरकार ने राज्यपाल की रिपोर्ट के बिना ही राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। श्री आडवानी का कहना है कि इस मामले मे वास्तव मे राज्यपाल ने अपने विवेक के उपयोग का फैसला किया था। सरकारिया आयोग की सिफारिशो के अनुरूप राज्यपाल ने निवर्तमान मंत्रिमडल से काम चलाऊ सरकार के रूप मे लागू करते रहने के लिये कहा था जिससे राज्य मे नयी सरकार

---

1 पूर्वोधृत -- पृष्ठ 557

2 वही -- पृष्ठ 557

3 पूर्वोधृत राष्ट्रीय कार्यकारिणी

4 वही

के गठन के लिये चुनाव कराये जा सके। श्री आडवानी का विचार है केन्द्र द्वारा किया गया निर्णय सरकारिया आयोग की सिफारिशो की उपेक्षा है।[1]

राज्यपाल का पद राजनीतिक ना होकर सविधानिक होता है केन्द्र राज्य सम्बन्धो के मद्देनजर राज्यपाल की भूमिका काफी कठिन और विरोधाभासी होता है। राज्यपाल का पद केन्द्र और राज्य के मध्य सम्पर्क बिन्दु होता है। राज्यपालो ने सविधानिक अध्यक्ष की भूमिका के निर्वाह की उपेक्षा सत्तारूढ़ पार्टी के हित मे काम किया है।[2]

अत राज्यपाल की विवादास्पद भूमिका की देखते हुये उसकी नियुक्ति के तरीके और अधिकारो मे व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे उसकी सविधानिक स्थिति मजबूत बनायी जा सके और राज्यपाल अपनी निष्पक्ष भूमिका अदा कर सके। इस सम्बन्ध मे पार्टी का सुझाव है कि उसकी नियुक्ति राज्य सरकार से सलाह करके ही की जानी चाहिये। राज्यपाल की पदच्युति के सम्बन्ध में भी नियम निर्धारित करना चाहिये कि उसे ससद मे महाभियोग चलाकर ही हटाया जा सकता है।[3]

सभा मे किसी दल को बहुमत प्राप्त है या नही इसका फसला विधान सभा मे ही किया जाना चाहिये। इसे राज्यपाल के स्वनिर्णय के आधार पर नही छोडना चाहिये। इसके लिये यदि आवश्यक हो तो सविधान मे उचित सशोधन किया जाना चाहिये जिससे केन्द्र द्वारा राज्यपालो के माध्यम से दुरूपयोग रोका जा सके।[4]

## शिरोमणि आकाली दल (प्रमुख क्षेत्रीय दल)

अकाली दल ने भी अनुच्छेद 356 को सविधान से हटाये जाने की मॉग की। इस सम्बन्ध मे अक्टूबर 1973 को पारित किये गये अपने आनन्द साहिब प्रस्ताव[5] मे निम्नलिखित सुझाव रखे—

---

1 टाइम्स ऑफ इण्डिया अप्रेल 3 1993 (लखनऊ)

2 राष्ट्रीय कार्यकारिणी पूर्वाधृत

3 वही

4 वही — दि टाआइ अप्रेल 3 1993

5 शिरामणि अकाली दल द्वारा अगीकृत आनाय पुर साहिब प्रस्ताव—राजनीति भाग, 16 अक्टूबर 1973 सल रिपोर्ट वही — पृष्ठ 757

एसे संविधानिक उपबध जो केन्द्र को राज्य सरकार और उसकी विधान सभा को भंग करने के लिये सशक्त बनाते है वे केन्द्र मे नही होने चाहिये। सांविधानिक व्यवस्था भंग होने की स्थिति मे तत्काल चुनाव कराये जाने चाहिये और नयी लोकतान्त्रिक सरकार को प्रतिष्ठित करने का प्रावधान होना चाहिये। यदि सांविधानिक प्रक्रिया की विफलता की स्थिति मे राष्ट्रपति द्वारा केन्द्र सरकार के कार्यभार को सम्भालने का कोई प्रावधान नही है तो इसका अर्थ है कि जब इस तरह की आकस्मिकता की स्थिति राज्य मे उत्पन्न होती है उस स्थिति मे राष्ट्रपति को राज्यो मे हस्तक्षेप करने सम्बन्धी शक्ति देने का कोई औचित्य नही है।[1]

यह प्रावधान राज्यो के बीच बहुत अधिक भेदभाव पैदा करता है। राज्य मे सांविधानिक व्यवस्था से पैदा होने वाले गम्भीर स्थिति मे राष्ट्रीय हित को सुरक्षित रखने की अपेक्षा पार्टी के एकतरफा हितो को ध्यान मे रखने के लिये अनुच्छेद 356 का केन्द्र के शासक दल द्वारा बहुत बार धृष्टतापूर्वक प्रयोग किया गया है। यही कारण है कि जबकि संविधान निर्माताओं ने इसे वास्तव मे गम्भीर उत्पन्न होने पर एक बड़ा कदम उठाने के रूप मे संविधान मे रखने का विचार किया था।[2]

अनुच्छेद 356 (1) के अधीन स्वाभाविक न्याय का सिद्धान्त राज्य सरकारो की बरखास्तगी पर लागू नहीं किया गया है[3] क्योकि इन राज्य सरकारो से यह प्रमाणित करने का उपर्युक्त अवसर नही दिया गया कि जो निष्कर्ष निकाला गया है उससे इस प्रकार की स्थिति पैदा हो गयी थी जिसमे संविधान के उपबन्धो के अनुसार राज्य सरकार को बनाये नही रखा जा सकता था, वह न्यायसगत नही है। इस प्रकार राज्य के लोगो का उनके चुने हुये प्रतिनिधियो द्वारा शासन करने का अधिकार अनुचित रूप से छीना जाता है जो अनुचित है अत अनुच्छेद 356 का उल्लघन स्वाभाविक न्याय के सिद्धान्तो द्वारा नियत्रित होना चाहिये, दूसरे शब्दो मे मुख्यमत्री को यह सिद्ध करने के लिये समुचित अवसर दिया

---

1 पूर्वोद्धृत – पृष्ठ 755

2 वही – पृष्ठ 756

3 वही – पृष्ठ 756

जाना चाहिये कि राज्य म ऐसी स्थिति नही उत्पन्न हुयी ह जिसम अनुच्छेद 356 के अधीन कार्यवाही न्यायसगत ह।[1]

पार्टी का विचार ह कि यदि अनुच्छेद 356 के उल्लघन का मामला विचाराधीन ह तो अन्तर-राज्य परिषद को भी इस बात की जॉच करने का मौका दिया जाना चाहिये कि क्या यह प्रक्रिया न्यायसगत होगी अथवा नही।[2] अन्तर राज्यपरिषद की राय को समान्यत राष्ट्रपति द्वारा उपेक्षा नहा की जा सकती यह राय उसे थोपी नही जा सकती।

अनुच्छेद 356 (1) मे उल्लिखित बातो का अनुपालन इस आधार पर समान रूप से अन्याय सगत होगा कि राज्य मे विद्यमान सत्ताधारी दल का लोकसभा चुनावो म पराजित कर दिया गया ह, लोकसभा चुनावो मे सत्तारुढ दल की हार का यह अर्थ कदापि नही ह कि निर्वाचन मडल उसमे यहा तक कि राज्य को सीमाओ के अन्दर आने वाल मामला के सम्बन्ध मे अपना विश्वास खो बैठा है। हमारे सविधान के अधीन सघीय सरचना म यह स्पष्टतया स्वीकार किया जाता ह कि यदि राज्य मे एक दल का शासन हे तो दूसरे दल का केन्द्र मे शासन हो सकता है।[3]

इस सम्बन्ध मे एक अन्य बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिये कि राज्यपाल की नियुक्ति, उसकी शक्तियो ओर कर्तव्यो को सघीय राज्य व्यवस्था की पद्धति के अनुरूप होना चाहिये ताकि राज्यपाल कन्द्र के मात्र कार्यकारी एजेण्ट के रूप म न बना रहे वरन यह वास्तव म सावैधानिक रूप से राज्य का प्रमुख बने।[4]साथ ही राज्यो की कार्यपालक स्वायत्ता सुनिश्चित करने के लिये यह भी अनिवार्य है कि केन्द्र को सोपी गयी व्यापक निर्देशीय शक्तिया हटा दी जानी चाहिये निदेश शक्तियो के स्थान पर राज्यों आर सघ राज्यो के बीच समन्वय तथा परामर्शी तन्त्र की व्यवस्था होनी चाहिए।[5]

1 सरकारिया रिपोर्ट- पूर्वोधृत पृष्ठ–757

2 वही पृष्ठ–755

3 वही – पृष्ठ 756

4 सरकारिया रिपोर्ट पूर्वोधृत, पृष्ठ–757

5 पूर्वोधृत

# द्रविड़ मुनेत्र कषगम (डी.एम.के.)

डी.एम.के. के अध्यक्ष श्री करूणानिधि का मत है कि चूँकि केन्द्र मे राष्ट्रपति शासन के लिये कोई उपबंध नहीं अत राज्यो मे भी ऐसा कोई उपबध नही होना चाहिए। उनका विचार है कि अनुच्छेद 356 357 और अनुच्छेद 365 को सविधान से निकाल दिया जाना चाहिये।[1]

दल का विचार है कि भारतीय सविधान कागजो मे तो सघात्मक है किन्तु व्यवहार मे अधिकाधिक केन्द्रिकृत बनने की प्रवृत्ति रखता है। इस सम्बन्ध मे उन्होने जनता को सघवाद की शिक्षा देने पर जोर दिया क्योकि राज्यो को केन्द्र के अधीन काम करने का लक्षय पूरे सविधान मे प्रभावित है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि चूँकि वर्तमान सविधान अधिकाश रूप से 1935 के अधिनियम से ही लिया गया है, इसलिये वह व्यक्तिगत और सघटक इकाइयो की आशकाओ पर आधारित है जो उस औपनिवेशिक युग मे जरूरी था। इसी कारण अनेक राज्यो ने केन्द्र पर यह भी आरोप लगाया है कि उन्हे आन्तरिक उपनिवेशवादी शासको ने अपने अनुरूप प्रयुक्त किया था जिनका तब काग्रेस दल ने पूर्णत विरोध किया था, उन्हे वर्तमान मे हमारे सविधान मे शब्दश शामिल कर लिया गया है जो की पूर्णतया गलत है।[2]

देश की सावैधानिक व्यवस्था के सम्बन्ध मे महात्मा गाधी के विचार थे कि देश का सवैधानिक ढॉचा विशाल आधार वाला और "परामिड" जेसा होना चाहिये जिसका निर्माण आधार से होना चाहिये। पर बाद मे जो कुछ भी किया गया इसके विपरीत था। राज्या तथा लोगो से इसका नेतृत्व ले लिया गया और सभी शक्तिया केन्द्र मे केन्द्रित कर दी गयी।[3] वास्तव मे इस तरह के सविधान की महात्मा गाधी ने तो इच्छा व्यक्त की थी ना ही कल्पना[4] सघ राज्य सम्बन्धो पर जॉच के लिये नियुक्त प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी कुछ नहीं किया। क्योकि उसका विचार था कि चाहे कोई भी दल सत्ता मे हो सविधान निश्चित रूप से सफलता पूर्वक कार्य करने के लिये काफी लचीला है बशर्ते कि

1 राजामन्नार समीति की सिफारिशे केन्द्र राज्य सबध पृष्ठ 100 पूर्वाधृत शर्मा एव यादव

2 मतासाहनी पूर्वाधृत पृष्ट 39

3 पूर्वाधृत -- पृष्ट 40

4 मल रिपोर्ट वही – , पृष्ठ 629

मत्ताधारी दल उसी भावना से काम कर जिस भावना से काम करन का आशा सविधान निमाताओ ने की थी। लेकिन इस "भावना" का कभी ध्यान नहीं रखा गया हे आर अनुच्छद 356 का दुरूपयोग सविधान और गणतन्त्र से धोखा करने क समान ही ह आर इसके कइ उदाहरण भी हमार सामने हे। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता ह कि सस्थापका की उक्त भावनाओ का पता लगाने का काम न्यायपालिका की बजाय सत्ताधारी दल को सापने से स्वेच्छाधारी शासन की क्रूर योजनाओ को बढावा नही मिलेगा।[1]

इस सम्बन्ध म यह भी उल्लखनीय है कि भारतीय सविधान म जिस प्रणाली की सरकार का उल्लेख हे वह व्यस्क मताधिकार वाली लोकतात्रिक सरकार ह। जिस व्यक्ति को विधान सभा का विश्वास प्राप्त होता हे, उसे राज्यपाल द्वारा मुख्यमत्री नियुक्त किया जाता ह। आर वह राज्य का कार्यपालक मुखिया होता है। मुख्यमत्री को जब तक विधान सभा का विश्वास प्राप्त होता हे तब तक उसे मुख्यमत्री बने रहने का अधिकार ह।[2] किन्तु पिछल अनेक वर्षा क दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव से पता चलता ह कि कार्यरत मत्रिमडल को बर्खास्त करन के बाद राष्ट्रपति शासन लागू करने के सम्बन्ध मे अनुच्छेद 356 के अधीन दिये गये अधिकार का अनुचित ढग स आर प्राय राजनीतिक उददेश्य से प्रयाग किया गया हे। लोकप्रिय तरीक से चुनी गयी सरकार को बर्खास्त करने के बाद अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन लागू करने के उदाहरण हे। इस बात के स्पष्ट प्रनाण है कि केन्द्र द्वारा अनुच्छेद 356 के अधीन दिये गये अधिकारो का अनुचित एव मनमाने ढग से प्रयोग किया गया है।[3]

पजाव, मे मत्रिमडल को बर्खास्त करके राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिये अप्रत्याशित परिणाम हुये कि यदि लोकप्रिय सरकार को बने रहने दिया गया होता तो उन परिणामा से बचा जा सकता था। आन्ध्र प्रदेश मे तत्कालीन राज्यपाल श्री रामलाल द्वारा एनटा रामाराव मत्रिमडल की बर्खास्तगी लोकतन्त्र की हत्या थी।

ये सभी उदाहरण राज्यो का दर्जा नगरपालिकाओ जेसा बना देते हे जिन पर केन्द्रिय शक्ति प्रभावी रहती है। दुमुक के अध्यक्ष श्री करूणानिधि का विचार है कि

---

1 मती साहनी पूर्वाधृत पृष्ठ 40

2 वही – सरकारिया रिपोर्ट पृष्ठ 630

3 सरकारिया रिपोर्ट पृष्ठ–630 भाग II

राज्यपाल का पद हटा दिया जाना चाहिए,[1] क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया राज्यपाल एक पुरावशेष मात्र है जिसका अस्तित्व बतानी उपनिवेशवादी पद्धति पर आधारित है। साथ ही अब तक के उदाहरणो को देखने से पता चलता है कि राज्यपाल अपने अधिकारो का दुरूपयोग करने से नही झिझकते अधिकारो के इस प्रकार दुरूपयोग की पुनरावृति को रोकने के लिये राज्यपाल को हटा दिया जाना चाहिये। जैसा कि इस सबंध मे राजामन्नार समिति की रिपोर्ट मे भी सिफारिश की गई है कि राज्यपाल की नियुक्ति सदव राज्य मंत्रिपरिषद के परामर्श से की जानी चाहिये। इसका दूसरा विकल्प यह होगा कि इस उद्देश्य के लिये विशेष रूप से गठित एक उच्च अधिकार प्राप्त निकाय के साथ परामर्श करके नियुक्त किया जाये [2]साथ ही उसे तब तक बर्खास्त नही किया जाये जब तक कि उच्चतम न्यायालय की जॉच के बाद उसका दुराचरण अथवा दुर्व्यवहार अथवा अक्षमता ना सिद्ध हो जाये

संविधान का यह प्रावधान भी हटा दिया जाना चाहिये जिसके अनुसार मंत्रिमण्डल राज्यपाल की इच्छापर्यन्त पद पर रहता है।[3] साथ ही मंत्रिमडल बर्खास्त करने सम्बन्धी अपने विवेकाधीन अधिकारो का प्रयोग केवल तभी करना चाहिये जबकि मुख्यमंत्री सदन मे विश्वास प्राप्त करने मे असफल रहता है।

संविधान मे दिये गये अनुच्छेद 356 तथा 357 के प्रावधानो को पूरी तरह हटाया जा सकता है[4] तथा इसके कार्यवाही के खिलाफ राज्यो के हितो की सुरक्षा के लिये संविधान मे ही पर्याप्त रक्षोपाय प्रदान किये जाने चाहिये।

**इन प्रावधानो को उसी स्थितियो मे बनाये रखा जा सकता है जबकी—**

1 किसी राज्य मे कानून और व्यवस्था का पूर्ण ध्वस जबकि राज्य सरकार स्वय राज्य के जनधन की रक्षा और बचाव करने मे असमर्थ अथवा अनिच्छुक होती है,

---

1 पूर्वाधृत सता माहनी पृष्ठ 44

2 पूर्वाधृत शर्मा एव यादव पृष्ठ 101

3 सत्र रिपोर्ट पृष्ठ 636

4 सरकारिया कमीशन रिपोर्ट, पृ 634, पूर्वाधृत

एकमात्र आकस्मिकता ह जिसम अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू करना उचित ठहगया जा सकता ह।[1]

2 अनुच्छेद 356 के खण्ड (1) मे आने वाले शब्दा अथवा अन्य को हटा दिया जाना चाहिय तथा।[2]

3 अनुच्छेद 356 (1) मे एक उपबध जोड़ा जाना चाहिये जिसके तहत घोषणा जारी करन म पहल यह जरूरी ह कि राष्ट्रपति राज्यपाल की रिपोर्ट को सबधित राज्य की विधान सभा क पास एक निश्चित अवधि के भीतर जिसका विशष रूप से उल्लेख इस सन्दर्भ मे पहले ही कर दिया गया हो अपने विचार अभिव्यक्त करने के लिये भेजे।[3]

राजामन्नार समिति की रिपोर्ट पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुय कहा कि चाहे कोई इन सिफारिशो को स्वीकार करे या नही पर इसमे कोई सन्देह नही हे कि यह रिपोर्ट इस विषय पर किसी चर्चा के लिये प्रारम्भिक बिन्दु हो सकता ह।[4] साथ ही पूर्ण राज्य स्वायत्ता के साथ वस्तुत सघीय ढॉचा स्थापित करने के लिय केन्द्र सरकार राज्य स्वायत्ता के सम्बन्ध म राजामन्नार समिति की सिफारिशो को अवश्य स्वीकार करे साथ ही भारतीय सविधान म तत्काल परिवर्तन करने के लिये कदम उठाये।[5]

## आल इंडिया फारवर्ड ब्लाक

यह भी एक वामपथी दल है जो प बगाल की मोर्चा सरकार म भागीदार है लोकसभा मे इसके सदस्य रहते हे। इसकी स्थापना सुभाष चन्द्र बोस द्वारा हुयी थी परन्तु कोइ विशेष स्थान बनाने म असफल रहा परन्तु वामपथी दलो म इसकी गिनती होती हे।

दल का विचार हे कि केन्द्र राज्य सम्बन्धो की पुन सरचना के लिये सविधान म सशोधन करना अनिवार्य ह।[6] क्योकि स्वाधीनता के बाद तैयार किये गये सविधान को

1 पूर्वाधृत, – पृष्ठ 634

2 वही

3 वही

4 वही – पृष्ठ 635

5 मक. रिपार्ट पृष्ठ–630 भाग-2, पूर्वाधृत

6 मक रिपार्ट पृष्ठ 625

यद्यपि संघीय कहा जाता है लेकिन यह स्वरूप मे अनिवार्यत एकात्मक है। इसमे केन्द्र द्वारा राज्यो की आर्थिक और वित्तीय तथा दोनो ही मामलो मे स्वायत्तता का अतिक्रमण कर वृहत शक्तियां दी गयी है जो कि संविधान को 8 वी अनुसूची म दी गयी प्रवृष्टिया के विश्लेषण मे स्पष्ट हो जाती है इसके अतिरिक्त जो कुछ भी संघीय स्वरूप था, उसे पिछले चालीस वर्षो के दौरान राज्यो की स्वायत्ता का उपहास करते हुये अधिकाधिक क्षीण कर दिया गया है। राज्यो की शक्तियो को क्षीण करने की प्रक्रिया आपात स्थिति के दौरान अपनी पराकाष्ठा पर थी जब राज्य सरकारो की सारी शक्तिया छीन ली गयी थी इस प्रक्रिया मे राज्यो की स्थिति एक याचक के समान थी।[1] यह इसलिये सम्भव हो सकता है क्योकि केन्द्र और राज्यो मे बहुत कम अवधि तक और बहुत कम राज्यो को छोडकर एक ही दल सत्ता मे था।

आज जबकि देश अनेक राजनीतिक दलो के युग म आ गया है केन्द्र और राज्यो के मध्य मौजूदा व्यवस्थाओ मे परिवर्तन करने की आवश्यकता है। नयी व्यवस्था की अनिवार्यता सच्चे अर्थो मे संघीय सिद्धान्तो पर आधारित होनी चाहिये। इसके विपरित दिशा म कोई भी कदम संकट ही उत्पन्न करेगा।[2]

केन्द्र मे शासक दल से भिन्न दल या दलो को राज्य सरकार हमेशा केन्द्रिय हस्तक्षेप के खतरे मे ग्रस्त रहती है। केन्द्र के शासक दल द्वारा जनता के फैसले की अवहेलना करते हुये अपनी हुकूमत पुन बहाल करने के लिये संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति का शासन लागू करना एक समान्य प्रथा रहा है। इस प्रावधान के दुरूपयोग के अनेको उदाहरण है। पिछले 47 वर्षो के दौरान राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिये 90 से अधिक बार अनुच्छेद 356 का सहारा लिया गया है।[3]

कानून और व्यवस्था बनाये रखने के यद्यपि पूरी राज्यो की जिम्मेदारी होती है फिर भी केन्द्र द्वारा केन्द्रिय रिजर्व पुलिस, सीमा सुरक्षा बल, आन्तरिक सुरक्षा बल जैसे

---

1 पूर्वाधृत,

2 पूर्वाधृत पृष्ठ 627

3 सती साहनी पूर्वाधृत पृष्ठ 166

केन्द्रिय बलो को सम्बधित राज्य सरकार की सहमति के बिना लगाया जाना राज्यो के शक्ति और स्वायत्ता पर सोचा समझा हमला ही कहा जा सकता है। यह प्रवृत्ति ऐसी अवस्था म पहुच गयी ह कि केन्द्र सरकार न त्रिपुरा सरकार की राय को पूरी तरह अवहेलना करते हुय त्रिपुरा राज्य के कुछ क्षेत्रो को 'उपद्रवग्रस्त" घोषित कर दिया। संविधान का अनुच्छेद 365 राज्यो की स्वायत्ता और शक्ति पर अनावश्यक अकुश है।[1]

दल ने केन्द्र द्वारा राज्यपालो के पद के दुरूपयोग की भी निन्दा की है। राज्यपालो के पद को केन्द्र ने शासक दल का अधीनस्थ और सहायक बना दिया ह। राज्यपालो को वस्तुत उसी स्थिति मे ला दिया गया है जो ब्रिटिश राज्य के दिनो मे देशी रियासतो के रेजीमण्ट ऐजेण्टो की थी। ऐसे बहुत से उदाहरण प्राप्त हे जब राज्यपालो ने केन्द्र के शासक दल के दलगत लक्ष्यो को पूरा करने के लिये सेवाये अर्पित करके अपने गरिमापूर्ण पद को दूषित किया ह।[2]

**इस सम्बन्ध मे दल ने जो प्रमुख सुझाव दिये हे वो निम्न प्रकार से है –**

1 राज्यपाल की स्थिति किसी भी दशा मे राष्ट्रपति की स्थिति से भिन्न नही होनी चाहिये। राज्यपाल को कोई विवेकाधिकार नही दिया जाना चाहिये, राज्यपालो की नियुक्ति का तरीका बदला जाना चाहिये। राज्यपालो की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा उस पेनल के आधार पर हो जो सम्बन्धित राज्य सरकारो को भेजे।[3]

अनुच्छेद 356 को सविधान से हटा दिया जाना चाहिये जिसके द्वारा सरकार और विधान सभा को भग कर दिया जाता हे।

2 किसी राज्य मे सविधानिक अड़चन आने पर केन्द्र की तरह राज्य म चुनाव कराने का प्रावधान होना चाहिये।

3 अनुच्छेद 365 जो राष्ट्रपति को सविधान के किसी भी प्रावधान म कार्यकारी शक्ति के प्रयोग म दिये गये किसी भी निर्देश का कार्यान्वयन न होने पर राज्य सरकारो को बर्खास्त करने का अधिकार देता है, हटा देना चाहिये।[4]

---

1 पूर्वोधृत, पृष्ठ 627

2 सतीसहनी पूर्वोधृत पृष्ठ 166

3 सर्व. रिपोर्ट पृष्ठ 627

4 वही

अतत यह कहा जा सकता हे सभी विपक्षी दल प्रमुख मुद्दा पर लगभग एक ही विचार रखने ह। सभी दलो ने इसमे सशोधन की आवश्यकता बतायी ह। सभी का विचार हे कि इस अनुच्छेद के प्रयोग ने राज्यो की स्वतन्त्रता को नष्ट व क्षीण करन का प्रयास किया ह जिसम केन्द्र राज्य सम्बन्धा म तनाव की स्थिति पेदा हो गयी है। अत इसको दूर करने के लिये जो प्रमुख माँग व सुझाव रखे गये वो निम्न प्रकार से हे –

पहले भाग मे उनकी उन माँगो को रखा जा सकता ह जो कि काफी उग्र है ओर उनका सिद्धान्त रूप मे मानना केन्द्र सरकार द्वारा सभव नही होगा साथ ही यह बात भी देखने म आयी ह कि जब-जब गेर कांग्रेसी दलो को सत्ता मे आने का मौका मिला ह तब भी उन्होने अपने द्वारा रखी गयी माँगो को पूरा करने का वास्तव मे कोई प्रयास नहा किया हे। वरन् सत्ता म आने पर इसकी उपयोगिता समझते हुए इसका भरपूर प्रयाग किया ह। उनके द्वारा रखी गयी प्रमुख माँगे अग्र लिखित ह –

1 सभी प्रमुख दलो की यह माँग है कि अनुच्छेद 356 को सविधान से पूर्णतया हटा दिया जाना चाहिये। भाजपा इसकी अपवाद हे। उनका इसके हटाये जाने के पीछे प्रमुख तर्क यह हे कि केन्द्र मे राष्ट्रपति शासन के लिय कोई प्रावधान उपलब्ध नही ह अत राज्या मे भी ऐसा कोई प्रावधान नही होना चाहिये। इसके पीछे प्रमुखदलो का विचार ह कि ऐसे साविधानिक उपबध जो केन्द्र को राज्य सरकारा आर उसकी विधान सभाआ को भग करने के लिये सशक्त बनते है वे सघीय व्यवस्था म नहीं होने चाहिये। इसके स्थान पर यदि राज्य मे दगो व हिन्सा के कारण साविधानिक व्यवस्था होने की स्थिति हे आर इस तरह को वारदात तीन माह से अधिक समय से चल रही हो तो राज्य विधान मण्डल म या ससद मे सकल्प पारित कर सभा विघटित की जा सकती हे और इसके तीन माह के भीतर ही निश्चित रूप से नये चुनाव करा लिये जाने चाहिये। इस सम्बन्ध म जो प्रमुख विचार व्यक्त किया गया वह यह था कि इस अवधि के दारान राज्य का प्रशासन कार्यवाहक सरकार द्वारा चलाया जाना चाहिये आर यदि ऐसा सभव न हो तो केन्द्र ससद के अनुमोदन से एक प्रशासकीय बोर्ड का गठन कर सकता हे।

2 लगभग सभी राजनीतिक दलो की यह भी माँग हे कि अनुच्छेद 355 को भी सविधान से हटा दिया जाना चाहिये, जिसके अन्तर्गत सघ सरकार राज्यो मे वहा को

परिस्थितिया को देखते हुये केन्द्रिय रिजर्व पुलिस आर अन्य अर्द्ध सनिक बल तैयार कर सकती ह।

३ अनुच्छेद 365 जो राष्ट्रपति को सविधान के किसी भी प्रावधान मे केन्द्र, का कार्यवाही शक्ति के प्रयोग मे दिये गये किसी निर्देश का कार्यान्वय न करने पर राज्य सरकारो को बर्खास्त करने का अधिकार देता है, हटा दिया जाना चाहिये।

4 सभी दलो ने केन्द्र के शासक दल के एजेण्ट के रूप मे नामित राज्यपाल के पद को समाप्त करने का विचार रखा। क्योकि राज्यपाल हमेशा मे और हर प्रकार से केन्द्र के हाथ म एक आजार के रूप मे राज्य सरकार के रास्ते मे कॉटा रहा है। राज्यपाल सिद्धान्त और व्यवहार दोनो पक्षो मे केन्द्र मे शासक दल और हितो के लिये केन्द्र के हाथा मे एक कठपुतली बन कर रह गया है। वास्तव मे यदि भारत मे सच्ची सघीय व्यवस्था ह तो राज्यपाल के पद का कोई आचित्य नही हो सकता।

दूसरे भाग मे दला के उन उदारवादी विचारो को रख सकत ह जिसे इन दलो के नेताआ ने इन मॉगा को यदि पूरा करना सम्भव ना हो तो सुझाव क आधार पर रखी ह इसम से कुछ सुझावो को सरकारिया आयोग ने भी स्वीकार करते हुये सिफारिश की है। अग्रलिखित सुझाव ऐसे ह जिन पर गभीरता पूर्वक विचार किया जाना चाहिये आर जहा तक हो सके कन्द्र राज्य सम्बन्धो मे अपेक्षित सुधार के किये इन पर अमल किया जाना चाहिये।

1 यदि अनुच्छेद 356 को सविधान मे हटाया जाना सम्भव न हा तो उसमे इस प्रकार सशोधन किया जाना चाहिये जिससे इनका दुरूप्रयोग सम्भव ना हो सके आर इसका प्रयाग अत्याधिक गम्भार परिस्थितियो मे ही किया जा सके। जिससे केन्द्रीय सरकार राजनीतिक कारणा से इन अधिकारो का दुरुपयोग न कर सक।

इस अनुच्छेद का सहारा लेने से पूर्व राज्य स्तर पर ही सकट को दूर करने क लिये यथा सभव प्रयास किये जाने चाहिये। इन विकल्पो की उपलब्धता सविधानिक सकट के स्वरूप उनके कारणो और स्थिति की आवश्यकताओ पर निर्भर करेगी।

2 सविधान के उपबन्धा के अनुसार शासन चलाने वाली राज्य सरकार को स्पष्ट शब्दा म यह चेतावनी दी जानी चाहिये कि वह राज्य का शासन सविधान के अनुसार नही चला रही ह।

, इस अनुच्छेद को केवल उसी स्थिति म लागू किया जाना चाहिये जबकि राज्य म कानून आर व्यवस्था पूर्णत ठप्प हो गयी हे ओर राज्य सरकार स्थिति के समाधान का इच्छुक ना हो।

→ अनुच्छेद 356 के अधीन उदघोषणा करने से पूर्व अन्तरराज्यीय परिषद से परामर्श किया जाना चाहिये और इसके लिये सविधान मे सशोधन किया जाना चाहिये।

यदि राष्ट्रपति की उदघोषणा के छ माह के भीतर चुनाव न कराये जा सके ता अन्तर्राज्यीय परिषद से पुन परामर्श कर ससद के समक्ष उस की राय रखी जाने चाहिये।

5 किसी राज्य को सरकार की भग करके राष्ट्रपति शासन लागू करने से पूर्व न्याय के सामान्य सिद्धान्तो का भी पालन किया जाना चाहिये। राज्यपाल द्वारा रिपोर्ट प्रेषित करन स पूर्व उसे मुख्यमत्री को दिखाना अनिवार्य कर देना चाहिय जिसे अन्तिम निर्णय लने से पूव राष्ट्रपति राज्य सरकार के स्पष्टीकरण पर विचार कर सके।

6 अनुच्छेद 356 के खण्ड (1) म उपबंधित या अन्यथा शब्द को निकाल दिया जाना चाहिये जिससे बिना राज्यपाल की लिखित रिपोर्ट के किसी राज्य सरकार के विरुद्ध कार्यवाही करना सम्भव न हो सके।

7 एसी उदघोषणा की अधिकतम अवधि तीन वर्षो स घटाकर एक वष कर दिया जाना चाहिये।

8 राज्यपालो को नियुक्ति उसकी शक्तिया सघीय राज्य व्यवस्था के अनुरूप होनी चाहिये ताकि राज्यपाल केन्द्र क मात्र कार्यकारी एजेण्ट के रूप म न बना रहे वरन् वह वास्तव म सावधानिक प्रमुख को भूमिका का निर्वाह करे।

9 सविधान म इस प्रकार सशोधन किया जाना चाहिय ताकि राज्यपाल पर इस बात का उत्तरदायित्व टाला जा सके कि वह उस सरकार को वास्तविक शक्ति का सत्यापन कर जिस पर सदन मे बहुमत प्राप्त न करन का आरोप लगाया गया हो तथा साथ हा वह नयी पाटियो के सयुक्त सम्मिलन द्वारा सदन मे किये गये दावो की जॉच करे। यह जॉच नयी सरकार के शपथ ग्रहण करने के 15 दिन के अन्दर होने चाहिये।

10 अनुच्छेद 164 मे समुचित रूप से सशोधन किया जाना चाहिए जिससे राज्यमत्रि परिषद का निर्माण पूर्ण रूप से राज्यपाल की इच्छा पर निर्भर हो। यदि राज्यपाल

राज्य मत्रिपरिषद क प्रति केन्द्रिय सरकार के प्रति बिना पक्षपात मे अपना स्वतन्त्र निर्णय करता ह आर साथ ही मत्रिपरिषद के बहुमत की जॉच आदि से सम्बधित प्रश्न विधान मभा द्वारा निर्णित करने के लिये छोड़ देता है तो सवधित अनुच्छेद क अन्तर्गत अधिकारा क दुरुपयोग क अवसर यथेष्ट रूप से कम हो जायेगे।

11 अनुच्छेद 365 मे उचित सशोधन किया जाना चाहिय ताकि जब केन्द्र आर गज्या म अलग अलग दलो को सरकारे हो तो केन्द्र के राजनीतिक पूर्वाग्रह किसी राज्य विधान मण्डल को सविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारो के उपयोग म अडचन ना डाले उन्ह निष्फल ना कर सके।

लेकिन इन सभी तथाकथित प्रगतिशील राजनीतिक दलो न यद्यपि अनुच्छेद 356 का कटु आलोचना की है। किसी राज्य के विरुद्ध अनुच्छेद 356 के प्रयाग की मॉग रखी है। यहॉ ध्यान देने योग्य बात है कि 1992 मे भाजपा शासित आर राज्य सरकारा की बर्खास्तगी की मॉग इन्ही दलो द्वारा की गयी थी जिसमे कम्युनिस्ट पार्टी सबसे आगे थी। भाजपा जिसने केन्द्र की इस कार्यवाही की कटु आलोचना की थी अनेका अवसरो पर इसके प्रयोग की मॉग केन्द्र से की है। क्या वास्तव मे राजनीतिक दला द्वारा इस अनुच्छेद की आलोचना करने का कोई औचित्य है? वास्तव मे इन दलो का विरोध मात्र विरोध पक्ष म बने रहने तक ही सीमित रहता है। सत्ता प्राप्त करते ही विरोध के स्वर बदल जाते ह। अनेका अवसरो पर इस बात की पुष्टि हुई है। सभी राजनीतिक दलो द्वारा इस केन्द्र की आलोचना तभी की गयी है, जबकि उनकी स्वय की सरकार क विरुद्ध कार्यवाही की गयी। अत सभी गजनीतिक दलो की कोई सैद्धान्तिक ठोस विचारधारा इस प्रावधान के प्रति नही ह। मभी अपने राजनेतिक हितो से ही मात्र प्रेरित है। इससे यही सिद्ध होता ह कि मभी इसके औचित्य से सहमत हैं।

# उपसंहार

# उपसंहार

पिछले अध्याया म किय गये विवेचन से यह स्पष्ट होता ह कि सविधान के अनुच्छेद 356 द्वारा केन्द्र राज्या पर अकुश लगा सकता ह। साधरणतया केन्द्र न (कुछ अपवादा को छोडकर) इस अनुच्छेद का प्रयोग राज्यो मे सवैधानिक अव्यवस्था पर नियत्रण पाने के लिये ही किया ह।

सविधान निमाण के समय से ही-इस बात की आवश्यकता महसूस की गयी थी कि अनुच्छेद 356 के रूप मे केन्द्र के हाथो मे एक ऐसा शस्त्र होना चाहिये, जिससे देश की एकता व अखण्डता अक्षुण्ण रह सके। वास्तव मे मजबूत केन्द्र के प्रति आग्रह ऐतिहासिक, भगोलिक राजनैतिक तथा सास्कृतिक तथ्यो को ध्यान म रखकर ही किया गया था, क्याकि भारत जस दश म जहाँ एक ओर विभिन्न सम्प्रदाया और जातिया के लाग रहते ह, वही दर्शा राज्यो क सम्मिलित समस्याये विद्यमान थी। जिससे राज्य के प्रशासन को पगु बना दने वाले हिसक उपद्रव मे देश की एकता अखण्डता को गभीर खतरा हो सकता था। साथ ही सविधान निर्माता इस तथ्य को भी भला-भाँति जानते थे कि देश के कई राज्यो व क्षेत्रो के निवासियो को ससदीय प्रणाली का कोई अनुभव नही ह, ना ही गहन परम्परा। ऐसी स्थिति मे किसी राज्य म सवधानिक ढाँचे के शिथिल होने की सभावना बनी रहेगी। अत सघ को यह सुनिश्चित करने का कार्य सापा गया कि प्रत्येक राज्य की सरकार सविधान के उपबधो के अनुसार चल रही ह या नही। वास्तव म पिछले 50 वर्षो का इतिहास भी इसी तथ्य की पुष्टि करता ह। ऐसे अनेको उदाहरण मिलते हे जबकि राज्य सरकारे राष्ट्र विरोधी गतिविधियो मे लिप्त होकर राष्ट्र की मुख्यधारा म अपने को अलग करने म सलग्न हो गया थी। 50 के दशक मे तेलगाना विद्रोह, भाषा के आधार पर राज्या का पुर्नगठन होने पर, पजाब, जम्मू काश्मीर व उत्तर पूर्वी राज्या म उत्पन्न स्थितिया को दखते हुय कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 356 - जिसक तहत केन्द्र राज्य के प्रशासनिक अधिकाग को हस्तगत कर लेता है, का सविधान मे बने रहना अत्यन्त आवश्यक ह। इस सबध म तमिलनाडु व पजाब का उदाहरण लिया जा सकता है जबकि तमिलनाडु म 1991 म क करुणानिधि की सरकार पर इस प्रकार के आरोप लगाये गये थे कि वो तमिल विद्रोहियो

का प्रश्न देकर देश की सुरक्षा को क्षति पहुंचा रही था। केन्द्र ने तत्काल ही स्थिति की गभीरता को देखते हुए राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया यद्यपि सभी ने केन्द्र के कृत्य की आलोचना की थी, लेकिन राज्य मे हुये विधान सभा चुनावो ने भी केन्द्र के निर्णय का समर्थन कर दिया था। ज्ञातव्य है कि निवर्तमान सत्तारुढ दल के सभी प्रत्याशी चुनाव हार गये थे। केवल मुख्यमत्री ही अपनी सीट सुरक्षित रख पाने मे सफल हो पाये थे।

इसी प्रकार पजाब मे खड़कुओ द्वारा 'खालिस्तान' की माँग करने के कारण व उनके द्वारा इस माँग का पूरा करने के हेतु राज्य मे चलायी जाने वाली आतकी गतिविधियो के कारण राज्य मे सर्वत्र भय व आतक का माहोल बन गया था। अत राज्य मे इन गतिविधिया के कारण चुनाव करवाना असभव हो गया था, क्याकि भय था कि चुनावा के माध्यम से कोई पृथकतावादी तत्व सत्ता मे न आ जाये, जेसी स्थिति वर्तमान मे जम्मू व कश्मीर की हो गयी है।

लेकिन इन सबके बावजूद अनेको ऐसे उदाहरण भी प्राप्त होते हे जबकि इस आसाधारण शक्ति का प्रयोग केन्द्र ने अपने दलीय हितो के सवर्धन व पूर्ति के साधन के तोर पर किया है। यद्यपि ऐसा नही था कि यह अप्रत्याशित था। इस प्रकार की आशका सविधान सभा मे भी व्यक्त की गयी थी। अनुभवो ने भी उन आशकाओ का पुष्टि की है।

सविधान सभा मे इसके प्रखर आलोचका ने स्पष्ट शब्दो मे भविष्य मे इसके दुरुपयोग की चेतावनी दी थी, साथ ही उन सभी तर्का को अमान्य कर दिया था जो इस अनुच्छेद के सविधान मे रखे जाते समय दिये गये थे। सदस्यो ने इसे अनावश्यक तथा केन्द्र के हाथा मे तानाशाही की सज्ञा दी थी। उनका विचार था कि इसका प्रयोग राज्य विधायक दल मे उत्पन्न दलीय सकटो को हल करने के लिये अथवा 'अच्छी सरकार के सिद्धान्तो के आधार पर भी किया जा सकता है। उन्होने इस अनुच्छेद को राज्यो कीस्वायत्ता को कम करने वाला बताया था। सविधान सभा के अध्यक्ष डा अम्बेदकर ने सदस्यो को यह कह कर आश्वस्त किया था कि 'यह अनुच्छेद मात्र पुस्तक मे ही बने रहेंगे इनका प्रयोग नही किया जायेगा' तथापि उन्होने भी इसके दुरुपयोग की सभावना से इनकार नही किया था।

सदस्यो द्वारा सविधानसभा मे व्यक्त की गयी आशकाये पूर्णत निर्मूल नही साबित हुयीं। पिछले 50 वर्षा के दौरान अनेको दृष्टान्त दृष्टिगोचर होते है, जबकि इस अनुच्छेद का प्रत्यक्षत दुरुपयोग किया गया विशेषकर उस स्थिति मे जबकि राज्यो मे केन्द्र से भिन्न दल की सरकार सत्तारूढ़ हो।

इस सबध म सबसे पहला मामला 1959 म केरल का प्रकाश म आता ह जबकि पहली बार चुनावा द्वारा सत्ता म आयी कम्युनिस्ट पार्टी की बहुमत वाली सरकार को काग्रेस पार्टी ने पदच्युत कर दिया था।केरल मे केन्द्रीय हस्तक्षेप स्पष्ट रूप से राजनीतिक पूर्वाग्रह का मामला था। राज्यपाल के इस प्रतिवेदन का कि सरकार ने जनता के बहुमत का विश्वास खो दिया ह बाद म हुये मध्यावधि चुनावा से इसकी पुष्टि नही हुयी (कम्युनिस्ट पाटी के पक्ष म पडने वाले वोटा का प्रतिशत 35 9 से बढकर 36 8 प्रतिशत हो गया था)।

तथापि केरल के मामले को छोड़कर सविधान लागू होने क बाद अनेक वर्षा तक ना केवल दुरुपयोग अपितु इसके प्रयोग के भी बहुत कम उदाहरण प्राप्त होते ह। वास्तव म इसका प्रमुख काण था- 1967 से पूर्व तक (अपवादो को छोडकर) केन्द्र व राज्या मे एक ही दल शासन करता रहा जिसके कारण केन्द्र तथा राज्यो के मध्य कोई सभावित सघर्ष सामने नही आया। लेकिन 1967 के आम चुनावो के बाद से अनेक राज्यो मे काग्रेस पार्टी का हराकर, गेर काग्रसी दल सत्ता पर विराजमान हो गये। जिसके फलस्वरूप राज्यो तथा सघ के मध्य प्रसुप्त विरोध उत्तेजक ढग से उभरकर सामने आया, जिसकी परिणति राज्यो का राष्ट्रपति शासन के अधीन करने के तोर पर हुयी।

यही कारण हे कि गैर काग्रेसी दल एक आवाज से अनुच्छद 356 को रद्द किये जाने की माँग करते रहे है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यदि कोई राज्य सरकार जनता से किये गये वायदो के अनुसार महत्वपूर्ण नीतियो मे बदलाव लाना चाहती है, ता ऐसी स्थति मे केन्द्र आपत्ति करता हे जैसा कि केरल मे 1959 मे किया गया था। श्री नम्बूदरीवाद की सरकार पर निम्न आरोप लगाये गये थे-

1. कुछ अपराधियो की सजाओ को माफ कर दिया गया,
2. सामान्य प्रशासन मे साधारणतया तथा न्यायिक प्रशासन म विशेषतया सरकार ने हस्तक्षेप किया,
3. राज्य की शिक्षण सस्थाओ को साम्यवादी प्रचार करने के लिये मजबूर किया गया,
4. पुलिस को यह आदेश दिये गये कि वह प्रबन्धको तथा कर्मचारिया के झगडा म उस समय तक हस्तक्षेप ना करे जब तक कि स्थानीय शाति भग होने का खतरा न हो,

5 काग्रेस तथा गर कम्युनिस्ट पार्टिया के सत्याग्रहियो को गिरफ्तार कर लिया गया,

6 पार्टी कोष क लिये 25 लाख रुपय इकट्ठे किये गये (यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य ह कि महाराष्ट्र के भूतपूर्व मुख्यमत्री श्री अतुले ने करोडा रुपये अपने तथा पार्टी फड के लिये इकट्ठा किये थे।)

उपराक्त सभी आरोप कहीं भी इस बात की पुष्टि नहीं करते कि राज्य म सवधानिक तत्र विफल हो गया था। स्पष्टत राज्य सरकार की बर्खस्तगी 'विरोधपक्षीय दल (कम्युनिस्टा को) को सत्ता मे ना बने रहने देने की दुर्भावना के आधार पर ही की थी। इस मत की पुष्टि बाद म मोरारजी देसाई के उस कथन से भी हो जाती है जिसमे उसने कहा था कि **'केरल की कम्युनिस्ट सरकार को इदिरा गाधी के दबाव मे बर्खास्त किया गया था।**

इसी प्रकार हरियाणा मे 1967 मे राव वीरेन्द्र सिह की सरकार को दलबदल के आरोप के आधार पर बर्खास्त किया गया था। राज्यपाल ने अपने प्रतिवेदन म कहा था, कि बार-बार दल बदल के कारण राज्य मे राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण पेदा हो गया था। लेकिन इसके विपरीत उसी दिन पश्चिम बगाल मे पी.सी घोष के मत्रिमण्डल का पद की शपथ दिला गयी जिसके सारे मत्री दल बदलू थ। इस बात का सभी विपक्षी दलो न कड़ा विरोध किया था। उनका कहना था कि जब हरियाणा मे दल बदल बुरा था तो पश्चिम बगाल म उसे सही कैसे ठहराया जा सकता था।

इसी प्रकार तमिलनाडु मे करुणानिधि के मत्रिमण्डल को 1967 इस आधार पर बर्खस्त कर दिया गया था, क्योकि उसके विरुद्ध रिश्वतखोरी के आरोप थे, जबकि उसी समय कर्नाटक म देवराज अर्स के विरुद्ध, आन्ध्र प्रदेश मे वेगेलराव के विरुद्ध भी भ्रष्टाचार के आरोप थे परन्तु उन सरकारो को बर्खास्त नही किया गया। यद्यपि महाराष्ट्र के मुख्यमत्री अतुले के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपो की पुष्टि उच्च न्यायाल के निर्णय द्वारा भी हो गयी थीं, तथापि उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नही की गयी थी क्योकि ये सभी काग्रेसी थे। सभी विपक्षी दलो ने केन्द्र पर पक्षपात पूर्ण भूमिका का आरोप लगाया तथा इसे राज्यों स्वायत्ता के अपहरण की सज्ञा दी।विभिन्न दलो के समय-समय पर हुये सम्मेलनो मे भी अनुच्छेद 356 को रद्द किये जाने की माँग रखी गयी ह विशेषकर वामपथिया ने। परन्तु यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि तथा यह हास्यास्पद भी लगता

ह कि जब 1992 म भाजपा की सरकारो का अपदस्थ करने म इस अस्त्र का प्रयोग किया गया, तब सभी दलो विशेषकर इन तथाकथित प्रगतिशील दलो ने भी इन सरकारा के विरुद्ध अनुच्छद 356 क प्रयोग का स्वागत किया गया। इन सरकारो के विरुद्ध अनुच्छद 356 का प्रयोग तथा इन दला द्वारा स्वागत किया जाना दोनो ही राजनीति से प्रेरित थे। वास्तव म भाजपा सरकारा क विरुद्ध हुये प्रयोग का स्वागत किये जाने से इन दलो के इस अनुच्छेद के प्रयोग का विरोध करना मात्र माखल का विषय बन जाता हे। इससे यही सिद्ध होता ह कि जब इस धारा का प्रयोग इनके अपने दला की सरकारो के विरुद्ध किया जाता हे, तब तो इनके द्वारा इसके प्रयोग की आलोचना की जाती है व इसे हटाये जाने की मॉग रखी जाती हे, परन्तु जब किसी अन्य दल की सरकार के विरुद्ध किया जाता है, तो केन्द्र के निर्णय का ना केवल समर्थन ही किया जाता ह अपितु उनको बर्खास्त करने की मॉग भा सर्वप्रथम इन्ही की तरफ से आती ह। क्या विपक्षी दला को ये नीति उचित ह? 1977 मे 9 काग्रेसी राज्यो की सरकारो को बर्खास्त करना भी इनकी इसी दोतरफी नीति का उदाहरण है, क्योकि 1977 से पूर्व तक इनक द्वारा काग्रेस पार्टी की इसीलिये आलोचना की जाती थी क्योकि काग्रेस स्वतन्त्रता के बाद से लगातार केन्द्र मे सत्तारुढ थी, परन्तु जब गैर काग्रेसी दलो ने सत्ता की बागडोर अपने हाथो मे ली, तो उसी की पुनरावृत्ति कर दी। अत स्पष्ट है कि विपक्षी दलो द्वारा इस अनुच्छेद के विरोध का कोई निश्चित आधार नही ह वरन् विरोध केवल राजनीतिक स्वार्थ से प्रेरित प्रतीत होते हे।

स्वय सर्वोच्च न्यायालय भी भाजपा सरकारो के विरुद्ध अनुच्छेद 356 के प्रयाग की निष्पक्षता से जॉच करने मे असफल रहा है। सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भी कानून व सविधान पर आधारित ना होकर राजनीतिक पूर्वाग्रहो से दूषित था। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय ने भाजपा सरकारो की बर्खास्तगी को इस आधार पर उचित ठहराया था कि 'धर्मनिरपेक्षता' भारतीय सविधान का आधारभूत तत्व है, अत यदि कोई दल धर्म का राजनीति मे इस्तेमाल करता हे तो केन्द्र अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत यह निष्कर्ष निकालने को स्वतन्त्र ह कि राज्य म राष्ट्रपति शासन लगाया जाना उचित ह। वास्तव मे न्यायालय का यह निर्णय उचित नही था। 'धर्मनिरपेक्षता' एकागी धारणा नहीं है। क्या राजनीति मे धर्म का कोई स्थान नही है। इस निर्णय का क्या यह निष्कर्ष निकालना चाहिये कि केन्द्र इस निर्णय को आधार बना कर किसी भी भाजपा सरकार को बर्खास्त कर सकती ह। अकाली दल निश्चित ही साम्प्रदायिक दल है। इसी प्रकार केरल में मुस्लिम लीग व केरल काग्रेस भी विशेष सम्प्रदाय से ही जुड़े हैं और इनका गठबन्धन वर्तमान

म केन्द्र म सत्तारुढ दल कांग्रेस से ह, तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ह कि क्या इन दलो के गठजोड़ से बनी सरकारो को भग किया जा सकता हे ? जहाँ तक 'धर्मनिरपेक्षता' के आधारभूत ढाँच को क्षति पहुचने का सवाल हे, तो एक राजनीतिक प्रश्न ह क्योकि भारतीय राजनीति म धम का राजनीति मे इस्तेमाल सभी राजनीतिक दलो द्वारा किया जाता रहा ह। इनका निर्णय करना न्यायालय के क्षेत्राधिकार मे नही आता ना ही न्यायालया की क्षमता इस पर अपना निर्णय देने की ही ह, क्याकि न्यायालय की क्षमता केवल कानून के क्षेत्रो पर अपना निर्णय देने तक ही सीमित ह, और निश्चित रूप से यह मामला कानून के क्षेत्र मे नही आता। भाजपा सरकारो की पदच्युति को वद्य ठहराने का फेसला निश्चित रूप से न्यायाधीशो की निष्पक्षता पर प्रश्न चिन्ह खडा करता हे। अनुच्छेद 356 के प्रयोग के लिये धर्मनिरपेक्षता की कसाटी निहित करना कठिनाई उत्पन्न करगा। उल्लखनीय हे कि न्यायालय के इस निर्णय का सभी राजनीतिक दला (भाजपा को छाडकर) स्वागत किया गया। किसी भी दल ने यह प्रश्न नही उठाया कि क्या सविधान के ढाँचे को आधार बनाकर न्यायालय निर्णय कर सकता है? वास्तव म न्यायालय ने अपनी न्यायिक सीमाओं का अतिक्रमण किया था। 'बोम्बई बनाम भारत सघ' वाद पर दिये गये निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय ने अपने बाल के फेसले से उलट दिया, जबकि महाराष्ट्र क मुख्यमत्री श्री मनोहर जोशी क चुनाव की वेद्यता पर निर्णय देते हुये कहा था कि 'हिन्दुत्व और हिंदूवाद" जीवन की शली ह, जो मात्र धर्म तक सीमित नही है तथा चुनावो मे हिन्दुत्व क नाम पर वोट माँगने का धम निरपक्षता के विरुद्ध नही माना जायेगा। अत निश्चित तार पर न्यायालय का वर्ष 1924 म दिया गया फसला राजनेतिक पूर्वाग्रह से दूषित था।

आज कोई भी राजनैतिक दल ऐसा नही है जिसने किसी न किसी मामले मे अनुच्छेद 356 के प्रयोग का उचित नही माना है। भाजपा जिसने 1992 मे अपनी चार राज्य सरकारों को गिराय जाने पर केन्द्र की कडी आलोचना की थी, 1995 में उत्तर प्रदेश म मुलायम सिह सरकार को हटाकर राष्ट्रपति शासन लगाये जाने की जोरदार माँग रखी थी। इसी प्रकार की माँग 1995 म बिहार म लालू प्रसाद यादव की सरकार को बर्खास्त करने के लिय का गया थी, जबकि राज्य म एक माह के भीतर ही चुनाव होने वाले थे। किसी भी दल ने अभा तक गभीरता से इसके आचित्य पर विचार नही किया हे ना ही निष्पक्ष रूप से अवलोकन करते हुये इस के दुरुपयोग पर रोक लगाने माँग ही की है। यद्यपि सभी राजनैतिक दलो ने समय-समय पर केन्द्र द्वारा इसके प्रयोग पर कडी आपत्ति व्यक्त की गयी है लेकिन जैसा कि उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट

हो गया है कि कोई भी ऐसा दल शेष नही है जिसने किसी न किसी अवसर पर इसके प्रयोग की माँग न रखी हो अत राजनीतिक दलो द्वारा अनुच्छेद 356 के प्रयोग का कोई व्यवस्थित आधार या तर्क भी शेष नहीं बचा है।

अनुच्छेद 356 के प्रयोग मे राज्यपालो की भूमिका भी निर्णायक रही है राज्यपाल द्वारा राज्य सरकार की बर्खास्तगी के लिये केन्द्र को रिपोर्ट भेजना, राज्य विधान सभाओ को भग करना तथा मुख्य मत्रियो की नियुक्ति आदि ऐसे अधिकार है जिसके प्रयोग मे पक्षपातपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने के कारण उसका पद आलोचनाओ का शिकार रहा है। चूँकि राज्यपाल केन्द्र द्वारा ही नियुक्त किया जाता है, अत उस पर केन्द्र के एजेण्ट के रूप मे कार्य करने का आरोप लगाया जाता रहा है यद्यपि राज्यपाल राज्य का सवैधानिक प्रमुख होता है तथापि उसने सविधान प्रदत्त इस भूमिका से हटकर कार्य किया है। कई मामलो मे तो राज्यपालो ने निश्चित तौर पर ना केवल सावधानिक उपबधो का उल्लघन ही किया हैं, अपितु ऐसे ढग से व्यवहार किया है जिसका कोई सवधानिक आधार ही नही था, और जो ससदीय प्रणाली के लिये खतरनाक हो सकता है।

यह स्वीकृत सिद्धान्त है कि उत्तरदायित्व पूर्ण ससदीय प्रजातत्र मे राज्य के सवधानिक अध्यक्ष के अधिकारो का वास्तविक कार्यपालक की तुलना मेनही बढ़ाया जाना चाहिये। राज्यपाल के विवेकाधिकारो का प्रयोग क्षेत्र सीमित है, और उसे अपने विवेकाधिकारो का प्रयोग अतिम हथियार के रूप मे ही करना चाहिये। लेकिन यह बात ध्यान मे रखी जानी चाहिये कि हमारे देश मे प्रधानमत्री सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली पदाधिकारी होता है। राजनीतिक अधिकार और सरकारी सत्ता प्रधानमत्री के हाथो मे सकेन्द्रित हो जाती हैं। उसके द्वारा मनोनीत होने के कारण राज्यपाल उसके प्रति अनुग्रहीत होते है। राज्यपालो ने तो प्रधानमत्री के निर्देशो को कार्य रूप मे परिणत भर किया है। राज्यपालो द्वारा समय-समय पर लिये गये विवादास्पद निर्णयो के कारण राजनीतिक दलो द्वारा इस पद के उन्मूलन की भी बात की जाने लगी है।

ग्रेट ब्रिटेन जहाँ से भारतीय ससदीय प्रणाली स्वीकार की गयी है, मे भी अभी तक ऐसा कोई उदाहरण नही प्राप्त होता जहाँ सम्राट ने प्रधानमत्री के सभा भग करने के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया हो अथवा सलाह के विरुद्ध कोई सरकार बर्खास्त की हो। (दि टाइम्स 10, सितम्बर 3, 1913) (इस सम्बन्धमे प्रो डायसी का भी विचार है कि वे इस बात से सहमत हैं कि मत्रियो की सलाह के बिना राजा कुछ नही कर सकता।)

लेकिन जहाँ तक भारत का सबध ह, राज्यपाल को विवेकाधीन शक्तियाँ दी गया ह। क्योकि राज्यपाल ही केन्द्र व राज्य को जोड़ने वाली कडी होता ह लेकिन ऐसे अनेको उदाहरण मिलते ह, जबकि उसने केन्द्र म सत्तारुढ दल के इशारा पर निर्णय लिया ह, आर जिसने भी अपने सवधानिक प्रमुख की भूमिका के निर्वहन का प्रयत्न किया उन्ह अपने पद से हाथ धोना पडा ह। उदाहरण के लिये 1991 मे तमिलनाडु के राज्यपाल श्री बरनाला ने द्रमुक की करुणानिधि की सरकार के विरुद्ध प्रतिवेदन भेजने से साफ इनकार कर दिया था, फलस्वरूप जिसकी कीमत उन्होने अपना पद गॅवाकर चुकायी।

एक अन्य बात जो इस अध्ययन के दोरान उभर कर सामने आयी है कि अनुच्छेद 356 का प्रयोग करने म एकरूपता नही बरती गयी है। प्रयोग के मामला का अवलोकन करने मे यह बात सिद्ध होती हे कि एक ही सी परिस्थितिय। मे भिन्न-भिन्न मापदण्ड अपनाये गये ह। कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हे जबकि बिना राज्यपाल के प्रतिवेदन के ही राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। कही विधान सभा का उद्घोषणा के तुरत बाद ही भग कर दिया गया आर कही उस केवल निलम्बित रखा गया व वेकल्पिक सरकार बनान का अवसर दिया गया जबकि कभी-कभी विपक्षी दलो के दावे के बावजूद विकल्प की सरकार बनाने का अवसर उन्हे नही दिया गया। उदाहरण के लिये आन्ध्र प्रदेश मे 1954 मे, मणिपुर म 1972 मे नागालण्ड मे 1992 म, पजाब मे 1966, मे तमिलनाडु मे 1991 मे, व 1977 व 1980 मे जबकि एक साथ 9-9 राज्या की विधान सभाओ को भग किया गया था राज्यपाल के बिना प्रतिवेदन के ही राज्य म राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था।

इसी प्रकार विधान सभा भग करने या निलम्बित रखने का फसला भी दलगत हिता की दृष्टि म रखने हुये ही किया जाता है। जबकभी भी केन्द शासित दल को यह विश्वास हुआ कि वह विधान सभा को निलम्बित करके विपक्ष मे विधायको को दल बदल का प्रलोभन देकर अपने दल का बहुमत विधान सभा मे प्राप्त कर लेगा, उस स्थिति म विधान सभा को निलम्बित कर दिया गया और जब उन्हे इस प्रकार का विश्वास नही था, विधान सभा को तत्काल भग कर दिया गया। उदाहरण के लिये राजस्थान मे 1967 मे, उत्तर प्रदेश मे 1970 म, उड़ीसा मे 1971 म आसाम मे 1979 मे, पजाब मे 1938 मे विधान सभाओ को निलम्बित कर दिया गया था ताकि वहाँ पर काग्रेस पार्टी को सरकार बनाने का अवसर प्राप्त हो सक परन्तु इसके विपरीत आन्ध्र प्रदेश म 1954 मे, केरल मे, 1965 तथा 1970 मे व 1983 म त्रिपुरा मे तथा पश्चिम

बगाल म 1971 म उडीसा म 1973, आसाम म 1982 मे विधान सभाओ को इसलिये भग कर दिया गया ताकि वहाँ विपक्ष की सरकार ना बन सके। लेकिन ऐसे अनेको उदाहरण भी दिये जा सकते हे जबकि काग्रेस ने विपक्ष की सरकारो को बर्खास्त करने के तुरन्त बाद ही विधान सभाआ को भी भग कर दिया गया तथा अवसर होते हुये भी अपनी सरकार बनाने का कोइ प्रयन्न नही किया क्याकि दल- बदल के कारण राज्य मे स्थिर सरकार बनाने की कोई सभावना नही थी। यहाँ यह जानना आवश्यक ह कि 1965 मे केरल म मध्यावधि चुनावा के तुरत पश्चात तथा नव निर्वाचित विधायको के पद की शपथ ग्रहण करने से पहले ही विधान सभा को भग कर दिया गया था, जबकि कम्युनिस्ट पार्टी राज्यपाल के समक्ष सरकार बनाने का दावा कर चुकी थी तथा निर्धारित समय के अदर विधान सभा मे अपना बहुमत भी सिद्ध करने को तयार थी। इसी प्रकार राजस्थान मे राज्यपाल डा सम्पूर्णानन्द ने निर्दलीय सदस्यो की गणना से इनकार कर दिया था, जबकि सयुक्त विधायक दल ने सदन मे अपने बहुमत सिद्ध करने की बात की थी। लेकिन राज्यपाल ने राज्य विधान सभा भग कर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया था ताकि मोहन लाल सुखाडिया का विपक्ष मे दल बदल करवा कर बहुमत प्राप्त कर सक ओर वह इस उद्देश्य म सफल भी हो गये।

इन विभिन्नताओ ने केन्द्र की सवैधानिक निष्पक्षता ओर राजनीतिक ईमानदारी पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। वास्तव मे ससदीय व्यवस्था वाली सरकार मे राजनतिक दल इतना महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है कि वे जनतन्त्र के प्रसाद मे किसी भी पद अथवा सस्था को सफल अथवा विफल बना सकते है यह जिम्मेदारी राजनैतिक दलो पर रहती है कि सवैधानिक नियमो का कठोरता से पालन करे, जिससे राजनीतिक व्यवस्था विश्रृखलित न होने पाये लेकिन एक लम्बे समय तक काग्रेस पार्टी के अलावा किसी सगठित राजनीतिक शक्ति का उदय नही हो पाया जिसके परिणामस्वरूप कोई ऐसी राजनीतिक शक्ति नही थी, जो केन्द्र को अपने शक्तिया का दुरूपयाग करने से रोक पाती।

समय-समय पर सर्वोच्च न्यायालय ने भी राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने की परिस्थितिया का परीक्षण कर सकने का दावा किया है, यद्यपि सविधान निर्माताओ का प्रयोजन इन प्रावधानो को न्यायिक समीक्षा से मुक्त रखना था, क्योकि सविधान के अनुच्छेद 74(2) के अनुसार राष्ट्रपति को मन्त्रियो द्वारा दी गयी सलाह को किसी न्यायालय म इस आधार पर चुनौती नही दी जा सकेगी कि मत्रियो द्वारा राष्ट्रपति को क्या सलाह दी गयी थी ? साथ ही इसी के

तहत अनुच्छेद 356(1) म भी यह व्यवस्था की गयी है कि राष्ट्रपति की सतुष्टि अतिम ह क्याकि इसम स्पष्ट उल्लेख है कि राज्यपाल का प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा इस बात से सतुष्ट ह -- --- तो वह कार्यवाही कर सकता है- स्पष्टत राष्ट्रपति का सतुष्टि को न्यायालय के विचार का विषय बनाने पर रोक लगायी गयी हे।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन्ही उपबन्धो के तहत 1977 म सर्वोच्च न्यायालय ने वादियो द्वारा पेश याचिका को प्रारम्भिक आधार पर ही रद्द कर दिया था । न्यायाधीशो के विचार था कि उक्त मामले का (जैसा कि अध्याय पॉच मे वर्णित हे) न्यायिक पुनरावलोकन नही किया जा सकता, क्याकि यह मामला राजनीतिक हे। जस्टिस भगवती तथा गुप्त के अनुसार "राष्ट्रपति की सतुष्टि एक आत्मनिष्ठ बात है।" इसका उद्देश्यात्मक परीक्षण सभव नही है। वास्तव मे राष्ट्रपति द्वारा लिया गया निर्णय कार्य पालिका द्वारा दिया गया परामर्श ही हाता ह। अत न्यायालय इसम हस्तक्षेप नही कर सकता अन्यथा यह एक गलत परम्परा बन जायेगी। अत जहाँ 1977 म सर्वोच्च न्यायालय सविधान निर्माताओ की वास्तविकता भावनाओ का आदर करते हुये मामले की वधता पर निर्णय देने से इनकार कर दिया था वही दूसरी ओर 1994 म सर्वाच्च न्यायालय ने अपनी सीमाओ का ध्यान न रखते हुये अपने क्षेत्राधिकार का प्रसार कर लिया। यह स्पष्ट ह कि सविधान निर्माता न्यायालय को इस विवाद से परे रखना चाहते थे परन्तु ऐसा हो नही सका, सभवत यह न्यायिक सक्रियतावाद का उदाहरण है।

अत अन्त मे यह कहा जा सकता है कि सभी राजनीतिक विवादा क बावजूद अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यो मे राष्ट्रपति शासन का प्रावधान सविधान मे बना हुआ है और इसन अपनी उपयोगिता, आवश्यकता और औचित्य बार-बार सिद्ध किया है। निश्चित ही यह राज्या को नियत्रण म रखने के लिये केन्द्र के हाथो मे एक ऐसा अस्त्र ह, ओर इसके दुरुपयोग की भी प्रबल सम्भावना है, परन्तु आज स्थिति यह है कि सभी राजनीतिक दल या गठबन्धन केन्द्र मे सत्तारूढ होने की आशा रखते है और सत्तारुढ होने पर अनुच्छेद 356 की शक्ति गँवाना नही चाहते। सम्भवत यही कारण है कि अनुच्छेद 356 के विरुद्ध राजनतिक दलो का विरोध, उनका आक्रोश आर उनकी आलोचना आज उतनी प्रखर ओर तीखी नही रह गयी है, जितनी कि सत्तर के दशक म थी। वास्तव मे स्थिति यह है कि सिद्धान्तत अनुच्छेद 356 का प्रावधान चाहे कितना भी लोकतत्र विरोधी या सघवाद विरोधी हो। परन्तु व्यवहार ने इन दोना ही सैद्धान्तिक धारणा का खण्डन कर दिया हे। व्यवहार मे हम देखते हैं कि अनुच्छेद 356 ने राज्यों ने

समय-समय पर सवधानिक अस्थिरता व अव्यवस्था पर काबू पाकर भारतीय सघ की एकता और सुदृढता को बनाये रखने म योगदान दिया है। इसी प्रकार सभी राष्ट्रीय राजनीतिक दलो, जिनम साम्यवादी दल, काग्रेस पार्टी भारतीय जनता पार्टी सामाजवादी दल जनता दल आदि सभी शामिल ह के द्वारा समय-समय पर राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने की माँग करना, राष्ट्रपति शासन का स्वागत करना, इस बात का प्रमाण ह कि कुल मिलाकर ये सभी दल और लोकमत जिनका ये दल प्रतिनिधित्व करते ह दोनो अनुच्छेद 356 के प्रावधान को आवश्यक, उपयोगी तथा उचित मानते ह ।

आवश्यकता केवल इस बात की है कि अनुच्छेद 356 के प्रावधान के दुरुपयोग को नियत्रित किया जाये। इसके लिये समय-समय पर अनेक सुझाव भी दिये गये ह-

एक सुझाव तो यह ह कि किसी राज्य सरकार न विधान सभा म बहुमत खो दिया ह या नहीं इसका निणय केवल विधान सभा म ही होना चाहिये साथ ही यह भी सुझाव दिया जा सकता ह कि राज्यपाल को यह अधिकार भी होना चाहिये कि वो किसी भी राज्य सरकार को शपथ ग्रहण करने के तीन दिन के भीतर अपना बहुमत सिद्ध करने को कहे।

एक अन्य सुझाव स्वय सर्वोच्च न्यायालय ने 'बोम्बई बनाम भारत सरकार' के मामले म दिया ह जिसमे कहा गया है कि विधान सभा को उस समय तक भग नहीं किया जाना चाहिये जब तक कि राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा का अनुमोदन ससद द्वारा ना कर दिया गया हो। यह खेद का विषय ह कि जब उत्तर प्रदेश म मायावती की सरकार का भग किया गया और राष्ट्रपति शासन लागू किया गया तब बिना राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा का ससद द्वारा अनुमोदन प्राप्त किये राज्य की विधान सभा को भग कर दिया गया। राज्यपाल और केन्द्र की इस विषय को लेकर व्यापक निन्दा हुयी है।

अत आवश्यकता आज इस बात की है कि अनुच्छेद 356 के प्रावधान के दुरुपयोग और उसके राजनीतिक प्रयोग पर रोक लगायी जाये ना कि उक्त प्रावधान ही समाप्त कर दिया जाये।

# सहायक ग्रंथ सूची

# SELECTED BIBLIOGRAPHY


## CONSTITUTIONAL DOCUMENTS

1 Constituent Assembly Debates (1947-49) 51 to 67 (Lok Sabha)

2 The Government of India Act 1935

3 The Draft constitution of India, 1949

4 The Present Constitution of India

5 Proceedings of Lok Sabha Debates (1959 and 1967 to 1970), New Delhi

## REPORTS

1 The Report of centre State Relations Inquiry committee 1971 (Rajamannar Committee Report)

2 The Report of Sarkaria commission on centre state Relations 1988, (Part I and II)

3 Report of the study team of A R C on centre state Relationship (1968 New Delhi)

4 West Bengal Governments Document, 1977

6 Baghwan Sahay Committee Report (1970)

## TABLE OF IMPORTANT CASES

1 Bijayananda V President of India A I R 1974 ori 52

2 Dr Hare Krisna Mehtab v C M Orissa A I R 1976, 175

3 K K Aboo V Union of India, A I R 1965, Ker 229

5 Rao Birender Singh V Union of India A I R 1968 S C 441 (Punjab)

6 Madhav Rao Sindia V Union of Inidia, A I R 1971

7 Shamsher V State of Punjab A I R 1971, S C 2192

8 State of Karnataka V Union of India A I R 1878 S C 68

9 State of Rajasthan V Union of India A I R 1977 S C 1361

10 Sunder Lal Patwa V Union of Inidia, A I R M P, 1993

11 S R Bommai V Union of India A I R S C 1994 Kant

## JOURNALS AND MAGAZINES

1 Journal of constitutional and parliamentary studies New Delhi

2 Journal of Indian Political science Delhi University

3 Asian Recorder, New Delhi

4 Mainstream, New Delhi

5 Economic & Political weekly

6 Keesings Contemporary Archives, New York

## पत्रिकाये

1 भारत (हिन्दी और अग्रेजी)

2 इडिया टूडे (हिन्दी और अग्रेजी मासिक पत्रिका)

3 दिनमान (हिन्दी)

4 ससदीय पत्रिका

5 दि स्टेट्समेन (ईयर बुक) (अग्रेजी)

6 माया

7 धर्मयुग

8 द वीक (अग्रेजी)

9 टाइम्स आफ इडिया( दिल्ली, लखनउ)

10 द हिन्दू (दिल्ली)

11 हिन्दुस्तान टाइम्स (दिल्ली )

12 इंडियन ऐक्सप्रेस (दिल्ली)

13 दनिक जागरण (इलाहाबाद)

14 जनसत्ता (दिल्ली)

15 राष्ट्रीय सहारा (इलाहाबाद)

16 नवभारत टाइम्स (लखनऊ, दिल्ली)

17 अमृत प्रभात पत्रिका (कलकत्ता)

## BOOKS IN ENGLISH

1 Aiyar, S P — Federalism and Social Change A Commentary on Quasi Federalism
Bombay Asian Publishing House 1961

2 Austin, Granville — Indian Constitution, Cornerstone of a Nation
Claredon, Oxford Press, 1972

3 Basu D D — Commentary on the Constitution of India
Vol, IV, Calcutta, S C Sarkar and Sons 1968

4 " — Shorter Constitution of India,
10th Edt Prentice Hall of India Pvt Ltd
Delhi (1989)

5 Binani G D — India at a Glance
Bombay Orient Longmans 1953

6 Chanda Asok — Federalism in India A Study of Union State Relations-
George Allens and Unwin Ltd 1965

7 Dhawan Rajeev — President's Rule in India
Bombay, N M Tripathi Pvt Ltd 1979

8 Dahiya, M S — Office of the Governor in India (New Delhi)
Sundeep Prakashan, 1979

9 Eddy, J P & F N Lawtan, — India's New Constitution A Survey of the Government of India Act–1935
Macmillan & Comp London

10 Gehlot N S — State Governors in India Trends & Issues
Gitanjali Publishing House, New Delhi, 1985

11 Gupta, U N — Indian Federalism and Unity of Nations
Allahabad, Vohara Publishing House 1968

12 Gupta, M G — Aspects of Indian Constitution
Allahabad, Central Book Dept

13 Iqbal Naryan — State Politics in India
Meerut, Meenakshi Prakashan 1976

14 " — Twilight on Down Political Changes in India (1967-71)
Agra, Shiv Lal and Sons, 1972

15 Jain H M — Union Executive
Allahabad, Chaitanya Publishing House 1969

16 Jain, M P — Indian Constitutional Law
Bombay, N M Tripathi Pvt Ltd 1987

17 Kashyap, S C — The Politics Defections–A Study of State of Politics in India,
Delhi, National Publishing House 1969

18 " — Union State Relations in India,
Delhi, Institute of Constitutional and Parliamentary Studies, 1969

| | |
|---|---|
| 19 Keith, A B | A constitutional History of India<br>(Allahabad) Central Book Depot 2nd Edt 1961 |
| 20 Maheshwari, S R | President's Rule in India<br>The Macmillan Comp of india Ltd Meerut 1977 |
| 21 Munshi K M | Indian Constitutional Documents<br>Bombay, Bharat Vidhya Bhawan, 1967 |
| 22 Prasad, Anirudh | Centre State Relations in India<br>New Delhi, Deep & Deep Publications, 1985 |
| 23 Pylee, M V | Constitutional Government in India<br>Bombay, Asia Publishing House 1965 |
| 24 Rao, B Shiva | The Framing of India's Constitution–A Study<br>New Delhi, Indian Insitute of Public Administration, 1968 |
| 25 " | The Farming of India's Constitution,<br>Select Documents, Vol IV, Bombay, N M Tripathi, Pvt Ltd 1968 |
| 26 Sen, Ashok K | Role of Governor's in Emerging Pattern of Centre State Relations in India<br>Delhi, National Publishing House 1975 |
| 27 Siwach, J R | Politics of president's Rule in India<br>Institute of Advanced Study Shimla, 1979 |
| 28 " | Dynamics of Indian Government and Politics<br>Sterling Publishers Pvt Ltd New Delhi |
| 29 Sahni Sati | Centre State Relations<br>Vikas Publishing House Pvt Ltd |

| | |
|---|---|
| 30 Vekıtaraman, R | My Presidential Years<br>Rupa Publication, New Saradk Delhi |
| 31 Kashyap, S C | Indian Political Parties<br>The Institute of Constitutional and Parliamentary Studies, Delhi |
| 32 Gani, H A | Governor in the Indian Constitution–Certain Controversies and Sarkaria Commission<br>Ajanta Publications, 1990 |
| 33 Jones, W H Morris | The Government and Politics of India<br>Hutchinson, University Press London |
| 34 Virender Grover (Edt ) | Federal System, State Autonomy and Centre State Relations in India–Political System in India<br>Deep & Deep Publications New Delhi |
| 35 Mahapatra, J K | Factional Politics in India<br>Chugh Publicaton, Allahabad, 1985 |
| 36 Weiner, Myron (Edt ) | State Politics in India<br>Princeton, New Jersey 1968 |
| 37 Madhok, Balraj | Political Trends in india<br>S Chand, & Comp Delhi, 1959 |
| 38 Jennings, Sir Ivor | Some Aspects of the Indian Constitution<br>Oxford University Press Lordan, 1951 |
| 39 Friedrich, Carl J | Constitutional Government and Democracy<br>Oxford University Press, Calcutta 1968 |
| 35 Nayar Kuldip | India after Nehru<br>Vikas Publications Delhi 1975 |
| 36 " | India–The Critical Years<br>Delhi, Vikas Publications 1971 |

हिन्दी मे


1 सिवाच ज आर. — भारत की राजनीतिक व्यवस्था
हरियाणा साहित्य अकादमी (चण्टीगट)

2 वसु, दुगा दास — भारत का सविधान—एक परिचय
प्रेटिस हाल ऑफ इडिया, प्राइवेट लिमिटेड नयी दिल्ली, 1989

3 " — भारत की सवैधानिक विधि,
प्रेटिस हाल ऑफ इडिया प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 1989

4 शर्मा, राम अवतार
यादव, सुषमा — केन्द्र राज्य सबध
हिन्दी माध्यम कार्यान्वियन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1986

5 कूरियन के मथ्यू
वर्गीस, पी एन — केन्द्र राज्य सबध
एमजी वसानी द्वारा मैकमिलन इडिया लिमिटेड के लिये प्रकाशित (दिल्ली) 1980

6 कश्यप, सुभाष — भारतीय राजनीति के नये मोड़—दल बदल और राज्यो की राजनीति
मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

7 सईद, एस. एम. — भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 1992

8 कोठारी, रजनी — भारत मे राजनीति,
ओरिएण्ट एड लॉगमैन लिम्टिड, दिल्ली 1973

9 जॉन्स, मारिस — भारतीय शासन एव राजनीति,
सुरजीत प्रकाशन, दिल्ली

10 पाण्डय, जय नारायण — भारत का सविधान,
सेन्ट्रल लॉ एजेन्सा, इलाहाबाद

11 सुशीला काशिक, (स) — भारतीय शासन एव राजनीति
हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

12 सत्या एम राय (स) — भारत मे उपनिवेशवाद आर राष्ट्रवाद
हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली वि०वि०

13 भारत का सविधान, (1990) — भारत सरकार, विधि व न्याय मत्रालय विधायी विभाग, राजभाषा खण्ड, नयी दिल्ली

14 — राज्यो ओर सघ क्षेत्रो म राष्ट्रपति शासन
लोकसभा सचिवालय, नयी दिल्ली 1991

## ARTICLES CONSULTED

Ashoke, K — Role of the governor in emerging pattern of Centre State Relations
"Journal of Constitutional and Parliamentary Studies", New Delhi Vol 55 No 3, July–Sep 1971

3 Hirawat Saroj — Changing role of the Governors in appointing the coalition ministry in the context of Maharashtra an Appraisal
Journal of Constitution and Parliamentary Studies, Vol X Oct -Dec , 1977

3 Chatterjee, Delip K — President's Rule and Union State Relations in India
The Journal of Constitution & Parl Stud Vol XIV No 4 Oct-Dec, 1980

4 Karunakaran, K P — Powers and Functions of the President
Mainstream, Vol V No 35 April 29 1967

5 Bhattacharya, S — Federalism and Indian Unity
Vol XXIII No 8, Mainstream Oct 20, 1984

6 Jain, H M — (i) Governors in Changed Political Setup Vol 6
No-14, Mainstream Dec 2, 1967

7 Rao, K V — Centre State Relations in Theory & Practice
Indian Journal of Political Science, Vol XIV
No, 4 Oct-Dec 1953

8 Sahay, S — Arbitary use of Article 356 Vol XXXI No 7
Mainstream Dec 26 1992

9 Chittaranjan, C M — To democracy defence,
Vol VI No 74, Mainstream Dec 2 1967

10 Chatterjee Sibranjan — The Role of Governor in Indian Politics,
Indian Journal of Political Science Vol XXXII
Oct Dec, 1971, No 4

11 Chandola, Harish — The Sordid Game Mainstream April 11, 1992

12 Rao, P Parameswara — The Role of Parliament During the emergency
The Journal of Cons and Parl Studies

13 Pylee, M V — The States under Constitutional Emergency
The Journal of Cons and Parl Studies

14 T Devidas — Use and abuse of Article 356
The Hindu May 4, 1993

15 Hegde, Ramkrishna — Strong states for powerful centre,
Mainstream, Oct 26, 1985 Vol XXIV No-8

16 Dutt, Vijay — For a peoples verdict,
May 2, 1993, The Hindustan Times

17 Roy, P K — 100 days of Central Rule in U P
The Hindu, April 1 1992

18 Singh, Bhishma Narain — Not a Subordinate of Centre,
Hindustan Times, New Delhi Nov 20, 1994

19 Rajan, K R — Governors, On Her Majesty's Service
The Week, Feb 12 18 1983 Vol 8

20 Shenoy, T V R — Governors Accountable to no one, The Week
Feb 12-18-1983

21 Gopalakrishnan, T R — Controversial Governors The Week Feb 12 18
1983

22 Siwach, J R — (i) Powers of the Governor to Summon the State Legislature, Kurukshetra University Research Journal, Vol II, Part I
(ii) The President's Rule, the Politics of Suspending & Dissolving the State Assemblies
Constitutional & Parliamentary Studies Vol IX, No -4 Oct-Dec, 1977

23 Jag Mohan — Nagaland Governor Defend himself, Mainstream, May 2, 1992

24 P A Sebastain — People Versus Their Elected Representative, Economic & Political Weekly Nov, 1988

25 Pant, Nalini — The Governor and Article 356 Problems and Challenges, Journal for Study of State Government Varanasi Vol 5 July Dec 1971

26 Mishra R N — Governor and Dissolution of the Legislative Assembly, Political System in India, Edit by Verinder Grover

| | |
|---|---|
| 27 Rao, K V | Guidelines for the Governors-Political System in India, Edit by Verner Grover' |
| 28 Gehlot, N S | (i) The governor's set their own Rules Parliamentary Studies, New Delhi Vol XVI No 10 Oct, 1972<br>(ii) Indian federalism-some processes and problems,<br>Journal of Political Studies XIII 2 DAV College Jullundhur<br>(iii) Governor and Dissolution of Assembly Mainstream, New Delhi, Vol IX No 52 August 28, 1971 |
| 30 Dahiya, M S | Appointment of the Governor and its implications in the light of the intention of the farmers, The Modern Review, Calcutta Vol CXXVIII No 6 June, 1971 |
| 31 " | Governor's power to dismiss the Chief Minister Ibid, Vol CXXX, No 1, Jan 1972 |
| 32 Jena, B B | "The Role of State Governors in India" The Indian Political Science Review Vol II No 3 and 4, Delhi University, 1968 |
| 33 Sayeed, S M | The Governor-A Tutorial Head Constitutional & Parliamentary Studies, New Delhi, Vol XV, No 12 Dec 1971 |

हिन्दी मे

1 अरुण शारी — क्या ताकतवरा की सुविधा के लिये कानून होता है ?
देनिक जागरण, 18 जनवरी 1993

2 माहन सिह — भारतीय सविधान मे केन्द्रीय हस्तक्षेप के प्रावधान,
दनिक जागरण 19 दिसम्बर 1992

3 बृजेन्द्र प्रताप गातम — सविधान म राज्यपाल का पद आर उसका उभरता स्वरूप

4 के सथानम् — सविधान सभा और राज्यपाल के पद की परिकल्पना
ससदीय पत्रिका (1967)